डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

उपन्यास

खोया पानी

मुश्ताक़ अहमद यूसुफ़ी

अनुवाद - तुफ़ैल चतुर्वेदी

अनुक्रम

- ज्ञान चतुर्वेदी की प्रस्तावना, अनुवादक की कलम से और लेखक की भूमिका
- हवेली
- धीरजगंज का पहला यादगार मुशायरा
- स्कूल मास्टर का ख्वाब
- खंडहर में दीवाली
- कार, काबुली वाला और अलादीन बेचिराग
- हाजी औरंगजेब खान इमारती लकड़ी के सौदागर और आढ़ती

अनुक्रम ज्ञान चतुर्वेदी की प्रस्तावना, अनुवादक की कलम से और लेखक की भूमिका आगे

व्यंग्य का एकदम नया रंग

ज्ञान चतुर्वेदी

हिंदी ही नहीं, विश्व की प्रायः अन्य बड़ी भाषाओं में भी व्यंग्य उपन्यास गिने-चुने ही लिखे गये हैं। अंग्रेजी में पी.जी. वुडहाउस ने अलबत्ता फैंटेसी की अपनी दुनिया और जीव्स जैसे पात्र रचकर हास्य के अमर उपन्यास लिखे हैं - वो भी ढेर सारे। परंतु उनके उपन्यासों की भूमि यह धरती नहीं और इस धरती का आमजन नहीं। वो अलग ही दुनिया है, जो बेहद बांधती तो है, पर कहीं है नहीं। फिर 'थ्री मेन इन ए बोट' जेरोम की अमर रचना है, जोसफ़ हेलर की 'कैच ट्वेंटी टू' नामक युद्ध विरोधी अनोखा व्यंग्य उपन्यास है, उन्हीं की 'गुड एज गोल्ड' भी है, डॉ. रिचर्ड गॉर्डन की 'डॉक्टर सीरीज' के विख्यात व्यंग्य उपन्यास हैं। ये तो अंग्रेजी के तुरत-फुरत याद आने वाले अमर व्यंग्य उपन्यास हैं। इन्हीं में 'एनिमल फार्म' को भी गिन लूं, तो गलत नहीं कहा जायेगा।

इधर हिंदी में 'राग दरबारी' ने हिंदी पाठकों को पहली बार यह बताया कि कैसे इतने बड़े कैनवस को समेट कर बड़ा उपन्यास भी विशुद्ध व्यंग्य में लिखा जा सकता है, गो कि श्रीलाल शुक्ल जी को इसे व्यंग्य-उपन्यास की संज्ञा देना

नहीं भाता। पर वो है तो। क्या करें। है, तो है।

परसाई जी की 'रानी नागफनी की कहानी' नामक एक फैंटेसीनुमा लघु-व्यंग्य-उपन्यास था, जिसकी सीमाएँ 'राग दरबारी' के बरक्स रखकर कभी भी जानी जा सकती हैं। व्यंग्यकार रवींद्रनाथ त्यागी ने भी एक आत्मकथात्मक उपन्यास (अशेष कथा) लिखा, जो व्यंग्य-उपन्यास नहीं था। शरद जोशी का 'मैं, मैं और केवल मैं' नामक अधूरा-सा व्यंग्य-उपन्यास उनकी मृत्यु के बाद छपा और वो कथ्य, कहन, तथा कैनवस के स्तर पर भी अधूरा ही रहा। मेरा विश्वास है कि शरद जी यदि जीवित होते, तो इसको इस रूप में न छपवाते। इससे पहले व्यंग्य-उपन्यास के नाम पर सुबोध कुमार श्रीवास्तव का 'शहर बंद क्यों है' को भी ले सकते हैं। ज्ञान चतुर्वेदी नामक खाकसार ने 'नरकयात्रा', 'बारामासी' और 'मरीचिका' नामक तीन व्यंग्य-उपन्यास लिखे, जो 'राग दरबारी' की विरल परंपरा को आगे बढ़ाने की कोशिश करते हैं। यशवंत व्यास ने 'चिंताघर' और कामरेड गोडसे' नाम के दो महत्वपूर्ण प्रयोगवादी व्यंग्य-उपन्यास लिखे हैं जो काफी चर्चित भी रहे। गिरीश पंकज ने भी 'माफिया' लिखकर व्यंग्य-उपन्यासों की दुनिया में कदम रखा है। प्रदीप पंत का 'इन्फोकार्प का करिश्मा' उपन्यास हाल ही में आया है। दुखद है कि 'राग दरबारी' के लेखक ने बाद में कोई व्यंग्य-उपन्यास लिखा ही नहीं। अब उर्दू पर आयें।

उर्दू में अपनी मिठास तो है ही और उसमें काव्यात्मक लोच भी है, जो उसके समृद्ध कविता संसार में देखा जा सकता है। शायरी की एक जगमग परंपरा है वहां। परंतु उर्दू में हास्य-व्यंग्य की जो लंबी रिवायत है, वो तो उसे एकदम से बेहद समृद्ध भाषा बना देती है। उर्दू व्यंग्य में हिंदी व्यंग्य से इतर बहुत-सी ऐसी बातें हैं, जो उसके व्यंग्य को अपेक्षाकृत अधिक पठनीय, तीखा और जमीन से जुड़ा बनाती हैं। कुछ बातों की चर्चा करना मुनासिब होगा। एक तो ये कि वहां हास्य को व्यंग्य के समकक्ष ही आदर दिया गया है, बल्कि दोनों को अलग करके देखने की अप्राकृतिक कोशिश भी वहां नहीं की गयी है। हास्य की जो समृद्ध परंपरा शौकत थानवी, पतरस बुखारी आदि से चली है, वो अपने उच्चतम शिखर पर यूसुफ़ी साहब के इस उपन्यास में दिखाई देती है, जो इस समय आपके हाथ में है। इम्तियाज अली ताज, ग़ुलाम अब्बास, कन्हैया लाल कपूर, इब्ने-इंशा, फिक्र तौंसवी, मुज्तबा हुसैन आदि के तीखे व्यंग्य में उसी तरह से हास्य है, जैसा हिंदी में बड़े कौशल से शरद जोशी की रचनाओं में मिलता है या 'राग दरबारी' और उसकी परंपरा के उपन्यासों में मिलता है और इस हास्य के कारण उर्दू व्यंग्य कभी कमजोर नहीं हुआ - बल्कि वह बेहद पठनीय और हृदयंगम हो गया। तो एक तो यह, दूसरी बात है उर्दू व्यंग्यकारों की जुम्लेबाजी और विट की बादशाहत। ये चली ही आ रही है। पतरस बुखारी की रचनाओं से शुरू करो तो फिर यूसुफ़ी साहब तक पहुंचो। वे बड़ी मशक्कत से जुम्ले तैयार करते हैं और हर जुम्ला आपको बेसाख्ता चमत्कृत करता है। यूसुफ़ी साहब का यह उपन्यास तो जुम्लों का नायाब खजाना है और किसी भी व्यंग्यकार के लिए एक टेक्स्ट बुक की तरह भी है कि हम विश्लेषित करें कि कैसे 'कही' को 'बतकही' बनाया जा सकता है।

तीसरी बात उनकी सहजता है। उर्दू व्यंग्य बेहद सहज है। वह प्रायः फालतू के पांडित्य प्रदर्शन में नहीं पड़ता। आजकल का हिंदी व्यंग्यकार प्रायः अपनी रचनाओं में थानेदार, वकील और न्यायाधीश तो होता ही है, साथ ही कोड़े फटकारने वाला भी - और इस कोशिश में अपने लेखन में अधिकतर असहज हो जाता है। परसाईजी, शरदजी या त्यागीजी वहां महान हैं, जहां सहज हैं। हिंदी वालों पर यह अतिरिक्त दबाव शायद आलोचकों का है कि व्यंग्य ऐसा हो, वैसा हो, इस डिजाइन का हो और सबसे बेहूदा बात कि कैसा न हो? इस दबाव के चलते कई बार असहजता दिखाई पड़ती है। उर्दू व्यंग्य बेहद सहज है और सहज होना कितना कठिन हो सकता है, यह कोई यूसुफ़ी साहब जैसा एक पैराग्राफ लिखने की कोशिश करके कभी भी देख सकता है। चौथी बात यह कि उर्दू

व्यंग्यकार अपनी कविता के बेहद करीब है। उर्दू की शेरो-शायरी की काव्य संपदा से बेहद परिचित और सटीक जगहों पर उसके इस्तेमाल की शाइस्तगी और तमीज से भी परिचित। कविता की बुनावट से उसका यह गहन लगाव और समझ उर्दू व्यंग्य को एक काव्यात्मक भाषा और अभिव्यक्ति भी देती है।

यूसुफ़ी साहब के इस उपन्यास में कई जगहों पर वे विशुद्ध कवि हैं - कहने में बेहद भावुक और भाषा में महाकवि के समकक्ष। हास्य के जुम्ले गढ़ते-गढ़ते यूसुफ़ी साहब कब कविता की भाषा के गहने गढ़ने में मुब्तिला हो जाते हैं, पता ही नहीं चलता। और भी बहुत- सी बातें लिखी जा सकती हैं, पर अभी वह अवसर नहीं है।

इतना सारा लिखने का मेरा कुल तात्पर्य यह था कि हिंदी के संसार को हम मुश्ताक़ अहमद यूसुफ़ी साहब की लिखी, उर्दू व्यंग्य की इस नायाब कृति से परिचय करायें जिसका अनुवाद 'तुफ़ैल' चतुर्वेदी ने ऐसी सहज भाषा में किया है कि यह हिंदी की ही मूलकृति नजर आने लगी है। 'तुफ़ैल' ने अपनी पत्रिका 'लफ्ज' के जरिये जब मुश्ताक़ अहमद यूसुफ़ी साहब का परिचय हम हिंदी वालों से कराया, तब मैंने बड़ी शिद्दत से महसूस किया था कि यदि 'तुफ़ैल' जैसे मूल्यवान पुल दो भाषाओं के बीच न हों, तो हमें तो पता ही न चले कि उस तरफ की दुनिया कैसी नायाब है। मैं तो 'खोया पानी' की पहली किस्त पढ़कर ही चमत्कृत रह गया था। ऐसे अनुवाद दूसरी भाषा के खजाने को बटोरकर अपनी भाषा की झोली में भरने जैसे होते हैं। यूसुफ़ी साहब का यह व्यंग्य-उपन्यास, हिंदी व्यंग्य के लेखकों और पाठकों, दोनों को व्यंग्य की नई ताकत, तेवर और तरावट से परिचित कराता है।

यूसुफ़ी साहब के इस उपन्यास में नॉस्टेल्जिया का अद्भुत संसार है। पार्टीशन द्वारा हिंदुस्तान के दो फांक हो जाने के बाद का दर्द भी और यथार्थ भी, यादें भी और बदलती दुनिया की बातें भी, फिर पात्र सारे ऐसे कि जिन्हें घनघोर यथार्थ से उठाकर उन पर फंतासी का रंग रोगन कर दिया गया हो। वे लोग कि जो अभी भी उसी समय में जी रहे हैं जो गुजर गया, वे शहर जो अब वो नहीं रहे कि जैसा छोड़कर कभी पाकिस्तान जाना पड़ा।

धार्मिक कठमुल्लापन की बेलौस खिल्ली - बिना लाग-लपेट के। आम मुसलमान के जीवन की मुश्किलें, सपने और हकीकतें। हास्य की पराकाष्ठा। इंप्रोवाइजेशन के अद्भुत प्रयोग। भाषा के मायावी खेल। नायाब चरित्र। इन्सान और इन्सानियत से प्रेम करने का एक कोमल तागा, जो पूरी रचना में यहां से वहां तक। जुम्लेबाजी के एक से बढ़कर एक प्रयोग कि जिन्हें कंठस्थ करके किसी को भी सुनाने का मन करे।

हिंदी के व्यंग्य-उपन्यासों की अपनी परंपरा अभी बन रही है। उसमें सीखने, समझने, करने और अपना लेने की बड़ी गुंजाइश है। यूसुफ़ी साहब का यह उर्दू व्यंग्य-उपन्यास हमें व्यंग्य उपन्यास रचने के सूक्ष्म नये तरीकों से परिचित कराता है - विषय, उसकी भाषा और कहन को लेकर यह उपन्यास हिंदी के व्यंग्य उपन्यासों से अलग जुरूर है पर बेहद ताकतवर, दिलकश, पठनीय और बार-बार पढ़ने के लिए बाध्य करने वाला। इसमें पी.जी. वुडहाउस का फंतासी संसार जैसा भी कुछ है, 'राग दरबारी' के समकक्ष हास्य तथा विट भी है, उर्दू हास्य का अपना कलेवर भी और वे अनोखे पात्र भी, जो अभी भी इस दुनिया को दुनिया होने का अर्थ देते हैं। यूं वो साहित्य से धीरे-धीरे खारिज हो रहे हैं या दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, आम आदमी आदि के तहत मात्र फतवे के तौर पर वहां रह पा रहे हैं।

यूसुफ़ी साहब के जरिये वास्तव में हम उर्दू के एक ऐसे अनोखे हास्य-व्यंग्य संसार से परिचित होते हैं, जो उर्दू में भी अद्‌वितीय है। यूसुफ़ी साहब जैसे लिखने वाले तो उर्दू में भी नहीं। उन्होंने उर्दू हास्य-व्यंग्य को एक नया रंग

दिया है। उनके तीन और व्यंग्य उपन्यास हैं, जिनका तुफ़ैल चतुर्वेदी अनुवाद कर रहे हैं। मैं आशा करता हूं कि ये उपन्यास भी हिंदी में जल्द ही उपलब्ध होंगे। उर्दू यूं भी हिंदी ही तो है, और उसकी कहानियां भी हिंदुस्तान के अवाम की कहानियों जैसी। ये उपन्यास हिंदी व्यंग्य के पाठकों की रुचि और सोच में एक नया आयाम जोड़ेंगे, इस आशा के साथ यूसुफ़ी साहब का यह पहला उपन्यास आपकी नज़्र।

अनुवादक की कलम से

तुफ़ैल चतुर्वेदी

मुश्ताक़ अहमद यूसुफ़ी साहब का उपन्यास 'खोया पानी' मेरी पत्रिका 'लफ्ज' में 1 से 12 अंक तक छप चुका है, किंतु उसकी भूमिका पहली बार आ रही है। व्यंग्य मूलतः करुणा से उपजता है, इस बात की पुष्टि ये भूमिका करेगी। मैंने जब छहमाही संकलन 'रसरंग' को 'लफ्ज' में बदला तो ये भी सूझा इस बार इसे पत्रिका का रूप दिया जाये। 'रसरंग' के समीक्षकों व पाठकों के अनुसार समकालीन गजल का सर्वोत्तम रूप होने के बावजूद ये मन में था कि बाजार इसे स्वीकारेगा या नहीं। मैं मुश्ताक़ साहब को पढ़ चुका था और बातचीत में कहता भी था कि इनके उपन्यास समकालीन व्यंग्य के बेहतरीन दस्तावेज हैं।

एक फुसलाऊ और बिकाऊ नीति के तहत शायरी के साथ व्यंग्य को जोड़ने की योजना बनायी और लफ्ज के पहले अंक को बाजार में पटक दिया। जिन लोगों ने लफ्ज का पहला अंक देखा है वो मेरी बात समझ जायेंगे। मुझे पत्रिका में कॉलम बनाये जाने चाहिए जैसी बात का भी शऊर नहीं था। पहले अंक में पूरे पेज पर एक ही पंक्ति टाइप की गई, नतीजा ये निकला कि जब पाठक पंक्ति खत्म करके अगली पंक्ति के प्रारंभ पर आता तो कई बार नजरें फिसल कर इच्छित पंक्ति की जगह कहीं और पहुंच जातीं। फिर भी भरपूर कामयाबी मिली। लफ्ज अपने पहले अंक से ही पाठकों की जुरूरत का हिस्सा बन गया और अब तो ये स्थिति है कि हमारे प्रसार विभाग के लोग अगर देर से बाजार में पत्रिका पहुंचाते हैं तो बेचने वाले लड़ मरते हैं कि पाठक लौट-लौट कर जा रहे हैं। लफ्ज के स्टैबलिश होने के पीछे सबसे बड़ा हाथ मुश्ताक़ अहमद यूसुफ़ी साहब का है।

इस उपन्यास में आप हंस और हंस के अलावा कहीं चंद्र-बिंदु नहीं पायेंगे। हमारे विचार में इन दो शब्दों के अलावा बाकी सब जगह बिंदी से काम चल जाता है। आज से पंद्रह-बीस साल पहले बहुत-से शब्दों में चंद्र-बिंदु लगता था मगर अब लगभग समाप्त-प्राय है। ये हिंदी का सरलीकरण करने के तहत है। इसी तरह गई/पाई/दिखाई जैसै शब्दों को गयी/पायी/दिखाई लिखा गया है। इसी तरह के अन्य शब्दों के साथ भी यही व्यवहार किया गया है। हम लोगों की सोच इस नियम पर आधारित है कि गई/पाई/दिखाई को जब इसी क्रम में गया/पाया/दिखाया लिखा जाता है तो इसे गयी/पायी/दिखाई ही लिखा जाना चाहिए। इसी प्रकार उर्दू के शब्दों को उनके मूल उच्चारण के हिसाब से लिखा गया है। अस्ल, वज्न, फत्ह जैसे बहुत-से शब्द हैं जो संयुक्ताक्षर होते हुए भी हिंदी में असल, वजन और फतह लिखे जाते हैं। शब्दों का अस्ली वज्न केवल शायर या कवि तय कर सकते हैं चूंकि छंद में शब्द को बांधने से ही उसका वज्न तय होता है। फत्ह का वज्न छंद में s+। (2+1) होगा जबकि फतह का वज्न ।+s (1+2) होगा। ये इस तरह है कि समझना को समझ-ना भी पढ़ा जा सकता है और सम-झना भी। पहले उच्चारण में इस शब्द का वज्न ।+s+s (1+2+2) होगा दूसरे उच्चारण का वज्न s+।+s (2+1+2) होगा। मैं चूंकि स्वयं शायर हूं इसलिए मेरे लिए यह विषय महत्त्वपूर्ण है और इस पुस्तक में इस बात का ध्यान रखा गया है। इस किताब की

प्रूफरीडिंग बहुत ठोक-बजा कर, छान-फटक कर की गई है और इसमें मेरे साथी श्री कमलेश पांडेय ने अपनी बहुत रातें काली की हैं, दिन तो वो ऑफिस में काला करते हैं।

इस सफर में कई ऐसे मेहरबान भी साथ आये जिनकी अनुपस्थिति में मैं कुछ नहीं कर पाता। रहीम ने कहीं कहा है -

रहिमन वे नर मर चुके जे कहुं मांगन जायं

ये वो लोग थे जिन्होंने लफ्ज के लिए लोगों से बात की। इन्हें कोई आवश्यकता नहीं थी कि ये लफ्ज के लिए किसी से कहते किंतु इन्होंने मुझ पर कृपा की। इनका उल्लेख न करना कृतघ्नता होगी। मैं हृदय की गहराइयों से श्री गिरीश चतुर्वेदी, श्री सुधीर चतुर्वेदी, श्री दीनानाथ मिश्रा और श्री ललित कुमार गुप्ता का आभार प्रकट करता हूं।

अंत में अपनी पत्नी रति का आभार कि उन्होंने मेरे अनुवाद करते समय मुझे कभी डिस्टर्ब नहीं किया जो कि हर पत्नी का वैवाहिक दायित्व होता है। बल्कि कई बार तो कई-कई हफ्ते के लिए मायके चली गयीं। परिवार के लोग समझते रहे कि हम दोनों के बीच मन-मुटाव है मगर वो अनुवाद के लिए अनुकूल वातावरण बना रही थीं। मेरे मन से उनके लिए दुआ निकलती है, भगवान उनका सुहाग बनाये रखे।

किताब के बारे में कृपया लोगों को बतायें और खरीद कर पढ़ने के लिए बाध्य भी करें। क्या उपहार में देने के लिए अच्छी किताबों का चयन करना उपयुक्त होगा?

भूमिका

मुश्ताक़ अहमद यूसुफ़ी

'अहसान भाई! मुनव्वर हुसैन भी चले गये - इंतिकाल से पहले।' 'किसके इंतिकाल से पहले?' मियां अहसान इलाही ने अपनी धुंधलायी हुई आंखों से छत के पंखे को तकते और अपने फालिज-ग्रस्त हाथ को दूसरे हाथ से उठाकर अपने दिल पर रखते हुए पूछा। उन्हें रह-रह कर एन्जाइना के दर्द का शक हो रहा था।

ये जनवरी 1987 का जिक्र है, मुझे अपनी बात उन तक पहुंचाने में खासी दुश्वारी हो रही थी, मियां अहसान इलाही पांच साल से बिस्तर पर पड़े हुए थे। फालिज के हमले के बाद वो दिल की बीमारियों के अस्पताल में दस-बारह दिन कोमा में रहे। जब होश आया तो उन्हें मालूम हुआ कि उनके आधे बदन पर फालिज गिर चुका है। नजर जाती रही, जबान भी बुरी तरह शिकार हुई, याददाश्त आंख-मिचौनी खेलने लगी, सिर्फ तकलीफ देने वाली बातें याद रह गयीं।

अगर अब उन्हें कोई पहली बार देखता तो ये सोच भी नहीं सकता था कि ये वही सवा छह फुट, दो सौ दस पौंड और पहलवानी डील-डौल वाला शख्स है जो बहत्तर साल की उम्र में सुब्ह चार बजे डेढ़ घंटे दंड-बैठक लगाता, फिर एक घंटे टेनिस खेलता और दिन में चार-पांच मील पैदल चलता था। 1960 में दिल के पहले भारी दौरे के बाद उन्होंने बदपरहेजी, बैठकों और यारबाशी में बढ़ोत्तरी कर दी थी। लंदन गये तो इब्नुल हसन बर्नी की तरह उन्हें भी कहीं

कोई जीना दिखाई पड़ता तो उस पर चढ़ते जुरूर थे। कहते थे कि 'इससे दिल जवान होता है और बुढ़ापा हार जाता है। साठ-पैंसठ साल पहले चिन्यौट के दूर-पास में कोई पेड़ ऐसा नहीं था जिस पर मैं न चढ़ा हूं।'

डाक्टरों ने खाने में सख्त परहेज बताया। उन्होंने चिन्यौट से अस्ली घी और आम का अचार मंगवाना तो छोड़ दिया लेकिन चिन्यौटी कोफ्ता, सिंधी बिरयानी, बर्नस रोड की तर-तराई ताफतान, कोयटा के सज्जी कबाब, बादाम की हैदराबादी लौज, मुल्तान के अनवर रटौल... संक्षेप में यूं कहिए के दिल के मरीज के लिए आत्महत्या का कोई साधन नहीं छोड़ा। खुद ही नहीं, अपने डाक्टर को भी घर बुलाकर बड़े चाव और इसरार से खिलाते थे। कहते थे अच्छे खाने से बीमारी का सामना करने का हौसला और ताकत पैदा होती है। वो बदस्तूर अपनी-सी पे कायम रहे। रोजे भी नहीं छोड़े, कि बचपन से रखते चले आये थे। इसी तरह पांचों समय की नमाज बाकायदगी से छोड़ते थे। कारण ये देते थे कि अब शुरू करूं तो लोग कहेंगे, मियां साहब एक ही हार्ट-अटैक में उठक-बैठक करने लगे। डाइबिटीज भी हो गई, लेकिन सोने से पहले एक पाव फुल क्रीम वाली आइसक्रीम जुरूर खाते। जितने बुद्धिमान थे, उससे बड़ी हर विषय पर राय रखते थे। कहते थे कि 'आइसक्रीम दिल को ठंडक पहुंचाती है और ब्लड प्रेशर पर कंट्रोल रखती है, बशर्ते कम न खायी जाये। सरगोधा या साहीवाल अपने समधियाने जाता हूं तो संकोच में रात को आइसक्रीम का नागा हो जाता है। रात-भर करवटें बदलता रहता हूं। जिस रात आइसक्रीम न खाऊं, उस रात मच्छर बहुत काटते हैं। 1970 में आपको मालूम है, योरोप के टूर पर गया था, कई दिन तक बिरयानी नहीं मिली, चुनांचे वियना में हर्निया का ऑप्रेशन कराना पड़ा। आप मेरे चटोरेपन और बदपरहेजी का मजाक उड़ाते हैं, गालिब को देखिए सारी उम्र नाकद्री, परेशानी और तंगी का रोना रोते रहे, विशेष रूप से अंतिम दिनों में, लेकिन मौत की बीमारी से पहले की उनकी आखिरी खुराक तो देखिए, 'सुब्ह को सात बादाम की चटनी, कंद के शरबत के साथ, दोपहर को सेर-भर गोश्त का सूप, छह घड़ी रात गये पांच रुपये-भर शराब और इतना ही दूधिया अर्क', भाई मेरे! यहां अल्लाह का दिया सब कुछ है सिवाय डोमनी के, लेकिन मुझे तो मौत की बीमारी के बिना भी इतनी केलोरीज नहीं मिलती। गालिब पांच-रुपये भर शराब इसलिए पीते थे कि अगर उसकी मात्रा बढ़ा देते तो फिर इतना ही दूधिया अर्क भी जहर-मार करना पड़ता। भाई मेरे! मैं तो दूध की आइसक्रीम सब्र और चैन से खाता हूं। कभी तोला-माशा की कैद नहीं लगायी।' डाक्टरों से एक्सरे और बीमारी की पहचान कराने के बाद अक्सर बायोकेमेस्ट्री से खुद अपना इलाज करते। ऐसे संकल्प शक्ति के धनी और बेढब मरीज पर डाक्टरों को गुस्सा नहीं आता, तरस और प्यार आता है। दोस्तों के बीच मीठी बातचीत पर आते तो डिंपल उनके गालों में ही नहीं, वाक्यों में भी पड़ता था। अंत में उनकी बदपरहेजी और लाजवाब कर देने वाली डाक्टरी का नतीजा फालिज की शक्ल में सामने आया।

मैं ड्राइंगरूम और बरामदे से होता हुआ उनके कमरे तक पहुंचा तो देखा कि उनके म्यूजिक रूम में (जिसमें नौ-दस लाउडस्पीकर इस कमाल से लगाये गये थे कि एक भी नजर नहीं आता था) ताला पड़ा है। उनकी निजी लाइब्रेरी भी, जिसकी सैकड़ों किताबों की कीमती जिल्दें उन्होंने निजाम हैदराबाद के शाही जिल्द बनाने वाले से विशेष रूप से बनवायी थीं, चार साल से बंद पड़ी थी। इसी लाइब्रेरी में उन्होंने मेरा परिचय नियाज फत्हपुरी, मौलाना मुहम्मद अय्यूब देहलवी, मुहम्मद हसन अस्करी और सलीम अहमद से कराया था। यहीं से उन्होंने एक बार आधे घंटे तक मुझे फोन पर उस्ताद बुन्दू खां की सारंगी सुनवायी थी कि वो अपने हर शौक और मजे में दोस्तों को शामिल करके अपनी खुशी दुगुनी करने की खूबी से परिचित थे।

फोन पर सारंगी सुनवाने का किस्सा ये है कि उनके पिता मरहूम हाजी मुहम्मद याकूब साहब अपने घर में ताश, औरतों की फोटो (मुराद एक्ट्रेसों से थी) और पानदान रखने के विरोधी तो थे ही, गाने की बैठक को भी बर्दाश्त नहीं करते थे। कहते थे 'बेटा जी! गाना हराम तो हइ हय, मनहूस भी होता है। जिस घर में एक बार तबला या घुंघरू बज गये, उस घर के सामने एक न एक दिन दिवाले और कुर्की का ढोल बजेगा ही बजेगा। वो घर उजड़े ही उजड़े, इसे मेरी वसीयत जानो'। वसीयत के सम्मान में मियां अहसान इलाही इस सस्वर मनहूसियत की व्यवस्था मेरे घर करवाते थे, लेकिन खुदा का करम, मरहूम की भविष्यवाणी के अनुसार हमारे घर के सामने कभी कुर्की का ढोल नहीं बजा। किसी भी घर के सामने नहीं बजा, जबकि इस अंतराल में हमने (किराये के) नौ-दस घर बदले। मियां अहसान इलाही अपने घर में गाना केवल तीन सूरतों में जायज समझते थे। पहला, गाने वाली जिंदा हालत में न हो, मतलब ये कि उसके गाने का सिर्फ रिकार्ड या टेप हो। दूसरे, उनके घर में गाने वाला बिल्कुल तन्हा गाये, यानी न तबले की संगत हो और न उनके अलावा कोई और सुनने वाला मौजूद हो। ये अंदेशा भी न हो कि गाने के बोल समझ में आ जायेंगे यानी रागिनी पक्की हो। तीसरे, गाने वाले को दाद के सिवा कुछ और न देना पड़े, मतलब ये कि गाने वाला फ्री में गाना गाये। मिर्जा कहते हैं कि इन पवित्र शर्तों और नियमों के बाद जो चीज अस्तित्व में आयेगी वो वालिद मरहूम की वसीयत हो सकती है, गाना हरगिज नहीं।

मियां अहसान इलाही इस वक्त कमरे के पिछले हिस्से में एक ऊंचे अस्पताली बेड पर नई रेशमी दुलाई ओढ़े ऊंघा-नींदी की हालत में लेटे थे। दायीं दीवार पर जवानी की दो तस्वीरें टंगी थीं। एक में वो मौलाना हसरत मोहानी के साथ खड़े थे। दूसरी में वो बंदूक का बट मुर्दा नीलगाय की थूथनी पर रखे खड़े मुस्कुरा रहे थे। दोनों तस्वीरों के नीचे उनकी नई व्हील-चेयर रखी थी। उनके सिरहाने एक ऊंचे स्टूल पर वो कीमती दवाएँ सजी थीं जिनके बेअसर और नकारा होने का वो अधजिंदा इश्तिहार थे। उस वक्त तो मुझे उनकी याददाश्त का कायल होना पड़ा, इसलिए कि उन्होंने मेरे आतिथ्य के लिए फ्रेस्को से मेरी पसंद की गर्म जलेबियां और नाजिमाबाद के मुल्ला हलवाई के गुलाब जामुन मंगवाये थे। दायीं तरफ दीवार से लगे सागौन के किंग साइज बेड पर तकिये नहीं थे। उनकी बेगम की मौत को दो महीने हुए थे। दरवाजे के सामने वाली खिड़की के कार्निस पर एक छोटा-सा कैसेट प्लेयर और उन मुशायरों के टेप रखे थे, जो बीते पैंतीस बरसों में इस लॉन पर हुए थे और जिसके लिए घास ढाका से, गुलाब और पाम के पेड़ पिंडी और श्रीलंका से मंगवाये थे। फालिज के कारण पंखा, एयरकंडीशनर, खिड़कियां, बुरी खबरें, बच्चों का आना सब बंद थे। मैंने सोचा कि उनको सुनाई देने में भी कठिनाई होने लगी है - मैंने जरा ऊंची आवाज में दुहराया -

'हमारे यार - जानी मुनव्वर हुसैन मर गये।'

'हां, मुझे किसी ने बताया था,' उन्होंने बड़ी लड़खड़ाती आवाज में कुछ कहा, जिसका मतलब मैंने यही समझा। मुझे कुछ ऐसा महसूस हुआ जैसे वो इस विषय पर बात नहीं करना चाहते थे।

मेरी बात पर वो अपना ध्यान बीस-पच्चीस सेकेंड से अधिक देर तक फोकस नहीं कर पा रहे थे और इस छोटे-से कोंदे में अपनी बात कहने में मुझे कठिनाई हो रही थी।

वो बात ये थी कि अट्ठाईस साल कराची में रहने के बाद मैंने जनवरी 1979 में लंदन जाने के लिए सामान बांधा तो पहले अपने दोस्तों (जिनके नाम खानापूरी के लिए मियां अहसान इलाही और मुनव्वर हुसैन मान लीजिए, नाम में क्या रखा है। दोस्त को किसी भी नाम से पुकारें, फूलों ही की खुशबू आयेगी।) की बातें और यादें उन्हीं की

आवाज में टेप पर सुरक्षित कीं। विस्तृत नोट भी लिए और याददाश्त पर आधारित दस चरित्र-चित्रण और लेख लंदन में बड़ी तेजी से लिख डाले। फिर आदत के अनुसार पाल में लगा दिये कि डेढ़-दो साल बाद निकाल के देखेंगे कि कुछ दम है भी या निरा खौरा है। मियां अहसान इलाही और मुनव्वर हुसैन से दुबारा उनके जपने की अनुमति चाही तो उन्होंने बिना किसी शर्त के प्रसन्नता के साथ दे दी। मैंने साफ करने के लिए लेख निकाल कर देखे तो एक अजीब समस्या से दो-चार हुआ - ऐसा लगा जैसे ये सब किसी और ने लिखा है। ये तो बिल्कुल स्पष्ट था कि ये दो किताबों का मैटर है। मैं एक पुलंदे से दो किताबें निकालने का जतन कर रहा था कि मुनव्वर हुसैन का एक संक्षिप्त पत्र मिला, जिसमें उन्होंने लिखा था कि मुझे तो निजी तौर पर कोई विरोध नहीं, लेकिन संभव है इनका छपना मेरे करीबी लोगों को अच्छा न लगे। इसलिए इन बातों और यादों को मेरे नाम से न जोड़ा जाये। इससे पहले कि मैं कराची जा कर उनसे इस विषय पर विस्तृत बातचीत करूं, दो-तीन महीने बाद उनका देहांत हो गया।

मेरी कथा सुनकर मियां अहसान इलाही ने टूटे-फूटे लहजे में कहा कि मुझे तो कोई विरोध नहीं, आप जैसा उचित समझें करें, फिर कहने लगे बहुत दिन हो गये अब पाकिस्तान आ भी जाइए। हमारे बाद आये तो क्या आये। आंखें भी बिल्कुल जाती रहीं, कभी-कभी मुझे आपका चेहरा याद नहीं आता - ये कह कर फूट-फूट कर रोने लगे। पैंतीस साल में मैंने उन्हें दूसरी बार रोते देखा।

अब मैं अजीब परेशानी से घिर गया। दोनों की यादें और बातें एक-दूसरे में कुछ इस तरह गुंथी और गुंधी हुई थीं कि इन जुड़वां सियामी लेखों को ऑपरेट करके अलग करना मेरे बस का काम न था। न ये संभव था कि एक के नाम, जगह और परिचय को तो प्रकट कर दूं और दूसरे के नाम और घटनाओं को बदलकर कहानी की पोशाक पहना दूं। इन हालात में मेरे लिए इसके सिवा और कोई चारा नहीं था कि सारे लेखों को एक बार में ही रद्द करके न केवल नाम और जगह बदल दूं बल्कि शुरू से अंत तक सब कुछ fictionalise कर दूं, जिसका इन दोनों से कोई संबंध न हो। और मैंने यही किया।

चुनांचे 'खोया पानी' के पांच कहानीनुमा निबंधों में जो कुछ आप पढ़ेंगे, उसका इन दोस्तों के जीवन की घटनाओं या उनके साथियों, बुजुर्गों और मिलने वालों से कोई संबंध नहीं है। विनम्र निवेदन है कि फिक्शन को फिक्शन ही समझ कर पढ़ा जाये, अगर कोई घटना सच या चरित्र अस्ली नजर आने लगे तो इसे संयोग समझा जाये। लगभग सारी घटनाएँ और चरित्र फर्जी हैं। अलबत्ता जिन प्रसिद्ध लोगों का जिक्र जहां कहीं बुराई या आलोचना के लिए आया है, उसे झूठ न समझा जाये। इतना अवश्य है कि मैंने अपनी पूरी कोशिश-भर मुनव्वर हुसैन और मियां अहसान इलाही के बातचीत के ढंग, आपस की नोक-झोंक के बीच चिंगारी उड़ाते हुए वाक्यों को ज्यों-का-त्यों रखने की कोशिश की है।

यूं भी इससे क्या अंतर पड़ता है कि फिक्शन है या सच्ची घटना या इन दोनों का मिश्रण जिसे आजकल Faction (Fact+Fiction) कहा जाता है। एक चीनी विद्वान का कथन है कि इससे कोई अंतर नहीं पड़ता कि बिल्ली काली है या सफेद - देखना ये चाहिए कि वो चूहे पकड़ सकती है या नहीं।

इस पृष्ठभूमि का वर्णन और स्पष्टीकरण मुझ पर इसलिए भी आवश्यक है कि इस किताब का अस्ली केंद्र, प्रस्तावक और कारण - दो पुराने दोस्तों का साथ और हंसी-मजाक था, जो मेरे जीवन का सर्वाधिक मूल्यवान काल है। वो दोस्तों के साथ के हर क्षण को एक उत्सव समझ कर बिताते थे, इस ऋण और महान कृपा को प्रकट न करना अनुचित होगा।

जिस उखड़ी-उखड़ी बातचीत का ऊपर जिक्र हुआ है, उसके कुछ ही दिन बाद मियां अहसान इलाही भी अपने रब से जा मिले और देस सूना कर गये, और अब जबकि मैं एक अंतरराष्ट्रीय बैंक के धीन ग्यारह साल लंदन में बिताने के बाद अपने वतन जाने की तैयारी कर रहा हूं तो, उनका गिला और शिकवा सही साबित हो रहा है।

पीछे मुड़कर देखता हूं तो निजी, साहित्यिक, व्यावसायिक, राजनीतिक और सामाजिक आधार से इस नकारा-काल में घाटे के सिवा कुछ दिखाई नहीं पड़ता। हां! विदेश घूमने और देश से दूर रहने का एक लाभ यह देखा कि देश और देशवासियों से प्यार न केवल बढ़ जाता है बल्कि अहैतुक हो जाता है।

सफर करदम बहर शहरी दुवेदम
बलुत्फो - हुस्ने - तोकस रानदीदम

हानि ये कि हर सूचना और अफवाह जो उधर से आती है, दिल दहलाने और खून जलाने वाली होती है। पाकिस्तान की अफवाहों की सबसे बड़ी खराबी यह है कि सच निकलती हैं। ये क्रम दस-ग्यारह साल तक चले तो भावुक आदमी की हालत सिस्मोग्राफ की-सी हो जाती है - जिसका काम ही भूकंपों के झटके रिकॉर्ड करना और हर समय कांपते रहना है। यूं लगता है कि हमारी राजनीति का मसाला ज्वालामुखी से निकला है।

लीडर भ्रष्ट, विद्वान लोग स्वार्थी, जनता भयभीत-आतंकित और हर आदेश का पालन करने वाली। जब संस्थान खोखले और लोग चापलूस हो जायें तो जनतंत्र धीरे-धीरे डिक्टेटरशिप को रास्ता देता जाता है। फिर कोई डिक्टेटर देश को कुपित आंखों से देखने लगता है। तीसरी दुनिया के किसी भी देश के हालात पर दृष्टिपात कीजिए। डिक्टेटर स्वयं नहीं आता, लाया और बुलाया जाता है और जब आ जाता है तो प्रलय उसके साथ-साथ आती है। फिर वो कहानी के परंपरागत ऊंट की तरह बद्दुओं को खेमे से निकाल बाहर करता है। बाहर निकाले जाने के बाद खिसियाने बद्दू एक-दूसरे का मुंह नोचने लगते हैं फिर एक अनुपलब्ध बल्कि दुर्लभ वस्तु की खोज में निकल पड़ते हैं, मतलब ये कि अपने वाले से अधिक आज्ञाकारी ऊंट तलाश करने और उसे बुलाने की योजना बनाने लगते हैं ताकि उसकी पीठ पर बैठकर अपने खेमे में रह सकें और अपने पुरस्कार-अयोग्य मालिक यानी पिछले ऊंट पर लानत भेज सकें। ये सच्चाई है कि डिक्टेटर से अधिक प्यार-भरा और कोई नहीं हो सकता, इस माने में कि वो अपने दिल की गहराइयों से ये समझता है कि जनता और देश से जिस तरह टूट के वो प्यार करता है और जैसी और जितनी सेवा वो अकेला कर सकता है, पूरे देश के बूते का काम नहीं। वो सचमुच महसूस करता है कि उसके जिगर में सारे-जहां का दर्द ही नहीं इलाज भी है।

इसमें शक नहीं कि उसके पास उन Non-issues और फर्जी झगड़ों का निहायत इत्मीनानबख्श हल होता है जो वो अपनी करतूतों से खड़े करता है। ये कहना गलत न होगा कि समाचार-पत्रों में क्रॉसवर्ड बनाने वालों की तरह पहले वो बहुत-से हल इकट्ठे कर लेता है और फिर अपनी पहेली गढ़नेवाली बुद्धि की मदद से इनसे आड़ी-तिरछी समस्याएँ गढ़ता चला जाता है।

राय की सर्वोच्चता और सत्ता की निरंकुशता का अनिवार्य परिणाम ये कि वो ईश्वर की सृष्टि से इस तरह संबोधित होता है जैसे वो पाषाणकालीन जंगली हों और वो स्वयं उन्हें अंधकार से निकाल कर अपने नेतृत्व में लाने और वनमानुष से मनुष्य बनाने के ईश्वरी काम पर है। वो हर समय अपनी सीसा पिलाई हुई दीवार से बात करता है मगर मानवाकार अक्षरों में उस पर अंकित लिखावट उसे दिखाई नहीं देती। न्याय के अपने बनाये तराजू

के ऊंचे-नीचे पलड़ों को, कभी इस पलड़े तो कभी उस पलड़े में अपनी तलवार का पासंग डालकर, बराबर कर देता है।

फिर जैसे-जैसे साम्राज्य पर अहंकार और हवस बढ़ती जाती है डिक्टेटर अपने निजी विरोधियों को ईश्वर का विरोधी और अपने चाकर-टोले को बुरा बताने वालों को देशद्रोही बताता है। जो उसके कदमों में नहीं लोटते, उन पर ईश्वर की धरती का अन्न, उसकी छांव और चांदनी हराम कर देता है। लेखकों, कवियों को शाही बिरयानी खिलाकर ये बताता है कि लिखने वाले के क्या कर्तव्य हैं और नमकहरामी किसे कहते हैं। वो ये जानता है कि साहित्य व पत्रकारिता में बिके हुए लोगों का एक कबीला होता है, उनसे वो गवाही दिलवाता है कि मेरे राज्य में बोलने, छपने और जपने पर कोई प्रतिबंध नहीं है। मतलब ये कि जिसका जी चाहे, जिस छंद या विधा में स्तुति लिखे और पढ़े। बल्कि स्तुति-काव्य छंद, बुद्धि से परे भी हो तो कोई बात नहीं।

जैसे और दौर बीत जाते हैं, ये दौर भी बीत गया। लेकिन कुछ लोग ऐसे आतंकित और चढ़ते सूरज की पूजा के इतने आदी हो गये थे कि सूरज डूबने के बाद भी सिजदे में पड़े रहे कि न जाने कब और किधर से निकल आये। कभी किसी ने कौली भरके जबरदस्ती खड़ा करना भी चाहा तो मालूम हुआ कि खड़े नहीं हो सकते। सारे जोड़ अकड़ कर रह गये हैं।

अर्जेंटाइना हो या अलजजाइर, तुर्की हो या बांग्लादेश, इराक हो या मिस्र इस दौर में तीसरी दुनिया के हर देश में लगभग यही ड्रामा खेला जा रहा है। सेट, डायलॉग और मास्क के परिवर्तन के साथ।

इस उपन्यास में लिखे गये लेख जो अपने स्टाइल और जानबूझ कर रचे गये फैलाव बल्कि बिखराव के कारण नॉवल के निकट हैं, इसी काल की कड़वाहटें हैं। इनमें से सिर्फ पांच इस उपन्यास में शामिल हैं। कहते हैं किसी ने एमिनॉल जोजफ सीज से पूछा कि आपने फ्रांस की क्रांति में कौन-सा कारनामा किया तो उसने जो दो शब्दों का जवाब दिया वो इतिहास का अंग बन गया, "I servived!" यानी मैंने अपने-आप को बचा लिया। वतन और अपनों से ग्यारह साल की दूरी का जो परिणाम स्वभाव और जीवन पर पड़ता है, उसकी परछाइयां आपको जहां-तहां इन पंक्तियों में नजर आयेंगी। यूं लंदन बहुत दिलचस्प जगह है और इसके अलावा इसमें कोई खराबी नजर नहीं आती कि गलत जगह पर स्थित है। थोड़ी-सी कठिनाई जुरूर है कि आसमान हर समय बादलों और कोहरे से घिरा रहता है। सुब्ह और शाम में अंतर पता नहीं लगता। इसलिए लोग A.M. और P.M. बताने वाले डायल की घड़ियां पहनते हैं। मौसम ऐसा है जैसे किसी के दिल में नफरत भरी हो, घर इतने छोटे और गर्म कि लगता है कमरा ओढ़े पड़े हैं। बकौल फिलिप लेकिन ये कैसी मजबूरी कि -

"Nowhere to go but indoors"

अच्छाई और सुंदरता और शालीनता में अंग्रेज का जवाब नहीं। धर्म, राजनीति और सेक्स पर किसी और कैसी भी सभा में बात करना अशिष्टता और परले दर्जे की बुराई समझते हैं, सिवाय पब और बार के। गंभीर और आवश्यक विषयों पर बातचीत सिर्फ नशे की हालत में ठीक समझते हैं। बेहद हमदर्द, कारवाले इतने शिष्ट कि इकलौते पैदल चलने वाले को रास्ता देने के लिए अपनी और दूसरों की राह खोटी करके सारा ट्रैफिक रोक देते हैं। मिर्जा अब्दुल वदूद बेग, जो सदा के भावुक ठहरे, कहते हैं कि बेतहाशा जी चाहता है कि जेब्रा-लाइन पर ही खड़े होकर, पहले सब को झुक-झुक कर अलग-अलग कोर्निश बजायें, फिर सड़क पार करें।

कफस में कोई अजीयत नहीं मुझे सय्याद
बस एक हश्र बपा बालो - पर में रहता है

कोई लिखने वाला अपने लोगों, अपने समकालीनों, अपने देश-समाज की समस्याओं, लोक-परंपरा और कल्चर से कटकर कभी कोई जीवित और अनुभव की दहकती कुठाली से निकली हुई महान कृति का निर्माण नहीं कर सकता। ब्रिटेन में रहने वाले एशियाइयों में सौ में निन्यानवे उन सुंदर पेड़ों के नाम नहीं बता सकते जो उनके मकानों के सामने न जाने कब से खड़े हैं। (रहा सवाल ब्रिटिश आदमी का तो उसने पेड़ों को कभी नोटिस ही नहीं किया।) न इन रंग-बिरंगे पक्षियों के नाम जो मुंह-अंधेरे और शाम-ढले इन पर चहचहाते हैं, और न उस गर्लफ्रेंड के बालों का शेड बता सकते हैं, जिसके साथ रात भर बड़ी रवानी से गलत अंग्रेजी बोली। गोल्डन-ऑबर्न, कॉपर-ऑबर्न, ऐश-ब्लॉड, चेस्टनट-ब्राउन, बरगंडी-ब्राउन। इनकी लालची आंखें तो 'जो कुछ भी हो, खुदा की कसम, लाजवाब हो' पर आकर ठहर जाती हैं। दूसरे, देश का जीवन, उसके समाज का अनुभव, उसकी समस्याओं की समझ और पकड़ इतनी सरसरी और हल्की होती है कि कभी म्यूजियम, आर्ट गैलरी, थियेटर, नाइ टक्लब, सोहो की चमक-दमक, वैसी गलियों की परिक्रमा, ईस्ट-एंड में अपमानजनक 'मगिंग' या चियरिंग-क्रॉस पर ग्राहकों की प्रतीक्षा करती वेश्याओं के ध्यानाकर्षण से आगे नहीं बढ़ पाती। बहुत तीर मारा तो ब्रिटिश नागरिकता हासिल करके वो रही-सही इज्जत भी गंवा दी, जो टूरिस्ट या मेहमान मजदूर होने के कारण उपलब्ध थी। ब्रिटिश पासपोर्ट और देशवासियों की बेबसी का प्रतिशोध लेने के लिए किसी अंग्रेज औरत से शादी कर ली और अपनी तरफ से सारे अंग्रेजों को नाड़े के रिश्ते में बांध कर डाल दिया। नख-शिख और जातीय दृष्टि से अंग्रेजों का स्टॉक बहुत अच्छा है। कद, काठ, रंग, रूप और तीखे तरशाये नैन नक्श के कारण इनकी गिनती खूबसूरतों में होती है। मिर्जा कहते हैं कि बदसूरत अंग्रेज औरत Rarity है, बड़ी मुश्किल से दिखाई पड़ती है, यानी हजार में एक। पाकिस्तानी और हिंदुस्तानी इसी औरत से शादी करता है, लेकिन अंग्रेज औरत से शादी करने से न तो इंग्लैंड फत्ह होता है, न समझ में आता है बल्कि जैसे-जैसे समय बीतता है, खुद औरत भी समझ में नहीं आती। चुनांचे देश-निकाला दिया गया साहित्यकार (चाहे उसने बेहतर वेतन और बदतर व्यवहार की चाह में खुद को देश निकाला दिलवाया हो या निजी और राजनैतिक मजबूरी के कारण आर्थिक रूप से उन्नत देश-निकाला स्वीकार किया हो) घूम-फिर के उसी छोड़ी हुई मंजिल और बीते हुए जीवन का चित्रण करता है जिसे दूरी, निर्वासन और नॉस्टेलजिया ने अब आउट ऑफ फोकस करके ग्लेमेराइज भी कर दिया है। लंदन में निर्वासित उर्दू साहित्यकारों का भी कुछ ऐसा ही हाल है।

कोई उनकी बज्मे - जमाल से कब उठा , खुशी से कहां उठा
जो कभी उठा भी उठाये से तो इसी तरफ निगरां उठा

लंदन में इस दरबार से बहिष्कृत पर क्या बीती और बुद्धि को चमका देने वाले कैसे-कैसे कपाट खुले, यह एक अलग दास्तान है, जिसमें कुछ ऐसे पर्दानशीनों के नाम आते हैं, जो साफ छुपते भी नहीं, सामने आते भी नहीं। इसे जल्द ही अलग किताब के रूप में सामने लाऊंगा।

इस कथानक के अधिकतर चरित्र अतीत-पूजक, अतीत-ग्रस्त हैं। इनका मूल रोग नॉस्टेलजिया है। जब मनुष्य को वर्तमान से अतीत अधिक सुंदर दिखाई देने लगे और भविष्य दिखाई देना बंद हो जाये तो समझ लेना चाहिए कि वो बूढ़ा हो गया है। यह भी याद रहे कि बुढ़ापे का जवानीलेवा हमला किसी भी उम्र में... विशेष रूप से जवानी में हो सकता है। अगर अफीम या हेरोइन उपलब्ध न हो तो उसे अतीत की याद और फैंटेसी में, जो थके- हारों का

अंतिम आश्रय-स्थल है, खुशी महसूस होती है। जैसे कुछ बहादुर और कड़ियल लोग अपनी भुजाओं की शक्ति से अपना भविष्य आप बनाते हैं, इसी तरह वो अपने विचारों की शक्ति से अपना अतीत आप बना लेता है।

यादों की शोर मचाने वाली नदी अतीत के मैदान में बहते-बहते सपनों की मरीचिका में उतर जाती है फिर अंदर-ही-अंदर कहीं उभरती, गुम-होते स्रोतों और विचार-बगूलों में बोई हुई खेती को सींचती रहती है और कहीं अचानक किसी चट्टान से जीवन का चश्मा फूट निकलता है।

कभी-कभी कोई समाज भी अपने ऊपर अतीत को ओढ़ लेता है। गौर से देखा जाये तो एशियाई ड्रामे का अस्ल-विलेन अतीत है। जो समाज जितना दबा, कुचला और कायर हो उसे अपना अतीत उतना ही अधिक उज्ज्वल और दुहराये जाने लायक दिखाई पड़ता है। हर परीक्षा और कठिनाई की घड़ी में वो अपने अतीत की ओर उन्मुख होता है और अतीत भी वो नहीं, जो वस्तुतः था, बल्कि वो जो उसने अपनी इच्छा और पसंद के अनुसार तुरंत गढ़ कर बनाया है। ...अतीत के इच्छुक, इस अतीत पूजा के परिदृश्य में घायल अहंकार का मोर-नाच देखने योग्य होता है कि मोर अपना नाच ही नहीं, अपना जंगल भी खुद पैदा करता है। नाचते-नाचते एक जादुई क्षण ऐसा आता है कि सारा जंगल नाचने लगता है और मोर चुपचाप खड़ा देखता रह जाता है।

नॉस्टेल्जिया इसी क्षण की कहानी है

घायल अहंकार अपने लिए कहां-कहां और कैसे-कैसे आश्रय-स्थल ढूंढ़ता बनाता है, यह अपनी-अपनी रुचि, पराजय के आकार-प्रकार और भागने की क्षमता पर निर्भर है। आध्यात्मवाद, सूफिज्म, समाधि, शराब, हास्य-व्यंग्य, सेक्स, हेरोइन, वैलियम, अतीत, फैंटेसी... जिसको जो नशा रास आ जाये। ऑरनॉल्ड ने हार जाने वाले, मगर हार न मानने वाले, ध्यान-धूल में लथपथ पूर्व की हार की सहनसीमा के बारे में लिखा था।

The East bow'd low before the blast

In patient, deep disdain

She let the legions thunder past

And plunged in thought again

और इस घमंड-भरी समाधि में सदियां बीत जाती हैं। सबसे गहरा और सपने दिखाने वाला नशा, जो आदमी को वर्तमान और अपने अस्तित्व से विमुख कर देता है, खुद अपने लहू में किसी सपने या विचार की मिलावट से पैदा होता है। ये नशा चढ़ जाये तो सब कुछ स्वीकार, सब कुछ बर्दाश्त।

प्राचीन काल में चीन में जिस व्यक्ति की खिल्ली उड़ानी होती थी उसकी नाक पे सफेदी पोत देते थे, फिर वो कितनी भी गंभीर बात कहता, क्लाउन ही लगता। न्यूनाधिक यही हाल व्यंग्यकार का भी होता है। वो अपनी फूलिश कैप उतार कर फेंक भी दे तो लोग उसे झाड़-पोंछ कर दोबारा पहना देते हैं। मुझे ये तो ध्यान नहीं कि बैंकरों की इस गली में सर पे पगड़ी रही या नहीं, फिर भी आप इस उपन्यास का विषय, स्वभाव और जायका अलग पायेंगे। अनुभव और कथानक स्वयं अपना स्टाइल तय करते चले जाते हैं। इकबाल खुदा के हुजूर में मुसलमानों का शिकवा, अपने उस्ताद दाग देहलवी की नखरे-चोंचले करती जबान में नहीं लिख सकते थे। मिर्जा रुसवा की 'उमराव जान अदा' और तवायफों से संबंधित मंटो की कहानियों का अनुवाद मौलाना अबुल कलाम आजाद की

जिन्नाती जबान में करके उन्हें (तवायफों को) जबरदस्ती सुनाया जाये तो मुझे विश्वास है कि एक ही पेज सुनकर कान पकड़ लें और अपना धंधा छोड़ दें। वो तो वो, खुद हम अपने धंधे से तौबा कर लें कि आज वो, कल हमारी बारी है। बहरहाल इस बार विषय, कथानक और अनुभूतियां सब भिन्न थीं, सो वही लिखा जो देखा। किस्सा बयान करने वाले कलंदरों की पुरानी आदत है कि कहानी का ताना-बाना बुनते-बुनते अचानक उसका रंग, रूप और जायका बदल देते हैं। लेकिन कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कहानी कहते-कहते खुद कहानी कहने वाले को कुछ हो जाता है। वो, फिर वो नहीं रहता, जो था। सो कुछ ऐसी ही लेखक के साथ बीती।

ईश्वर की कृपा से मैं अपनी शारीरिक और साहित्यिक उम्र के जिस पड़ाव पर हूं वहां मनुष्य स्तुति और निंदा दोनों से इतना विमुख हो जाता है कि न किये हुए गुनाहों को भी स्वीकार करने में संकोच अनुभव नहीं करता। चुनांचे अब मुझे ये स्वीकार करने में शर्म महसूस नहीं होती कि मैं शरीर, उसूल और स्वभाव से निराश और बहुत जल्दी हार मान लेने वाला आदमी हूं। डिप्रेशन शायद व्यंग्यकार का भाग्य है। हास्य-व्यंग्यकारों के बाबा आदम डेन सॉफ्ट पर उन्माद के दौरे पड़ते थे और उसके नैराश्य की यह स्थिति थी कि वो अपने जन्म को एक दुर्घटना समझता था, इसलिए अपनी वर्षगांठ के दिन बड़ी धूम-धाम से शोक व्यक्त करनेवाले काले कपड़े पहनता था और उपवास करता था। मार्क ट्वेन पर भी अंतिम समय में डिप्रेशन हावी हो गया था। मिर्जा कहते हैं कि इन प्रसिद्ध लोगों से तुम्हारा मेल बस इतना ही है। बहरहाल समय से पहले निराश हो जाने का एक लाभ यह पाया कि नाकामी और सदमे का डंक और डर पहले ही निकल जाता है। कई नामवर पहलवानों के घरानों में ये रीत है कि होनहार लड़के के बुजुर्ग उसके कान बचपन में ही तोड़ देते हैं ताकि आगे चलकर कोई प्रतिस्पर्धी पहलवान तोड़ने की कोशिश करे तो तकलीफ न हो। व्यंग्य को मैं बचाव का मैकेनिज्म समझता हूं। यह तलवार नहीं उस व्यक्ति का कवच है जो बुरी तरह से घायल होने के बाद इसे पहन लेता है। जेन बुद्धिज्म में हंसी को ज्ञान की सीढ़ी समझा जाता है, लेकिन सच पूछिए तो ऊंच-नीच का सच्चा ज्ञान उस समय पैदा होता है जब खंबे पर चढ़ने के बाद कोई नीचे से सीढ़ी हटा ले। मगर एक कहावत ये भी सुनी कि बंदर पेड़ की फुनगी पर से जमीन पे गिरे तब भी बंदर ही रहता है।

'हवेली' की कहानी एक त्यागी हुई ढंढार हवेली और उसके उद्दंड और क्रोधी मालिक के आस-पास घूमती है। 'धीरजगंज का पहला यादगार मुशायरा' में एक कस्बे के स्कूल, उसके टीचर और व्यवस्थापक के कैरीकेचर हैं। 'स्कूल मास्टर का ख्वाब' एक दुखी घोड़े, नाई और मुंशी से संबंधित है। 'शहरे दो किस्सा' एक छोटे-से कमरे और इसमें पिचहत्तर साल बिता देने वाले सनकी आदमी की कहानी है और 'कार, काबुली वाला और अलादीन बेचिराग' एक खटारा-कार, अशिक्षित पठान आढ़ती और वाचाल तथा लपाड़ी ड्राइवर का एक बड़ा कैरीकेचर है। इसमें जो केंद्रीय या तुलनात्मक रूप से अधिक उभरने वाले चरित्र हैं वो सबके-सब बहुत आम और सामाजिक रुतबे की दृष्टि से बहुत मामूली हैं, इसलिए खास कृपा-दृष्टि चाहते हैं। मैंने जीवन को ऐसे ही लोगों के हवाले से देखा, समझा, परखा और चाहा है। इसे बदनसीबी ही कहना चाहिए कि जिन बड़े और कामयाब लोगों को निकट से देखने का अवसर मिला, उन्हें मनुष्य के रूप में बिल्कुल अधूरा और हल्का पाया। किसी विद्वान का कथन है कि जितनी बड़ी मात्रा में ईश्वर ने आम आदमी बनाये हैं उससे तो यही मालूम पड़ता है कि इन्हें बनाने में उसे विशेष रूप से आनंद आता है वरना इतने सारे क्यों बनाता और सदियों-सदियों से क्यों बनाता चला जाता। जब हमें भी ये इतने अच्छे और प्यारे लगने लगें तो जानना चाहिए हमने अपने-आप को पहचान लिया। ये ऐसे ही आम लोगों का जिक्र है। इनकी अलिफ लैला एक हजार एक रातों में भी खत्म नहीं हो सकती।

हरेक फर्द जहां में वरके - नाख्वांदा

संभव है कुछ लोगों को चरित्रों की अधिकता और प्लाट का अभाव खले। मैंने पहले किसी और संदर्भ में निवेदन किया है कि प्लाट तो फिल्मों, ड्रामों, नॉविलों और साजिशों में होता है। मुझे तो दैनंदिन जीवन में दूर-दूर इसका निशान नहीं मिला। रहा चरित्र-चित्रण, तो इसमें कोई ऐब नहीं और न खूबी। अगर चरित्र केवल ऐब निकालने पर आधारित नहीं और पात्र सच्चे एवं जानदार हैं तो अपनी कहानी अपनी जबानी कहते चले जाते हैं। इन्हें तोड़-मरोड़ कर कहानी के सांचे में डालने या किसी आदर्शी शिकंजे में कसने की आवश्यकता नहीं। गिजगौल, चेखोव जीवन की छोटी-छोटी बातें अपने कैनवस पर बड़ी लापरवाही से बिखेरते चले जाते हैं। प्रूस्त ने एक पूरा नॉविल एक डिनर पार्टी की डिटेल्स बयान करने में लिख दिया है - जो Total Recall का बेहतरीन उदाहरण है। अंग्रेजी के सबसे बड़े, बिना प्लाट के नॉविल, Ulysses की कहानी 16 जून 1916 को सुब्ह आठ बजे शुरू हो कर इसी दिन खत्म हो जाती है। यूजीन ओ नील के ड्रामे Long Day's Journey into Night की भी कुछ ऐसी ही हालत है। इन प्रसिद्ध रचनाओं का हवाला देने का उद्देश्य केवल इतना है कि अगर मेरी कुछ बात नहीं बनती तो यह टेक्नीक का कुसूर नहीं, सरासर मेरी मूढ़ता और बेहुनरी है कि पेड़ गिनता रह गया, जंगल का समां न दिखा सका। न्याग्रा प्रपात का तेज, प्रताप और ऊंचाई का अनुमान लगाने के लिए इसके नीचे खड़े होकर ऊपर देखना जुरूरी है। मैं जितनी बार देखता हूं, अभिमान का मुकुट पैरों पर आ पड़ता है।

यहां एक साहित्यिक अभद्रता का स्पष्टीकरण आवश्यक है। फारसी की पंक्तियों और शेरों के अर्थ फुटनोट में देने के दो कारण हैं। पहले, नई-नस्ल के पढ़ने वालों को उनके अर्थ मालूम नहीं। दूसरे, खुद मुझे भी मालूम नहीं थे। इस पीड़ा का विस्तार ये कि मैंने फारसी सिर्फ चार-दिन चौथी क्लास में पढ़ी थी और आमदनामा के व्याकरण से इतना घबराया कि ड्राइंग ले ली हालांकि इसमें व्याकरण नहीं था, लेकिन रोने-पीटने के मौके जियादा निकले। इसमें दसवीं तक मेरी महारथ सुराही और तोता बनाने से आगे न बढ़ पायी, और मैं इन दोनों ड्राइंगों में स्पेशलाइज करने से पहले भी उन्हें बिल्कुल वैसी बना सकता था। ड्राइंग मास्टर कहता था तुम अपना नाम इतनी मेहनत और मुहब्बत से लिखते हो और तुम्हारी Lettering इतनी सुंदर है कि तुम्हें फेल करने का जी नहीं चाहता। अगर तुम स्केच के नीचे ये न लिखो कि ये अंगूर की बेल है तो तुम्हें घड़ौंची बनाने के सौ में से सौ नंबर मिलें।

तीन कृपालु ऐसे हैं जो अच्छी तरह जानते हैं कि मैं फारसी से अनभिज्ञ हूं इसलिए वह अपनी चिट्ठियों और बातचीत में केवल फारसी शेरों से मेरी चांदमारी करते हैं। दस-बारह साल तक तो मैं ये सब झेलता रहा, फिर अक्ल आयी तो ये ढंग पकड़ा कि अपने जिन दोस्तों के बारे में मुझे अच्छी तरह पता था कि फारसी पर उनकी पकड़ मेरे बराबर यानी जीरो है, उन्हें उन शेरों से ढेर करने लगा। इस काम से मेरे स्तर तथा फारसी ज्ञान के दबदबे में दस-गुना बढ़ोत्तरी और दोस्तों की संख्या में इसी अनुपात में कमी हो गयी। इस किताब में फारसी के जो शेर या पंक्तियां जहां-तहां दिखाई दें, वो इन्हीं तीन कृपालुओं की अवांछित अनुकंपाओं में से हैं। ये हैं, बिरादरम मंजूर इलाही शेख, जो स्वास्थ्य पूछने के लिए लाहौर से लंदन इंटरनेशनल कॉल भी करें तो बीमारी और उसका हाल पूछने से पहले संबंधित फारसी शेर सुनाते हैं, फिर मेरी फरमाइश पर उनका उर्दू अनुवाद करते हैं। इतने में वक्त खत्म हो जाता है और ऑपरेटर लाइन काट देता है। दूसरे दिन वो मुझे क्षमा और फारसी शेरों से भरा पत्र लिखते हैं कि माफ कीजिए कल सारा समय अनुवाद में ही नष्ट हो गया। मैंने टेलीफोन दरअस्ल ये पूछने के लिए किया था कि आपका ऑप्रेशन किस चीज का हुआ है और तबीयत कैसी है? जब से सुना है, बहुत बेचैनी है।

समय नष्ट करने पर शेख सादी ने क्या खूब कहा है मगर बेदिल ने इसी विषय को कहां से कहां पहुंचा दिया। ...वाह वाह ...दूसरे कृपालु हैं डॉक्टर जियाउद्दीन शकेब। वो जब भी ब्रिटिश लाइब्रेरी जाते हैं, बुक स्टॉल से एक खूबसूरत और समझ में आने वाला पिक्चर पोस्टकार्ड खरीदते हैं... फिर इस पर फैजी, बेदिल या तालिब के शेर से पानी फेर कर मुझे पोस्ट कर देते हैं और तीसरे हैं मुख्तार मसूद, जो मेरे ज्ञान की घाटी को भरने में चौथाई सदी से जुटे हुए हैं। अपने दिल-पसंद विषय पर घंटों मेरे आगे बीन बजाते और मजबूरन खुद ही झूमते रहते हैं। कई बार उनसे पूछा, हुजूरे-वाला आपको यह कैसे पता लग जाता है कि मुझे यह बात मालूम नहीं, मगर वो विनम्रता से काम लेते हैं। खुद जरा क्रेडिट नहीं लेते। बस, आसमान की तरफ पहली उंगली उठा देते हैं और इसी उंगली से अपना कान माफी के अंदाज में पकड़ कर अगर बैठे हों तो उठ खड़े होते हैं और खड़े हों तो बैठ जाते हैं। विनम्रता दिखाने की उनकी ये खास अदा है, जिसके दोस्त-दुश्मन सब शिकार हैं।

फारसी शेरों के जो अर्थ आप पढ़ेंगे वो इन्हीं मेहरबानों से पूछ कर लिख दिये हैं, ताकि सनद रहे और भूल जाऊं तो दुबारा उनके पास न जाना पड़े। विशेष रूप से मुख्तार मसूद साहब से, कि जब से वो आर.सी.डी. के सिलसिले में तुर्की का सरकारी फेरा लगा आये हैं और मौलाना रूमी की कब्र के आस-पास दुरवेशों का नाच फटी-फटी आंखों से देख आये हैं, फारसी शेरों का मतलब तुर्की के हवाले से समझाने लगे हैं। यूं तो हम अपने एक और पुराने मेहरबान प्रोफेसर काजी अब्दुल कुद्दूस M.A.B.T. से भी संपर्क कर सकते हैं, लेकिन वो आसान शेर को भी अपने ज्ञान और समझ के जोर से अबूझ बना देते हैं। सच तो ये है कि फारसी शेर की मार आजकल के पाठक से सही नहीं जाती। विशेष-रूप से उस समय, जब वो बेतुकी जगह पर कोट किये गये हों। मौलाना अबुल कलाम आजाद तो गद्य का सजावटी-फ्रेम केवल अपने प्रिय फारसी शेर तानने के लिए प्रयोग करते हैं। उनके शेर बेतुकी जगह पर कोट नहीं होते, गद्य बेतुकी जगह पर कोट होता है। वह अपने गद्य का तमाम रेशमी कोया, अपने भेजे की लार से फारसी शेर के आस-पास बुनते हैं। लेकिन, याद रहे रेशम हासिल करने का प्राचीन काल से एक ही ढंग है कि कोये को रेशम के जीवित कीड़े समेत खौलते पानी में डाल दिया जाये। जब तक वो मर न जाये रेशम हाथ नहीं लगता।

मिर्जा कहते हैं कि गालिब की शायरी की सबसे बड़ी मुश्किल उसकी व्याख्याएँ हैं। वो न हों तो गालिब को समझना बिल्कुल मुश्किल नहीं। वो ये भी कहते हैं कि गालिब दुनिया का अकेला शायर है जो समझ में न आये तो दुगुना मजा देता है। खुदा इन तीन ज्ञानियों के बीच इस फकीर को सलामत रखे, जबसे मेरी सेहत खराब हुई है इनकी तरफ से चिंतित रहता हूं।

'किसके घर जायेगा सैलाबे - बला मेरे बाद'

एक बार मैंने मंजूर इलाही साहब से निवेदन किया, कि 'आपने अपनी दोनों किताबों में फारसी के बहुत खूबसूरत शेर कोट किये हैं, लेकिन मेरी तरह पाठकों की नई पीढ़ी भी फारसी से अनभिज्ञ है। यूं ही अटकल से समझने की कोशिश करें तो मतलब कत्ल हो जाता है। अगर अगले एडीशन में ब्रेकिट में उनका मतलब उर्दू में लिख दें तो समझने में आसानी होगी।'

सोच में पड़ गये। फिर आंखें बंद करके, बंद होठों से दिलों को जीत लेने वाले अपने खास अंदाज में मुस्कुराये और बोले, 'मगर भाई साहब! फिर मकसद कत्ल हो जायेगा।'

इस पर मिर्जा कहने लगे, 'तुमने इस किताब में जो ढेर सारे अंग्रेजी शब्द बेधड़क इस्तेमाल किये हैं, उनके बारे में भी यही कहा जा सकता है। अंग्रेज तो दूसरी भाषाओं के शब्द खास-खास मौकों पर जानबूझ कर और मजबूरी में इस्तेमाल करते हैं। जैसे, उनके खाने फीके, सीठे और बदमजा होते हैं, इसलिए रेस्टोरेंट में उनके नाम हमेशा फ्रेंच में दिये जाते हैं। फ्रेंच आज भी शालीनता और विनम्रता की भाषा मानी जाती है, अतः अंग्रेजों को कोई आर्टिस्टिक या बेहूदा बात कहनी हो तो झट फ्रेंच-वाक्य का घूंघट निकाल लेते हैं। तुम्हें तो मालूम होगा कि सेम्युअल पीपस (1633-1703) ने अपनी प्रसिद्ध डायरी (जिसमें अपनी आवारगियों और रात्रि-विजयों के हाल बड़े विस्तार से लिखे हैं) शॉर्ट हैंड में लिखी थी ताकि उसके नौकर न पढ़ सकें। जहां कोई ऐसी नाजुक जगह आती, जिसे अंग्रेज अपने परंपरागत under statement से काम लेते हुए naughty कहकर आगे बढ़ जाते हैं, तो वो उस घटना को फ्रेंच में दर्ज करता था लेकिन जहां बात इतनी अश्लील और अकथनीय हो - जो कि अक्सर होती थी - कि फ्रेंच भाषा भी सुलग उठे, तो वो उस रात की बात को धड़ल्ले से स्पेनिश भाषा में लिखता था।

अब जरा कलाओं और ज्ञान की तरफ देखें। अंग्रेजों ने पेड़ों तथा पौधों के नाम और अधिकतर कानूनी बातें लैटिन से ली हैं। ज्ञान की बातें वो सामान्यतः ग्रीक भाषा में उल्टे कौमों में लिखते हैं, ताकि कोई अंग्रेज न समझ पाये। ऑपेरा के पक्के गानों के लिए इटेलियन और दर्शन के वाक्यों के लिए जर्मन भाषा का प्रयोग करके अबूझ को असह्य बना देते हैं।'

इस विस्तृत भूमिका के बाद फरमाया, 'लेकिन हम अंग्रेजी के शब्दों का, केवल उन अवसरों पर प्रयोग करते हैं, जहां हमें विश्वास हो कि इस बात को उर्दू में कहीं अच्छे ढंग से कहा जा सकता है।'

इस आवश्यक ताकीद और डांट-डपट के बावजूद आपको अंग्रेजी शब्द जगह-जगह दिखाई देंगे। कारण ये कि मुझे उनके उर्दू समानार्थक मालूम नहीं या वो किसी सजे-सजाये डायलॉग में चिपके हुए हैं। दूसरी तरफ, आम-तौर पर प्रयोग होने के अलावा इतने गलत उच्चारण के साथ बोले जाते हैं कि अब इन्हें उर्दू ही समझना चाहिए। कोई अंग्रेज इन्हें पहचानने या अपनाने के लिए तैयार न होगा।

'स्कूल मास्टर का ख्वाब' और 'धीरजगंज का पहला यादगार मुशायरा' पर पुराने मेहरबान और दोस्त मुहम्मद अब्दुल जमील साहब ने दृष्टिपात किया और अपने मशवरों से लाभान्वित किया। जैसे नफासत-पसंद और संकोची स्वभाव के वो स्वयं थे, वैसे ही धीमे उनके एतराज, जिन्हें उन्होंने मेरी पांडुलिपि पर इतनी हल्की पेंसिल से नोट किया था कि उंगली भी फेर दें तो मिट जायें। कुछ ऐसी गलतियों की ओर भी संकेत किया था, जिनके करेक्शन पर लेखक किसी तरह राजी नहीं हुआ। उदाहरण के लिए, मैंने एक गर्मागर्मी के दौरान गुजराती सेठ से कहलवाया था, 'हम इस साले लंगड़े घोड़े को ले के क्या करेंगा' जमील भाई की लखनवीयत इसे स्वीकार न कर सकी। पूरा वाक्य तो न काटा मगर साले को काट कर उसके ऊपर बिरादरे-निस्बती (Brother-in-law) लिख दिया। फिर फरमाया कि हजरत ये हक-दक क्या होता है? हक्का-बक्का लिखिए। हमारे यहां हक-दक नहीं बोला जाता। निवेदन किया हक्का-बक्का में सिर्फ फटी-फटी आंखें और खुला हुआ मुंह नजर आता है। जबकि हक-दक में ऐसा लगता है जैसे दिल भी धक-से रह गया हो। बोले तो फिर सीधे-सीधे 'धक-धक करने लगा' क्यों नहीं लिखते। और हां! मुझे हैरत है कि आपने एक जगह लूती (Gay - जनखा, लौंडा) लिखा है। कलम के लिए अपमानजनक ही कहूंगा। माफ कीजिए! ये शब्द आपकी कलम को शोभा नहीं देते।

पूछा, 'तो फिर आपके यहां लूती को क्या कहते हैं?'

बोले, 'कुछ नहीं कहते।'

मैं जोर-से हंस दिया तो चौंके। दूसरे पहलू पे ध्यान गया तो खुद भी देर तक हंसते रहे। रूमाल से आंसू पोंछते हुए कहने लगे, 'ऐसा ही है तो उसकी जगह बदतमीज लिख दीजिए। तहजीब का तकाजा यही है।' यह सुनकर मैं हक्का-बक्का रह गया। इसलिए कि मैंने ये शब्द (बदतमीज) दूसरे चैप्टरों में तीन-चार जगह ऐसे लोगों के बारे में इस्तेमाल किया था, जो केवल शब्द-कोश के अर्थों में बदतमीज थे। इस तहजीबदार अर्थ के साथ तो वो मुझ पर अपने को अपमानित करने और मानहानि का मुकदमा चला सकते थे।

कुछ देर बाद कलफ लगे मलमल के कुर्ते की आस्तीन उलट कर पांडुलिपि के पन्ने पलटते हुए बोले, 'दबावखाना, संगोटियां, आर और जूझना लखनऊ के शरीफ लोग नहीं बोलते। निवेदन किया 'मैंने इसी लिए लिखे हैं।' फड़क उठे, कहने लगे, 'बहुत देर बाद आपने एक समझदारी की बात कही', फिर इस खुशी में सिगरेट से सिगरेट सुलगाते हुए बोले 'मगर मुश्ताक़ साहब, यह बोक क्या होता है? हमने नहीं सुना।' निवेदन किया, जवान और मस्त बकरा जो नस्ल बढ़ाने के काम आता है। इसके दाढ़ी होती है और बदन से सख्त बदबू आती है। मांस भी बदबूदार और रेशेदार। बोले, 'वल्लाह हमने ये शब्द ही नहीं सुना, ऐसा बकरा भी नहीं देखा। शब्द, अर्थ और मांस तीनों से बदबू आती है। मकई है, आप इसकी जगह कोई कम बदबूदार जानवर इस्तेमाल नहीं कर सकते? कराची में इस शब्द को कौन समझेगा। निवेदन किया 'वही जो मकई (कै लाने वाला, जिससे उल्टी आ जाये) को समझेगा। आपको तो गालिब का दीवान कंठस्थ है। आपको तो ये शब्द मालूम होना चाहिए कि इसका वर्णन गालिब ने अजीब ढंग से किया है। अलाई के नाम अपने चिट्ठी में लिखते हैं 'कि तुम खस्सी बकरों के मांस के कलिए उड़ा रहे होगे, लेकिन खुदा की कसम मैं तुम्हारे पुलाव, कलिए पर जलन नहीं करता। खुदा करे तुम्हें बीकानेर की मिसरी का टुकड़ा न मिला हो। जब विचार करता हूं कि मीरजान साहब इस मिसरी के टुकड़े को चबा रहे होंगे तो ईर्ष्या से अपना कलेजा चबाने लगता हूं।' खोजने की बात ये कि इस मिसरी की डली से गालिब का अभिप्राय क्या है। केवल मिसरी? सो वो तो अच्छी से अच्छी किस्म की दिल्ली में मनों उपलब्ध थी। आश्चर्य है रिसर्च करने वालों और टीकाकारों की बुरी नजर इधर नहीं गयी। हालांकि गालिब ने मिसरी के रूपक का इश्क-आशिकी के सिलसिले में एक दूसरे पत्र में भी इस्तेमाल किया है।

हजरत! ये रूहड़ किस भाषा का शब्द है। सुनने में बुरा बिल्कुल गंवारू लगता है। क्या राजस्थानी है? निवेदन किया 'खुद मुझे भी ये शक था इसलिए मैंने माजिद भाई से पूछा।'

कौन माजिद भाई?

माजिद अली साहब - भूतपूर्व सी.एस.पी. - लंदन शिफ्ट हो गये हैं। छोटे-बड़े, अपने-बेगाने, बॉस-जूनियर सब उन्हें माजिद भाई कहते हैं। सिवाय उनकी बेगम जॅहरा निगाह के, वो उन्हें माजिद चचा कहती हैं। उनसे पूछा तो उन्होंने बताया कि लिहाफ की पुरानी रुई को, जिसे गरीब-गुरबा हाथों से तूम के दोबारा इस्तेमाल करते हैं, रूहड़ कहते हैं।

यूं तो वो मेरे लिए पूज्य का दर्जा रखते हैं और उनका बताया हुआ हमेशा ठीक होता है, फिर भी मैंने अधिक तसल्ली के लिए पूछा, 'क्या बदाऊं में भी बोला जाता है?' चेहरे पे बनावटी मिठास और बोली में बनावटी तुतलाहट पैदा करते हुए बोले, 'देखिए! निजी बेतकल्लुफी अपनी जगह, लेकिन बदायूं को बदाऊं कहने का अधिकार केवल

हम बदायूं वालों को है। यूं समझिए कि कल आप माजिद भाई को माजिद चचा कहने लगे तो लंदन पुलिस उन्हें पौली-गेमी में धर लेगी। आपका तो कुछ नहीं बिगड़ेगा। बहरहाल रूहड़ सही है। बदाऊं में तो फेरी वाले घर-घर आवाज लगा कर रूहड़ खरीदते थे और उसके बदले रेवड़ियां देते थे, जिन्हें अंधे आपस में बांट लेते थे।

भाषाई ज्ञान की खोज मुझे अब उस जगह ले आयी थी जहां और सवाल करना अपनी पगड़ी से खुद फुटबाल खेलने के बराबर था। माजिद भाई की बात से बात बनाने और जोड़ने की क्षमता के सामने अच्छे-अच्छे नहीं ठहर पाते। एक बार उनके बॉस (मिनिस्टर) के ऑफिस के सामने, कुछ दूर पर लोग उनके खिलाफ 'अय्यूब खां का चमचा, अय्यूब खां का चमचा' नारे लगा रहे थे। मिनिस्टर ने पूछा, 'ये लोग क्यों शोर मचा रहे हैं?' उन्होंने जवाब दिया 'सर कटलरी के बारे में कुछ कह रहे हैं।'

जमील साहब इस विस्तृत बातचीत से कुछ पसीजे - नाक से सिगरेट का धुआं निकालते हुए बोले, 'अगर आपको साफ रुई से एलर्जी है तो रूहड़ भी चलेगा। लेकिन एक बात है फेंकी हुई चीजें आपको बहुत फैसीनेट करती हैं। खैर मुझे तो अच्छी लगती हैं, किस वास्ते कि मुझे एंटीक जमा करने का शौक है। लेकिन संभव है, पढ़ने वालों को इतना अच्छा न लगे। ब्रेकिट में माने लिख दीजिएगा।'

अर्ज किया 'मिर्जा अक्सर ताना देते हैं कि तुम उन थोड़े से लोगों में हो जिन्होंने देश-विभाजन के समय अपनी छूटी हुई संपत्ति का कोई क्लेम नहीं किया। कारण यह है कि चलते वक्त तुम अपने साथ छूट जाने वाली चीजों को खोद कर, समूचा ढोकर पाकिस्तान ले आये। बदबू एक तरफ, अगर इन में से एक शब्द, जी हां, केवल एक शब्द भी दुबारा प्रचलित हो गया तो समझूंगा जीवन-भर की मेहनत सकारथ हुई।

बोले, 'फिर वही।'

अफसोस जमील साहब केवल दो चैप्टर देख पाये थे कि उनका बुलावा आ गया।

आखिर में अपनी पत्नी इदरीस फातिमा का शुक्रिया भी जुरूरी है कि जिन्होंने अपनी गलतियां बताने वाली मुस्कुराहट से जीवन-भर मेरी गलतियों की निशानदेही की है। वो सारी पांडुलिपि देख चुकीं तो मैंने कहा, 'राजस्थानी लहजा और मुहावरा किसी तरह मेरा पीछा नहीं छोड़ते - बहुत धोता हूं, पर चुनरी के रंग छुटाये नहीं छूटते।

Out, damned spot! Out, I say

हैरत है इस बार तुमने जबान की एक भी गलती नहीं निकाली। कहने लगी 'पढ़ाई खत्म होते ही इस घर में आ गई। अब मुझे कुछ याद नहीं कि मेरी जबान क्या थी, और तुम्हारी बोली क्या - अब तो जो सुनती हूं सभी ठीक मालूम होता है।'

एक दूसरे की छाप, तिलक सब छीन कर अपना लेने और सिंध तथा रावी का ठंडा मीठा-पानी पीने के बाद तो यही कुछ होना था और जो कुछ हुआ, बहुत खूब हुआ।

लंदन 16 अक्तूबर - मुश्ताक़ अहमद यूसुफ़ी

शीर्ष पर जाएँ

>>आगे>>

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

उपन्यास

खोया पानी

मुश्ताक़ अहमद यूसुफ़ी

अनुवाद - तुफ़ैल चतुर्वेदी

अनुक्रम हवेली पीछे आगे

वो आदमी है मगर, देखने की ताब नहीं

मैंने 1945 में जब किबला (माननीय) को पहले-पहल देखा तो उनका हुलिया ऐसा हो गया था जैसा अब मेरा है लेकिन बात हमारे अलबेले दोस्त बिशारत अली फारूकी के ससुर की है, इसलिए परिचय भी उन्हीं की जबान से ठीक रहेगा। हमने तो बहुत बार सुना, आप भी सुनिए :

वो हमेशा से मेरे कुछ न कुछ लगते थे। जिस जमाने में मेरे ससुर नहीं बने थे तो फूफा हुआ करते थे और फूफा बनने से पहले मैं उन्हें चचा हुजूर कहा करता था। इससे पहले भी वो मेरे कुछ और जुरूर लगते होंगे, मगर उस वक्त मैंने बोलना शुरू नहीं किया था। हमारे यहां मुरादाबाद और कानपुर में रिश्ते-नाते उबली हुई सिवइयों की तरह उलझे और पेच-दर-पेच गुंथे हुए होते हैं।

ऐसा रौद्ररूप, इतने गुस्से वाला आदमी जिंदगी में नहीं देखा। उनकी मृत्यु हुई तो मेरी उम्र, आधी इधर-आधी उधर, चालीस के लगभग तो होगी, लेकिन साहब! जैसा आतंकित मैं उनकी आंखें देख कर छुटपन में होता था, वैसा ही न सिर्फ उनके आखिरी दम तक रहा, बल्कि अपने आखिरी दम तक भी रहूंगा। बड़ी-बड़ी आंखें अपने साकेट से निकली पड़ती थीं -लाल, सुर्ख, ऐसी-वैसी? बिल्कुल कबूतर का खून। लगता था, बड़ी-बड़ी पुतलियों के गिर्द लाल डोरों से अभी खून के फव्वारे छूटने लगेंगे और मेरा मुंह खूनम-खून हो जायेगा। हर वक्त गुस्से में भरे रहते थे। जाने क्यों गाली उनका तकिया-कलाम थी और जो रंग बोलचाल का था, वही लिखायी का भी।

'रख हाथ निकलता है धुआं मग्जे - कलम से'

जाहिर है, कुछ ऐसे लोगों से भी पाला पड़ता था जिन्हें किसी कारण से गाली नहीं दे सकते थे। ऐसे अवसरों पर जबान से तो कुछ न कहते, लेकिन चेहरे पर ऐसा एक्सप्रेशन लाते कि सर से पांव तक गाली नजर आते। किसकी शामत आई थी कि उनकी किसी भी राय से असहमति व्यक्त करता। असहमति तो दर-किनार, अगर कोई व्यक्ति सिर्फ डर के मारे उनसे सहमत होता तो, अपनी राय बदल कर उल्टा उसके सर हो जाते।

अरे साहब! बातचीत तो बाद की बात है, कभी-कभी सिर्फ सलाम से भड़क उठते थे! आप कुछ भी कहें; कैसी ही सच्ची और सामने की बात कहें, वो उसका खंडन जरूर करेंगे। किसी से सहमत होने में अपनी हेठी समझते थे। उनका हर वाक्य 'नहीं' से शुरू होता था। एक दिन कानपुर में कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। मेरे मुंह से निकल गया कि आज बड़ी सर्दी है। बोले 'नहीं, कल इससे जियादा पड़ेगी।'

वो चचा से फूफा बने और फूफा से ससुर, लेकिन मेरी आखिरी वक्त तक निगाह उठा कर बात करने की हिम्मत न हुई। निकाह के वक्त वो काजी के पहलू में थे, काजी ने मुझसे पूछा 'कुबूल है?' उनके सामने मुंह से 'हां' कहने का साहस न हुआ - अपनी ठोड़ी से दो ठोंगें-सी मार दीं, जिन्हें काजी और किबला ने रिश्ते के लिए नाकाफी समझा। किबला कड़क कर बोले, 'लौंडे! बोलता क्यों नहीं?' डांट से मैं नर्वस हो गया। अभी काजी का सवाल पूरा भी नहीं हुआ था कि मैंने 'जी हां! कुबूल है' कह दिया। आवाज एकदम इतने जोर से निकली कि मैं खुद चौंक पड़ा। काजी उछल कर सेहरे में घुस गया, सब लोग खिलखिला कर हंसने लगे। अब किबला इस पर भिन्ना रहे हैं कि इतने जोर की 'हां' से बेटी वालों की हेठी होती है। बस तमाम-उम्र उनका यही हाल रहा, तमाम-उम्र मैं रिश्तेदारी के दर्द और निकटता में घिरा रहा।

हालांकि इकलौती बेटी, बल्कि इकलौती औलाद थी और बीबी को शादी के बड़े अरमान थे, लेकिन किबला ने 'माइयों' के दिन ठीक उस वक्त, जब मेरा रंग निखारने के लिए उबटन मला जा रहा था, कहला भेजा कि दूल्हा मेरी मौजूदगी में अपना मुंह सेहरे से बाहर नहीं निकालेगा। दो सौ कदम पहले सवारी से उतर जायेगा और पैदल चलकर अक्दगाह (निकाह के स्थान) तक आयेगा। अक्दगाह उन्होंने इस तरह कहा जैसे अपने फ़ैज साहब (शाइर फ़ैज अहमद फ़ैज) कत्लगाह का जिक्र करते हैं और सच तो यह है कि उनका आतंक दिल में कुछ ऐसा बैठ गया था कि मुझे छपरखट भी फांसी-घाट लग रहा था। उन्होंने यह शर्त भी लगाई कि बराती पुलाव-जर्दा ठूंसने के बाद यह हरगिज नहीं कहेंगे कि गोश्त कम डाला और शकर ड्योढ़ी नहीं पड़ी। खूब समझ लो, मेरी हवेली के सामने बैंड-बाजा हरगिज नहीं बजेगा और तुम्हें रंडी नचवानी है तो अपने कोठे पर नचवाओ।

किसी जमाने में राजपूतों और अरबों में लड़की की पैदाइश अपशकुन और खुदा के क्रोध की निशानी समझी जाती थी। उनका आत्माभिमान यह कैसे गवारा कर सकता था कि उनके घर बरात चढ़े। दामाद के खौफ से वो लड़की को जिंदा गाड़ आते थे। किबला इस वहशियाना रस्म के खिलाफ थे। वो दामाद को जिंदा गाड़ देने के पक्ष में थे।

चेहरे, चाल और तेवर से शहर के कोतवाल लगते थे। कौन कह सकता था कि बांस मंडी में उनकी इमारती लकड़ी की एक मामूली-सी दुकान है। निकलता हुआ कद। चलते तो कद, सीना और आंखें, तीनों एक साथ निकाल कर चलते थे। अरे साहब क्या पूछते हैं, अव्वल तो उनके चेहरे की तरफ देखने की हिम्मत नहीं होती थी और कभी जी कड़ा करके देख भी लिया तो बस लाल-भभूका आंखें-ही-आंखें नजर आती थीं,

'निगहे - गर्म से इक आग टपकती है असद'

रंग गेहुँआ, जिसे आप उस गेहूं जैसा बताते हैं, जिसे खाते ही हजरत आदम एकदम जन्नत से निकाल दिये गये। जब देखो झल्लाते, तिनतिनाते रहते। मिजाज, जबान और हाथ, किसी पर काबू न था, हमेशा गुस्से से कांपते रहते। इसलिए ईंट, पत्थर, लाठी, गोली, गाली किसी का भी निशाना ठीक नहीं लगता था। गछी-गछी मूंछें, जिन्हें गाली देने से पहले और बाद में ताव देते। आखिरी जमाने में भौंहों को भी बल देने लगे, गठा हुआ कसरती बदन

मलमल के कुर्ते से झलकता था। चुनी हुई आस्तीन और उससे भी महीन चुनी हुई दुपलिया टोपी। गर्मियों में खस का इत्र लगाते। कीकरी की सिलाई का चूड़ीदार पाजामा - चूड़ियां इतनी अधिक कि पाजामा नजर नहीं आता था। धोबी उसे अलगनी पर नहीं सुखाता था, अलग बांस पर दस्ताने की तरह चढ़ा देता था। आप रात को दो बजे भी दरवाजा खटखटा कर बुलायें तो चूड़ीदार में ही बाहर निकलेंगे।

वल्लाह! मैं तो यह कल्पना करने का भी साहस नहीं कर सकता कि दाई ने भी उन्हें चूड़ीदार के बगैर देखा होगा। भरी-भरी पिंडलियों पर खूब जंचता था, हाथ के बुने रेशमी नाड़े में चाबियों का गुच्छा छनछनाता रहता था। जो ताले बरसों पहले बेकार हो गये थे, उनकी चाबियां भी इसी गुच्छे में सुरक्षित थीं। हद यह कि उस ताले की भी चाबी थी, जो पांच साल पहले चोरी हो गया था। मुहल्ले में इस चोरी की बरसों चर्चा रही, इसलिए कि चोर सिर्फ ताला, पहरा देने वाला कुत्ता और वंशावली चुरा कर ले गया। कहते थे कि इतनी जलील चोरी सिर्फ कोई रिश्तेदार ही कर सकता है। आखिरी जमाने में यह इजारबंदी गुच्छा बहुत वज्नी हो गया था और मौका-बेमौका फिल्मी गीत के बाजूबंद की तरह खुल-खुल जाता। कभी भावातिरेक में झुककर किसी से हाथ मिलाते तो दूसरे हाथ से इजारबंद थामते। मई-जून में टेंप्रेचर बहुत हो जाता और मुंह पर लू के थप्पड़ से पड़ने लगते तो पाजामे से एयर कंडीशनिंग कर लेते। मतलब यह कि चूड़ियों को घुटनों-घुटनों पानी से भिगो कर, सर पर अंगोछा डाले तरबूज खाते। खस की टट्टी और ठंडा पानी कहां से लाते। इसके मुहताज भी न थे। कितनी ही गर्मी पड़े, दुकान बंद नहीं करते थे, कहते थे, मियां! यह तो बिजनेस है, पेट का धंधा है, जब चमड़े की झोपड़ी में आग लगी रही हो तो क्या गर्मी, क्या सर्दी लेकिन ऐसे में कोई शामत का मारा ग्राहक आ निकले तो बुरा-भला कहकर भगा देते थे। इसके बावजूद वो खिंचा-खिंचा दुबारा उन्हीं के पास आता था, इसलिए कि जैसी उम्दा लकड़ी वो बेचते थे, वैसी सारे कानपुर में कहीं नहीं मिलती थी। फर्माते थे, दागी लकड़ी बंदे ने आज तक नहीं बेची, लकड़ी और दागी! दाग तो दो-ही चीजों पर सजता है, दिल और जवानी।

शब्द के लच्छन और बाजारी पान

तंबाकू, किवाम, खरबूजे और कढ़े हुए कुर्ते लखनऊ से, हुक्का मुरादाबाद और ताले अलीगढ़ से मंगवाते थे। हलवा सोहन और डिप्टी नजीर अहमद वाले मुहावरे दिल्ली से। दांत गिरने के बाद सिर्फ मुहावरों पर गुजारा था।

गालियां अलबत्ता स्थानीय बल्कि खुद की गढ़ी हुई देते, जिनमें रवानी पायी जाती थी। सलीम शाही जूतियां और चुनरी आपके जयपुर से मंगवाते थे। साहब! आपका राजस्थान भी खूब था, क्या-क्या उपहार गिनवाये थे उस दिन आपने खांड, सांड, भांड और रांड। यह भी खूब रही कि मारवाड़ियों को जिस चीज पर भी प्यार आता है उसके नाम में ठ, ड और ड़, लगा देते हैं मगर यह बात आपने अजीब बतायी कि राजस्थान में रांड का मतलब खूबसूरत औरत होता है। मारवाड़ी भाषा में सचमुच की विधवा के लिए भी कोई शब्द है कि नहीं लेकिन यह भी ठीक है कि सौ-सवा-सौ साल पहले तक रंडी का मतलब सिर्फ औरत होता था, जबसे मर्दों की नीयतें खराब हुईं, इस शब्द के लच्छन भी बिगड़ गये।

साहब! राजस्थान के तीन तुहफों के तो हम भी कायल और घायल हैं। मीराबाई, मेंहदी हसन और रेशमा। हां! तो मैं कह यह रहा था कि बाहर निकलते तो हाथ में पान की डिबिया और बटुवा रहता। बाजार का पान हरगिज नहीं खाते थे। कहते थे बाजारी पान सिर्फ रंडवे, ताक-झांक करने वाले और बंबई वाले खाते हैं। साहब! यह रखरखाव और परहेज मैंने उन्हीं से सीखा। डिबिया चांदी की, नक्शीन (बेल-बूटे बने हुए) भारी, ठोस। इसमें जगह-जगह डेंट

नजर आते थे जो इंसानी सरों से टकराने की वज्ह से पड़े थे। गुस्से में अक्सर पानों भरी डिबिया फेंक के मारते। बड़ी देर तक तो यह पता ही नहीं चलता था कि घायल होने वालों के सर और चेहरे से खून निकल रहा है या बिखरे पानों की लाली ने गलत जगह रंग जमाया है। बटुवे खास-तौर से आपके जन्म-स्थान, टोंक से मंगवाते थे। कहते थे कि वहां के पटवे ऐसे डोरे डालते हैं कि इक जरा घुंडी को झूठों हाथ लगा दो तो बटुआ आप-ही-आप जी-हुजूर लोगों की बांछों की तरह खिलता चला जाता है। गुटका भोपाल से आता था, लेकिन खुद नहीं खाते थे। कहते थे, मीठा पान, ठुमरी, गुटका और नावेल, ये सब नाबालिगों के व्यसन हैं। शायरी से कोई खास दिलचस्पी न थी। रदीफ-काफिये से आजाद शायरी से खास-तौर पर चिढ़ते थे। यूं उर्दू-फारसी के जितने भी शेर लकड़ी, आग, धुएं, हेकड़ी, लड़-मरने, नाकामी और झगड़े के बारे में हैं, सब याद कर रखे थे। स्थिति कभी काबू से बाहर हो जाती तो शायरी से उसका बचाव करते। आखिरी जमाने में एकांतप्रिय इंसानों से हो गये थे और सिर्फ दुश्मनों के जनाजे को कंधा देने के लिए बाहर निकलते थे। खुद को कासनी और बीबी को मोतिया रंग पसंद था। अचकन हमेशा मोतिया रंग के टसर की पहनी।

वाह क्या बात कोरे बर्तन की

बिशारत की जबानी परिचय खत्म हुआ। अब कुछ मेरी, कुछ उनकी जबानी सुनिए और रही-सही आम लोगों की जबान से, जिसे कोई नहीं पकड़ सकता। कानपुर में पहले बांसमंडी और फिर कोपरगंज में किबला की लकड़ी की दुकान थी। इसी को आप उनका रोटी-रोजी कमाने और लोगों को सताने का साधन कह सकते हैं। थोड़ी-बहुत जलाने की लकड़ी भी रखते थे मगर उसे लकड़ी नहीं कहते। उनकी दुकान को अगर कभी कोई टाल कह देता तो दो सेरी लेकर दौड़ते। जवानी में पंसेरी लेकर दौड़ते थे। तमाम उम्र पत्थर के बाट इस्तेमाल किये। फर्माते थे कि लोहे के फिरंगी बाट बेबरकत होते हैं। इन देसी बाटों को बाजुओं में भर-के, सीने से लगा-के उठाना पड़ता है। कभी किसी को यह साहस नहीं हुआ कि उनके पत्थर के बाटों को तुलवा कर देख ले। किसकी बुरी घड़ी आयी थी कि उनकी दी हुई रकम या लौटायी हुई रेजगारी को गिन कर देखे। उस समय में, यानी इस सदी की तीसरी दहाई में इमारती लकड़ी की खपत बहुत कम थी। साल और चीड़ का रिवाज आम था। बहुत हुआ तो चौखट और दरवाजे शीशम के बनवा लिए। सागवान तो सिर्फ अमीरों और रईसों की डाइनिंग टेबल और गोरों के ताबूत में इस्तेमाल होती थी। फर्नीचर होता ही कहां था। भले घरों में फर्नीचर के नाम पर सिर्फ चारपाई होती थी। जहां तक हमें याद पड़ता है, उन दिनों कुर्सी सिर्फ दो अवसरों पर निकाली जाती थी। एक तो जब हकीम, वैद्य, होम्योपैथ, पीर, फकीर और सयानों से मायूस हो कर डाक्टर को घर बुलाया जाता था। उस पर बैठ कर वो जगह-जगह स्टेथेस्कोप लगा कर देखता कि मरीज और मौत के बीच जो खाई थी, उसे इन महानुभावों ने अपनी दवाओं और तावीज, गंडों से किस हद तक पाटा है। उस समय का दस्तूर था कि जिस घर में मुसम्मी या महीन लकड़ी की पिटारी में रुई में रखे हुए पांच अंगूर आयें या सोला-हैट पहने डाक्टर और उसके आगे-आगे हटो-बचो करता हुआ तीमारदार उसका चमड़े का बैग उठाये आये तो पड़ोस वाले जल्दी-जल्दी खाना खा कर खुद को शोक व्यक्त करने और कंधा देने के लिए तैयार कर लेते थे। सच तो यह है कि डाक्टर को सिर्फ उस अवस्था में बुला कर इस कुर्सी पर बिठाया जाता था, जब वह स्थिति पैदा हो जाये जिसमें दो हजार साल पहले लोग ईसा मसीह को आजमाते थे। कुर्सी के इस्तेमाल का दूसरा और आखिरी अवसर हमारे यहां खत्ने (लिंग की खाल काटना) के अवसर पर आता था, जब लड़कों को दूल्हा की तरह सजा, बना और मिट्टी का खिलौना हाथ में दे कर इस कुर्सी पर बिठा दिया जाता था। इस जल्लादी कुर्सी को देखकर अच्छे-अच्छों की घिग्घी बंध जाती थी। गरीबों में इस काम के लिए भाट या लंबे-वाले कोरे मटके को उल्टा करके लाल कपड़ा डाल देते थे।

चारपाई

सच तो यह है कि जहां चारपाई हो, वहां किसी फर्नीचर की जरूरत, न गुंजाइश, न तुक। इंग्लैंड का मौसम अगर इतना जलील न होता और अंग्रेजों ने वक्त पर चारपाई का आविष्कार कर लिया होता तो न सिर्फ ये कि वो मौजूदा फर्नीचर की खखेड़ से बच जाते, बल्कि फिर आरामदेह चारपाई छोड़ कर उपनिवेश बनाने की खातिर घर से बाहर निकलने को भी उनका दिल न चाहता। 'ओवरवर्क्ड' सूरज भी उनके साम्राज्य पर एक सदी तक हर वक्त चमकते रहने की ड्यूटी से बच जाता। कम से कम आजकल के हालात में अटवाटी-खटवाटी लेकर पड़े रहने के लिए उनके घर में कोई ढंग की चीज तो होती। हमने एक दिन प्रोफेसर काजी अब्दुल कुद्दूस, एम.ए.,बी.टी. से कहा कि आपके कथनानुसार सारी चीजें अंग्रेजों ने आविष्कृत की हैं, सुविधा-भोगी और बेहद प्रैक्टिकल लोग हैं - हैरत है कि चारपाई इस्तेमाल नहीं करते! बोले, अदवान कसने से जान चुराते हैं। हमारे खयाल में एक बुनियादी फर्क जहन में जुरूर रखना चाहिए, वो ये कि यूरोपियन फर्नीचर सिर्फ बैठने के लिए होता है, जबकि हम किसी ऐसी चीज पर बैठते ही नहीं, जिस पर लेट न सकें। मिसाल में दरी, गदैले, कालीन, जाजिम, चांदनी, चारपाई, माशूक की गली और दिलदार के पहलू को पेश किया जा सकता है। एक चीज हमारे यहां अलबत्ता ऐसी थी जिसे सिर्फ बैठने के लिए इस्तेमाल किया जाता था। उसे हुक्मरानों का तख्त कहते थे, लेकिन जब उन्हें उसी पर लटका कर, फिर नहला दिया जाता तो यह तख्ता कहलाता था और इस काम को तख्ता उलटना कहते थे।

स्टेशन, लकड़मंडी और बाजारे - हुस्न में बिजोग

मकसद इस भूमिका का ये है कि जहां चारपाई का चलन हो वहां फर्नीचर का बिजनेस पनप नहीं सकता। अब इसे इमारती लकड़ी कहिए या कुछ और, धंधा इसका भी हमेशा मंदा ही रहता था कि दुकानों की तादाद ग्राहकों से जियादा थी। इसलिए कोई भी ऐसा नजर आ जाये तो हुलिए और चाल-ढाल से जरा भी ग्राहक मालूम हो तो लकड़मंडी के दुकानदार उस पर टूट पड़ते। जियादातर ग्राहक आस-पास के देहाती होते जो जिंदगी में पहली और आखिरी बार लकड़ी खरीदने कानपुर आते थे। इन बेचारों का लकड़ी से दो ही बार वास्ता पड़ता था। एक, अपना घर बनाते समय; दूसरे अपना क्रिया कर्म करवाते समय।

पाकिस्तान बनने से पहले जिन पाठकों ने दिल्ली या लाहौर के रेलवे स्टेशन का नक्शा देखा है, वो इस छीना-झपटी का बखूबी अंदाजा कर सकते हैं। 1945 में हमने देखा कि दिल्ली से लाहौर आने वाली ट्रेन के रुकते ही जैसे ही मुसाफिर ने अपने जिस्म का कोई हिस्सा दरवाजे या खिड़की से बाहर निकाला, कुली ने उसी को मजबूती से पकड़ कर पूरे मुसाफिर को हथेली पर रखा और हवा में उठा लिया और उठाकर प्लेटफार्म पर किसी सुराही या हुक्के की चिलम पर बिठा दिया लेकिन जो मुसाफिर दूसरे मुसाफिरों के धक्के से खुद-ब-खुद डिब्बे से बाहर निकल पड़े उनका हाल वैसा ही हुआ जैसा उर्दू की किसी नई-नवेली किताब का आलोचकों के हाथ होता है। जो चीज जितनी भी, जिसके हाथ लगी सर पर रख-कर हवा हो गया। दूसरे चरण में मुसाफिर पर होटलों के दलाल और एजेंट टूट पड़ते। सफेद कोट-पतलून, सफेद कमीज, सफेद रूमाल, सफेद कैनवस के जूते, सफेद मोछो, सफेद दांत मगर इसके बावजूद मुहम्मद हुसैन आजाद (19वीं शताब्दी के महान लेखक) के शब्दों में हम ये नहीं कह सकते कि चमेली का ढेर पड़ा हंस रहा है। उनकी हर चीज सफेद और उजली होती, सिवाय चेहरे के। हंसते तो मालूम होता तवा हंस रहा है। ये मुसाफिर पर इस तरह गिरते जैसे इंग्लैंड में रग्बी की गेंद और एक-दूसरे पर खिलाड़ी गिरते हैं। उनके इन तमाम प्रयत्नों का मकसद खुद कुछ पाना नहीं, बल्कि दूसरों को पाने से दूर रखना

होता था। मुसलमान दलाल तुर्की टोपी से पहचाने जाते। वो दिल्ली और यू.पी. से आने वाले मुसलमान मुसाफिरों को टोंटीदार लोटे, पर्दादार औरतों, बहुत-से बच्चों और कीमे-परांठे के भबके से पहचान लेते और अस्सलामो-अलैकुम कहकर लिपट जाते। मुसलमान मुसाफिरों के साथ सिर्फ मुसलमान दलाल ही धींगा-मुश्ती कर सकते थे। (जिस दलाल का हाथ मुसाफिर के कपड़ों के सब से मजबूत हिस्से पर पड़ता वो वहीं से उसे घसीटता हुआ बाहर ले आता। जिनका हाथ लिबास के कमजोर या फटे-गले पुराने हिस्से पर पड़ता, वो बाद में उसको रूमाल की तरह इस्तेमाल करते।) अर्धनग्न मुसाफिर कदम-कदम पर अपने बाकी कपड़े भी उतरवाने पर मजबूर होता। स्टेशन के बाहर कदम रखता तो असंख्य पहलवान, जिन्होंने अखाड़े को नाकाफी पाकर तांगा चलाने का पेशा अपना लिया था, खुद को उस पर छोड़ देते। अगर मुसाफिर के तन पर कोई चीथड़ा संयोग से बच रहा होता तो उसे भी नोच कर तांगे की पिछली सीट पर रामचंद्र जी की खड़ाऊं की तरह सजा देते, अगर किसी के चूड़ीदार के नाड़े का सिरा तांगे वाले के हाथ लग जाता तो वो गरीब गांठ पे हाथ रखे उसी में बंधा चला आता। कोई मुसाफिर का दामन आगे से खींचता, कोई पीछे से फाड़ता।

अंतिम राउंड में एक तगड़ा-सा तांगे वाला सवारी का दायां हाथ और दूसरा मुस्टंडा उसका बायां हाथ पकड़ कर Tug of War खेलने लगते लेकिन इससे पहले कि दोनों दावेदार अपने-अपने हिस्से की रान और हाथ उखाड़ कर ले जायें, एक तीसरा फुर्तीला तांगे वाला टांगों के चिरे हुए चिमटे के नीचे बैठ कर मुसाफिर को एकाएक अपने कंधों पर उठा लेता और तांगे में जोतकर हवा हो जाता।

लगभग यही नक्शा कोपरगंज की लकड़मंडी का हुआ करता था जिसके बीच में किबला की दुकान थी। गोदाम आम-तौर पर दुकान से ही जुड़े हुए पीछे होते थे। ग्राहक पकड़ने के लिए किबला और दो-तीन चिड़ीमार दुकानदारों ने ये किया कि दुकानों के बाहर सड़क पर लकड़ी के छोटे-छोटे केबिन बना लिए। किबला का केबिन मसनद, तकिये, हुक्के, उगालदान और स्प्रिंग से खुलने वाले चाकू से सजा हुआ था। केबिन जैसे एक तरह का मचान था, जहां से वो ग्राहक को मार गिराते थे, फिर उसे चूम-पुचकार कर अंदर ले जाया जाता, जहां कोशिश यह होती थी खाली-हाथ और भरी-जेब वापस न जाने पाये।

जैसे ही कोई व्यक्ति जो अंदाजे से ग्राहक लगता, सामने से गुजरता तो दूर और नजदीक के दुकानदार उसे हाथ के इशारे से या आवाज देकर बुलाते : 'महाराज! महाराज!' इन महाराजों को दूसरे दुकानदारों के पंजे से छुड़ाने और खुद घसीटकर अपनी कछार में ले जाने के दौरान अक्सर उनकी पगड़ियां खुल कर पैरों में उलझ जातीं। इस सिलसिले में आपस में इतने झगड़े और हाथापाई हो चुकी थी कि मंडी के तमाम व्यापारियों ने पंचायती फैसला किया कि ग्राहक को सिर्फ वही दुकानदार आवाज देकर बुलायेगा, जिसकी दुकान के सामने से वो गुजर रहा हो, लेकिन जैसे ही वह किसी दूसरे दुकानदार के आक्रमण-क्षेत्र में दाखिल होगा तो उसे कोई और दुकानदार हरगिज आवाज न देगा। इसके बावजूद छीना-झपटी और कुश्तम-पछाड़ बढ़ती ही गई तो हर दुकान के आगे चूने से हदबंदी की लाइन खींच दी गई। इससे यह फर्क पड़ा कि कुश्ती बंद हो गई और कबड्डी होने लगी। कुछ दुकानदारों ने मार-पीट, ग्राहकों का हांका और उन्हें डंडा-डोली करके अंदर लाने के लिए बिगड़े पहलवान और शहर के छंटे हुए शुहदे और मुस्टंडे पार्ट-टाइम नौकरी पर रख लिये थे। आर्थिक मंदी अपनी चरम-सीमा तक पहुंची हुई थी। यह लोग दिन में लकड़-मंडी के ग्राहकों को डरा-धमका कर खराब और कंडम माल खरीदवाते और रात को यही फर्ज बाजारे-हुस्न में अंजाम देते। बहुत-सी तवायफों ने हर रात अपनी आबरू को जियादा से जियादा असुरक्षित रखने के उद्देश्य से इनको बतौर 'पिंप' नौकर रख छोड़ा था। किबला ने इस किस्म का कोई गुंडा या कुचरित्र पहलवान

नौकर नहीं रखा, उन्हें अपने हाथों की ताकत पर पूरा भरोसा था लेकिन औरों की तरह माल की चिराई-कटाई में मार-कुटाई का खर्चा भी शामिल कर लेते थे।

खून निकालने के तरीके : जोंक, सींगी, लाठी

हर वक्त क्रोधावस्था में रहते थे। सोने से पहले ऐसा मूड बना कर लेटते कि आंख खुलते ही, गुस्सा करने में आसानी हो। माथे के तीन बल सोते में भी नहीं मिटते थे। गुस्से की सबसे खालिस किस्म वह होती है जो किसी बहाने की मुहताज न हो या किसी बहुत ही मामूली सी बात पर आ जाये। गुस्से के आखिर होते-होते यह भी याद नहीं रहता था कि आया किस बात पर था। बीबी उनको रोजा नहीं रखने देती थीं। यह शायद 1935 की बात है। एक दिन-रात की नमाज के बाद गिड़गिड़ा-गिड़गिड़ा कर अपनी पुरानी परेशानियां दूर होने की दुआएँ मांग रहे थे कि एक ताजा परेशानी का खयाल आते ही एकदम क्रोध आ गया। दुआ में ही कहने लगे कि तूने मेरी पुरानी परेशानियां ही कौन-सी दूर कर दीं, जो अब यह नई परेशानी दूर करेगा। उस रात मुसल्ला (नमाज पढ़ने की चादर) तह करने के बाद फिर कभी नमाज नहीं पढ़ी।

उनके गुस्से पर याद आया कि उस जमाने में कनमैलिए मुहल्लों, बाजारों में फेरी लगाते थे। कान का मैल निकालना ही क्या, दुनिया जहान के काम घर बैठे हो जाते थे। सब्जी, गोश्त और सौदा-सुलुफ की खरीदारी, हजामत, तालीम, प्रसव, पीढ़ी, खट-खटोले की-यहां तक कि खुद अपनी मरम्मत भी घर बैठे हो जाती। बीबियों के नाखून निहन्नी से काटने और पीठ मलने के लिए नाइनें घर आती थीं। कपड़े भी मुगलानियां घर आकर सीती थीं ताकि किसी को नाप तक की हवा न लगे। हालांकि उस समय के जनाना कपड़ों के जो नमूने हमारी नजर से गुजरे हैं वो ऐसे होते थे कि किसी बड़े लेटर-बक्स का नाप लेकर सिये जा सकते थे। मतलब ये कि सब काम घर ही में हो जाते थे। हद यह कि मौत तक घर में घटित होती थी। इसके लिए बाहर जा कर किसी ट्रक से अपनी आत्मा निकलवाने की जुरूरत नहीं पड़ती थी। खून की खराबी से किसी के बार-बार फोड़े-फुंसी निकलें, या दिमाग में बुरे खयालात की भीड़ दिन-दहाड़े भी रहने लगे तो घर पर ही फस्द (रगों से खून निकलवाना) खोल दी जाती थी। अधिक और खराब खून निकलवाने के उद्देश्य से अपना सर फुड़वाने या फोड़ने के लिए किसी राजनैतिक जलसे में जाने या सरकार के खिलाफ प्रदर्शन करके लाठी खाने की जुरूरत नहीं पड़ती थी। उस जमाने में लाठी को खून निकालने के हथियार के तौर पर इस्तेमाल नहीं किया जाता था। जोंक और सींगी लगाने वाली कंजरियां रोज फेरी लगाती थीं, अगर उस समय के किसी हकीम का हाथ आजकल के नौजवानों की नब्ज पर पड़ जाये तो कोई नौजवान ऐसा न बचे जिसके जहां-तहां सींगी लगी नजर न आये। रहे हम जैसे आजकल के बुजुर्ग कि

'की जिससे बात उसको हिदायत जुरूर की'

तो! कोई बुजुर्ग ऐसा न बचेगा, जिसकी जबान पर हकीम लोग जोंक न लगवा दें।

हम किस्सा यह बयान करने चले थे कि गर्मियों के दिन थे। किबला कोरमा और खरबूजा खाने के बाद केबिन में झपकी ले रहे थे कि अचानक कनमैलिए ने केबिन के दरवाजे पर बड़ी जोर से आवाज लगाई - 'कान का मैल'। खुदा जाने मीठी-नींद सो रहे थे या कोई बहुत-ही हसीन ख्वाब देख रहे थे, हड़बड़ा कर उठ बैठे। एक बार तो दहल गये। चिक के पास पड़ी हुई लकड़ी उठा कर उसके पीछे हो लिये। कमीने की यह हिम्मत कि उनके कान से सिर्फ गज भर दूर, बल्कि पास, ऐसी बेतमीजी से चीखे। यह कहना तो ठीक न होगा कि आगे-आगे वो और पीछे-पीछे ये,

इसलिए कि किबला गुस्से में ऐसे भरे हुए थे कि कभी-कभी उससे आगे भी निकल जाते थे। सड़क पर कुछ दूर भागने के बाद कनमैलिया गलियों में निकल गया और आंखों से ओझल हो गया, मगर किबला सिर्फ अपनी छठी-इंद्रिय की बतायी हुई दिशा में दौड़ते रहे, और यह वो दिशा थी जिस तरफ कोई व्यक्ति, जिसकी पांचों इंद्रियां सलामत हों, हमला करने के चक्कर में लाठी घुमाता हरगिज न जाता कि ये थाने की तरफ जाती थी। इस वहशियाना दौड़ में किबला की लकड़ी और कनमैलिए का पग्गड़, जिसके हर पेच में उसने मैल निकालने के औजार उड़स रखे थे, जमीन पर गिर गया। उसमें से एक डिबिया भी निकली, जिसमें उसने कान का मैल जमा कर रखा था। नजर बचा कर उसी में से तोला भर मैल निकाल कर दिखा देता कि देखो तुम्हारे कान में जो भिन-भिन, तिन-तिन, की आवाजें आ रही थीं वो इन्हीं की थीं। लेकिन यह सच है कि वो कान की भूलभुलैयों में इतनी दूर तक सहज-सहज सलाई डालता चला जाता कि महसूस होता - अभी कान के रास्ते आंतें भी निकाल कर हथेली पर रख देगा। किबला ने इस पग्गड़ को बल्ली पर चढ़ा कर बल्ली अपने केबिन के सामने इस तरह गाड़ दी, जिस तरह पहले समय में कोई बेसब्र उत्तराधिकारी शहजादा या वो न हो तो फिर कोई दुश्मन, बादशाह सलामत का सर काट कर भाले पर हर खासो-आम की सूचना के लिए उठा देता था। इसका डर ऐसा बैठा कि दुकान के सामने से बढ़ई, खटबुने, सींगी लगाने वालियों और सहरी (रमजान के महीने में सूरज निकलने से पहले खाया जाने-वाला खाना) के लिए जगाने वालों ने भी निकलना छोड़ दिया। पड़ोस की मस्जिद का बुरी आवाज वाला मुअज्जिन (अजान देने वाला) भी पीछे वाली गली से आने जाने लगा।

कांसे की लुटिया, बाली उमरिया और चुग्गी दाढ़ी

किबला अपना माल बड़ी तवज्जो, मेहनत और मुहब्बत से दिखाते थे। मुहब्बत की बढ़ोत्तरी हमने इसलिए की कि वो ग्राहक को तो शेर की नजर से देखते थे मगर अपनी लकड़ी पर मुहब्बत से हाथ फेरते रहते थे। कोई सागौन का तख्ता ऐसा नहीं था, जिसके रेशों का जाल और रगों का तुगरा, (अरबी लिपि में पेचीदा मगर सुंदर लिखाई) अगर वो चाहें तो याददाश्त से कागज पर न बना सकते हों। लकड़मंडी में वो अकेले दुकानदार थे जो ग्राहक को अपनी और हर शहतीर-बल्ली की वंशावली याद करा देते थे। उनकी अपनी वंशावली बल्ली से भी जियादा लंबी थी। उस पर अपने परदादा को टांग रखा था। एक बल्ली की लंबाई की तरफ इशारा करते हुए कहते, सवा उनतालीस फुट लंबी है। गोंडा की है। अफसोस, असगर गोंडवी की शायरी ने गोंडा की बल्लियों की प्रसिद्धि का बेड़ा गर्क कर दिया। लाख कहो, अब किसी को यकीन नहीं आता कि गोंडा की प्रसिद्धि की अस्ल वज्ह खूबसूरत बल्लियां थीं। असगर गोंडवी से पहले ऐसी सीधी बेगांठ बल्ली मिलती थी कि चालीस फुट ऊंचे सिरे पर से छल्ला छोड़ दो तो बेरोक सीधा नीचे झन्न से आ कर ठहरता था। एक बार हाजी मुहम्मद इसहाक चमड़े-वाले, शीशम खरीदने आये। किबला यूं तो हर लकड़ी की प्रशंसा में जमीन-आसमान एक कर देते थे, लेकिन शीशम पर सचमुच फिदा थे। अक्सर फर्माते, तख्ते-ताऊस में शाहजहां ने शीशम ही लगवायी थी। शीशम के गुणग्राहक और कद्रदान तो कब्र में जा सोये, मगर क्या बात है शीशम की। जितना इस्तेमाल करो, उतनी ही खूबियां निखरती हैं। शीशम की जिस चारपाई पर मैं पैदा हुआ, उसी पर दादा मियां ने जन्म लिया था और इस इत्तफाक को वो चारपाई और दादाजान दोनों के लिए मान और सम्मान का कारण समझते थे। हाजी मुहम्मद इसहाक बोले, 'ये लकड़ी तो साफ मालूम नहीं होती।' किबला न जाने कितने बरसों बाद मुस्कुराये। हाजी साहब की दाढ़ी को टकटकी बांध कर देखते हुए बोले, 'यह बात हमने शीशम की लकड़ी, कांसे की लुटिया, बाली-उमरिया, और चुग्गी-दाढ़ी में ही देखी कि जितना हाथ फेरो उतनी ही चमकती है। बढ़िया क्वालिटी की शीशम की पहचान ये है कि आरा, रंदा, बरमा सब खुंडे और हाथ पत्थर हो जायें। यह चीड़ थोड़े ही हैं कि एक जरा कील ठोंको तो 'अलिफ' (उर्दू वर्णमाला का पहला

अक्षर) से लेकर 'ये' (अंतिम अक्षर) तक चिर जाये। पर एक बात है कि ताजा कटी हुई चीड़ से जंगल की महक का एक झरना फूट पड़ता है। लगता है इसमें नहाया जा रहा हूं। जिस दिन कारखाने में चीड़ की कटाई होने वाली हो, उस दिन मैं इत्र लगा के नहीं आता।'

किबला का मूड बदला तो हाजी इसहाक की हिम्मत बंधी। कहने लगे, इसमें शक नहीं कि ये शीशम तो सबसे अच्छी मालूम होती है मगर सीजंड (Seasoned) नहीं लगती। किबला के तो आग ही लग गई। कहने लगे, 'सीजंड! कितना भूखा रहने के बाद सीखा है यह शब्द? सीजंड सामने वाली मस्जिद का, मय्यत को नहलाने वाला तख्ता है। बड़ा पानी पिया है उसने! लाऊं? उसी पे लिटा दूंगा।'

यूं तो उनकी जिंदगी डेल कार्नेगी के हर सिद्धांत की शुरु से आखिर तक अत्यधिक कामयाब अवहेलना थी, लेकिन बिजनेस में उन्होंने अपने हथकंडे अलग आविष्कार कर रखे थे। ग्राहक से जब तक यह न कहलवा लें कि लकड़ी पसंद है, उसकी कीमत नहीं बताते थे। वो पूछता भी तो साफ टाल जाते, 'आप भी कमाल करते हैं, आपको लकड़ी पसंद है, ले जाइए, घर की बात है।' ग्राहक जब पूरी तरह लकड़ी पसंद कर लेता तो किबला कीमत बताये बगैर हाथ फैला कर बयाना तलब करते। सस्ता जमाना था वो दुअन्नी या चवन्नी का बयाना पेश करता जो इस सौदे के लिए काफी होता। इशारे से दुत्कारते हुए कहते, चांदी दिखाओ। (यानी कम-से-कम एक कलदार रुपया निकालो।) वो बेचारा शर्मा-हुजूरी एक रुपया निकालता जो उस जमाने में पंद्रह सेर गेहूं या सेर-भर अस्ली घी के बराबर होता तो, किबला रुपया लेकर अपनी हथेली पर इस तरह रखते कि उसे तसल्ली के लिए नजर तो आता रहे, मगर झपट्टा न मार सके। हथेली को अपने जियादा करीब भी न लाते, कहीं ऐसा न हो कि सौदा पटने से पहले ही ग्राहक बिदक जाये। कुछ देर बाद खुद-ब-खुद कहते 'मुबारक हो! सौदा पक्का हो गया।' फिर कीमत बताते, जिसे सुन कर वो हक्का-बक्का रह जाता। वो कीमत पर हुज्जत करता, तो कहते 'अजीब घनचक्कर हो। बयाना दे के फिरते हो। अभी रुपया दे के सौदा पक्का किया है। अभी तो इसमें से तुम्हारे हाथ की गर्मी भी नहीं गई और अभी फिर गये। अच्छा कह दो कि यह रुपया तुम्हारा नहीं है। कहो! कहो! कीमत नाप-तौल कर ऐसी बताते कि काइयां से काइयां ग्राहक भी दुविधा में पड़ जाये और यह फैसला न कर सके कि पेशगी डूबने में जियादा नुकसान है या इस भाव लकड़ी खरीदने में।

हुज्जत के दौरान कितनी ही गर्मी बल्कि हाथापाई हो जाये वो अपनी हथेली को चित ही रखते। मुट्ठी कभी बंद नहीं करते थे ताकि जलील होते हुए ग्राहक को यह संतुष्टि रहे कि कम-से-कम बयाना तो सुरक्षित है। उनके बारे में एक किस्सा मशहूर था कि एक सरफिरे ग्राहक से झगड़ा हुआ तो धोबी-पाट का दांव लगा कर जमीन पर दे मारा और जती पर चढ़ कर बैठ गये लेकिन इस पोज में भी अपनी हथेली जिस पर रुपया रखा था, चित ही रखी ताकि उसे ये बदगुमानी न हो कि रुपया हथियाना चाहते हैं।

लेकिन इसमें शक नहीं कि जैसी बेदाग और बढ़िया लकड़ी वो बेचते थे, वैसी उनके कहे-अनुसार, 'बागे-बहिश्त में शाखे-तूबा (जन्नत का एक खूश्बूदार पेड़) से भी प्राप्त न होगी। दागी लकड़ी बंदे ने आज तक नहीं बेची। सौ साल बाद भी दीमक लग जाये तो पूरे दाम वापस कर दूंगा।' बात दरअस्ल ये थी कि वो अपने उसूल के पक्के थे। मतलब यह कि तमाम उम्र 'ऊंची-दुकान, सही-माल, गलत-दाम,' पर सख्ती से कायम रहे। सुना है कि दुनिया के सबसे बड़े फैशनेबल स्टोर हेरड्ज का दावा है कि हमारे यहां सूई से लेकर हाथी तक हर चीज मिलती है। कहने वाले

कहते हैं कि कीमत भी दोनों की एक ही होती है। हेरड्ज अगर लकड़ी बेचता तो खुदा की कसम ऐसी ही और इन ही दामों बेचता।

ये छोड़ कर आये है

कानपुर से उजड़ के कराची आये तो दुनिया ही और थी। अजनबी माहौल, बेरोजगारी, सबसे बढ़कर बेघरी अपनी पुरखों की हवेली के दस-बारह फोटो खिंचवा लाये थे। 'जरा यह साइड पोज देखिए, और यह शाट तो कमाल का है।' हर आये-गये को फोटो दिखा कर कहते, 'यह छोड़ कर आये हैं।' जिन दफ्तरों में मकान के एलॉटमेंट के प्रार्थना-पत्र दिये थे, उनके बड़े अफसरों को भी कटघरे के इस पार से तस्वीरी प्रमाण दिखाते 'यह छोड़ कर आये हैं।' वास्कट और शेरवानी की जेब में और कुछ हो या न हो, हवेली का फोटो जुरूर होता था। अस्ल में यह उनका विजिटिंग-कार्ड था। कराची के फ्लैटों को कभी माचिस की डिब्बियां, कभी दड़बे, कभी काबुक कहते। लेकिन जब तीन महीने जूतियां चटखाने के बावजूद एक काबुक में भी सर छुपाने को जगह नहीं मिली तो आंखें खुलीं। दोस्तों ने समझाया, 'फ्लैट एक घंटे में मिल सकता है, कस्टोडियन की हथेली पर पैसा रखो और जिस फ्लैट की चाहो, चाबी ले लो।' मगर किबला तो अपनी हथेली पर पैसा रखवाने के आदी थे, वो कहां मानते। महीनों फ्लैट एलॉट करवाने के सिलसिले में भूखे-प्यासे, परेशान-हाल सरकारी दफ्तरों के चक्कर काटते रहे। जिंदगी भर किसी के मेहमान न रहे थे। अब बेटी-दामाद के यहां मेहमान रहने की तकलीफ भी सही।

'अब क्या होएगा?'

इंसान जब किसी घुला-देने-वाली पीड़ा या परीक्षा से गुजरता है तो एक-एक पल, एक-एक बरस बन जाता है और यूं लगता है जैसे। 'हर बरस के हों दिन पचास हजार'।

बेटी के घर टुकड़े तोड़ने या उस पर भार बनने की वो कल्पना भी नहीं कर सकते थे। कानपुर में कभी उसके यहां खड़े-खड़े एक गिलास पानी भी पीते तो हाथ पर पांच-दस रुपये रख देते। लेकिन अब? सुब्ह सर झुकाये नाश्ता करके निकलते तो, दिन-भर खाक जन-कर मगरिब (सूरज डूबने के बाद की नमाज) से जरा पहले लौटते। खाने के समय कह देते कि ईरानी होटल में खा आया हूं। जूते उन्होंने हमेशा रहीम बख्श से बनवाये, इसलिए कि उसके बनाये हुए जूते चरचराते बहुत थे। इन जूतों के तले अब इतने घिस गये थे कि चरचराने के लायक न रहे। पैरों में ठेकें पड़ गई, अचकनें ढीली हो गयीं। बीमार बीबी रात को दर्द से कराह भी नहीं सकती थी कि समधियाने वालों की नींद खराब होने का डर था। मलमल के कुर्तों की लखनवी कढ़ाई मैल में छुप गई। चुन्नटें निकलने के बाद आस्तीनें उंगलियों से एक-एक बालिश्त नीचे लटकी रहतीं। खिजाबी मूंछों का बल तो नहीं गया, लेकिन सिर्फ बल-खाई हुई नोकें सियाह रह गयीं। चार-चार दिन नहाने को पानी न मिलता। मोतिया का इत्र लगाये तीन महीने हो गये। बीबी घबरा कर बड़े भोलेपन से देहाती अंदाज में कहतीं 'अब क्या होयेगा? होगा के बजाय होयेगा उनके मुंह से बहुत प्यारा लगता था। इस एक वाक्य में वो अपनी सारी परेशानी, मासूमियत, बेबसी, सामने वाले के ज्योतिष-ज्ञान और उसकी बेमांगी मदद पर भरोसा-सभी कुछ समो देती थी। किबला इसके जवाब में बड़ा विश्वास से 'देखते हैं' कह कर उनकी तसल्ली कर देते थे।

बाहुबल और तेज काट की अवस्था

हर दुःख, हर परेशानी के बाद जिंदगी आदमी पर अपना एक रहस्य खोल देती है। बोधि-वृक्ष की छांव तले बुद्ध भी एक दुःख भरी तपस्या से गुजरे थे। जब पेट पीठ से लग गया, आंखें अंधे-कुंओं की तह में अंधेरी हो गयीं और हड्डियों की माला में बस सांस की डोरी अटकी रह गई तो गौतम बुद्ध पर भी एक भेद खुला था। जैसा, जितना और जिस कारण आदमी दुःख भोगता है, वैसा ही भेद उस पर खुलता है, निर्वाण ढूंढ़ने वाले को निर्वाण मिल जाता है और जो दुनिया के लिए कष्ट उठाता है दुनिया उसको रास्ता देती चलती जाती है।

गली-गली खाक फांकने और दफ्तर-दफ्तर धक्के खाने के बाद किबला के दुखी दिल पर कुछ खुला तो ये कि कायदे-कानून बुद्धिमानों और जालिमों ने कमजोर दिल वालों को काबू में रखने के लिए बनाये हैं। जो व्यक्ति हाथी की लगाम की तलाश करता रह जाये, वो कभी उस पर चढ़ नहीं सकता। जाम उसका है, जो बढ़कर खुद साकी को जाम-सुराही समेत उठा ले। दूसरे शब्दों में, जो बढ़कर ताला तोड़ डाले, मकान उसी का हो गया। कानपुर से चले तो अपनी जमा-जत्था, वंशावली, स्प्रिंग से खुलने वाला चाकू, अख्तरी बाई फैजाबादी के तीन रिकार्ड, मुरादाबादी हुक्के और सुराही के हरे कैरियर स्टैंड के अतिरिक्त अपनी दुकान का ताला भी ढो कर ले आये थे। अलीगढ़ से खास तौर पर बनवाकर मंगवाया था, तीन सेर से कम न होगा। ऊपर जो कुछ उन पर खुला, उसके बाद बर्नस रोड पर एक शानदार फ्लैट अपने लिए पसंद किया। मार्बल की टाइल्ज, समुद्र की ओर खुलने वाली खिड़कियां जिनमें रंगीन शीशे लगे थे, दरवाजे के जंग लगे ताले पर अपने अलीगढ़ी ताले की एक ही चोट से फ्लैट में खुद को सरकार का अहसानमंद हुए बगैर आबाद कर लिया। तख्ती दुबारा पेंट करवा के लगा दी। तख्ती पर नाम के आगे 'मुजतर कानपुरी' भी लिखवा दिया। पुराने परिचितों ने पूछा, आप शायर कब से हो गये? फरमाया, मैंने आज तक किसी शायर पर दीवानी मुकदमा चलते नहीं देखा, न डिग्री, कुर्की होते देखी! फ्लैट पर कब्जा करने के कोई चार महीने बाद अपने चूड़ीदार का घुटना रफू कर रहे थे कि किसी ने बड़ी बदतमीजी से दरवाजा खटखटाया। मतलब ये कि नाम की तख्ती को फटफटाया। जैसे ही उन्होंने हड़बड़ा कर दरवाजा खोला, आनेवाले ने अपना परिचय इस प्रकार करवाया जैसे अपने ओहदे की चपड़ास उठा के उनके मुंह पर दे मारी। 'अफसर कस्टोडियन इवैकुएट प्रापर्टी।' फिर डपट कर कहा, 'बड़े मियां! फ्लैट का एलाटमेंट आर्डर दिखाओ।' किबला ने वास्कट की जेब से हवेली का फोटो निकाल कर दिखाया, 'ये छोड़ कर आये हैं' उसने फोटो का नोटिस न लेते हुए सख्ती से कहा, 'बड़े मियां! सुना नहीं? एलॉटमेट आर्डर दिखाओ।' किबला ने बड़ी शांति से अपने बायें पैर का सलीम-शाही जूता उतारा और उतने ही आराम से कि उसे, खयाल तक न हुआ कि क्या करने वाले हैं, उसके मुंह पर मारते हुए बोले, 'यह है यारों का एलॉटमेंट आर्डर! कार्बन कॉपी भी देखेंगे?' उसने अब तक, यानी जलील होने तक, रिश्वत-ही-रिश्वत खाई थी, जूते नहीं खाये थे। फिर कभी इधर का रुख नहीं किया।

जिस हवेली में था हमारा घर

किबला ने बड़े जतन से मार्किट में एक छोटी-सी लकड़ी की दुकान का डोल डाला। बीबी के दहेज के छोवर और वेबले स्कॉट की बंदूक औने-पौने में बेच डाली। कुछ माल उधार खरीदा, अभी दुकान ठीक से जमी भी न थी कि एक इन्कम टैक्स इंस्पेक्टर आ निकला। खाता, रजिस्ट्रेशन, रोकड़-बही और रसीद बुक तलब कीं। दूसरे दिन, किबला हमसे कहने लगे, 'मियां! सुना आपने? महीनों जूतियां चटखाता, दफ्तरों में अपनी औकात खराब करवाता फिरा, किसी ने पलट कर न पूछा कि भैया कौन हो! अब दिल्लगी देखिए, कल एक इन्कम टैक्स का तीसमारखां दनदनाता आया। लक्का कबूतर की तरह सीना फुलाये। मैंने साले को यह दिखा दी - यह छोड़ कर आये हैं। चौंक के पूछने लगा - 'यह क्या है! मैंने कहा हमारे यहां इसे महलसरा कहते हैं।'

सच झूठ का हाल मिर्जा जानें, उन्हीं से सुना है कि इस महलसरा का एक बड़ा फोटो, फ्रेम करवा के अपने फ्लैट की कागजी-सी दीवार में कील ठोंक रहे थे कि दीवार के उस पार वाले पड़ोसी ने आ कर निवेदन किया कि कील एक फुट ऊपर ठोकिए ताकि दूसरे सिरे पर मैं अपनी शेरवानी लटका सकूं। दरवाजा जोर से खोलने और बंद करने की धमक से इस जंग खाई कील पर सारी महलसरा पेंडुलम की तरह झूलती रहती थी। घर में डाकिया या नई धोबिन भी आती तो उसे भी दिखाते 'यह छोड़ कर आये हैं'।

उस हवेली का फोटो हमने भी कई बार देखा था। उसे देखकर ऐसा लगता था जैसे कैमरे को मोटा नजर आने लगा है लेकिन कैमरे की आंख की कमजोरी को किबला अपनी बातों के जोर से दूर कर देते थे। यूं भी अतीत हर चीज के आस-पास एक रूमानी घेरा खींच देता है। आदमी का जब सब-कुछ छिन जाये तो वो या तो मस्त मलंग हो जाता है या किसी फेंटैसी-लैंड में शरण लेता है, वंशावली और हवेली भी ऐसे ही शरण-स्थल थे। संभव है धृष्ट-निगाहों को यह तस्वीर में ढंढार दिखाई दे लेकिन किबला जब इसके नाजुक पहलुओं की व्याख्या करते थे तो इसके आगे ताजमहल बिल्कुल सीधा-सपाटा, गंवारू घरौंदा मालूम होता था। मिसाल के तौर पर, दूसरी मंजिल पर एक दरवाजा नजर आता था, जिसकी चौखट और किवाड़ झड़ चुके थे। किबला उसे फ्रांसीसी दरीचा बताते थे, अगर यहां वाकई कोई यूरोपियन खिड़की थी तो यकीनी तौर पर ये वही खिड़की होगी जिसमें जड़े हुए कांच को तोड़ कर सारी-की-सारी ईस्ट इंडिया कंपनी आंखों में अपने जूतों की धूल झोंकती गुजर गई। ड्योढ़ी में दाखिल होने का जो बेकिवाड़ फाटक था वो दरअस्ल शाहजहानी मेहराब थी। उसके ऊपर एक टूटा हुआ छज्जा था, जिस पर तस्वीर में एक चील आराम कर रही थी। ये राजपूती झरोखे के बाकी-बचे चिह्न बताये जाते थे, जिनके पीछे उनके दादा के समय में ईरानी कालीनों पर आजरबाइजानी अंदाज की कव्वालियां होती थीं। पिछले पहर जब नींद से भारी आंखें मुंदने लगतीं तो थोड़ी-थोड़ी देर बाद चांदी के गुलाबपाशों से महफिल में आये लोगों पर गुलाबजल छिड़का जाता। फर्श और दीवारें कालीनों से ढकी रहतीं। कहते थे कि जित्ते फूल गलीचे पे थे, वित्ते ही बाहर बगीचे में थे, जहां इतालवी मखमल के कारचोबी कालीन पर गंगा-जमुनी काम के पीकदान रखे रहते थे, जिनमें चांदी के वरक में लिपटी हुई गिलौरियों की पीक जब थूकी जाती तो बिल्लौरी गले में उतरती-चढ़ती साफ नजर आती, जैसे थर्मामीटर में पारा।

वो भीड़ कि अक्ल धरने की जगह नहीं

हवेली के चंद अंदरूनी क्लोज-अप भी थे। कुछ कैमरे की आंख के और कुछ कल्पना की आंख के। एक तिदरी थी जिसकी दो मेहराबों की दरारों में ईंटों पर कानपुरी चिड़ियों के घोंसले नजर आ रहे थे। इन पर Moorish arches का अभियोग था, दिया रखने का एक ताक ऐसे आर्टिस्टिक ढंग से ढहा था कि पुर्तगाली आर्च के चिह्न दिखाई पड़ते थे। फोटो में उसके पहलू में एक लकड़ी की घड़ौंची नजर आ रही थी, जिसका शाहजहानी डिजाइन उनके परदादा ने बादशाह के पानी रखने की जगह से, अपने हाथ से चुराया था। शाहजहानी हो या न हो, उसके मुगल होने में कोई शक नहीं था, इसलिए कि उसकी एक टांग तैमूरी थी। हवेली की गर्दिशें फोटो में नजर आती थीं, लेकिन एक पड़ोसी का बयान था कि उनमें गर्दिश के मारे खानदानी बूढ़े रुले फिरते थे। उत्तरी हिस्से में एक खंभा, जो मुद्दत हुई छत का बोझ अपने ऊपर से ओछे के अहसान की तरह उतार चुका था, Roman pillars का अदुभुत नमूना बताया जाता था। आश्चर्य इस पर था कि छत से पहले क्यों न गिरा। इसका एक कारण यह हो सकता है कि चारों तरफ गर्दन तक मलबे में दबे होने की वज्ह से उसके गिरने के लिए कोई खाली जगह न थी। एक टूटी दीवार के सहारे लकड़ी की कमजोर सीढ़ी इस प्रकार खड़ी थी कि यह कहना मुश्किल था कि कौन किसके सहारे खड़ा है।

उनके बयान के अनुसार जब दूसरी मंजिल नहीं गिरी थी तो यहां विक्टोरियन स्टाइल का Grand staircase हुआ करता था। उस छत पर, जहां अब चिमगादड़ें भी नहीं लटक सकती थीं, किबला लोहे की कड़ियों की ओर इशारा करते, जिनमें दादा के समय में बेल्जियम के फानूस लटके रहते थे, जिनकी चंपई रोशनी में वो घुंघराली खंजरियां बजतीं जो दो कूबड़ वाले बाख्तरी ऊंटों के साथ आई थीं। अगर फोटो उनकी रनिंग कमेंट्री के साथ न देखे होते तो किसी तरह यह खयाल में नहीं आ सकता था कि पांच सौ स्क्वायर गज की एक लड़खड़ाती हवेली में इतनी वास्तु कला और ढेर-सारी संस्कृतियों का ऐसा घमासान का दंगल होगा कि अक्ल धरने की जगह न रहेगी। पहली बार फोटो देखें तो लगता था कि कैमरा हिल गया है। फिर जरा गौर से देखें तो आश्चर्य होता था कि यह ढंढार हवेली अब तक कैसे खड़ी है। मिर्जा का विचार था कि इसमें गिरने की भी ताकत नहीं रही।

वो तिरा कोठे पे नंगे पांव आना याद है

हवेली के मुख्य दरवाजे से कुछ कदम के फासले पर जहां फोटो में घूरे पर एक काला मुर्गा गर्दन फुलाये अजान दे रहा था, वहां एक टूटे चबूतरे के चिह्न नजर आ रहे थे। उसके पत्थरों के जोड़ों और झिरियों में से पौधे रोशनी की तलाश में घबरा कर बाहर निकल रहे थे। एक दिन उस चबूतरे की ओर संकेत कर कहने लगे कि यहां साफ पानी से भरा हुआ पत्थर का आठ कोण वाला हौज हुआ करता था, जिसमें विलायती गोल्डफिश तैरती रहती थीं। आरिफ मियां उसमें पायनियर अखबार की किश्तियां तैराया करते थे। यह कहते-कहते किबला जोश में अपनी छड़ी लेकर उठ खड़े हुए। उससे फटी हुई दरी पर हौज का नक्शा खींचने लगे। एक जगह काल्पनिक लकीर कुछ टेढ़ी खिंची तो उसे पैर से रगड़ कर मिटाया। छड़ी की नोक से शैतान मछली की तरफ इशारा किया जो सबसे लड़ती फिरती थी। फिर एक कोने में उस मछली की ओर भी इशारा किया जिसका जी निढाल था। उन्होंने खुल कर तो नहीं कहा कि आखिर हम उनके छोटे थे, लेकिन हम समझ गये कि इस मछली का जी खट्टी चीजें और सोंधी मिट्टी खाने को चाह रहा होगा।

किबला कभी तरंग में आते तो अपने इकलौते बेतकल्लुफ दोस्त रईस अहमद किदवाई से कहते कि जवानी में मई-जून की ठीक दुपहरिया में एक हसीन कुंवारी लड़की का कोठों-कोठों नंगे पांव उनकी हवेली की तपती छत पर आना अब तक (मय डायलाग के) याद है। यह बात मिर्जा की समझ में आज तक न आई। इसलिए कि उनकी हवेली तीन मंजिला थी। जबकि दायें-बायें पड़ोस के दोनों मकान एक-एक मंजिल के थे। हसीन कुंवारी अगर नंगे पैर हो और लाज का गहना उतारने के लिए उतावली भी हो, तब भी यह करतब संभव नहीं (जब तक कि हसीना उनके इश्क में दो टुकड़ों में न बंट जाये।)

पिलखन

फोटो में हवेली के सामने एक ऊंची-घनी पिलखन उदास खड़ी थी। इसका बीज उनके परदादा काली टांगों वाले भूरे घोड़े पर सवार, कारचोबी काम के चोगे में छुपा कर अकाल के जमाने में दमिश्क से लाये थे। किबला के कहे अनुसार उनके परदादा के अब्बा जान कहा करते थे कि निर्धनता के आलम में यह नंगे-खलाइक, नंगे-असलाफ, नंगे-वतन (लोगों, बुजुर्गों और देश के लिए अपमान का कारण) नंगे सर, नंगे पैर, घोड़े की नंगी पीठ पर, नंगी तलवार हाथ में लिए, खैबर के नंगे पहाड़ों को फलांगता हिंदुस्तान आया। जो चित्र वो खींचते थे, उससे तो यही लगता था कि उस समय किबला के बुजुर्ग के पास बदन ढंकने के लिए घोड़े की दुम के सिवा और कुछ न था। जायदाद, महलसरा, नौकर-चाकर, सामान, रुपया पैसा सब कुछ वहीं छोड़ आये, परंतु सामान का सबसे कीमती

हिस्सा यानी वंशावली और पिलखन का बीज साथ ले आये। घोड़ा जो उन्हीं की तरह खानदानी और वतन से बेजार था, बीज और वंशावली के बोझ से रानों-तले निकला पड़ रहा था।

जिंदगी की धूप जब कड़ी हुई और पैरों-तले से जमीन-जायदाद निकल गई तो आइंदा नस्लों ने उसी वृक्ष और वंशावली की छांव-तले विश्राम किया। किबला को अपने पुरखों की बुद्धि और समझ पर बड़ा मान था। उनका प्रत्येक पुरखा अदभुत था और उनकी वंशावली की हर शाख पर एक जीनियस बैठा ऊंघ रहा था। किबला ने एक फोटो उस पिलखन के नीचे ठीक उस जगह खड़े हो कर खिंचवाया था, जहां उनकी नाल गड़ी थी। कहते थे कि अगर किसी को मेरी हवेली की मिल्कियत में शक हो तो नाल निकाल कर देख ले। जब आदमी को यह न मालूम हो कि उसकी नाल कहां गड़ी है और पुरखों की हड्डियां कहां दफ्न हैं, तो वो मनीप्लांट की तरह हो जाता है, जो मिट्टी के बगैर सिर्फ बोतलों में फलता-फूलता है। अपनी नाल, पुरखों और पिलखन का जिक्र इतने गर्व के साथ और इतना अधिक करते-करते हाल यह हुआ कि पिलखन की जड़ें वंशावली में उतर आईं, जैसे घुटनों में पानी उतर आता है।

इंपोर्टिड बुजुर्ग और यूनानी नाक

वो जमाने और शराफत के ढंग और थे। जब तक बुजुर्ग अस्ली इंपोर्टिड यानी मध्य एशिया और खैबर के उस पार से आये हुए न हों, कोई हिंदुस्तानी मुसलमान खुद को इज्जतदार और शरीफ नहीं कहता था। गालिब को तो शेखी बघारने के लिए अपना (फर्जी) उस्ताद मुल्ला अब्दुस्समद तक ईरान से इंपोर्ट करना पड़ा। किबला के बुजुर्गों ने जब बेरोजगारी और गरीबी से तंग आकर वतन छोड़ा तो आंखें नम और दिल पिघले हुए थे। बार-बार अफसोस में अपना हाथ घोड़े की रान पर मारते और एक-दूसरे की दाढ़ी पर हाथ फेर के तौबा-तौबा कहते। यह नये आने वाले, जिससे भी मिले अपने आचरण से उसका दिल जीत लिया।

'पहले जां, फिर जाने - जां, फिर जाने - जानां हो गये'

फिर यही प्यारे लोग आहिस्ता-आहिस्ता पहले खां, फिर खाने-खां, फिर खाने-खानां हो गये।

हवेली के आर्किटेक्चर की भांति किबला के रोग भी राजसी होते थे। बचपन में दायें गाल पर शायद आमों की फस्ल में फुंसी निकली थी, जिसका दाग अभी तक बाकी था। कहते थे, जिस साल मेरे यह औरंगजेबी फोड़ा निकला, उसी साल बल्कि उसी हफ्ते महारानी विक्टोरिया रांड हुई। साठ के पेटे में आये तो शाहजहानी 'हब्से-बोल' (पेशाब का बंद हो जाना) में गिरफ्तार हो गये। फर्माते थे कि गालिब मुगल-बच्चा था। सितम-पेशा डोमनी को अपने इश्क के जहर से मार डाला मगर खुद इसी, यानी मेरी वाली बीमारी में मरा। एक खत में लिखता है कि घूंट-घूंट पीता हूं और कतरा-कतरा बाहर निकालता हूं। दमे का दौरा जरा थमता तो बड़े गर्व से कहते कि फैजी को यही रोग था। उसने एक जगह कहा है कि दो आलम मेरे सीने में समा गये, मगर आधा सांस किसी तौर नहीं समा रहा। अपने स्वर्गवासी पिता के बारे में बताते थे कि राज-रोग यानी अकबरी संग्रहणी में इंतकाल फर्माया। मतलब इससे, आंतों की टी.बी. था। मरज तो मरज, नाक तक अपनी नहीं थी - यूनानी बताते थे।

'मुर्दा अज गैब बरूं आयदो-कारे-बकुनद'

(मुर्दा परोक्ष से आया और काम कर गया *)*

किबला को दो गम थे। पहले गम का बयान बाद में आयेगा। दूसरा गम दरअस्ल इतना उनका अपना नहीं जितना बीबी का था, वो बेटे की इच्छा में घुल रही थीं। उस गरीब ने बड़ी मन्नतें मानीं, शर्बत में नक्श (कुरआन की आयतें लिखे पर्चे) घोल-घोल कर पिलाये। उनके तकिये के नीचे तावीज रखे। छुप-छुप कर मजारों पर चादरें चढ़ाई। हमारे यहां जब जीवित लोगों से मायूस हो जाते हैं तो बस यही आस बाकी रह जाती है। पचास मील के दायरे में कोई मजार ऐसा न बचा जिसके सिरहाने खड़े होकर वो इस तरह फूट-फूट कर न रोयी हों कि कब्र-वाले के रिश्तेदार भी दफ्न करते समय क्या रोये होंगे। उस जमाने में कब्र के अंदर वाले चमत्कारी हों या न हों, कम-से-कम कब्र के भीतर अवश्य होते थे। आजकल जैसा हाल नहीं था कि मजार अगर मैयत से खाली है तो गनीमत जानिये, वरना अल्लाह जाने अंदर क्या दफ्न है, जिसका इस धूम-धाम से उर्स मनाया जा रहा है। खैर यह तो एक वाक्य था जो रवानी में फैल कर पूरा पैरा बन गया। निवेदन यह करना था कि किबला खुद को किसी सिद्ध पुरुष से कम नहीं समझते थे। उन्हें जब यह पता चला कि बीबी लड़के की मन्नत मांगने चोरी-छुपे नामहरमों (जिनके साथ निकाह जायज हो) के मजारों पर जाने लगी है, तो बहुत नाराज हुए। वो जब बहुत नाराज होते तो खाना छोड़ देते थे। हलवाई की दुकान से रबड़ी, मोती-चूर के लड्डू और कचौड़ी लाकर खा लेते। दूसरे दिन बीबी कासनी रंग का दुपट्टा ओढ़ लेतीं और उनकी पसंद के खाने यानी दोप्याजा, डेढ़गुनी शक्कर वाला जर्दा, बहुत तेज मिर्च के उड़द के दही-बड़े खिला कर उन्हें मना लेतीं। किबला इन्हीं खानों पर अपने ईरानी और अरबी नस्ल के पुरखों की नियाज दिलवाते (श्राद्ध करते), लेकिन उनके दही-बड़ों में मिर्चें बस नाम को डलवाते।

मजारों पर जाने पर पाबंदी लगी। बीबी बहुत रोयीं-धोयीं तो किबला कुछ पिघले। मजारों पर जाने की इजाजत दे दी, लेकिन इस शर्त पर कि मजार में रहने वाला जाति का कंबोह न हो। कंबोह मर्द और गजल के शायर से पर्दा जुरूरी है चाहे वो मुर्दा ही क्यों न हो। 'मैं इनकी रग-रग पहचानता हूं।' उनके दुश्मनों का कहना है कि किबला खुद भी जवानी में शायर और ननिहाल की ओर से कंबोह थे। अक्सर कहते कि कंबोह के मरने पर तो जश्न मनाना चाहिए।

कटखने बिलाव के गले में घंटी

आहिस्ता-आहिस्ता बीबी को सब्र आ गया। एक बेटी थी। किबला को वह अत्यंत प्रिय होती गई। इस हद तक सब्र आ गया कि अक्सर कहते, 'खुदा बड़ा दयावान है। उसने बड़ी मेहरबानी की जो बेटा न दिया। अगर मुझ पर पड़ता तो सारी उम्र परेशान होता और अगर न पड़ता तो मैं नालायक को निकाल बाहर करता।'

सयानी बेटी कितनी भी चहेती हो, मां-बाप की छाती पर पहाड़ होती है। लड़की, रिश्तों के इश्तेहार के अनुसार देखने में ठीकठाक, सुशील, हंसमुख, घरेलू काम काज में माहिर, लेकिन किसका बुरा वक्त आया था कि किबला की बेटी के लिए रिश्ता भेजे। हमें नमरूद की आग में निर्भय होकर कूदने से कहीं जियादा खतरनाक काम नमरूद की वंशावली में कूद पड़ना लगता है। जैसा कि हम पहले बता चुके हैं, किबला हमारे मित्र बिशारत के फूफा, चचा और अल्लाह जाने! क्या-क्या लगते थे। दुकान और मकान दोनों-प्रकार से पड़ोसी भी थे। बिशारत के पिता भी रिश्ते के पक्ष में थे, लेकिन संदेशा भेजने से साफ इन्कार कर दिया कि बहू के बिना फिर भी गुजारा हो सकता है लेकिन नाक और टांग के बिना तो व्यक्तित्व अधूरा-सा लगेगा। बिशारत ने रेल की पटरी से खुद को बंधवा कर बड़ी लाइन के इंजन से आत्महत्या करने की धमकी दी। रस्सियों से बंधवाने की शर्त खुद इसलिए लगा दी कि

कहीं ठीक समय पर डर कर भाग न जायें लेकिन उनके पिता ने साफ कह दिया कि उस कटखने बिलाव के गले में तुम्हीं घंटी बांधो।

किबला मुंहफट, बदतमीज मशहूर ही नहीं थे, थे भी। वो दिल से, बल्कि बेदिली से भी, किसी की इज्जत नहीं करते थे। दूसरे को जलील करने का कोई-न-कोई कारण जुरूर निकाल लेते। मिसाल के तौर पर अगर किसी की उम्र उनसे एक महीना भी कम हो तो उसे लौंडा कहते और अगर एक साल जियादा तो बुढ़ऊ।

ज्वालामुखी पहाड़ में छलांग

बिशारत ने इन दिनों बी.ए. का इम्तिहान दिया था और पास होने की संभावना फिप्टी-फिप्टी थी। फिप्टी-फिप्टी इतने गर्व और विश्वास से कहते थे जैसे अपनी कांटा-तौल की हुई आधी-नालायकी से इम्तिहान लेने वाले को कड़ी परीक्षा में डाल दिया है। फुर्सत-ही-फुर्सत थी। कैरम और कोट पीस खेलते। आत्माओं को बुलाते और उनसे ऐसे प्रश्न करते कि जिंदों को शर्म आती। कभी दिन-भर बैठे नजीर अकबराबादी के कविता संग्रह में बिंदुओं वाले ब्लैंक भरते रहते जो मुंशी नवल किशोर प्रेस ने सभ्यता की मांग और भारतीय कानून की वज्ह से खाली छोड़ दिये थे। बातचीत में हर वाक्य के बाद शेर का ठेका लगाते। कहानी लिखने का अभ्यास भी जारी था।

आखिरकार एक सुहानी सुब्ह बिशारत ने खुद अपने हाथ एक पर्चा लिखा और रजिस्ट्री से भिजवा दिया। हालांकि जिसे भेजा उसके मकान की दीवार उनके मकान की दीवार से मिली हुई थी। संदेशा 23 पृष्ठों और लगभग पचास शेरों पर आधारित था। इनमें से आधे शेर उनके अपने और आधे अंदलीब शादानी के थे, जिनसे किबला के भाइयों जैसे संबंध थे। उस जमाने में संदेशे केसर से लिखे जाते थे। लेकिन इस संदेश के लिए तो केसर का एक खेत भी अपर्याप्त होता। इसलिए सिर्फ सम्मानसूचक संबोधन केसर से और बाकी बातें लाल-सियाही से जैड के मोटे निब से लिखीं। जिन हिस्सों पर खास-तौर से ध्यान दिलाना था, उन्हें नीली सियाही से बारीक अक्षरों में लिखा। बात हालांकि धृष्टतापूर्ण थी, लेकिन भाव फिर भी ताबेदारी का और अंदाज बेहद चापलूसी का था। किबला के अच्छे स्वभाव, हंसमुखपन, मुहब्बत की जी खोल कर प्रशंसा की, जिसकी परछाईं तक किबला के चरित्र में न थी। साथ-साथ दुश्मनों की नाम ले-ले कर डट कर बुराई की। उनकी संख्या इतनी थी कि 23 पृष्ठों की मिट्टी के पियाले में रखकर खरल करना उन्हीं का काम था। बिशारत ने जी कड़ा करके ये तो लिख दिया कि मैं शादी करना चाहता हूं, लेकिन ये कहने की हिम्मत न पड़ी कि किससे। बात बिखरी-बिखरी सही लेकिन किबला अपनी अच्छी आदतों और दुश्मनों की हरमजदगियों के बयान से बहुत खुश हुए। इससे पहले किसी ने उनको खूबसूरत और सजीला भी नहीं कहा था। दो बार पढ़कर अपने मुंशी को पकड़ा दिया कि तुम्हीं पढ़कर बताओ कि साहबजादे किससे शादी करना चाहते हैं, अच्छाइयां तो मेरी बयान की हैं। ग्लेशियर था कि पिघला जा रहा था। मुस्कुराते हुए मुंशी जी से बोले, किसी-किसी बेउस्ताद शायर के शेर में कभी-कभी अलिफ गिरता है। इसके शेरों में तो अलिफ से लेकर ये तक सारे अक्षर एक-दूसरे पर गिर पड़ रहे हैं, जैसे ईदगाह में नमाजी एक-दूसरे की कमर पर सिजदा कर रहे हों।

बिशारत के साहस की कहानी जिसने सुनी, हैरान रह गया। खयाल था कि ज्वालामुखी फट पड़ेगा। किबला तरस खाकर सारे खानदान को कत्ल नहीं करेंगे तो कम से कम हरेक की टांगें जुरूर तोड़ देंगे, लेकिन यह सब कुछ नहीं हुआ। किबला ने बिशारत को अपनी गुलामी में लेना स्वीकार कर लिया।

रावण क्यों मारा गया

किबला की दुकानदारी और उनकी लायी हुई परेशानियों का कोई एक उदाहरण हो तो बतायें। कोई ग्राहक जरा-सा भी उनकी किसी बात या भाव पर शक करे तो फिर उसकी इज्जत ही नहीं, हाथ-पैर की भी खैर नहीं। एक बार जल्दी में थे। लकड़ी की कीमत छूटते ही दस रुपये बता दी। देहाती ग्राहक ने पौने दस रुपये लगाये और ये गाली देते हुए मारने को दौड़े कि जट गंवार की इतनी हिम्मत कैसे हुई। दुकान में एक टूटी हुई चारपाई पड़ी रहती थी जिसके बानों को चुरा-चुरा कर आरा खींचने वाले मजदूर चिलम में भरकर सुल्फे के दम लगाते थे। किबला जब बाकायदा सशस्त्र हो कर हमला करना चाहते तो इस चारपाई का सेरुवा यानी सिरहाने की पट्टी निकालकर अपने दुश्मन (ग्राहक) पर झपटते। अक्सर सेरुवे को पुचकारते हुए कहते, 'अजीब सख्तजान है, आज तक इसमें फ्रैक्चर नहीं हुआ। लठ रखना बुजदिलों और गंवारों का काम है और लाठी चलाना कसाई, कुजड़ों, गुंडों और पुलिस का।' प्रयोग में लाने के बाद सेरुवे की फर्स्ट एड करके यानी अंगोछे से अच्छी तरह झाड़-पोंछ कर वापस झिलंगे में लगा देते। इस तरीके में खास बात शायद यह थी कि चारपाई तक जाने और सेरुवा निकालने के बीच अगर गुस्से को ठंडा होना है तो हो जाये, और जिस पर गुस्सा किया जा रहा है वो अपनी टांगों का प्रयोग करने में कंजूसी से काम न ले। (एक पुरानी चीनी कहावत है कि लड़ाई के जो तीन सौ सतरह पैंतरे ज्ञानियों ने गिनवाये हैं, उनमें जो पैंतरा सबसे उपयोगी बताया गया है वो यह है कि भाग लो) इसकी पुष्टि हिंदू देवमाला से भी होती है। रावण के दस सर और बीस हाथ थे, फिर भी मारा गया। इसकी वज्ह हमारी समझ में तो यही आती है - भागने के लिए टांगें सिर्फ दो थीं। हमला करने से पहले किबला कुछ देर खौंखियाते ताकि विरोधी अपनी जान बचाना चाहता है तो बचा ले। बताते थे, आज तक ऐसा नहीं हुआ कि किसी की ठुकाई करने से पहले मैंने उसे गाली देकर खबरदार न किया हो।

हूं तो सजा का पात्र , पर इल्जाम गलत है

किबला का आतंक सबके दिलों पर बैठा था, बस दायीं तरफ वाला दुकानदार बचा हुआ था। वो कन्नौज का रहने वाला, अत्यधिक दंभी, हथछुट, दुर्व्यवहारी और बुरी जबान का आदमी था। उम्र में किबला से बीस साल कम होगा। यानी जवान और धृष्ट। कुछ साल पहले तक अखाड़े में बाकायदा जोर करता था। पहलवान सेठ कहलाता था। एक दिन ऐसा हुआ कि एक ग्राहक किबला की सीमा में 3/4 प्रवेश कर चुका था कि पहलवान सेठ उसे पकड़ कर घसीटता हुआ अपनी दुकान में ले गया और किबला 'महाराज! महाराज!' पुकारते ही रह गये। कुछ देर बाद वो उसकी दुकान में घुस कर ग्राहक को छुड़ाकर लाने की कोशिश कर रहे थे कि पहलवान सेठ ने उनको वो गाली दी जो वो खुद सबको दिया करते थे।

फिर क्या था। किबला ने अपने खास शस्त्र-भंडार से यानी चारपाई से पट्टी निकाली और नंगे-पैर दौड़ते हुए उसकी दुकान में दुबारा घुसे। ग्राहक ने बीच-बचाव कराने का प्रयास किया और पहली झपट में अपना दांत तुड़वाकर बीच-बचाव की कारवाई से रिटायर हो गया। बुरी जबान वाला पहलवान सेठ दुकान छोड़ कर बगटुट भागा। किबला उसके पीछे सरपट। थोड़ी दूर जा कर उसका पांव रेल की पटरी में उलझा और वो मुंह के बल गिरा। किबला ने जा लिया। पूरी ताकत से ऐसा वार किया कि पट्टी के दो टुकड़े हो गये। मालूम नहीं इससे चोट आई या रेल की पटरी पर गिरने से, वो देर तक बेहोश पड़ा रहा। उसके गिर्द खून की तलैया-सी बन गई।

पहलवान सेठ की टांग के मल्टीपल फ्रैक्चर में गैंग्रीन हो गया और टांग काट दी गई। फौजदारी का मुकदमा बन गया। उसने पुलिस को खूब पैसा खिलाया और पुलिस ने पुरानी दुश्मनी के आधार पर किबला का, कत्ल की कोशिश के इल्जाम में, चालान पेश कर दिया। लंबी चौड़ी चार्ज शीट सुनकर, किबला कहने लगे कि टांग का नहीं

कानून का मल्टीपल फ्रैक्चर हुआ है। पुलिस गिरफ्तार करके ले जाने लगी तो बीबी ने पूछा, 'अब क्या होयेगा?' कंधे उचकाते हुए बोले 'देखेंगे।' अदालत में बीच-बचाव करने वाले ग्राहक का दांत और कत्ल का हथियार यानी चारपाई की खून पिलाई हुई पट्टी Exhibits के तौर पर पेश किये गये। मुकद्दमा सेशन के सुपुर्द हो गया। किबला कुछ अर्से रिमांड पर न्यायिक हिरासत में रहे थे। अब जेल में बाकायदा खूनियों, डाकुओं, जेबकतरों और आदी-मुजरिमों के साथ रहना पड़ा। तीन-चार मुचैटों के बाद वो भी किबला को अपना चचा कहने और मानने लगे।

उनकी ओर से यानी बचाव-पक्ष के वकील की हैसियत से कानपुर के एक योग्य बैरिस्टर मुस्तफा रजा किजिलबाश ने पैरवी की, मगर वकील और मुवक्किल की किसी एक बात पर भी सहमति न हो सकी। किबला को जिद थी कि मैं हलफ उठा कर यह बयान दूंगा कि शिकायत करने वाले ने अपनी वल्दियत गलत लिखवायी है, इसकी सूरत अपने बाप से नहीं, बाप के एक बदचलन दोस्त से मिलती है।

वकील साहब इस बात पर जोर देना चाहते थे कि चोट रेल की पटरी पर गिरने से आई है, मुल्जिम के मारने से नहीं, उधर किबला अदालत में फिल्मी बैरिस्टरों की तरह टहल-टहल कर कटहरे को झंझोड़-झंझोड़ कर ये एलान करना चाहते थे कि मैं सिपाही का बच्चा हूं। दुकानदारी मेरे लिए कभी मान-सम्मान पाने का जरिया नहीं रही, बल्कि काफी समय से आमदनी का जरिया भी नहीं रही। टांग पर वार करना हमारी सिपाहियाना शान और मर्दानगी की तौहीन है। मैं तो दरअस्ल इसका सर टुकड़े-टुकड़े करना चाहता था। इसलिए अगर मुझे सजा देना ही जुरूरी है तो टांग तोड़ने की नहीं, गलत निशाने की दीजिए। 'सजा का पात्र हूं, मगर इल्जाम गलत है।'

अंतिम समय और जूं का ब्लड टेस्ट

अदालत में फौजदारी मुकदमा चल रहा था। अनुमान यही था कि सजा हो जायेगी, खासी लंबी होगी। घर में हर पेशी के दिन रोना-पीटना मचता। दोस्त-रिश्तेदार अपनी जगह हैरान-परेशान कि जरा-सी बात पर यह नौबत आ गई। पुलिस उन्हें हथकड़ी पहनाये सारे शहर का चक्कर दिला कर अदालत में पेश करती और पहलवान से इस सेवा का मेहनताना वुसूल करती। भोली-भाली बीबी को विश्वास नहीं आता था। एक-एक से पूछतीं, 'भैया! क्या सचमुच की हथकड़ी पहनायी थी?' अदालत के अंदर और बाहर किबला के तमाम दुश्मनों यानी सारे शहर की भीड़ होती। सारे खानदान की नाक कट गई मगर किबला ने कभी मुंह पर तौलिया और हथकड़ी पर रूमाल नहीं डाला। गश्त के दौरान मूंछों पर ताव देते तो हथकड़ी झन-झन, झन-झन करती। रमजान का महीना आया तो किसी ने सलाह दी कि नमाज रोजा शुरू कर दीजिये। अपने कान ही पूर के मौलाना हसरत मोहानी तो रोजे में चक्की भी पीसते थे। किबला ने बड़ी हिकारत से जवाब दिया, 'लाहौल विला कुव्वत! मैं शायर थोड़े ही हूं। यह नाम होगा कि दुनिया के दुख न सह सका।'

बीबी ने कई बार पुछवाया, 'अब क्या होयेगा?' हर बार एक ही जवाब मिला, 'देख लेंगे।' क्रोधावस्था में जो बात मुंह से निकल जाये या जो काम हो जाये, उस पर उन्हें कभी लज्जित होते नहीं देखा। कहते थे कि आदमी के अस्ल चरित्र की झलक तो क्रोध के कौंदे में ही दिखाई देती है। इसलिए अपनी किसी करतूत यानी अस्ल चरित्र पर लज्जित या परेशान होने को मर्दों की शान के विरुद्ध समझते थे।

एक दिन उनका भतीजा शाम को जेल में खाना और जुएं मारने की दवा दे गया, दवा के विज्ञापन में लिखा था कि इसके मलने से जुऐं अंधी हो जाती हैं, फिर उन्हें आसानी से पकड़ कर मारा जा सकता है। जूं और लीख मारने की

तरकीब भी लिखी थी, यानी जूं को बायें हाथ के अंगूठे पर रखो और दायें अंगूठे के नाखून से चट से कुचल दो। अगर जूं के पेट से काला या गहरा लाल खून निकले तो तुरंत हमारी दवा 'अक्सीरे-जालीनूस' (खून साफ करने वाली) पी कर अपना खून साफ कीजिए। पर्चे में यह निर्देश भी था कि दवा का कोर्स उस समय तक जारी रखिए जब तक कि जूं के पेट से साफ-सुर्ख खून न निकलने लगे। किबला ने जंगले के उस तरफ से इशारे से भतीजे को कहा कि अपना कान मेरे मुंह के पास लाओ। फिर उससे कहा कि बरखुरदार! जिंदगी का भरोसा नहीं, दुनिया इस जेल-समेत नश्वर है। गौर से सुनो, यह मेरा आदेश भी है और वसीयत भी। लोहे की अलमारी में दो हजार रुपये आड़े वक्त के लिए रद्दी अखबारों के नीचे छुपा आया था। रुपया निकाल कर अल्लन (शहर का नामी गुंडा) को दे देना। अपनी चची को मेरी ओर से तसल्ली देना। अल्लन को मेरी दुआ कहना और कहना कि छओं को ऐसी ठुकाई करे कि घर वाले सूरत न पहचान सकें। यह कहकर अखबार का एक मसला हुआ पुर्जा भतीजे को थमा दिया, जिसके किनारे पर उन छह गवाहों के नाम लिखे थे, जिन को पिटवाने की योजना उन्होंने जेल में उस समय बनायी थी जब ऐसी ही हरकत पर उन्हें आजकल में सजा होने वाली थी।

एक बार इतवार को उनका भतीजा जेल में मिलने आया और उनसे कहा कि जेलर तक आसानी से सिफारिश पहुंचायी जा सकती है। अगर आपका जी किसी खास खाने जैसे जर्दा या दही बड़े, शौक की मसनवी (एक पुराने शायर का महाकाव्य), सिगरेट या महोबे के पान को चाहे तो चोरी छुपे हफ्ते में कम-से-कम एक बार आसानी से पहुंचाया जा सकता है। चची ने याद करके कहने को कहा है। ईद करीब आ रही है, रो-रो कर उन्होंने आंखें सुजा ली हैं। किबला ने जेल के खद्दर के नेकर पर दौड़ता हुआ खटमल पकड़ते हुए कहा, मुझे किसी चीज की कोई जुरूरत नहीं। अगली बार आओ तो सिराज फोटोग्राफर से हवेली का फोटो खिंचवा के ले आना। कई महीने हो गये देखे हुए। जिधर तुम्हारी चची के कमरे की चिक है उस ओर से खींचे तो अच्छी आयेगी।

संतरी ने जमीन पर जोर से बूट की थाप लगाते और थ्री-नाट-थ्री की राइफल का कुंदा बजाते हुए डपट कर कहा कि मुलाकात का समय समाप्त हो चुका। ईद का खयाल करके भतीजे की आंखें डबडबा आईं और उसने नजरें नीची कर लीं। उसके होंठ कांप रहे थे। किबला ने उसका कान पकड़ा और खींच कर अपने मुंह तक लाने के बाद कहा, हां! हो सके तो जल्दी से एक तेज चाकू, कम से कम छह इंच के फल वाला, डबल रोटी या ईद की सिवैंयों में छुपा कर भिजवा दो। दूसरे, बंबई में Pentangular शुरू होने वाला है। किसी तरकीब से मुझे रोजाना स्कोर मालूम हो जाये तो वल्लाह! हर रोज ईद का दिन हो, हर रात शबे-बरात। खास तौर से वजीर अली का स्कोर दिन के दिन मालूम हो जाये तो क्या कहना। सजा हो गई, डेढ़ साल कैदे-बामुशक्कत (सश्रम करावास) फैसला सुना, सर उठा कर ऊपर देखा। मानो आसमान से पूछ रहे हों, 'तू देख रहा है! यह क्या हो रहा है?' How's that? पुलिस ने हथकड़ी डाली। किबला ने किसी प्रकार की प्रतिक्रिया जाहिर नहीं की। जेल जाते समय बीबी को कहला भेजा कि आज मेरे पुरखों की आत्मा कितनी प्रसन्न होगी, कितनी भाग्यशाली हो तुम कि तुम्हारा दूल्हा (जी हां! यही शब्द इस्तेमाल किया था) एक हरामजादे की ठुकाई करके मर्दों का जेवर पहने जेल जा रहा है। लकड़ी की टांग लगवा कर घर नहीं आ रहा। दो रकअत (नमाज में खड़े होने, झुकने और माथा टेकने को एक रकअत कहते हैं) नमाज शुकराने (धन्यवाद निवेदन) की पढ़ना। भतीजे को निर्देश दिया कि हवेली की मरम्मत कराते रहना, अपनी चची का खयाल रखना। उनसे कहना, ये दिन भी गुजर जायेंगे, दिल भारी न करें और जुमे को कासनी दुपट्टा ओढ़ना न छोड़ें।

बीबी ने पुछवाया, 'अब क्या होयेगा?'

जवाब मिला, 'देखा जायेगा।'

टार्जन की वापसी

दो साल तक दुकान में ताला पड़ा रहा। लोगों का विचार था कि जेल से छूटने के बाद छुपते-छुपाते कहीं और चले जायेंगे। किबला जेल से छूटे, जरा जो बदले हों। उनकी रीढ़ की हड्डी में जोड़ नहीं थे। जापानी भाषा में कहावत है कि बंदर पेड़ से जमीन पर गिर पड़े, फिर भी बंदर ही रहता है, सो वह भी टार्जन की तरह Auuuuuu चिंघाड़ते जेल से निकले। सीधे अपने खानदानी कब्रिस्तान गये। पिता की कब्र की पायंती की मिट्टी सर पर डाली। फातिहा (दुआ) पढ़ी और कुछ सोच कर मुस्कुरा दिये। दूसरे दिन दुकान खोली, केबिन के बाहर एक बल्ली गाड़ कर उस पर एक लकड़ी की टांग बढ़ई से बनवा कर लटका दी। सुब्ह शाम उसको रस्सी से खींच कर इस तरह चढ़ाते और उतारते थे, जिस तरह उस जमाने में छावनियों में यूनियन जैक चढ़ाया उतारा जाता था। जिन्होंने दो साल से पैसा दबा रखा था उन्हें धमकी-भरे खत लिखे और अपने हस्ताक्षर के बाद ब्रेकेट में सजायाफ्ता (सजा पाया हुआ) लिखा। जेल जाने से पहले पत्रों में खुद को बड़े गर्व से 'नंगे-असलाफ' (पूर्वजों के अपमान का कारण) लिखा करते थे। किसी की मजाल न थी कि इससे असहमत हो। असहमत होना तो दूर की बात है, मारे डर के सहमत भी नहीं हो सकता था। अब अपने नाम के साथ 'सजा-याफ्ता' इस प्रकार लिखने लगे जैसे लोग डिग्रियां या सम्मानसूचक शब्द लिखते हैं। कानून और जेल की झिझक निकल चुकी थी।

किबला जैसे गये थे, वैसे ही जेल काट कर वापस आ गये। तनतने और आवाज के कड़ाके में जरा अंतर न आया। इस बीच अगर जमाना बदल गया तो उसमें उनका कोई दोष न था। उनका कहा हुआ विश्वसनीय तो पहले ही था अब अंतिम सत्य भी हो गया। काले मखमल की रामपुरी टोपी और अधिक तिरछी हो गई, यानी इतनी झुका कर टेढ़ी ओढ़ने लगे कि दायीं आंख ठीक से नहीं खोल सकते थे। बीबी कभी घबरा के कहतीं, 'अब क्या होयेगा?' तो वह 'देखते हैं' की जगह 'देख लेंगे' और 'देखती जाओ' कहने लगे। रिहाई के दिन नजदीक आये तो दाढ़ी के बाल भी गुच्छेदार मूंछों में मिला लिए। जो अब इतनी घनी हो गई थीं कि एक हाथ से पकड़ कर उन्हें उठाते, तब कहीं दूसरे हाथ से मुंह में खाने का कौर रख पाते थे। जेल उनका कुछ बिगाड़ न सकी। कहते थे यहीं तीसरी बैरक में एक मुंशी फाजिल (B.A.) पास जालिया है, फसाहत खान। गबन और धोखाधड़ी में तीन साल की काट रहा है, बामुशक्कत। पहले 'शोला' अब 'हजीं' उपनाम रखा है। चक्की पीसते समय अपनी ही ताजा गजल गाता रहता है। मोटा पीसता है और पिटता है। अब यह कोई शायरी तो है नहीं, तिस पर खुद को गालिब से कम नहीं समझता। हालांकि एक जैसी बात सिर्फ इतनी है कि दोनों ने जेल की हवा खाई।

खुद को रुहेला बताता है। होगा, लगता नहीं। कैदियों से भी मुंह छुपाये फिरता है। अपने बेटे से कह रखा है कि मेरे बारे में कोई पूछे तो कह देना कि अब्बा कुछ दिनों के लिए बाहर गये हैं। जेल को कभी जेल नहीं कहता, जिंदां कहता है। (जेल के लिए फारसी शब्द) अरे साहब! गनीमत है कि जेलर को अजीजे-मिस्र (मिस्र का बादशाह) नहीं कहता। उसे तो चक्की को आसिया (चक्की के लिए अरबी शब्द) कहने में भी हिचक न होती मगर मैं जानूं पाट की अरबी मालूम नहीं। अरे साहब! मैं यहां किसी की जेब काट के थोड़े ही आया हूं। शेर को पिंजरे में कैद कर दो तब भी शेर ही रहता है। गीदड़ को कछार में आजाद छोड़ दो, और जियादा गीदड़ हो जायेगा। अब हम ऐसे भी गये-गुजरे नहीं कि जेल का घुटन्ना (घुटनों तक की निकर) पहनते ही स्वभाव बदल जाये। बल्कि हमें तो किबला की बातों से ऐसा लगता था कि फटा हुआ कपड़ा पहनने और जेल जाने को सुन्नते-यूसुफ़ी समझते हैं। उनके स्वभाव में जो

टेढ़ थी वह कुछ और बढ़ गयीं। कव्वे पर कितनी तकलीफें गुजर जायें, कितना ही बूढ़ा हो जाये, उसके पर काले ही रहते हैं। खुरे, खुर्रे, खुरदरे, खरे या खोटे, वह जैसे कुछ भी थे, उनका बाहर और अंतर्मन एक था।

तन उजरा मन गादला , बगुला जैसा भेक
ऐसे से कागा भले , बाहर भीतर एक

कहते थे खुदा का करम है मैं मुनाफिक (पाखंडी) नहीं। मैंने गुनाह को हमेशा गुनाह समझकर किया।

दुकान दो साल से बंद पड़ी थी। छूट कर घर आये तो बीबी ने पूछा :

'अब क्या होयेगा?'

'बीबी, जरा तुम देखती जाओ'।

माशूक के होंठ

अबके दुकान चली और ऐसी चली कि औरों ही को नहीं स्वयं उन्हें भी आश्चर्य हुआ। दुकान के बाहर उसी शिकार की जगह यानी केबिन में उसी ठस्से से गावतकिये की टेक लगा कर बैठते, मगर आसन पसर गया था। पैरों की दिशा अब फर्श के मुकाबले आसमान की ओर अधिक हो गई थी। जेल में रहने से पहले किबला ग्राहक को हाथ से निवेदन करने वाले इशारे से बुलाते थे अब सिर्फ तर्जनी के हल्के से इशारे से तलब करने लगे। उंगली को इस तरह हिलाते जैसे डावांडोल पतंग को ठुमकी देकर उसकी दिशा दुरुस्त कर रहे हों। हुक्का पीते कम गुड़गुड़ाते जियादा थे। बदबूदार धुएं का छल्ला इस तरह छोड़ते कि ग्राहक की नाक में नथ की तरह लटक जाता। अक्सर कहते 'वाजिद अली शाह, जाने-आलम पिया ने, जो खूबसूरत नाम रखने में अपना जोड़ न रखते थे, हुक्के का कैसा प्यारा नाम रखा था... लबे-माशूक (माशूक के होंठ), जो व्यक्ति कभी हुक्के के पास से भी गुजरा है वो अच्छी तरह समझ सकता है कि जाने-आलम पिया का पाला कैसे होंठों से पड़ा होगा। चुनांचे अपदस्थ होने के बाद वो सिर्फ हुक्का अपने साथ मटियाबुर्ज ले गये। परीखाने के सारे माशूक लखनऊ में ही छोड़ दिये, चूंकि माशूक को नली पकड़ के गुड़गुड़ाया नहीं जा सकता।

बल्ली पे लटका दूंगा

कुछ दिन बाद उनका लंगड़ा दुश्मन यानी पहलवान सेठ दुकान बढ़ा कर कहीं और चला गया। किबला बात बेबात हरेक को धमकी देने लगे कि साले को बल्ली पे लटका दूंगा। आतंक का यह हाल कि इशारा तो बहुत बाद की बात है, किबला जिस ग्राहक की तरफ निगाह उठा कर भी देख लें, उसे कोई दूसरा नहीं बुलाता था। अगर वह खुद से दूसरी दुकान में चला भी जाये तो दुकानदार उसे लकड़ी नहीं दिखाता था। एक बार ऐसा भी हुआ कि सड़क पर यूं ही कोई राहगीर मुंह उठाये जा रहा था कि किबला ने उसे उंगली से अंदर आने का इशारा किया। जिस दुकान के सामने से वह गुजर रहा था, उसका मालिक और मुनीम उसे घसीटते हुए किबला की दुकान में अंदर धकेल गये। उसने रुआंसा हो कर कहा कि मैं तो मूलगंज पतंगों के पेच देखने जा रहा था।

वो इंतजार था जिसका, ये पेड़ वो तो नहीं

फिर यकायक उनका कारोबार ठप हो गया। वो कट्टर मुस्लिम लीगी थे। इसका असर उनके बिजनेस पर पड़ा। फिर पाकिस्तान बन गया। उन्होंने अपने नारे को हकीकत बनते देखा और दोनों की पूरी कीमत अदा की। ग्राहकों ने आंखें फेर लीं, दोस्त, रिश्तेदार जिनसे वो तमाम उम्र लड़ते झगड़ते और नफरत करते रहे, एक-एक करके पाकिस्तान चले गये, तो एक झटके के साथ यह खुला कि वो इन नफरतों के बगैर जिंदा नहीं रह सकते, और जब इकलौती बेटी और दामाद भी अपनी दुकान बेच के कराची सिधारे तो उन्होंने भी अपने तंबू की रस्सियां काट डालीं। दुकान औने-पौने एक दलाल के हाथ बेची। लोगों का कहना था कि 'बेनामी' सौदा है। दलाल की आड़ में दुकान दरअस्ल उसी लंगड़े पहलवान सेठ ने खरीद कर उनकी नाक काटी है। हल्का सा शक तो किबला को भी हुआ था मगर

'अपनी बला से, बूम (उल्लू) बसे या हुमा* रहे'

*(*वह चिड़िया जो किसी के सर पर साया कर दे , वह राजा हो जाता है *)*

वाली स्थिति थी। एक ही झटके में पीढ़ियों के रिश्ते नाते टूट गये और किबला ने पुरखों की जन्मभूमि छोड़ कर सपनों की जमीन की राह ली।

सारी उम्र शीशमहल में अपने मोरपंखी अभिमान का नाच देखते-देखते किबला कराची आये तो न सिर्फ जमीन अजनबी लगी, बल्कि अपने पैरों पर नजर पड़ी तो वो भी किसी और के लगे। खोलने को तो मार्किट में हरचंद राय रोड पर लश्तम पश्तम दुकान खोल ली, मगर बात नहीं बनी। गुजराती में कहावत है कि पुराने मटके पर नया मुंह नहीं चढ़ाया जा सकता। आने को तो वह एक नई हरी-भरी जमीन में आ गये, मगर उनकी बूढ़ी आंखें पिलखन को ढूंढ़ती रहीं। पिलखन तो दूर उन्हें कराची में नीम तक नजर न आया। लोग जिसे नीम बताते थे, वह दरअस्ल बकाइन थी, जिसकी निंबोली को लखनऊ में हकीम साहब पेचिश और बवासीर के नुस्खों में लिखा करते थे।

कहां कानपुर के देहाती ग्राहक, कहां कराची के नखरीले सागौन खरीदने वाले। वास्तव में उन्हें जिस बात से सबसे जियादा तकलीफ हुई वो ये कि यहां अपने आस-पास, यानी अपने दुखों की छांव में एक व्यक्ति भी ऐसा नजर नहीं आया जिसे वो अकारण और निर्भय होकर गाली दे सकें। एक दिन कहने लगे 'यहां तो बढ़ई आरी का काम जबान से लेता है। चार-पांच दिन हुए, एक बुरी जबान वाला, धृष्ट बढ़ई आया। इकबाल मसीह नाम था। मैंने कहा अबे परे हट कर खड़ा हो। कहने लगा ईसा मसीह भी तो तुरखान थे। मैंने कहा, क्या कुफ्र बकता है? अभी बल्ली पे लटका दूंगा। कहने लगा, ओह लोक वी ऐही, कहंदे सां! (वो लोग भी ईसा से यही कहते थे!)

मीर तक़ी मीर कराची में

पहली नजर में उन्होंने कराची को और कराची ने उनको रद्द कर दिया। उठते बैठते कराची में कीड़े डालते। शिकायत का अंदाज कुछ ऐसा होता था। हजरत! यह मच्छर हैं या मगरमच्छ? कराची का मच्छर डीडीटी से भी नहीं मरता, सिर्फ कव्वालों की तालियों से मरता है या गलती से किसी शायर को काट ले तो बावला होकर बेऔलाद मरता है। नमरूद (वह व्यक्ति जिसने पैगंबर इब्राहीम को जलाने की कोशिश की थी) की मौत नाक में मच्छर घुसने से हुई थी। कराची के मच्छरों की वंशावली कई नमरूदों से होती हुई उसी मच्छर की वंशावली से जा मिलती है और जरा जबान तो देखिए। मैंने पहली बार एक साहब को पट्टे वाला पुकारते सुना तो मैं समझा अपने कुत्ते को बुला रहे हैं। मालूम हुआ कि यहां चपरासी को पट्टे वाला कहते हैं। हर समय कुछ न कुछ फड्डा और लफड़ा होता

रहता है, टोको तो कहते हैं उर्दू में इस स्थिति के लिए कोई शब्द नहीं है। भाई मेरे! उर्दू में यह स्थिति भी तो नहीं है। बंबई वाले शब्द और स्थितियां दोनों अपने साथ लाये हैं। मीर तकी मीर ऊंट गाड़ी में मुंह बांधे बैठे रहे, अपने हमसफर से इसलिए बात न की कि 'जबाने-गैर से अपनी जबां बिगड़ती है।' मीर साहब कराची में होते तो बखुदा मुंह पर सारी उम्र ढाटा बांधे फिरते। यहां तक कि डाकुओं का-सा भेस बनाये फिरने पर किसी डकैती में धर लिए जाते। अमां! टोंक वालों को अमरुद को सफरी (पित्त बनाने वाला) कहते तो हमने भी सुना था। यहां अमरूद को जाम कहते हैं और उस पर नमक-मिर्च की जगह साहब लगा दें तो अभिप्राय नवाब साहब लासबेला होते हैं। अपनी तरफ विक्टोरिया का मतलब मल्का टूरिया होता था। यहां किसी तरकीब से दस-बारह जने एक घोड़े पर सवारी गांठ लें तो उसे विक्टोरिया कहते हैं। मैं दो दिन लाहौर रुका था। वहां देखा कि जिस बाजार में कोयलों से मुंह काला किया जाता है वह हीरा मंडी कहलाती है। अब यहां नया फैशन चल पड़ा है। गाने वालों को गुलूकार और लिखने वाले को कलमकार कहने लगे हैं। मियां! हमारे समय में तो सिर्फ नेककार (अच्छे लोग) और बदकार (बुरे लोग) हुआ करते थे। कलम और गले से ये काम नहीं लिया जाता था। मैंने लालू खेत, बिहार-कालोनी, चाकीवाड़ा और गोलीमार का चप्पा-चप्पा देखा है। चौदह-पंद्रह लाख आदमी जुरूर रहते होंगे, लेकिन कहीं किताब और इत्र की दुकान न देखी। कागज तक के फूल नजर न आये। कानपुर में हम जैसे शरीफों के घराने में कहीं न कहीं मोतिया की बेल जुरूर चढ़ी होती थी। जनाब! यहां मोतिया सिर्फ आंखों में उतरता है। हद हो गई, कराची में लखपति, करोड़पति सेठ लकड़ी इस तरह नपवाता है जैसे किमख्वाब का टुकड़ा खरीद रहा हो। लकड़ी दिन में दो फुट बिकती है और बुरादा खरीदने वाले पचास! मैंने बरसों उपलों पर पकाया हुआ खाना भी खाया है लेकिन बुरादे की अंगीठी पर जो खाना पकेगा वो सिर्फ नर्क में जाने वाले मुर्दों के चालीसवें के लिए मुनासिब है।

भर पाये ऐसे बिजनेस से! माना कि रुपया बहुत कुछ होता है, मगर सभी कुछ तो नहीं। पैसे को जुरूरत पूरी करने वाला कहा गया है। बिल्कुल ठीक। मगर जब ये खुद सबसे बड़ी आवश्यकता बन जाये तो वो सिर्फ मौत से दूर होगी। मैंने तो जिदंगी में ऐसी कानी-खुतरी लकड़ी नहीं बेची। बढ़ई का ये साहस कि जती पे चढ़ के कमीशन मांगे। न दो तो माल को सड़े अंडे की तरह कयामत तक सेते रहो। हाय! न हुआ कानपुर। बिसौले से साले की नाक उतार कर हथेली पर रख देता कि जा! अपनी जुरवा (पत्नी) को महर में दे देना। वल्लाह! यहां का तो बाबा आदम ही निराला है। सुनता हूं, यहां के रेड लाइट एरिया नैपियर रोड और जापानी रोड पर तवायफें अपने-अपने दर्शनी झरोखों में लाल बत्तियां जलते ही कंटीली छातियों के पैड लगा कर बैठ जाती हैं। फिल्मों में भी इसी का प्रदर्शन होता है। यह तो वही बात हुई कि ओछे के घर तीतर, बाहर बांधूं कि भीतर। इस्लामी गणतंत्र की सरकार-बेसरोकार कुछ नहीं कहती, लेकिन किसी तवायफ को शादी ब्याह में मुजरे के लिए बुलाना हो तो पहले इसकी सूचना थाने को देनी पड़ती है। रंडी को परमिट राशनकार्ड पे मिलते हमने यहीं देखा। ऐश का सामान मांगने के वक्त न मिला तो किस काम का। दर्शनी मंडियों में दर्शनी हुंडियों का क्या काम।

मिर्जा अब्दुल बेग इस स्थिति की कुछ और ही व्याख्या करते हैं। कहते हैं कि तवायफ को थाने से N.O.C. इसलिए लेना पड़ता है कि पुलिस पूरी तरह इत्मीनान कर ले कि वो अपने धंधे पर ही जा रही है। धार्मिक प्रवचन सुनने या राजनीति में हिस्सा लेने नहीं जा रही।

एक दिन किबला कहने लगे, 'अभी कुछ दिन हुए कराची की एक नामी-गिरामी तवायफ का गाना सुनने का मौका मिला। अमां! उसका उच्चारण तो चाल-चलन से भी जियादा खराब निकला। हाय! एक जमाना था कि शरीफ लोग

अपने बच्चों को शालीनता सीखने के लिए चौक की तवायफों के कोठों पर भेजते थे।' इस बारे में भी मिर्जा कहते हैं कि तवायफों के कोठों पर तो इसलिए भेजते थे कि बुजुर्गों के साथ रहने और घर के माहौल से बचे रहें।

दौड़ता हुआ पेड़

कराची शहर उन्हें किसी तरह और किसी तरफ से अच्छा नहीं लगा। झुंझला कर बार-बार कहते, 'अमां! यह शहर है या जहन्नुम?' मिर्जा किसी ज्ञानी के शब्दों में तब्दीली करके कहते हैं, 'किबला इस दुनिया से कूच करने के बाद अगर खुदा करे, वहीं पहुंच गये जिससे कराची की मिसाल दिया करते हैं तो चारों तरफ नजर दौड़ाने के बाद यह कहेंगे कि हमने तो सोचा था कराची छोटा-सा जहन्नुम है। जहन्नुम तो बड़ा-सा कराची निकला।'

एक बार उनके एक करीबी दोस्त ने उनसे कहा कि तुम्हें समाज में खराबियां ही खराबियां नजर आती हैं तो बैठे-बैठे इन पर कुढ़ने की जगह सुधार की सोचो। बोले, 'सुनो! मैंने एक जमाने में पी.डब्ल्यू.डी. के काम भी किये हैं, मगर नर्क की एयर-कंडीशनिंग का ठेका नहीं ले सकता।'

बात सिर्फ इतनी थी कि अपनी छाप, तिलक और छब छिनवाने से पहले वो जिस आईने में खुद को देख-देख कर सारी उम्र इतराया किये, उसमें जब नई दुनिया और नये वतन को देखा तो वह जमाने की गर्दिशों से Distorting Mirror बन चुका था, जिसमें हर शक्ल अपना ही मुंह चिढ़ाती नजर आती थी। उनके कारोबारी हालात तेजी से बिगड़ रहे थे। बिजनेस, न होने के बराबर था। उनकी दुकान पर एक तख्ती लटके देख कर हमें दुःख हुआ।

न पूछ हाल मिरा , चोबे - खुश्के - सहरा हूं
लगा के आग जिसे कारवां रवाना हुआ

*(*मेरा हाल न पूछ मैं रेगिस्तान की सूखी लकड़ी हूं , जिसे आग लगा कर कारवां चला गया *)*

हमने उनका दिल बढ़ाने के लिए कहा, आपको चोबे-खुश्क (सूखी लकड़ी) कौन कह सकता है? आपकी जवां हिम्मती और मुस्तैदी पर तो हमें ईर्ष्या ही होती है। अकस्मात् मुस्कुराये, जबसे डेन्चर्ज टूटे, मुंह पर रूमाल रख कर हंसने लगे थे। कहने लगे, आप जवान आदमी हैं। अपना तो यह हाल हुआ कि

मुन्फइल हो गये कवा गालिब
अब अनासिर में एतदाल कहां

*(*सारे अंग प्रत्यंग कमजोर हो गये। अब तत्वों में सामंजस्य कहां *)*

मैं वो पेड़ हूं जो ट्रेन में जाते हुए मुसाफिर को दौड़ता हुआ नजर आता है।

मेरे ही मन का मुझ पर धावा

यूं वो जहां तक मुमकिन हो अपने गुस्से को कम नहीं होने देते थे, कहते थे मैं ऐसी जगह एक मिनट भी नहीं रहना चाहता, जहां आदमी, किसी पर गुस्सा ही न हो सके और जब उन्हें ऐसी ही जगह रहना पड़ा तो वो जिंदगी में पहली बार अपने आपसे रूठे। अब वो आप ही आप कुढ़ते, अंदर ही अंदर खौलते, जलते, सुलगते रहते :

मेरे ही मन का मुझ पर धावा
मैं ही आग हूं , मैं ही ईंधन

उन्हीं का कहना है कि याद रखो, गुस्सा जितना कम होगा, उसकी जगह उदासी लेती जायेगी, और यह बड़ी बुजदिली की बात है। बुजदिली के ऐसे ही उदास लम्हों में अब उन्हें अपना गांव जहां बचपन गुजरा था, बेतहाशा याद आने लगता। बिखरी-बिखरी जिंदगी ने अतीत में शरण तलाश कर ली। जैसे अलबम खुल गया।

धुंधली, पीले से रंग की तस्वीरें विचार-दर्पण में बिखरती चली जातीं। हर तस्वीर के साथ जमाने का पृष्ठ उलटता चला गया। हर स्नेप शॉट की अपनी एक कहानी थी। धूप में अबरक के जर्रों से चिलकती कच्ची सड़क पर घोड़ों के पसीने की नर महकार, भेड़ के बच्चे को गले में मफलर की तरह डाले शाम को खुश-खुश लौटते किसान। पर्दों के पीछे हरसिंगार के फूलों से रंगे हुए दुपट्टे, अरहर के हरे-भरे खेत में पगडंडी की मांग, सूखे में सावन के थोथे बादलों को रह-रह कर ताकती निराश आंखें, जाड़े की उजाड़ रातों में ठिठुरते गीदड़ों की आवाजें, चिराग जले बाड़े में लौटती गायों के गले में बजती हुई घंटियां। काली भंवर रात में चौपाल की जलती बुझती गश्ती चिलम पर लंबे होते हुए कश, मोतिया के गजरों की लपट के साथ कुंवारे बदन की महक, डूबते सूरज की पीली रोशनी में ताजा कब्र पर जलती हुई अगरबत्ती का बल खाता धुआं, दहकती बालू में तड़कते चनों की सोंधी लपट से फड़कते हुए नथुने, म्यूनिस्पिल्टी की मिट्टी के तेल की लालटेन का भभका। यह थी उनके गांव की सत सुगंध। यह उनकी अपनी नाभि की महक थी, जो यादों के जंगल में बावली फिरती थी।

ओलती की टपाटप

सत्तर साल के बच्चे की सोच में तस्वीरें गडमड होने लगतीं। खुश्बुऐं, नरमाहटें और आवाजें भी तस्वीरें बन-बन कर उभरतीं। उसे अपने गांव में मेंह बरसने की एक-एक आवाज अलग सुनायी देती। टीन की छत पर तड़-तड़ बजते हुए ताशे, सूखे पत्तों पर करारी बूंदों का शोर, पक्के फर्श पर जहां उंगल भर पानी खड़ा हो जाता, वहां मोटी बूंद गिरती तो मोतियों का एक ताज-सा हवा में उछल पड़ता, तपती खपरैलों पर उड़ती बदली के झाले की सनसनाहट, गर्मी के दानों से उपेड़ बालक-बदन पर बरखा की पहली फुहार, जैसे किसी ने मेंथोल में नहला दिया हो, जवान बेटे की कब्र पर पहली बारिश और मां का नंगे सर आंगन में आ-आ कर आसमान की तरफ देखना, फबक उठने के लिए तैय्यार मिट्टी पर टूट के बरसने वाले बादल की हरावल गरम लपट, ढोलक पर सावन के गीत की ताल पर बजती चूड़ियां और बेताल ठहाके, सूखे तालाब के पेंदे की चिकनी मिट्टी में पड़ी हुई दराड़ों के जाल में तरसा-तरसा कर बरसने वाली बारिश के सरसराते रेले। खंबे से लटकी हुई लालटेन के सामने जहां तक रोशनी थी, मोतियों की रिमझिम झालर, हुमक-हुमक कर पराये आंगन में गिरते परनाले। आमों के पत्तों पर मंजीरे बजाती नर्सल बौजर और झूलों पर पींगे लेती लड़कियां और फिर रात के सन्नाटे में, पानी थमने के बाद, सोते जागते ओलती की टपाटप। ओलती की टपाटप तक पहुंचते-पहुंचते किबला की आंखें जल-थल हो जातीं। बारिश तो हम उन्हें लाहौर और नथैया गली की ऐसी दिखा सकते थे कि बीती उम्र की सारी टपाटप भूल जाते। पर ओलती कहां से लाते? इसी तरह आम तो हम मुलतान का एक से एक पेश कर सकते थे। दसहरी, लंगड़ा, समर बहिश्त, अनवर रटौल, लेकिन हमारे पंजाब में तो ऐसे पेड़ हैं ही नहीं जिनमें आमों की जगह लड़कियां लटकी हुई हों।

इसलिए ऐसे अवसर पर हम खामोश, हमातन-गोश (पूरा शरीर कान बन जाता) बल्कि खरगोश बने ओलती की टपाटप सुनते रहते।

किबला का रेडियो ऊंचा सुनता था

दरिया के बहाव के विरुद्ध तैरने में तो खैर कोई नुक्सान नहीं, हमारा मतलब है दरिया का नुक्सान नहीं, लेकिन किबला तो सैकड़ों फुट की ऊंचाई से गिरते हुए नियाग्रा फॉल पर तैर कर चढ़ना चाहते थे या यूं कहिये कि तमाम उम्र नीचे उतरने वाले एस्केलेटर से ऊपर चढ़ने की कोशिश करते रहे और एस्केलेटर बनाने वाले को गालियां देते रहे। एक दिन कहने लगे, 'मियां यह तुम्हारा शहर भी अजीब शहर है। न खरीदारी की तमीज, न छोटों के आदाब, न किसी के बड़प्पन का लिहाज। मैं जिस जमाने में बिशारत मियां के साथ बिहार कालोनी में रहता था, उस जमाने में रेडियो में कार की बैटरी लगानी पड़ती थी। बिहार कालोनी में बिजली नहीं थी। उसका रखना और चलाना एक दर्दे-सर था। बिशारत मियां रोजाना बैटरी अपने कारखाने ले जाते और चार्ज होने के लिए आरा मशीन में लगा देते। सात-आठ घंटे में इतनी चार्ज हो जाती थी कि बस एकाध घंटे बी.बी.सी. सुन लेता था। इसके बाद रेडियो से आरा मशीन की आवाजें आने लगतीं और मैं उठ कर चला आता। घर के पिछवाड़े एक पच्चीस फुट ऊंची, निहायत कीमती, बेगांठ बल्ली गाड़ कर एरियल लगा रखा था। इसके बावजूद वो रेडियो ऊंचा सुनता था। आये दिन पतंग उड़ाने वाले लौंडे मेरे एरियल से पेच लड़ाते। मतलब यह कि उसमें पतंग उलझा कर जोर आजमायी करते। डोर टूट जाती, एरियल खराब हो जाता। अरे साहब! एरियल क्या था, पतंगों का हवाई कब्रिस्तान था। उस पर यह कटी पतंगें चौबीस घंटे इस तरह फड़फड़ाती रहतीं जैसे सड़क के किनारे किसी नये मरे हुए पीर के मजार पर झंडियां। पच्चीस फुट की ऊंचाई पर चढ़ कर एरियल दोबारा लगाना, न पूछिये कैसा कष्टदायक था। बस यूं समझिये! सूली पे लटक के बी.बी.सी. सुनता था। बहरहाल, जब बर्नस रोड वाले फ्लैट में जाने लगा तो सोचा वहां तो बिजली है, चलो रेडियो बेचते चलें। बिशारत मियां भी तंग आ गये थे। कहते थे, इससे तो पतंगों की फड़फड़ाहट ब्रॉडकास्ट होती रहती है। एक दूर के पड़ोसी से 250 रुपये में सौदा पक्का हो गया। सवेरे-सवेरे वो नक्द रकम ले आया और मैंने रेडियो उसके हवाले कर दिया। रात को ग्यारह बजे फाटक बंद करने बाहर निकला तो क्या देखता हूं कि वो आदमी और उसके बैल जैसी गर्दन वाले दो बेटे कुदाल, फावड़ा लिए मजे से एरियल की बल्ली उखाड़ रहे हैं। मैंने डपट कर पूछा, ये क्या हो रहा है? सीनाजोरी देखिए! कहते हैं बड़े मियां, बल्ली उखाड़ रहे हैं, हमारी है।

'ढाई सौ रुपये में रेडियो बेचा है, बल्ली से क्या मतलब?

मतलब नहीं तो हमारे साथ चलो और जरा बल्ली के बिना बजा के दिखा दो। ये तो इसकी Accessory है।'

'न हुआ कानपुर, साले की जबान गुद्दी से खींच लेता और इन हरामी पिल्लों की बैल जैसी गर्दन एक ही बार में भुट्टा-सी उड़ा देता। मैंने तो जिंदगी में ऐसा बेईमान आदमी नहीं देखा। इस दौरान वो कमीन बल्ली उखाड़ के जमीन पे लिटा चुका था। एक बार जी में आया कि अंदर जा कर 12 बोर ले आऊं और इसे भी बल्ली के बराबर लंबा लिटा दूं, फिर खयाल आया कि बंदूक का लाइसेंस तो समाप्त हो चुका है और कमीने के मुंह क्या लगना, इसकी बेकुसूर बीबी रांड हो जायेगी। वो जियादा कानून छांटने लगा तो मैंने कहा, जा जा, तू क्या समझता है? बल्ली की हकीकत क्या है, ये देख, ये छोड़ के आये हैं।' किबला हवेली की तस्वीर दिखाते ही रह गये और वो तीनों बल्ली उठा कर ले गये।

अपाहिज बीबी और गश्ती चिलम

उनकी जिंदगी का एक पहलू ऐसा था जिसके बारे में किसी ने उन्हें इशारों में भी बात करते नहीं सुना। हम शुरु में बता चुके हैं कि उनकी शादी बड़े चाव-चोंचले से हुई थी। बीबी बहुत खूबसूरत, नेक और सुघड़ थीं। शादी के कुछ साल बाद एक ऐसी बीमारी हुई कि कलाइयों तक दोनों हाथों से अपंग हो गयीं। करीबी रिश्तेदार भी मिलने से बचने लगे। रोजमर्रा की मुलाकातें, शादी-गमी में जाना, सभी सिलसिले आहिस्ता-आहिस्ता टूट गये। घर का सारा काम आया और नौकर तो नहीं कर सकते। किबला ने जिस मुहब्बत और दर्दमंदी से तमाम उम्र उनकी सेवा और देख-रेख की, इसका उदाहरण मुश्किल से मिलेगा। कभी ऐसा नहीं हुआ कि उनकी चोटी बेगुंथी और दुपट्टा बेचुना हो, या जुमे को कासनी रंग का न हो। साल गुजरते चले गये, समय ने सर पर कासनी दुपट्टे के नीचे रुई के गाले जमा दिये। मगर उनकी सेवा और प्यार में जरा जो फर्क आया हो। विश्वास नहीं होता था कि दोस्ती और मुहब्बत का यह रूप उसी गुस्सैल आदमी का है जो घर के बाहर एक चलती हुई तलवार है। जिंदगी भर का साथ हो तो सब्र और स्वभाव की परीक्षा के हजार मोड़ आते हैं, मगर उन्होंने उस बीबी से कभी ऊंची आवाज में भी बात नहीं की।

कहने वाले कहते हैं कि उनकी झल्लाहट और गुस्से की शुरुआत इसी बीमारी से हुई। वो बीबी तो मुसल्ले (नमाज पढ़ने का कपड़ा) पर ऐसी बैठीं कि दुनिया ही में जन्नत मिल गई। किबला को नमाज पढ़ते किसी ने नहीं देखा, लेकिन जिंदगी भर जैसी सच्ची मुहब्बत और रातों को उठ-उठ कर जैसी रियाजत (तपस्या) उन्होंने की, वही उनका दुरूद वजीफा (एक तरह की दुआ) और वही उनकी आधी रात की दुआएँ थीं। वह बड़ा बख्शन-हार है, शायद यही उनकी मुक्ति का वसीला बन जाये। एक दौर ऐसा भी आया कि बीबी से उनकी परेशानी देखी न गई। खुद कहा, किसी रांड बेवा से शादी कर लो। बोले, हां! भगवान! करेंगे। कहीं दो गज जमीन का एक टुकड़ा है जो न जाने कब से हमारी बरात की राह देख रहा है। वहीं चार कांधों पर डोला उतरेगा। बीबी! मिट्टी सदा सुहागन है -

'सो जायेंगे इक रोज जमीं ओढ़ के हम भी'

बीबी की आंखों में आंसू देखे तो बात का रुख फेर दिया। वो अपनी सारी इमेजिरी, लकड़ी, हुक्के और तंबाकू से लिया करते थे। बोले, बीबी! यह रांड बेवा की कैद तुमने क्या सोच के लगाई? तुमने शायद वो पूरबी कहावत नहीं सुनी : पहले पीवे भकुवा, फिर पीवे तमकुवा, पीछे पीवे चिलम चाट यानी जो आदमी पहले हुक्का पीता है वो बुद्धू है कि दरअस्ल वो तो चिलम सुलगाने और ताव पर लाने में ही जुटा रहता है। तंबाकू का अस्ल मजा तो दूसरे आदमी के हिस्से में आता है और जो अंत में पीता है वो जले हुए तंबाकू से खाली भक-भक करता है।

हम जिधर जायें दहकते जायें

कराची में दुकान तो फिर भी थोड़ी बहुत चली, मगर किबला बिल्कुल नहीं चले। जमाने की गर्दिश पर किसका जोर चला है जो उनका चलता। हादसों को रोका नहीं जा सकता, हां, सोच से हादसों का जोर तोड़ा जा सकता है। व्यक्तित्व में पेच पड़ जायें तो दूसरों के अतिरिक्त खुद अपने-आप को भी तकलीफ देते हैं, लेकिन जब वो निकलने लगें तो और अधिक कष्ट होता है। कराची आने के बाद अक्सर कहते कि डेढ़ साल जेल में रह कर जो बदलाव मुझमें न आया, वो यहां एक हफ्ते में आ गया। यहां तो बिजनेस करना ऐसा है जैसे सिंघाड़े के तालाब में तैरना। कानपुर ही के छुटे हुए छाकटे यहां शेर बने दनदनाते फिरते हैं और अच्छे-अच्छे शरीफ हैं कि गीदड़ की तरह दुम कटवा के भट में जा बैठे। ऐसा बिजोग पड़ा कि **'खुद-ब-खुद बिल में है हर शख्स समाया जाता'** जो बुद्धिमान हैं वो अपनी दुमें छुपाये बिलों में घुसे बैठे हैं, बाहर निकलने की हिम्मत नहीं पड़ती। इस पर मिर्जा ने हमारे कान में कहा :

'अनीस 'दुम' का भरोसा नहीं , ठहर जाओ'

एक दोस्त ने अपनी इज्जत-आबरू जोखिम में डालकर किबला से कहा कि गुजरा हुआ जमाना लौट कर नहीं आ सकता। हालात बदल गये हैं, आप भी खुद को बदलिए, मुस्कुरा के बोले खरबूजा खुद को गोल कर ले तब भी तरबूज नहीं बन सकता। बात यह थी कि जमाने का रुख पहचानने की शक्ति, क्षमता, नर्मी और लचक न उनके स्वभाव में थी और न जमींदाराना माहौल और समाज में इनकी गिनती गुणों में होती थी। सख्ती, अभिमान, गुरूर और गुस्सा अवगुण नहीं बल्कि सामंती चरित्र की मजबूती की दलील समझे जाते थे और जमींदार तो एक तरफ रहे, उस जमाने के धार्मिक स्कॉलर तक इन गुणों पर गर्व करते थे।

किबला के हालात तेजी से बिगड़ने लगे तो उनके हमदर्द मियां इनआम इलाही ने, जो छोटे होने के बावजूद उनके स्वभाव और मामलात में दख्ल रखते थे, कहा कि दुकान खत्म करके एक बस खरीद लीजिए। घर बैठे आमदनी होगी। रूट परमिट मेरा जिम्मा। आजकल इस धंधे में बड़ी चांदी है, एकदम जलाल (तेज गुस्सा) आ गया। फर्माया चांदी तो तबला सारंगी बजाने में भी है। एक रख-रखाव की रीत बुजुर्गों से चली आ रही है, जिसका तकाजा है कि बरबाद होना ही मुकद्दर में लिखा है तो अपने पुराने और आजमाये हुए तरीके से होंगे, बंदा ऐसी चांदी पर लात मारता है।

आखिरी गाली

कारोबार मंदा बल्कि बिल्कुल ठंडा, तबीयत में उदासी। दुकानदारी अब उनकी आर्थिक नहीं, मानसिक आवश्यकता थी। समझ में नहीं आता था कि दुकान बंद कर दी तो घर में पड़े क्या करेंगे, फिर एक दिन यह हुआ कि उनका नया पठान मुलाजिम जर्रीन गुल खान कई घंटे देर से आया। वो हर प्रकार से गुस्से को पीने की कोशिश करते थे लेकिन पुरानी आदत कहीं जाती है। चंद माह पहले उन्होंने एक साठ साला मुंशी आधी तनख्वाह पर रखा था, जो गेरुवे रंग का ढीला-ढाला लबादा पहने, नंगे पैर जमीन पर आल्थी-पाल्थी मारे हिसाब किताब करता था। कुर्सी या किसी भी ऊंची चीज पर बैठना उसके संप्रदाय में मना था।

वारसी सिलसिले के किसी बुजुर्ग से दीक्षा ली थी। मेहनती, ईमानदार, रोजे नमाज का पाबंद, तुनकमिजाज और काम में चौपट था। किबला ने तैश में आकर एक दिन उसे हरामखोर कह दिया। सफेद दाढ़ी का लिहाज भी न किया। उसने आराम से कहा, 'दुरुस्त! हुजूर के यहां जो चीज मिलती है वही तो फकीर खायेगा। सलाम अलैकुम' और ये जा वो जा। दूसरे दिन से मुंशी जी ने नौकरी पर आना और किबला ने हरामखोर कहना छोड़ दिया, लेकिन हरामखोर के अलावा और भी तो दिल दुखाने वाले बहुतेरे शब्द हैं। जर्रीन गुल खान को सख्त सुस्त कहते-कहते उनके मुंह से रवानी और गुस्से में वही गाली निकल गई जो अच्छे दिनों में उनका तकिया कलाम हुआ करती थी। गाली की भयानक गूंज दर्रा-आदम खेल के पहाड़ों तक ठनठनाती पहुंची, जहां जर्रीन गुल की विधवा मां रहती थी। वो छह साल का था जब मां ने वैधव्य की चादर ओढ़ी थी। बारह साल का हुआ तो उसने वादा किया था कि मां! मैं बड़ा हो जाऊंगा तो नौकरी करके तुझे पहली तनख्वाह से बगैर पैबंद की चादर भेजूंगा। उसे आज तक किसी ने यह गाली नहीं दी थी। जवान खून, गुस्सैल स्वभाव, पठान के स्वाभिमान का सवाल था। जर्रीन गुल खान ने उनकी तिरछी टोपी उतार कर फेंक दी और चाकू तान कर खड़ा हो गया। कहने लगा, 'बुड्ढे! मेरे सामने से हट जा, नहीं तो अभी तेरा पेट फाड़ के कलेजा कच्चा चबा जाऊंगा। तेरा पलीद मुर्दा बल्ली पे लटका दूंगा।'

एक ग्राहक ने बढ़कर चाकू छीना। बुड्ढे ने झुक कर जमीन से अपनी मखमली टोपी उठायी और गर्द झाड़े बगैर सर पर रख ली।

कौन कैसे टूटता है

दस पंद्रह मिनट बाद वो दुकान में ताला डाल कर घर चले आये और बीबी से कह दिया, अब हम दुकान नहीं जायेंगे। कुछ देर बाद मोहल्ले की मस्जिद से इशा (रात की नमाज) की आवाज बुलंद हुई और वो दूसरे ही 'अल्ला हो अकबर' पर हाथ-पांव धो कर कोई चालीस साल बाद नमाज के लिए खड़े हुए तो, बीबी धक-से रह गयीं कि खैर तो है। वो खुद भी धक से रह गये। इसलिए कि उन्हें दो सूरों के अलावा कुछ याद नहीं रहा था। वितरे भी अधूरे छोड़ कर सलाम फेर लिया कि यह तक याद नहीं आ रहा था कि दुआए-कुनूत (नमाज में पढ़ी जाने वाली दुआ) के शुरू के शब्द क्या हैं।

वो सोच भी नहीं सकते थे कि आदमी अंदर से टूट भी सकता है और यूं टूटता है। और जब टूटता है तो अपनों, बेगानों से, हद यह कि अपने सबसे बड़े दुश्मन से भी सुल्ह कर लेता है यानी अपने-आप से। इसी मंजिल पर अंतःदृष्टि खुलती है, बुद्धि और चेतना के दरवाजे खुलते हैं।

ऐसे भी लोग हैं जो जिंदगी की सख्तियों, परेशानियों से बचने की खातिर खुद को अकर्मण्यता के घेरे में कैद रखते हैं। ये भारी और कीमती पर्दों की तरह लटके-लटके ही लीर-लीर हो जाते हैं। कुछ गुम-सुम गम्भीर लोग उस दीवार की तरह तड़खते हैं जिसकी महीन-सी दरार, जो उम्दा पेंट या किसी सजावटी तस्वीर से आसानी से छुप जाती है, इस बात की चुगली खाती है कि नींव अंदर ही अंदर सदमे से जमीन में धंस रही है। कुछ लोग चीनी के बर्तन की तरह टूटते हैं कि मसाले से आसानी से जुड़ तो जाते हैं, मगर बाल और जोड़ पहले नजर आता है, बर्तन बाद में। कुछ ढीठ और चिपकू लोग ऐसे अटूट पदार्थ के बने होते हैं कि च्विंगम की तरह कितना ही चबाओ टूटने का नाम नहीं लेते।'**खींचने से खिंचते हैं, छोड़े से जाते हैं सुकड़**' आप उन्हें हिकारत से थूक दें तो जूते से इस बुरी तरह चिपकते हैं कि छुटाये नहीं छूटते। रह-रह कर खयाल आता है कि इससे तो दांतों तले ही भले थे कि पपोल तो लेते थे। ये च्विंगम लोग खुद आदमी नहीं पर आदमी की पहचान रखने वाले लोग हैं। यह कामयाब लोग हैं। इन्होंने इंसान को देखा, परखा और बरता है और उसे खोटा पाया तो खुद भी खोटे हो गये, और कुछ ऐसे भी हैं कि कार के विंड स्क्रीन की तरह होते हैं। साबुत और ठीक हैं तो ऐसे पारदर्शी कि दुनिया का नजारा कर लो और एकाएक टूटे तो ऐसे टूटे कि न बाल पड़ा न दरके, न तड़खे। ऐसे रेजा-रेजा हुए कि न वो पहचान रही, न दुनिया की जलवागरी रही, न आईने का पता कि कहां था, किधर गया।

और एक अभिमान है कि यूं टूटता है जैसे राजाओं का प्रताप। हजरत सुलेमान छड़ी की टेक लगाये खड़े थे कि मृत्यु आ गई लेकिन उनका बेजान शरीर एक मुद्दत तक उसी तरह खड़ा रहा और किसी को शक तक न गुजरा कि वो इंतकाल फर्मा चुके हैं। वो उसी तरह बेरूह खड़े रहे और उनके रोब व दबदबे से कारोबारे-सल्तनत नियम के अनुसार चलता रहा। उधर छड़ी को धीरे-धीरे घुन अंदर से खाता रहा। यहां तक कि एक दिन वो चटाख से टूट गई और हजरत सुलेमान की नश्वर देह जमीन पर आ गई। उस समय उनकी प्रजा पर खुला कि वो दुनिया से पर्दा फर्मा चुके हैं।

सो वो दीमक लगी गुरूर-गुस्से की छड़ी, जिसके बल किबला ने जिंदगी गुजारी थी, आज शाम टूट गई और जीने का वो जोश और हंगामा भी खत्म हो गया।

मैं पापन ऐसी जली कोयला भयी न राख

उन्हें उस रात नींद नहीं आई। फज्र (सूरज निकलने से पहले की नमाज) की अजान हो रही थी कि टिंबर मार्किट का एक चौकीदार हांपता-कांपता आया और खबर दी कि 'साहब जी! आपकी दुकान और गोदाम में आग लग गई है। आग बुझाने के इंजन तीन बजे ही आ गये थे। सारा माल कोयला हो गया। साहब जी! आग कोई आप ही आप थोड़ी लगती है।' वो जिस समय दुकान पर पहुंचे तो सरकारी जबान में आग पर काबू पाया जा चुका था, जिसमें फायर बिग्रेड की मुस्तैदी और भरपूर कार्यक्षमता के अलावा इसका भी बड़ा दख्ल था कि अब जलने के लिए कुछ रहा नहीं था। शोलों की लपलपाती जबानें काली हो चुकी थीं। अल्बत्ता चीड़ के तख्ते अभी तक धड़-धड़ जल रहे थे, और वातावरण दूर-दूर तक उनकी तेज खुशबू में नहाया हुआ था। माल जितना था सब जल कर राख हो चुका था, सिर्फ कोने में उनका छोटा सा दफ्तर बचा था।

अरसा हुआ, कानपुर में जब लाला रमेश चंद्र ने उनसे कहा कि हालात ठीक नहीं हैं, गोदाम की इंश्योरेंस पालिसी ले लो, तो उन्होंने मलमल के कुर्ते की चुनी हुई आस्तीन उलट कर अपने बाजू की फड़कती हुई मछलियां दिखाते हुए कहा था। 'ये रही यारों की इंश्योरेंस पालिसी!' फिर अपने डंटर फुला कर लाला रमेश चंद्र से कहा, 'जरा छू कर देखो' लाला जी ने अचंभे से कहा 'लोहा है लोहा!' बोले 'नहीं, फौलाद कहो।'

दुकान के सामने लोगों की भीड़ लगी थी। उनको लोगों ने इस तरह रास्ता दिया जैसे जनाजे को देते हैं। उनका चेहरा एकदम भावहीन था। उन्होंने अपने दफ्तर का ताला खोला। इन्कम टैक्स का हिसाब और रजिस्टर बगल में मारे और गोदाम के पश्चिमी हिस्से में जहां चीड़ से अभी शोले और खुशबू की लपटें उठ रही थीं, तेज-तेज कदमों से गये। पहले इंकमटैक्स के खाते और उनके बाद चाबियों का गुच्छा आग में डाला। फिर आहिस्ता-आहिस्ता दायें-बायें नजर उठाये बिना दुबारा अपने दफ्तर में दाखिल हुए। हवेली का फोटो दीवार से उतारा। रूमाल से पोंछ कर बगल में दबाया और दुकान जलती छोड़ कर घर चले आये।

बीबी ने पूछा 'अब क्या होयेगा?'

उन्होंने सर झुका लिया।

अक्सर खयाल आता है, अगर फरिश्ते उन्हें जन्नत की तरफ ले गये जहां मोतिया धूप होगी और कासनी बादल, तो वो जन्नत के दरवाजे पर कुछ सोच कर ठिठक जायेंगे। दरबान जल्दी अंदर दाखिल होने का इशारा करेगा तो वो सीना ताने उसके पास जा कर कुछ दिखाते हुए कहेंगे :

'ये छोड़ कर आये हैं।'

('खोया पानी' का उर्दू से हिंदी में अनुवाद तुफ़ैल चतुर्वेदी ने किया है। उनका मूल नाम विनय कृष्ण हैं। वे उर्दू के कवि और अर्धवार्षिक पत्रिका 'लफ्ज' के संपादक हैं।)

>>पीछे>> >>आगे>>

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

उपन्यास

खोया पानी

मुश्ताक़ अहमद यूसुफ़ी

अनुवाद - तुफ़ैल चतुर्वेदी

अनुक्रम

धीरजगंज का पहला यादगार मुशायरा

पीछे

आगे

फेल होने के फायदे

बिशारत कहते हैं कि बी.ए. का इम्तहान देने के बाद यह चिंता सर पड़ी कि अगर फेल हो गये तो क्या होगा, वजीफा पढ़ा तो खुदा पर भरोसे से यह चिंता तो दूर हो गयी लेकिन इससे बड़ी एक और समस्या गले आ पड़ी कि खुदा-न-ख्वास्ता पास हो गये तो क्या होगा। नौकरी मिलनी मुहाल, यार दोस्त सब तितर-बितर हो जायेंगे, वालिद हाथ खींच लेंगे। बेकारी, बेरोजगारी, बेपैसे, बेकाम... जीवन नर्क हो जायेगा। अंग्रेजी अखबार सिर्फ 'वांटेड' के विज्ञापन देखने के लिए खरीदना पड़ेगा। फिर हर बौड़म मालिक के सांचे में अपनी क्वालिफिकेशंस को इस तरह ढाल कर प्रार्थना-पत्र देना पड़ेगा कि हम मृत्युलोक में इसी नौकरी के लिए अवतरित हुए हैं। इक-रंगे विषय को सौ-रंग में बांधना पड़ेगा। रोज एक कार्यालय से दूसरे कार्यालय तक जलील होना पड़ेगा, जब तक कि एक ही दफ्तर में इसकी स्थायी व्यवस्था न हो जाये। हर चंद कि फेल होने की संभावना थी मगर पास होने का डर भी लगा हुआ था।

कई लड़के इस जिल्लत को और दो साल स्थगित करने के लिए एम.ए. और एलएल.बी. में प्रवेश ले लेते थे। बिशारत की जान-पहचान में जिन मुसलमान लड़कों ने तीन साल पहले यानी 1927 में बी.ए. किया था वो सब जूतियां चटखाते फिर रहे थे, सिवाय एक सौभाग्यशाली के, जो मुसलमानों में सर्वप्रथम आया और अब मुस्लिम मिडिल स्कूल में ड्रिल मास्टर हो गया था। 1930 की भयानक विश्व-स्तरीय बेरोजगारी और महंगाई की तबाहियां समाप्त नहीं हुई थीं। माना कि एक रुपये का गेहूं 15 सेर और देसी घी एक सेर मिलता था, लेकिन एक रुपया था किसके पास?

कभी-कभी वो डर-डर के, मगर सचमुच की इच्छा करते कि फेल ही हो जायें तो बेहतर है, कम से कम एक साल निश्चिंतता से कट जायेगा। फेल होने पर बकौल मिर्जा सिर्फ एक दिन आदमी की बेइज्जती खराब होती है इसके बाद चैन ही चैन। बस यही होगा ना कि जैसे ईद पर लोग मिलने आते हैं उसी तरह उस दिन खानदान का हर बड़ा बारी-बारी से बरसों की जमा धूल झाड़ने आयेगा और फेल होने तथा खानदान की नाक कटवाने का एक अलग ही कारण बतायेगा। उस जमाने में नौजवानों का कोई काम, कोई हरकत ऐसी नहीं होती थी जिसकी झपट में आ कर

खानदान की नाक न कट जाये। आजकल की-सी स्थिति नहीं थी कि पहले तो खानदानों के मुंह पर नाक नजर नहीं आती और होती भी है तो ट्यूबलेस टायर की तरह जिसमें आये दिन हर साइज के पंक्चर होते रहते हैं और अंदर ही अंदर आप-ही-आप जुड़ते रहते हैं। यह भी देखने में आया है कि कई बार खानदान के दूर-पास के बुजुर्ग छठी-सातवीं क्लास तक फेल होने वाले लड़कों की, संबंधों की निकटता व क्षमता के हिसाब से अपने निजी हाथ से पिटाई भी करते थे, लेकिन जब लड़का हाथ-पैर निकालने लगे और इतना सयाना हो जाये कि दो आवाजों में रोने लगे यानी तेरह, चौदह साल का हो जाये तो फिर उसे थप्पड़ नहीं मारते थे, इसलिए कि अपने ही हाथ में चोट आने और पहुंचा उतरने का अंदेशा रहता था, केवल चीख-पुकार, डांट से काम निकालते थे। हर बुजुर्ग उसकी सर्टिफाइड नालायकी की अपने झूठे शैक्षिक रिकार्ड से तुलना करता और नयी पौध में अपनी दृष्टि की सीमा तक कमी और गिरावट के आसार देख कर इस सुखद निर्णय पर पहुंचता कि अभी दुनिया को उस जैसे बुजुर्ग की जुरूरत है। भला वो ऐसी नालायक नस्ल को दुनिया का चार्ज देकर इतनी जल्दी कैसे विदा ले सकता है। मिर्जा कहते हैं कि हर बुजुर्ग बड़े सिद्ध पुरुषों के अंदाज में भविष्यवाणी करता था कि तुम बड़े होकर बड़े आदमी नहीं बनोगे। साहब यह तो अंधे को भी... हद तो ये है कि खुद हमें भी... नजर आ रहा था। भविष्यवाणी करने के लिए सफेद दाढ़ी या भविष्यवक्ता होना आवश्यक नहीं था। बहरहाल यह सारी Farce एक ही दिन में खत्म हो जाती थी, लेकिन पास होने के बाद तो एक उम्र का रोना था। जिल्लत ही जिल्लत, परेशानी ही परेशानी।

बिशारत और शाहजहां की तमन्ना

अंततोगत्वा दूसरा अंदेशा पूरा हुआ। वो पास हो गये। जिस पर उन्हें खुशी, प्रोफेसरों को आश्चर्य और बुजुर्गों को शॉक हुआ। उस दिन कई बार अपना नाम, उसके आगे बी.ए. लिख-लिख कर, देर तक भिन्न-भिन्न कोणों से देखा किये, जैसे हुसैन अपनी पेंटिंग को समझने के लिए पीछे हट-हट कर देखते हैं। एक बार तो बी.ए. के बाद ब्रेकिट में (फर्स्ट अटेंप्ट) भी लिखा, मगर इसमें वाचालता और घमंड का पहलू दिखाई दिया। थोड़ी देर बाद गत्ते पर अंग्रेजी में नीली रौशनाई से नाम और लाल रौशनाई से बी.ए. लिख कर दरवाजे पर लगा आये। पंद्रह-बीस दिन बाद उर्दू के एक स्थानीय समाचार-पत्र में विज्ञापन देखा कि धीरजगंज के मुस्लिम स्कूल में, जहां इसी साल नवीं क्लास शुरू होने वाली है, उर्दू टीचर की जगह खाली है। विज्ञापन में यह लालच भी दिया गया था कि नौकरी स्थायी, वातावरण पवित्र और शांत तथा वेतन उचित है। वेतन की उचितता का स्पष्टीकरण ब्रैकिट में कर दिया गया था कि एलाउन्स समेत पच्चीस रुपये मासिक होगा। सवा रुपया वार्षिक उन्नति अलग से। मल्कुश्शोअरा-खाकानी-ए-हिंद शेख मुहम्मद इब्राहीम 'जौक' को बहादुर शाह जफर ने अपना उस्ताद बनाया तो पोषण की दृष्टि से चार रुपये मासिक राशि तय की। मौलाना मुहम्मद हुसैन आजाद लिखते हैं कि 'वेतन की कमी पर नजर करके बाप ने अपने इकलौते बेटे को इस नौकरी से रोका... लेकिन किस्मत ने आवाज दी कि चार रुपये न समझना। ये ऐवाने-मल्कुशोराई के चार खंभे हैं, मौके को हाथ से न जाने देना।' इनकी इच्छा का महल तो पूरे पच्चीस खंभों पर खड़ा होने वाला था।

लेकिन वो शांत वातावरण पर मर मिटे। धीरजगंज कानपुर और लखनऊ के बीच में एक बस्ती थी जो गांव से बड़ी और कस्बे से छोटी थी। इतनी छोटी कि हर एक शख्स एक दूसरे के बाप-दादा तक की करतूतों तक से परिचित था और न सिर्फ ये जानता था कि हर घर में जो हांडी चूल्हे पर चढ़ी है उसमें क्या पक रहा है बल्कि ये भी कि किस-किस के यहां तेल में पक रहा है। लोग एक दूसरे की जिंदगी में इस बुरी तरह घुसे हुए थे कि आप कोई काम छुप

कर नहीं कर सकते थे। ऐब करने के लिए भी सारी बस्ती का हुनर और मदद चाहिए थी। बहुत दिनों से उनकी इच्छा थी कि भाग्य ने साथ दिया तो टीचर बनेंगे। लोगों की नजर में शिक्षक का बड़ा सम्मान था। कानपुर में उनके पिता की इमारती लकड़ी की दुकान थी, मगर घरेलू कारोबार के मुकाबले उन्हें दुनिया का हर पेशा जियादा दिलचस्प और कम जलील लगता था। बी.ए. का नतीजा निकलते ही पिता ने उनके हृदय की शांति के लिए अपनी दुकान का नाम बदल कर 'एजुकेशनल टिंबर डिपो' रख दिया, मगर तबीयत इधर नहीं आई। मारे, बांधे कुछ दिन दुकान पर बैठे, मगर बड़ी बेदिली के साथ। कहते थे कि भाव-ताव करने में सुब्ह से शाम तक झूठ बोलना पड़ता है। जिस दिन सच बोलता हूं उस दिन कोई बोहनी-बिक्री नहीं होती, दुकान में गर्दा बहुत उड़ता है, ग्राहक चीख-चीख कर बात करते हैं।

होश संभालने से पहले वो इंजन-ड्राइवर और होश संभालने के बाद स्कूल टीचर बनना चाहते थे। क्लास रूम भी किसी सल्तनत से कम नहीं। शिक्षक होना भी एक तरह का शासन है, तभी तो औरंगजेब ने शाहजहां को कैद में पढ़ाने की अनुमति नहीं दी। बिशारत स्वयं को शाहजहां से अधिक सौभाग्यशाली समझते थे, विशेष रूप से इसलिए कि इन्हें तो बदले में पच्चीस रुपये भी मिलने वाले थे।

इसमें शक नहीं कि उस जमाने में शिक्षण का पेशा बहुत सम्मानित और गरिमामय समझा जाता था। जिंदगी और कैरियर में दो चीजों की बड़ी अहमियत थी। पहला इज्जत और दूसरे मानसिक शांति। दुनिया के और किसी देश में इज्जत पर कभी इतना जोर नहीं रहा जितना कि इस महाद्वीप में। अंग्रेजी में तो इसका कोई ढंग का समानार्थक शब्द भी नहीं है, इसलिए अंग्रेजी के कई पत्रकारों तथा प्रसिद्ध लिखने वालों ने इस शब्द को अंग्रेजी में ज्यों-का-त्यों इस्तेमाल किया है।

आज भी दुनिया देखे हुए बुजुर्ग किसी को दुआ देते हैं तो चाहे सेहत, सुख-चैन, अधिक संतान, समृद्धि का जिक्र करें या न करें, यह दुआ जुरूर करते हैं कि खुदा तुम्हें और हमें इज्जत-आबरू के साथ रक्खे, उठाये। नौकरी के संदर्भ में भी हम गुणसंपन्नता, तरक्की की दुआ नहीं मांगते, अपने लिए हमारी अकेली दुआ होती है कि सम्मान के साथ विदा लें। यह दुआ आपको दुनिया की किसी और जबान या मुल्क में नहीं मिलेगी। कारण ये कि बेइज्जती के जितने प्रचुर अवसर हमारे यहां हैं दुनिया में कहीं और नहीं। नौकरीपेशा आदमी बेइज्जती को प्रोफेशनल हेजर्ड समझ कर स्वीकार करता है। राजसी परंपराएं और उनकी जलालतें जाते-जाते जायेंगी। उन दिनों नौकरी-पेशा लोग खुद को नमकख्वार कहते और समझते थे (रोम में तो प्राचीन काल में नौकरों को वेतन के बदले नमक दिया जाता था और दासों की कीमत नमक के रूप में दी जाती थी), वेतन मेहनत के बदले नहीं बल्कि बतौर दान और बख्शिश दिया और लिया जाता था। वेतन बांटने वाले विभाग को बख्शीखाना कहते थे।

नेकचलनी का साइनबोर्ड

विज्ञापन में मौलवी सय्यद मुहम्मद मुजफ्फर ने, कि यही स्कूल के संस्थापक, व्यवस्थापक, संरक्षक, कोषाध्यक्ष और गबनकर्ता का नाम था, सूचित किया था कि उम्मीदवार को लिखित आवेदन करने की आवश्यकता नहीं, अपनी डिग्री और नेकचलनी के दस्तावेजी सुबूत के साथ सुब्ह आठ बजे स्वयं पेश हो। बिशारत की समझ में न आया कि नेकचलनी का क्या सुबूत हो सकता है, बदचलनी का अलबत्ता हो सकता है। उदाहरण के लिए चालान, मुचलका, गिरफ्तारी-वारंट, सजा के आदेश की नक्ल या थाने में दस-नंबरी बदमाशों की लिस्ट। पांच मिनट में

आदमी बदचलनी तो कर सकता है नेकचलनी का सुबूत नहीं दे सकता। मगर बिशारत की चिंता अकारण थी। इसलिए कि जो हुलिया उन्होंने बना रक्खा था यानी मुंड़ा हुआ सर, आंखों में सुरमे की लकीर, एड़ी से ऊंचा पाजामा, सर पर मखमल की काली रामपुरी टोपी, घर, मस्जिद और मुहल्ले में पैर में खड़ाऊं... इस हुलिए के साथ वो चाहते भी तो नेकचलनी के सिवा और कुछ संभव न था। नेकचलनी उनकी मजबूरी थी, स्वयं अपनायी हुई अच्छाई नहीं और उनका हुलिया इसका सुबूत नहीं साइनबोर्ड था।

यह वही हुलिया था जो इस इलाके के निचले मिडिल क्लास खानदानी शरीफ घरानों के नौजवानों का हुआ करता था। खानदानी शरीफ से अभिप्राय उन लोगों से है जिन्हें शरीफ बनने, रहने और कहलाने के लिए व्यक्तिगत कोशिश बिल्कुल नहीं करनी पड़ती थी। शराफत, जायदाद और ऊपर वर्णित हुलिया पीढ़ी-दर-पीढ़ी इस तरह विरसे में मिलते थे जिस तरह आम आदमी को जीन्स और वंशानुगत रोग मिलते हैं। आस्था, प्रचार, ज्ञान और हुलिए के लिहाज से पड़पोता अगर हू-ब-हू अपना पड़दादा मालूम हो तो ये खानदानी कुलीनता, शराफत और शुद्धता की दलील समझी जाती थी।

इंटरव्यू के लिए बिशारत ने उसी हुलिए पर रगड़ घिस करके नोक-पलक संवारी। अचकन धुलवायी, बदरंग हो गयी थी इसलिए धोबी से कहा कलफ अधिक लगाना। सर पर अभी शुक्रवार को जीरो नंबर की मशीन फिरवायी थी, अब उस्तरा और उसके बाद आम की गुठली फिरवा कर आंवले के तेल की मालिश करवायी। देर तक मिर्चें लगती रहीं। टोपी पहन कर आईना देख रहे थे कि अंदर मुंडे हुए सर से पसीना इस तरह रिसने लगा जिस तरह माथे पर विक्स या बाम लगाने से झरता है। टोपी उतारने के बाद पंखा चला तो ऐसा लगा जैसे किसी ने हवा में पिपरमेंट मिला दिया हो। फिर बिशारत ने जूतों पर फौजियों की तरह थूक से पालिश करके अपनी पर्सनेलिटी को फिनिशिंग टच दिया।

सलेक्शन कमेटी का चेयरमैन तहसीलदार था। सुनने में आया था कि एपाइंटमेंट के मुआमले में उसी की चलती है। फक्कड़, फिकरेबाज, साहित्यिक, मिलनसार, निडर और रिश्वतखोर है। घोड़े पर कचहरी आता है, 'नादिम' (शर्मिंदा) उपनाम रखता है, आदमी बला का जहीन और तबीयतदार है। उसे अपना तरफदार बनाने के लिए बादामी कागज का एक दस्ता, छह-सात निब वाले कलम खरीदे और रातों-रात अपनी शायरी का चमन यानी सत्ताईस गजलों का गुलदस्ता स्वयं तैय्यार किया। 'मखमूर' उपनाम रखते थे जो उनके उस्ताद जौहर इलाहाबादी का दिया हुआ था। इसी लिहाज से अपनी अधूरी आद्योपांत किताब का नाम 'खुमखाना-ए-मखमूर कानपुरी सुम लखनवी' रखा (लखनऊ से केवल इतना संबंध था कि पांच साल पहले अपना पित्ता निकलवाने के सिलसिले में दो सप्ताह के लिए अस्पताल में लगभग अर्द्धमूर्च्छित हालत में रहे थे) फिर उसमें एक विराट संकलन भी मिला दिया।

इस विराट संकलन की कहानी यह है कि अपनी गजलों और शेरों का चयन उन्होंने दिल पर पत्थर बल्कि पहाड़ रख कर किया था। शेर कितना ही घटिया और कमजोर क्यों न हो उसे स्वयं काटना और रद्द करना उतना ही मुश्किल है जितना अपनी औलाद को बदसूरत कहना या जंबूर से खुद अपना हिलता हुआ दांत उखाड़ना। गालिब तक से ये पराक्रम न हो सका। कांट-छांट मौलाना फज्ले-हक खैराबादी के सुपुर्द करके खुद ऐसे बन के बैठ गये जैसे कुछ लोग इंजेक्शन लगवाते वक्त दूसरी तरफ मुंह करके बैठ जाते हैं।

बिशारत ने शेर छांटने को तो छांट दिये मगर दिल नहीं माना, इसलिए अंत में एक परिशिष्ट अपनी रद्द की हुई शायरी का सम्मिलित कर दिया। यह शायरी उस काल से संबंधित थी जब वो बेउस्ताद थे और 'फरीफ्ता' उपनाम रखते थे। इस उपनाम की एक विशेषता यह थी कि जिस पंक्ति में भी डालते वो छंद से बाहर हो जाती। चुनांचे अधिकतर गजलें बगैर मक्ते के थीं। चंद मक्तों में शेर का वज्न पूरा करने के लिए 'फरीफ्ता' की जगह उसका समानार्थक 'शैदा' और 'दिलदादा' प्रयोग किया, उससे शेर में कोई और दोष पैदा हो गया। बात दरअस्ल यह थी कि आकाश से जो विचार उनके दिमाग में आते थे उनके दैवी जोश और तूफानी तीव्रता को छंद की गागर में बंद करना इंसान के बस का काम न था।

मौलवी मज्जन से तानाशाह तक

तहसीलदार तक सिफारिश पहुंचाने में कोई कठिनाई नहीं हुई। अलबत्ता मौलवी मुजफ्फर (जो तिरस्कार, संक्षेप और प्यार में मौली मज्जन कहलाते थे) के बारे में जिससे पूछा, उसने नया ऐब निकाला। एक साहब ने कहा, कौम का दर्द रखता है हाकिमों से मेलजोल रखता है पर कमीना है, बच के रहना। दूसरे साहब बोले, मौलवी मज्जन एक यतीमखाना शम्स-उल-इस्लाम भी चलाता है। यतीमों से अपने पैर दबवाता है। स्कूल की झाड़ू दिलवाता है और मास्टरों को यतीमों की टोली के साथ चंदा इकट्ठा करने कानपुर और लखनऊ भेजता है, वो भी बिना टिकिट। मगर इसमें कोई शक नहीं कि धुन का पक्का है। धीरजगंज के मुसलमानों की बड़ी सेवा की है। धीरजगंज के जितने भी मुसलमान आज पढ़े-लिखे और नौकरी करते नजर आते हैं वो सब इसी स्कूल के जीने से ऊपर चढ़े हैं। कभी-कभी लगता था कि लोगों को मौलवी मुजफ्फर से ईश्वरीय बैर हो गया है। बिशारत को उनसे एक तरह की हमदर्दी हो गयी। यूं भी मास्टर फाखिर हुसैन ने एक बार बड़े काम की नसीहत की थी कि कभी अपने बुजुर्ग या बॉस या अपने से अधिक बदमाश आदमी को सही रास्ता बताने की कोशिश न करना। उन्हें गलत राह पर देखो तो तीन ज्ञानी बंदरों की तरह अंधे, बहरे और गूंगे बन जाओ! ठाठ से राज करोगे!

एक दिलजले बुजुर्ग, जो 'जमाना' पत्रिका में काम करते थे, फर्माया, वो जकटा ही नहीं, चरकटा भी है। पच्चीस रुपये की रसीद लिखवा कर पंद्रह रुपल्ली हाथ पे टिका देगा। पहले तुम्हें जांचेगा, फिर आंकेगा, इसके बाद तमाम उम्र हांकेगा। उसने दस्तखत करने उस वक्त सीखे जब चंदे की जाली रसीदें काटने की जुरूरत पड़ी। अरे साहब! सर सय्यद तो अब जा के बना है मैंने अपनी आंखों से उसे अपने निकाहनामे पे अंगूठा लगाते देखा है। ठूंठ जाहिल है मगर बला का गढ़ा हुआ, घिसा हुआ भी। ऐसा-वैसा चपड़कनात नहीं है, लुक्का भी है, लुच्चा भी और टुच्चा भी। बुजुर्गवार ने एक ही सांस में पाजीपन के ऐसे बारीक शेड्स गिनवा दिये कि जब तक आदमी हर गाली के बाद शब्दकोश न देखे या हमारी तरह लंबे समय तक भाषाविदों की सुहबत के सदमे न उठाये हुए हो वो जबान और नालायकी की उन बारीकियों को नहीं समझ सकता।

सय्यद एजाज हुसैन 'वफा' कहने लगे, 'मौली मज्जन पांचों वक्त टक्करें मारता है। घुटने, माथे और जमीर पर ये बड़े-बड़े गट्टे पड़ गये हैं। थानेदार और तहसीलदार को अपनी मीठी बातचीत, इस्लाम-दोस्ती, मेहमान-नवाजी और रिश्वत से काबू में कर रखा है। दमे का मरीज है। पांच मिनट में दस बार आस्तीन से नाक पोंछता है।' दसअस्ल उन्हें आस्तीन से नाक पोंछने पर इतना एतराज न था जितना इस पर कि आस्तीन को अस्तीन कहता है, यखनी को अखनी और हौसला का होंसला। उन्होंने अपने कानों से उसे मिजाज शरीफ और शुबरात कहते सुना था।

जुहला (गंवारों) किसानों और बकरियों की तरह हर वक्त मैं! मैं! करता रहता है। लखनऊ के शुरफा (शरीफ का बहुवचन - भद्र लोग) अहंकार से बचने की गरज से खुद को हमेशा हम कहते हैं। इस पर एक कमजोर और सींक-सलाई बुजुर्ग ने फर्माया कि जात का कसाई, कुंजड़ा या दिल्ली वाला मालूम होता है, किस वास्ते कि तीन बार गले मिलता है। अवध में शुरफा केवल एक बार गले मिलते हैं।

ये अवध के साथ सरासर जियादती थी इसलिए कि सिर्फ एक बार गले मिलने में शराफत का शायद उतना दख्ल न था जितना नाजुक-मिजाजी का और ये याद रहे कि यह उस जमाने के पारंपरिक चोंचले हैं जब नाजुक मिजाज बेगमें खुश्के और ओस का आत्महत्या के औजार की तरह प्रयोग करती थीं और यह धमकी देती थीं कि खुश्कखार ओस में सो जाऊंगी। वो तो खैर बेगमें थीं, तानाशाह उनसे भी बाजी ले गया। उसके बारे में मशहूर है कि जब वो बंदी बना कर दरबार में बेड़ियां पहना कर लाया गया तो सवाल ये पैदा हुआ कि इसे मरवाया कैसे जाये। दरबारियों ने एक से एक उपाय पेश किये। एक ने तो मशवरा दिया कि ऐसे अय्याश को तो मस्त हाथी के पैर से बांध कर शहर का चक्कर लगवाना चाहिए। दूसरा कोर्निश बजा कर बोला, दुरुस्त, मगर मस्त हाथी को शहर का चक्कर कौन माई का लाल लगवायेगा। हाथी शहर का चक्कर लगाने के लिए थोड़े ही मस्त होता है, अलबत्ता आप तानाशाह की अय्याशियों की सजा हाथी को देना चाहते हैं तो और बात है। इस पर तीसरा दरबारी बोला कि तानाशाह जैसे अय्याश को इससे जियादा तकलीफ देने वाली सजा नहीं हो सकती कि इसे हीजड़ा बना कर इसी के हरम में खुला छोड़ दिया जाये। एक और दरबारी ने तजवीज पेश की कि आंखों में नील की सलाई फिरवा कर अंधा कर दो, फिर किला ग्वालियर में दो साल तक रोजाना खाली पेट पोस्त का पियाला पिलाओ कि अपने जिस्म को धीरे-धीरे मरता हुआ खुद भी देखे। इस पर किसी इतिहासकार ने विरोध किया कि सुल्तान का तानाशाह से खून का कोई रिश्ता नहीं है, ये बरताव तो सिर्फ सगे भाइयों के साथ होता आया है। एक दिलजले ने कहा कि किले की दीवार से नीचे फेंक दो मगर यह तरीका इसलिए रद्द कर दिया गया कि इसका दम तो मारे डर के रस्ते में ही निकल जायेगा, अगर मकसद तकलीफ पहुंचाना है तो वो पूरा नहीं होगा। अंत में वजीर ने, जिसका योग्य होना साबित हो गया, ये मुश्किल हल कर दी। उसने कहा कि मानसिक पीड़ा देकर और तड़पा-तड़पाकर मारना ही लक्ष्य है तो इसके पास से एक ग्वालिन गुजार दो।

जिन पाठकों ने बिगड़े रईस और ग्वालिन नहीं देखी उनकी जानकारी के लिए निवेदन है कि मक्खन और कच्चे दूध की बू, रेवड़ बास में बसे हुए लहंगे और पसीने के नमक से सफेद पड़ी हुई काली कमीज के एक भबके से अमीरों और रईसों का दिमाग फट जाता था। फिर उन्हें हिरन की नाभि से निकली हुई कस्तूरी के लखलखे सुंघा कर होश में लाया जाता था।

हलवाई की दुकान और कुत्ते का नाश्ता

इंटरव्यू की गरज से धीरजगंज जाने के लिए बिशारत सुब्ह तीन बजे ही निकल खड़े हुए। सात बजे मौलवी मुजफ्फर के घर पहुंचे तो वो जलेबियों का नाश्ता कर रहे थे। बिशारत ने अपना नाम पता बताया तो कहने लगे, 'आइये आइये! आप तो कान ही पुर (कानपुर ही) के रहने वाले हैं। कानपुर को गोया लखनऊ का आंगन कहिये। लखनऊ के लोग तो बड़े घमंडी और नाक वाले होते हैं। लिहाजा मैं नाश्ते के लिए झूठों भी नहीं टोकूंगा।'

'ऐ जौक तकल्लुफ में हैं तकलीफ बराबर (जी हां उन्होंने सरासर को बराबर कर दिया था) जाहिर है नाश्ता तो आप कर आये होंगे। सलेक्शन कमेटी की मीटिंग अंजुमन के दफ्तर में एक घंटे बाद होगी। वहीं मुलाकात होगी, और हां! जिस बेहूदे आदमी से आपने सिफारिश करवायी है, वो निहायत कंजूस और नामाकूल है।'

इस सारी बातचीत में अधिक से अधिक दो मिनट लगे होंगे। मौलवी मुजफ्फर ने बैठने को भी नहीं कहा, खड़े-खड़े ही भुगता दिया। घर से मुंह अंधेरे ही चले थे, मौलवी मुजफ्फर को गर्म जलेबियां खाते देखकर उनकी भूख भड़क उठी। मुहम्मद हुसैन आजाद के शब्दों में 'भूख ने उनकी अपनी ही जबान में जायका पैदा कर दिया।' घूम फिर के हलवाई की दुकान पता की। डेढ़ पाव जलेबियां घान से उतरती हुई तुलवायीं। दोने से पहली जलेबी उठायी ही थी कि हलवाई का कुत्ता उनके पूरे अरज के गरारेनुमा लखनवी पाजामे के पांयचे में मुंह डाल के बड़े आवेग से लपड़-लपड़ पिंडली चाटने लगा। कुछ देर वो चुपचाप, निस्तब्ध और शांत खड़े चटवाते रहे। इसलिए कि उन्होंने किसी से सुना था कि कुत्ता अगर पीज करे या आपके हाथ-पैर चाटने लगे तो भागना या शोर नहीं मचाना चाहिए वर्ना वो आजिज आकर सचमुच काट खायेगा। जैसे ही उन्होंने उसे एक जलेबी डाली, उसने पिंडली छोड़ दी। इसी बीच में उन्होंने खुद भी एक जलेबी खाई। कुत्ता अपनी जलेबी खत्म होते ही पांयचे में मुंह डाल के फिर शुरू हो गया। जबान भी ठीक से साफ नहीं की।

अब नाश्ते का ये पैटर्न बना कि पहले एक जलेबी कुत्ते को डालते तब एक खुद भी खा पाते। जलेबी देने में जरा देर हो जाती तो वो लपक कर बड़े चाव और दोस्ती से पिंडली चिचोड़ने लगता, शायद इसलिए कि उसके अंदर एक हड्डी थी। लेकिन अब दिल से कुत्ते का डर इस हद तक निकल चुका था कि उसकी ठंडी नाक से गुदगुदी हो रही थी। उन्होंने खड़े-खड़े दो बहुत महत्वपूर्ण निर्णय लिए, पहला ये कि कभी कानपुर के जाहिलों की तरह सड़क पर खड़े होकर जलेबी नहीं खायेंगे; दूसरा लखनऊ के शरीफों की तरह चौड़े पांयचे का पाजामा हरगिज नहीं पहनेंगे, कम-से-कम जिंदा हालत में।

कुत्ते को नाश्ता करवा चुके तो खाली दोना उसके सामने रख दिया। वो शीरा चाटने में तल्लीन हो गया तो हलवाई के पास दुबारा गये। एक पाव दूध कुल्हड़ में अपने लिए और डेढ़ पाव कुत्ते के लिए खरीदा ताकि उसे पीता छोड़ कर सटक जायें। अपने हिस्से का दूध गटागट पी कर कस्बे की सैर को रवाना होने लगे तो कुत्ता दूध छोड़ कर उनके पीछे-पीछे हो लिया। उन्हें जाता देख कर पहले कुत्ते के कान खड़े हुए थे, अब उनके खड़े हुए कि बदजात अब क्या चाहता है। तीन-चार जगह जहां उन्होंने जरा दम लेने के लिए रफ्तार कम करने की कोशिश की या अपनी मर्जी से मुड़ना या लौटना चाहा तो कुत्ता किसी तरह राजी न हुआ। हर मोड़ पर गली के कुत्ते उन्हें और उसे घेर लेते और खदेड़ते हुए दूसरी गली तक ले जाते, जिसकी सीमा पर दूसरे ताजादम कुत्ते चार्ज ले लेते। कुत्ता बड़े अनमनेपन से अकेला लड़ रहा था। जब तक युद्ध निर्णायक ढंग से समाप्त न हो जाता या कम-से-कम अस्थायी युद्ध विराम न हो जाता अथवा दूसरी गली के शेरों से नये सिरे से लड़ायी शुरू न हो जाती, वो U.N.O. की तरह बीच में खामोश खड़े देखते रहते। वो लौंडों को कुत्तों को पत्थर मारने से बड़ी सख्ती से मना कर रहे थे। इसलिए कि सारे पत्थर उन्हीं के लग रहे थे, वो कुत्ता दूसरे कुत्तों को उनकी तरफ बढ़ने नहीं देता था और सच तो ये है उनकी हमदर्दी अब अपने ही कुत्ते के साथ हो गयी थी। दो फर्लांग पहले जब वो चले थे तो वह महज एक कुत्ता था, मगर अब रिश्ता बदल चुका था। वो उसके लिए कोई अच्छा-सा नाम सोचने लगे।

उन्हें आज पहली बार मालूम हुआ कि गांव में मेहमान के आने का ऐलान कुत्ते, चोर और बच्चे करते हैं उसके बाद वो सारे गांव और हर घर का मेहमान बन जाता है।

टीपू नाम के कुत्ते

उन्हें यह देख कर दुख हुआ कि हलवाई और बच्चे उस कुत्ते को टीपू! टीपू! कह कर बुला और दुतकार रहे हैं। श्रीरंगापट्टम के भयानक रक्तपात से भरे संग्राम में टीपू सुल्तान के मरने के बाद अंग्रेजों ने कुत्तों के नाम टीपू रखने शुरू कर दिये और एक जमाने में यह उत्तरी भारत में इतना आम हुआ कि खुद भारतीय भी आवारा और बेनाम कुत्तों को टीपू कह कर ही बुलाते और हुश्कारते थे, ये जाने बगैर कि कुत्तों का ये नाम कैसे पड़ा। नेपोलियन और टीपू सुल्तान के अलावा अंग्रेजों ने ऐसा व्यवहार अपने किसी और दुश्मन के साथ नहीं किया, इसलिए कि किसी और दुश्मन की उनके दिल में ऐसी दहशत नहीं बैठी।

तलवार देख कर किस्मत का हाल बतानेवाला

हालांकि उनका घर पक्का और स्कूल आधा पक्का था लेकिन मौलवी मुजफ्फर ने अपनी ईमानदारी और इस्लाम के आरंभिक काल के मुसलमानों की सादगी का नमूना पेश करने की गरज से अपना दफ्तर एक कच्चे टिनपोश मकान में बना रखा था। सैलेक्शन कमेटी का दरबार यहीं लगने वाला था। बिशारत समेत कुल तीन उम्मीदवार थे। बाहर दरवाजे पर बायीं तरफ एक ब्लैक बोर्ड पर चाक से यह निर्देश लिखे हुए थे -

(1) उम्मीदवार अपनी बारी का इंतजार धैर्य और विनम्रता से करें।

(2) उम्मीदवार को सफर खर्च और भत्ता हरगिज नहीं दिया जायेगा। जुहर की नमाज के बाद उनके खाने का इंतजाम यतीमखाना शम्स-उल-इस्लाम में किया गया है।

(3) इंटरव्यू के वक्त उम्मीदवार को मुबलिग एक रुपये चंदे की यतीमखाने की रसीद पेश करनी होगी।

(4) उम्मीदवार कृपया अपनी बीड़ी बुझाकर अंदर दाखिल हों।

बिशारत जब प्रतीक्षालय यानी नीम की छांव तले पहुंचे तो कुत्ता उनके साथ था। उन्होंने इशारों में कई बार उससे विदा चाही, मगर वो किसी तरह साथ छोड़ने को तैयार न हुआ। नीम के नीचे वो एक पत्थर पर बैठ गये तो वो भी उनके कदमों में आ बैठा और अत्यधिक उचित अंतराल से दुम हिला-हिला कर उन्हें कृतज्ञ आंखों से टुकर-टुकर देख रहा था। उसका ये अंदाज उन्हें बहुत अच्छा लगा और उसकी मौजूदगी से उन्हें कुछ चैन-सा महसूस होने लगा। नीम की छांव में एक उम्मीदवार जो खुद को इलाहाबाद का एल.टी. बताता था, उकड़ूं बैठा तिनके से रेत पर 20 का यंत्र बना रहा था। जिसके खानों की संख्याएं किसी तरफ से भी गिनी जायें, जोड़ 20 आता था। स्त्री-वशीकरण तथा अफसर को प्रभावित करने के लिए यह यंत्र सर्वोत्तम समझा जाता था। कान के सवालिया निशान '?' के अंदर जो एक और सवालिया निशान होता है, उन दोनों के बीच उसने खस के इत्र का फाया उड़स रखा था। जुल्फे-बंगाल हेयर ऑयल से की हुई सिंचाई के रेले, जो सर की तात्कालिक आवश्यकता से कहीं जियादा थे, माथे

पर बह रहे थे। दूसरा उम्मीदवार जो कालपी से आया था, खुद को अलीगढ़ का बी.ए.-बी.टी. बताता था। धूप का चश्मा तो समझ में आता था, मगर उसने गले में सिल्क का लाल स्कार्फ भी बांध रखा था जिसका इस चिलचिलाती धूप में यही उद्देश्य मालूम पड़ता था कि चेहरे से टपका हुआ पसीना सुरक्षित कर ले।

अगर उसका वज्न 100 पौंड कम होता तो वो जो सूट पहन कर आया था, बिल्कुल फिट आता। कमीज के नीचे के दो बटन तथा पैंट के ऊपर के दो बटन खुले हुए थे। सिर्फ सोलर हैट सही साइज का था। फीरोजे की अंगूठी भी शायद तंग हो गयी थी, इसलिए कि जब इंटरव्यू के लिए आवाज पड़ी तो उसने जेब से निकाल कर छंगुलिया में पहन ली। जूते के फीते, जिन्हें वो खड़े होने के बाद नहीं देख सकता था, खुले हुए थे। कहता था - गोलकीपर रह चुका हूं। इस मोटे-ताजेपन के बावजूद खुद को नीम के दो शाखे 'Y' में इस तरह फिट किया था कि दूर से एक 'V' नजर आता था, जिसकी एक नोक पर जूते और दूसरी पर हैट रखा हो। ये साहब ऊपर टंगे-टंगे ही बातचीत में हिस्सा ले रहे थे और वहीं से पीक की पिचकारियां और सिगरेट की राख चुटकी बजा-बजा कर झाड़ रहे थे।

कुछ देर बाद बिशारत के पास एक जटाधारी साधू आ बैठा। अपना सोंटा उनके माथे पर रखकर कहने लगा, 'किस्मत का हाल बताता हूं पांव के तलवे देख कर, अबे जूते उतार नहीं तो साले यहीं भस्म कर दूंगा।' उन्होंने उसे पागल समझकर मुंह फेर लिया। लेकिन जब उसने नर्म लहजे में कहा 'बच्चा, तेरे पेट पर तिल है और सीधी बगल में मस्सा है', तो उन्होंने घबरा कर जूते उतार दिये। इसलिए कि उसने बिल्कुल ठीक बताया था। थोड़ी दूरी पर एक बरगद के पेड़ के नीचे तीसरी क्लास के बच्चे ड्रिल कर रहे थे। उस समय उनसे दंड लगवाये जा रहे थे। पहले ही दंड में 'हूं' कहते हुए सर ले जाने के बाद केवल दो लड़के हथेलियों के बल उठ पाये। बाकी वहीं धूल में छिपकली की तरह पट पड़े रह गये। सब गर्दन मोड़-मोड़ कर बड़ी बेबसी से ड्रिल मास्टर को देख रहे थे जो उन्हें ताना दे रहा था कि तुम्हारी मांओं ने तुम्हें कैसा दूध पिलाया है?

दरवाजे पर सरकंडों की चिक पड़ी थी, जिसका निचला हिस्सा झड़ चुका था। सुतली की लड़ियां रह गयी थीं। सबसे पहले अलीगढ़ के उम्मीदवार को इस तरह आवाज पड़ी जैसे अदालत में नाम मय-वल्दियत के पुकारे जाते हैं। पुकारने के अंदाज से पता लगता था कि शायद डेढ़-दो सौ उम्मीदवार हैं जो डेढ़ दो मील दूर कहीं बैठे हैं। उम्मीदवार पहले वर्णित नीम की गुलैल पर से धम्म-से कूद कर सोलर हैट समेत दरवाजे में दाखिल होने वाला था कि चपरासी ने रास्ता रोक लिया। उसने यतीमखाने के चंदे की रसीद मांगी और सिगरेट की डिबिया, जिसमें दो सिगरेट बाकी थे, लगान के तौर पर धरवा ली। फिर जूते उतरवा कर लगभग घुटनों के बल चलाता हुआ अंदर ले गया। पचास मिनट बाद दोनों बाहर निकले। चपरासी ने दरवाजे के पास रक्खे हुए घड़ियाल को एक बार बजाया, जिसका उद्देश्य गांव वालों और उम्मीदवारों को खबर करना था कि पहला इंटरव्यू समाप्त हुआ। बाहर खड़े हुए लड़कों ने जम कर तालियां बजायीं। उसके बाद इलाहाबादी उम्मीदवार का नाम पुकारा गया जो बीसे का यंत्र मिटा कर लपक-झपक अंदर चला गया। पचास मिनट बाद फिर चपरासी ने बाहर आ कर घंटे पर दो बार इतनी जोर से चोट लगाई कि कस्बे के सारे मोर चिंघाड़ने लगे। (हर इंटरव्यू का समय वही था जो घंटों का) चपरासी ने आंख मार कर बिशारत को अंदर चलने को कहा।

ब्लैक होल आफ धीरजगंज

बिशारत इंटरव्यू के अंदर दाखिल हुए तो कुछ नजर न आया। इसलिए कि केवल एक गोल मोखे के अतिरिक्त, रौशनी आने के लिए कोई खिड़की या रौशनदान नहीं था। फिर धीरे-धीरे इसी अंधेरे में हर चीज की आउटलाइन उभरती, उजलती चली गयी। यहां तक कि दीवारों पर पीली मिट्टी और गोबर की ताजा लिपाई में मजबूती और पकड़ के लिए जो कड़बी की छीलन और भुस के तिनके डाले गये थे, उनका कुदरती वार्निश अंधेरे में चमकने लगा। दायीं तरफ कम-अंधेरे कोने में दो बटन चमकते नजर आये। वो चलकर उनकी तरफ बढ़े तो उन्हें डर महसूस हुआ। ये उस बिल्ली की आंखें थीं जो किसी अनदेखे चूहे की तलाश में थी।

बायीं तरफ एक चार फुट ऊंची मकाननुमा खाट पड़ी थी जिसके पाये शायद साबुत पेड़ के तने से बनाये गये थे। बिसौले से जल उतारने का कष्ट भी नहीं किया गया था। उस पर सलेक्शन कमेटी के तीन मैंबर टांगें लटकाये बैठे थे। उसके पास ही एक और मैंबर बिना पीठ के मूढ़े पर बैठे थे। दरवाजे की तरफ पीठ किये मौलवी मुजफ्फर एक टेकीदार मूढ़े पर विराजमान थे। एक बिना हत्थे वाली लोहे की कुर्सी पर एक बहुत हंसमुख व्यक्ति उल्टा बैठा था यानी उसकी पीठ से अपना सीना मिलाये और किनारे पर अपनी ठोढ़ी रखे। उसका रंग इतना सांवला था कि अंधेरे में सिर्फ दांत नजर आ रहे थे। यह तहसीलदार था जो इस कमेटी का चेयरमैन था। एक मैंबर ने अपनी तुर्की टोपी खाट के पाये को पहना रखी थी। कुछ देर बाद जब बिल्ली उसके फुंदने से तमाचे मार-मार कर खेलने लगी तो उसने पाये से उतार कर सर पर रख ली। सबके हाथों में खजूर के पंखे थे। मौली मज्जन पंखे की डंडी गर्दन के रास्ते शेरवानी में उतार कर बार-बार अपनी पीठ खुजाने के बाद डंडी की नोक को सूंघते थे। तहसीलदार के हाथ में जो पंखा था, उसके किनारे पर लाल गोटा और बीच में गुर्दे की शक्ल का छेद था जो उस काल में सब स्टूलों में होता था। इसका उपयोग एक अरसे तक हमारी समझ में न आया। कई लोग गर्मियों में इस पर सुराही या घड़ा रख देते थे ताकि सूराख से पानी रिसता रहे और पैंदे को ठंडी हवा लगती रहे। बिशारत अंत तक ये फैसला न कर सके कि वो खुद नर्वस हैं या स्टूल लड़खड़ा रहा है।

तहसीलदार पेड़े की लस्सी पी रहा था और बाकी मैंबर हुक्का। सबने जूते उतार रखे थे। बिशारत को ये पता होता तो निःसंदेह साफ मोजे पहन कर आते। मूढ़े पर बैठा हुआ मैंबर अपने बायें पैर को दायें घुटने पर रखे, हाथ की उंगलियों से पांव की उंगलियों के साथ पंजा लड़ा रहा था। एक उधड़ी हुई कलई का पीकदान घूम रहा था। हवा में हुक्के, पान के बनारसी तंबाकू, कोरी ठिलिया, कोने में पड़े हुए खरबूजे के छिलकों, खस के इत्र और गोबर की लिपाई की ताजा गंध बसी हुई थी और उन पर हावी भबका था जिसके बारे में विश्वास से नहीं कहा जा सकता था कि यह देसी जूतों की बू है जो पैरों से आ रही है या पैरों की सड़ांध है जो जूतों से आ रही है।

जिस मोखे की चर्चा पहले की जा चुकी है उसके बारे में यह फैसला करना कठिन था कि वो रौशनी के लिए बनाया गया है या अंदर के अंधेरे को कंट्रास्ट से और अधिक अंधेरा दिखाने के लिए रखा गया है। अंदर के धुएं को बाहर फेंकने के लिए है या बाहर की धूल को अंदर का रास्ता दिखाने के इरादे से बनाया गया। बाहर के दृश्य देखने के लिए झरोखा है या बाहर वालों को अंदर की ताक-झांक के लिए झांकी उपलब्ध करायी गयी है। रौशनदान, हवादान, दर्शनी-झरोखा, धुएं की चिमनी, पोर्ट होल... बिशारत के कथनानुसार यह एशिया का सर्वाधिक बहुउद्देशीय छेद था जो बेहद ओवरवर्क्ड था और चकराया हुआ था। इसलिए इनमें से कोई भी काम ठीक से नहीं कर पा रहा था। इस समय इसमें हर पांच मिनट बाद एक नया चेहरा फिट हो जाता था। हो यह रहा था कि बाहर दीवार तले एक लड़का घोड़ा बनता और दूसरा उस पर खड़ा हो कर उस वक्त तक तमाशा देखता रहता जब तक

घोड़े के पैर न लड़खड़ाने लगते और वो कमर को कमानी की तरह लचका-लचका कर यह मांग न करने लगता कि यार! उतर, मुझे भी तो देखने दे।

यदा-कदा यह मोखा ऑक्सीजन और गालियों की निकासी के रास्ते के रूप में भी इस्तेमाल होता था। इस संक्षिप्त विवरण का विस्तार यह है कि मौली मज्जन दमे के मरीज थे। जब खांसी का दौरा पड़ता और ऐसा लगता कि शायद दूसरा सांस नहीं आयेगा तो वो दौड़ कर मोखे में अपना मुंह फिट कर देते थे और जब सांस का पूरक रेचक ठीक हो जाता तो सस्वर अल्हम्दुलिल्लाह कह कर लौंडों को सड़ी-सड़ी गालियां देते। थोड़ी देर बाद धूप का कोण बदला तो सूरज का एक चकाचौंध लपका कमरे का अंधेरा चीरता चला गया। इसमें धुएं के बल खाते मरगोलों और धूलकणों का नाच देखने लायक था। बायीं दीवार पर दीनियात (धार्मिक विषय) के जत्रों के बनाये हुए इस्तंजे (पेशाब के बाद कतरों को सुखाने के लिए मुसलमान मिट्टी के ढेले इस्तेमाल करते हैं, उन्हें इस्तंजा कहा जाता है) के निहायत सुडौल ढेले करीने से तले ऊपर सजे थे जिन पर अगर मक्खियां बैठी होतीं तो बिल्कुल बदायूं के पेड़े मालूम होते।

दायीं दीवार पर जार्ज-पांचवें की फोटो पर गेंदे का सूखा खड़ंक हार लटक रहा था। उसके नीचे मुस्तफा पाशा का फोटो और मौलाना मुहम्मद अली जौहर की तस्वीर जिसमें वो चोगा पहने और समूरी टोपी पर चांद-तारा लगाये खड़े हैं। इन दोनों के बीच मौलवी मज्जन का बड़ा-सा फोटो और उसके नीचे फ्रेम किया हुआ मान-पत्र जो अध्यापकों और चपरासियों ने उनकी सेवा में हैजे से ठीक होने की खुशी में लंबी उम्र की प्रार्थना के साथ अर्पित किया था। उनकी तन्ख्वाह पांच महीने से रुकी हुई थी।

ये बात तो रह ही गयी। जब बिशारत इंटरव्यू के लिए उठ कर जाने लगे तो कुत्ता भी साथ लग गया। उन्होंने रोका मगर वो न माना। चपरासी ने कहा, 'आप इस पलीद को अंदर नहीं ले जा सकते।' बिशारत ने जवाब दिया, 'यह मेरा कुत्ता नहीं है'। चपरासी बोला, 'तो आप इसे दो घंटे से बांहों में लिए क्यों बैठे थे?' उसने एक ढेला उठा कर मारना चाहा तो कुत्ते ने झट पिंडली पकड़ ली। चपरासी चीखने लगा। बिशारत के मना करने पर उसने फौरन पिंडली छोड़ दी। शुक्रिया अदा करने के बजाय चपरासी कहने लगा, 'और आप इस पर भी कहते हैं कि कुत्ता मेरा नहीं है।' जब वो अंदर दाखिल हुआ तो कुत्ता भी उनके साथ घुस गया। रोकना तो बड़ी बात, चपरासी में इतना हौसला भी नहीं रहा कि टोक भी सके। उसके अंदर घुसते ही भूचाल आ गया। कमेटी के मेंबरों ने चीख-चीख कर छप्पर सर पर उठा लिया। लेकिन जब वो उनसे भी जियादा जोर से भौंका तो सब सहम कर अपनी-अपनी पिंडलियां गोद में ले कर बैठ गये। बिशारत ने कहा कि अगर आप हजरात बिल्कुल शांत और स्थिर हो जायें तो यह भी चुप हो जायेगा। इस पर एक साहब बोले आप इंटरव्यू में अपना कुत्ता लेकर क्यों आये हैं? बिशारत ने कसम खा कर कुत्ते से अपनी असंबद्धता प्रकट कि तो वही साहब बोले 'अगर आपका दावा है कि यह कुत्ता आपका नहीं है तो आप इसकी बुरी आदतों से इतने परिचित कैसे हैं?"

बिशारत इंटरव्यू के लिए अपनी जगह बैठ गये तो कुत्ता उनके पैरों से लग कर बैठ गया। उनका जी चाहा कि वो यूं ही बैठा रहे। अब वो नर्वस महसूस नहीं कर रहे थे, इंटरव्यू के दौरान दो बार मौलवी मज्जन ने बिशारत की किसी बात पर बड़ी तुच्छता से जोरदार कहकहा लगाया तो कुत्ता उनसे भी जियादा जोर से भौंकने लगा और वो सहम कर कहकहा बीच में ही स्विच ऑफ करके चुपके बैठ गये। बिशारत को कुत्ते पर बेतहाशा प्यार आया।

कोई बतलाओ कि हम बतलायें क्या ?

इंटरव्यू से पहले तहसीलदार ने गला साफ करके सबको खामोश किया तो ऐसा सन्नाटा छाया कि दीवार पर लटके हुए क्लाक की टिक-टिक और मौलवी मुजफ्फर के हांफने की आवाज साफ सुनायी देने लगी। फिर इंटरव्यू शुरू हुआ और सवालों की बौजर। इतने में क्लाक ने ग्यारह बजाये तो सब दोबारा खामोश हो गये। धीरजगंज में कुछ अर्से रहने के बाद बिशारत को मालूम हुआ कि देहात की तहजीब के मुताबिक जब क्लाक कुछ बजाता है तो सब खामोश और बाअदब हो कर सुनते और गिनते हैं कि गलत तो नहीं बजा रहा।

इंटरव्यू दोबारा शुरू हुआ तो जिस शख्स को चपरासी समझे थे, वो खाट की अदवायन पर आ कर बैठ गया। वो धार्मिक विषयों का मास्टर निकला जो उन दिनों उर्दू टीचर की जिम्मेदारी भी निभा रहा था। इंटरव्यू में सबसे जियादा धर-पटक उसी ने की। मौलवी मुजफ्फर और एक मैंबर ने भी, जो मुंसिफी अदालत से रिटायर्ड पेशकार थे, ऐंडे-बेंडे सवाल किये। तहसीलदार ने अलबत्ता छिपे-तौर पर मदद और तरफदारी की और सिफारिश की लाज रखी। चंद सवालात नक्ल किये जा रहे हैं। जिससे सवाल करने और जवाब देने वाले दोनों की योग्यता का अंदाजा हो जायेगा।

मौलवी मुजफ्फर : ('कुल्लियाते-मखमूर' पर चुमकारने के अंदाज से हाथ फेरते हुए) शेर कहने के फायदे बयान कीजिये।

बिशारत : (चेहरे पर ऐसा एक्सप्रेशन जैसे आउट आफ कोर्स सवाल पूछ लिया हो) शायरी... मेरा मतलब है, शेर... यानी उसका मकसद... बात दरअस्ल ये है कि... शौकिया...।

मौलवी मुजफ्फर : अच्छा खालिके बारी का कोई शेर सुनाइए।

बिशारत : खालिक-बारी सर्जनहार, वाहिद एक बिदा करतार।

पेशकार : आपके बाप, दादा और नाना किस विभाग में नौकर थे?

बिशारत : उन्होंने नौकरी नहीं की।

पेशकार : फिर आप कैसे नौकरी कर सकेंगे। चार पीढ़ियां एक के बाद एक अपना पित्ता मारें तो कहीं जा कर नौकरी की काबिलियत पैदा होती है।

बिशारत : (सीधेपन से) मेरा पित्ता आप्रेशन के जरिये निकाला जा चुका है।

धार्मिक शिक्षक : आप्रेशन का निशान दिखाइए।

तहसीलदार : आपने कभी बेंत का इस्तेमाल किया है?

बिशारत : जी नहीं।

तहसीलदार : कभी आप पर बेंत का इस्तेमाल हुआ है?

बिशारत : अक्सर।

तहसीलदार : तब आप डिसीप्लिन कायम कर सकेंगे।

पेशकार : अच्छा यह बताइए दुनिया गोल क्यों बनायी गयी है?

बिशारत : (पेशकार को ऐसे देखते हैं जैसे चारों खाने चित्त होने पर पहलवान अपने प्रतिद्वंद्वी को देखता हैं...)

तहसीलदार : पेशकार साहब! इन्होंने उर्दू टीचर की दरख्वास्त दी है, भूगोल वालों के इंटरव्यू परसों होंगे।

धार्मिक शिक्षक : ब्लैक-बोर्ड पर अपनी राइटिंग का नमूना लिख कर दिखाइए।

पेशकार : दाढ़ी पर आपको क्या ऐतराज है?

बिशारत : कुछ नहीं।

पेशकार : फिर रखते क्यों नहीं?

धार्मिक शिक्षक : आपको चचा से जियादा मुहब्बत है या मामू से?

बिशारत : कभी गौर नहीं किया।

धार्मिक शिक्षक : अब कर लीजिए।

बिशारत : मेरे कोई चचा नहीं हैं।

धार्मिक शिक्षक : आपको नमाज आती है? अपने पिता के जनाजे की नमाज पढ़ कर दिखाइए।

बिशारत : वो जिंदा हैं।

धार्मिक शिक्षक : लाहौल विला कुव्वत, मैंने तो अंदाजा लगाया। तो फिर अपने दादा की पढ़ कर दिखाइए। या आप अभी उनकी कृपा से भी वंचित नहीं हुए हैं।

बिशारत : (भरी आवाज में) उनका इंतकाल हो गया है।

मौलवी मुजफ्फर : मुसद्दस हाली का कोई बंद सुनाइए।

बिशारत : मुसद्दस का तो कोई बंद इस वक्त याद नहीं आ रहा। हाली की ही मुनाजाते-बेवा के कुछ शेर पेश करता हूं।

तहसीलदार : अच्छा, अब अपना कोई पसंदीदा शेर सुनाइए जिसका विषय बेवा न हो।

बिशारत :

तोड़ डाले जोड़ सारे बांध कर बंदे-कफन

गोर की बगली से चित है पहलवां, कुछ भी नहीं

तहसीलदार : किसका शेर है?

बिशारत : जबान का शेर है।

तहसीलदार : ऐ सुब्हानल्ला! कुर्बान जाइए, कैसी-कैसी लफ्जी रिआयतें और कयामत के तलामजे बांधे हैं। तोड़ की टक्कर पे जोड़। एक तरफ बांधना दूसरी तरफ बंद। वाह! वाह! इसके बाद बगली कब्र और बगली दांव की तरफ खूबसूरत इशारा, फिर बगली दांव से पहलवान का चित होना। आखिर में चित पहलवान और चित मुर्दा और कुछ भी नहीं, कह के दुनिया की नश्वरता को तीन शब्दों में भुगता दिया। ढेर सारे अलंकारों को एक शेर में बंद कर देना चमत्कार नहीं तो और क्या है। ऐसा ठुका हुआ, इतना पुख्ता और इतना खराब शेर कोई उस्ताद ही कह सकता है।

मौलवी मुजफ्फर : आप सादगी पसंद करते हैं या दिखावा।

बिशारत : सादगी।

मौलवी मुजफ्फर : शादीशुदा हैं या छड़े दम।

बिशारत : जी, गैर शादीशुदा।

मौलवी मुजफ्फर : फिर आप इतनी सारी तन्ख्वाह का क्या करेंगे? यतीमखाने को कितना मासिक चंदा देंगे?

तहसीलदार : आपने शायरी कब शुरू की? अपना पहला शेर सुनाइए।

बिशारत :

है इंतजारे-दीद में लाशा उछल रहा

हालांकि कू-ए-यार अभी कितनी दूर है

तहसीलदार : वाह वा! 'हालांकि' का जवाब नहीं वल्लाह ऊसर जमीन में 'लाशा' ने जान डाल दी और 'इतनी दूर' में कुछ न कह कर कितना कुछ कह दिया।

बिशारत : आदाब बजा लाता हूं।

तहसीलदार : छोटी बहर में क्या कयामत का शेर निकाला है। शेर में शब्दों की मितव्ययिता के अलावा विचार की भी कृपणता पाई जाती है।

बिशारत : आदाब।

तहसीलदार : (कुत्ता भौंकने लगता है) मुआफ कीजिए, मैं आपके कुत्ते के भौंकने में खलल डाल रहा हूं। यह बताइये कि जिंदगी में आपकी क्या Ambition है?

बिशारत : यह नौकरी मिल जाये।

तहसीलदार : तो समझिये मिल गयी। कल सुब्ह अपना सामान बर्तन-भांडे ले आइएगा। साढ़े ग्यारह बजे मुझे आपकी Joining Report मिल जानी चाहिए। तन्ख्वाह आपकी चालीस रुपये माहवार होगी।

मौलवी मुजफ्फर चीखते और पैर पटकते रह गये कि सुनिये तो। ग्रेड पच्चीस रुपये का है, तहसीलदार ने उन्हें झिड़क कर खामोश कर दिया और फाइल पर अंग्रेजी में यह नोट लिखा कि इस उम्मीदवार में वो तमाम अच्छे गुण पाये जाते हैं जो किसी भी लायक और Ambitious नौजवान को एक कामयाब पटवारी या क्लास का टीचर बना सकते हैं, बशर्ते कि मुनासिब निगरानी और रहनुमाई मिले। मैं अपनी सारी व्यस्तताओं के बावजूद इसे अपना कुछ वक्त और ध्यान देने के लिए तैय्यार हूं। शुरू में मैंने इसे 100 में से 80 नंबर दिये थे मगर बाद में पांच नंबर सुलेख के बढ़ाये लेकिन पांच नंबर शायरी के काटने पड़े।

विशेष मूली और अच्छा - सा नाम

बिशारत ने दोपहर का खाना यतीमखाने के बजाय मौलवी बादल (इबादुल्ला) के यहां खाया जो इसी स्कूल में फारसी पढ़ाते थे। मक्खन में चुपड़ी हुई गरम रोटी के साथ आलू का भुरता और लहसुन की चटनी मजा दे गयी। मौलवी बादल ने अपनी आत्मीयता और सहयोग का यकीन दिलाते हुए कहा कि बरखुरदार! मैं तुम्हें खोंते रफू करना, आटा गूंधना और हर तरह का सालन पकाना सिखा दूंगा। खुदा की कसम! बीबी की जुरूरत ही महसूस न होगी। लगे हाथ उन्होंने मूली की भुजिया बनाने की जो तरकीब बतायी वो खासी पेचीदा और खतरनाक थी। इसलिए कि इसकी शुरुआत मूली के खेत में पौ फटने से पहले जाने से होती थी। उन्होंने हिदायत की कि देहात की तहजीब के खिलाफ लहलहाते खेत में तड़के मुंह उठाये न घुस जाओ, बल्कि मेंड़ पर पहले इस तरह खांसो-खंखारो जिस तरह बेकिवाड़ या टाट के परदे वाले पाखाने में दाखिल होने से पहले खंखारते हैं। इसके बाद यह हिदायत की कि टखने से एक बालिश्त ऊंचा लहंगा और हंसली से दो बालिश्त नीची चोली पहनने वाली खेत की मालकिन धापां से ताजा गदरायी हुई मूली की जगह और उसे तोड़ने की इजाजत कैसे ली जाये कि नजर देखने वाली पर न पड़े। यह भी इरशाद फरमाया कि चमगादड़ सब्जियां वायु खोलने वाली होती हैं। इससे उनका तात्पर्य उन पौधों से था जो अपने पैर आसमान की तरफ किये रहते हैं। जैसे गाजर, गोभी, शलगम। फिर उन्होंने पत्ते देख कर यह पहचानना बताया कि कौन-सी मूली तीखी फुफ्फुस निकलेगी और कौन-सी जड़ेली और मछेली। ऐसी तेजाबी कि खाने वाला खाते वक्त मुंह पीटता फिरे और खाने के बाद पेट पीटता फिरे और कोई ऐसी सुडौल चिकनी और मीठी कि बेतहाशा जी करे कि काश गज भर की होती। उन्होंने यह भी बताया कि कभी गलती से तेजाबी मूली उखाड़ लो तो फेंको मत। इसका अर्क निकाल कर ऊंट की खाल की कुप्पी में भर लो। चालीस दिन बाद जहां दाद या एक्जिमा हो वहां फुरैरी से लगाओ। अल्लाह ने चाहा तो खाल ऐसी आयेगी जैसी नवजात बच्चे की। कुछ अर्से बाद जैसे ही बिशारत ने अपने मामू की एक्जिमा की फुन्सियों पर इस अर्क की फुरेरी लगाई, तो बुजुर्गवार बिल्कुल नवजात बच्चे की तरह चीखें मारने लगे।

बिशारत इंटरव्यू से फारिग हो कर प्रसन्नचित निकले तो कुत्ता उनके साथ नत्थी था। उन्होंने हलवाई से तीन पूरियां और रबड़ी खरीद कर उसे खिलाई। वो उनके साथ लगा-लगा मौलवी बादल के यहां गया। इंटरव्यू में आज जो चमत्कार उनके साथ हुआ उसे उन्होंने उसी के दम-कदम का जहूरा समझा। कानपुर वापस जाने के लिए वो बस में सवार होने आये तो वो उनसे पहले छलांग लगा कर बस में घुस गया, जिससे मुसाफिरों में पहले खलबली, फिर भगदड़ मच गयी। क्लीनर उसे इंजन स्टार्ट करने वाले हैंडिल से मारने दौड़ा तो उन्होंने लपक कर उसकी कलाई मरोड़ी। कुत्ता लारी की छत पर खड़ा उनके साथ कानपुर आया। ऐसे वफादार कुत्ते को कुत्ता कहते उन्हें शर्म आने लगी। उन्होंने उसी वक्त उसका नाम बदल कर लार्ड डलहौजी रखा, जो उस जनरल का नाम था जिससे मुकाबला करते हुए टीपू की मृत्यु हुई थी। कानपुर पहुंचकर उन्होंने पहली बार उस पर हाथ फेरा। उन्हें अंदाजा नहीं था कि कुत्ते का जिस्म इतना गर्म होता है। उस पर जगह-जगह लड़कों के पत्थरों से पड़े हुए जख्मों के निशान थे। उन्होंने उसके लिए एक खूबसूरत कालर और जंजीर खरीदी।

हुजूर फैज गंजूर तहसीलदार साहब

दूसरे दिन बिशारत अपनी सारी दुनिया टीन के ट्रंक में समेट कर धीरजगंज आ गये। ट्रंक पर उन्होंने एक पेंटर को चार आने दे कर अपना नाम, डिग्री, तख्ल्लुस सफेदे से पेंट करवा लिए। जो बड़ी कठिनाई से दो लाइनों में (बक्से की) समा पाये। यह ट्रंक उनकी पैदाइश से पहले का था, मगर उसमें चार लीवर वाला नया पीतली ताला डाल कर लाये थे। इसमें कपड़े इतने कम थे कि रास्ते भर, अंदर रखा हुआ मुरादाबादी लोटा ढोलक बजाता आया। इसके शोर मचाने की एक वज्ह यह भी हो सकती है कि उनके खजाने में यह ताजा कलई किया हुआ लोटा ही सबसे कीमती चीज था। अभी उन्होंने मुंह भी नहीं धोया था कि तहसीलदार का चपरासी एक लट्ठ और यह पैगाम ले कर आ धमका कि तहसीलदार साहब बहादुर ने याद फर्माया है। उन्होंने पूछा, 'अभी!' बोला 'और क्या! फौरन से पेश्तर! बिलमवाजा, असालतन' चपरासी के मुंह से यह मुंशियाना जबान सुन कर उन्हें हैरत हुई और खुशी भी, जो उस वक्त खत्म हुई जब उसने यह पैगाम लाने का इनाम, दोपहर का खाना और सफरखर्च इसी जबान में तलब किया। कहने लगा तहसील में यही दस्तूर है। बंदा तो चाकर है। जब तक वो इन इच्छाओं पर गौर करें, वो लट्ठ की चांदी की शाम को मुंह की भाप और अंगोछे से रगड़-रगड़ कर चमकाता रहा।

झुलसती, झुलसाती दोपहर में बिशारत डेढ़-दो मील पैदल चलकर हांपते-कांपते तहसीलदार के यहां पहुंचे तो वो दोपहर की नींद ले रहा था। एक-डेढ़ घंटे इंतजार के बाद वो अंदर बुलाये गये तो खस की टट्टी की महकती ठंडक जिस्म में उतरती चली गयी। लू से झुलसती हुई आंखों में एक दम ठंडी-ठंडी रौशनी-सी आ गयी। ऊपर छत से लटका हुआ झालरदार पंखा हाथी के कान की तरह हिल रहा था। फर्श पर बिछी चांदनी की उजली ठंडक उनकी जलती हुई हथेली को बहुत अच्छी लगी। जब इसकी तपिश से चांदनी गर्म हो जाती तो वो हथेली खिसका कर दूसरी जगह रख देते। तहसीलदार बड़े तपाक और प्यार से पेश आया। बर्फ में लगे हुए तरबूज की एक फांक और छिले हुए सिंघाड़े पेश करते हुए बोला, 'तो अब अपने कुछ शेर सुनाइए जो बेतुके न हों, छोटी बहर में न हों, वज्न और तहजीब से गिरे हुए न हों।' बिशारत शेर सुना कर दाद पा चुके तो उसने अपनी एक ताजा नज्म सुनायी।

वो अपनी रान खुजाये चला जा रहा था। टांगों पर मढ़े हुए चूड़ीदार पाजामे में न जाने कैसे एक भुनगा घुस गया था और वो ऊपर ही ऊपर चुटकी से मसलने की बार-बार कोशिश कर रहा था। कुछ देर बाद एक सुंदर कमसिन

नौकरानी नाजो ताजा तोड़े हुए फालसों का शर्बत लाई। तहसीलदार कनखियों से बराबर बिशारत को देखता रहा कि नाजो को देख रहे हैं या नहीं। मोटी मलमल के सफेद कुरते में कयामत ढा रही थी। वो गिलास देने के लिए झुकी तो उसके बदन से जवान पसीने की महक आई और उनका हाथ उसके चांदी के बटनों के घुंघरुओं को छू गया। उसका आड़ा पाजामा रानों पर से कसा हुआ था और पैबंद के टांके दो-एक जगह इतने बिकसे हुए थे कि नीचे चमेली बदन खिलखिला रहा था। शरबत पी चुके तो तहसीलदार कहने लगा कि आज तो खैर आप थके हुए होंगे, कल से मेरे बच्चों को उर्दू पढ़ाने आइए। जरा खिलंदड़े हैं। तीसरे ने तो अभी कायदा शुरू ही किया है। बिशारत ने अनाकानी की तो एकाएक उसके तेवर बदल गये। लहजा कड़ा और कड़वा होने लगा। कहने लगा, जैसा कि आपको बखूबी मालूम था, है और हो जायेगा, आपकी अस्ल तन्ख्वाह पच्चीस रुपये ही है। मैंने जो स्वयं पंद्रह रुपये बढ़ाकर चालीस कर दिये तो दरअस्ल पांच रुपये फी बच्चा ट्यूशन थी, वरना मेरा दिमाग थोड़े ही खराब हुआ था कि कालेज के निकले हुए नये बछड़े को मुसलमानों की गाढ़ी कमाई के चंदे से पंद्रह रुपये की नज़्र पेश करता। आखिर को ट्रस्टी की कुछ जिम्मेदारी होती है। आपको मालूम होना चाहिए कि खुद स्कूल के हैडमास्टर की तन्ख्वाह चालीस रुपये है और वो तो बी.ए., बी.टी. (अलीगढ़) सैकिंड डिवीजन है। अमरोहे का है मगर निहायत शरीफ सय्यद है। अलावा, आप की तरह 'सर मुंडवा के इश्किया शेर नहीं कहता।'

अंतिम सात शब्दों में उसने उनके व्यक्तित्व का खुलासा निकाल कर रख दिया और वो ढह गये। उन्होंने बड़ी विनम्रता से गिड़गिड़ा कर पूछा, 'क्या कोई Alternative बंदोबस्त नहीं हो सकता।' तहसीलदार चिढ़ावनी हंसी हंसा। कहने लगा, 'जुरूर हो सकता है। वो ऑल्टरनेटिव बंदोबस्त ये है कि आपकी तन्ख्वाह वही पच्चीस रुपये रहे और आप इसी में मेरे बच्चों को भी पढ़ायेंगे। आया खयाले-शरीफ में? बर्खुरदार, अभी आपने दुनिया नहीं देखी। मैं आपके हाथ में दो कबूतर देता हूं, आप यह तक तो बता नहीं सकते कि इनमें मादा कौन सी है?

उनके जी में तो बहुत आया कि पलट कर जवाब दें कि कोलंबस साहब, अगर इसी डिस्कवरी का नाम दुनिया देखना है, तो यह काम कबूतर कहीं बेहतर तरीके से अंजाम दे सकते हैं। इतने में तहसीलदार दो-तीन बार जोर-जोर से खांसा तो थोड़ी दूर एक कोने में दुबका धूल में अटा कानूनगो लपक कर बिशारत के पास आया और उनकी ठुड्डी में हाथ देते हुए कहने लगा, आप सरकार के सामने कैसी बचकानी बातें कर रहे हैं। यह इज्जत किसे नसीब होती है। सरकार झूठों भी इशारा कर दें तो लखनऊ यूनिवर्सिटी के सारे प्रोफेसर हाथ बांधे सर के बल चल कर आयें। सरकार को तीन बार डिप्टी कलेक्टरी ऑफर हो चुकी है मगर सरकार ने हर बार हिकारत से ठोकर मार दी कि मैं स्वार्थी हो जाऊं और डिप्टी कलेक्टर बन कर चला जाऊं तो तहसील धीरजगंज का स्टाफ और प्रजा कहेगी कि सरकार हमें बीच मंझधार में किस पर छोड़े जाते हो।

बिशारत स्तब्ध रह गये, मर्द ऐसे मौकों पर खून कर देते हैं और नामर्द खुदकुशी कर लेते हैं। उन्होंने यह सब कुछ नहीं किया, नौकरी की जो कत्ल और खुदकुशी दोनों से कहीं जियादा मुश्किल है।

यह रुत्ब - ए - बुलंद मिला जिसको मिल गया

तहसीलदार ने जनाने से अपने बेटों को बुलाया और उनसे कहा - चचाजान को आदाब करो। यह कल से तुम्हें पढ़ाने आयेंगे। बड़े और छोटे ने आदाब किया। मंझले ने दायें हाथ से ओक बनाया और झुक-झुक कर दो बार आदाब करने के बाद तीसरी बार झुका तो साथ ही मुंह भी चिढ़ाया।

अब तहसीलदार का मूड बदल चुका था। लड़के लाइन बना कर वापस चले गये तो वो बिशारत से कहने लगा 'परसों ज्योग्राफी की टीचर की जगह के लिए इंटरव्यू है। मैं आपको सैलेक्शन कमेटी का मेंबर बना रहा हूं। धार्मिक विषयों का टीचर इस लायक नहीं कि कमेटी का मेंबर रहे। मौली मज्जन को खबर कर दी जायेगी।' यह सुनते ही बिशारत को गुदगुदियां होने लगीं। उस वक्त कोई उन्हें वायसराय बना देता तब भी इतनी खुशी न होती। अब वो भी इंटरव्यू में अच्छे-अच्छों को खूब रगेदेंगे और पूछेंगे कि मियां तुम डिग्रियां बगल में दबाये अफलातून बने फिरते हो, जरा यह तो बताओ कि दुनिया गोल क्यों बनायी गयी है? बड़ा मजा आयेगा। यह इज्जत किसे नसीब होती है कि अकारण जलील होने के फौरन बाद दूसरों को अकारण जलील करके हिसाब बराबर कर दे। उनके घायल स्वाभिमान के सारे घाव पल भर में भर गये।

मारे खुशी के वो यह भी स्पष्ट करना भूल गये कि बंदा हर इंटरव्यू के बाद न आवाज लगायेगा, न घंटा बजायेगा। चलने लगे तो तहसीलदार ने मटमैले कानूनगो को आंखों से कुछ इशारा किया और उसने पंद्रह सेर गेहूं और एक हांडी गन्ने के रस की साथ कर दी। उसे यह भी हिदायत दी कि कल मास्टर साहब के घर जवासे की एक गाड़ी डलवा देना और बेगार में किसी पन्नीगर को भेज देना कि हाथों-हाथ टट्टी बना दे। उस जमाने में जो लोग खस की क्षमता नहीं रखते थे वो जवासे के कांटों की टट्टी पर सब्र करते थे और जो इस काबिल भी नहीं होते थे, वो खस की पंखिया पर कोरी ठिलिया का पानी छिड़क लेते। उसे झलते-झलते जब नींद का झोंका आता तो 'खसखाना-ओ-बर्फाब की ख्वाबनाक खुन्किर्यों' में उतरते चले जाते।

उर्दू टीचर के कर्मक्षेत्र से बाहर के दायित्व

अगले दिन बिल्कुल तड़के बिशारत अपनी ड्यूटी पर हाजिर हो गये। मौलवी मुजफ्फर ने उनसे ड्यूटी ज्वाइन करने की लिखित रिपोर्ट ली कि 'आज सुब्ह गुलाम ने नियमानुसार चार्ज संभाल लिया।' चार्ज बहुत धोके में डालने वाला शब्द है वरना हकीकत सिर्फ इतनी थी कि जो चीजें चार्ज में दी गयी थीं वो बगैर चार्ज के भी कुछ ऐसी असुरक्षित न थीं।

खादी का डस्टर - डेढ़ अदद, हाथ का पंखा - एक अदद, रजिस्टर हाजरी - एक अदद, मिट्टी की दवात - दो अदद। मौलवी मुजफ्फर ने ब्लैक बोर्ड का डस्टर उन्हें सौंपते हुए चेतावनी दी कि देखा गया है मास्टर साहिबान चाक के मुआमले में बहुत फुजूलखर्ची करते हैं, इसलिए स्कूल की कमेटी ने यह फैसला किया है कि आइंदा मास्टर साहिबान चाक खुद खरीद कर लायेंगे। खजूर के पंखे के बारे में भी उन्होंने सूचना दी कि गर्मियों में एक ही उपलब्ध कराया जायेगा। मास्टर बिल्कुल लापरवाह साबित हुए हैं। दो ही हफ्तों में सारी बुनाई उधड़ कर झंतूरे निकल आते हैं और अक्सर मास्टर साहिबान छुट्टी के दिन स्कूल का पंखा घर में इस्तेमाल करते हुए देखे गये हैं। कई तो इतने आरामतलब और काहिल हैं कि उसी की डंडी से लौंडों को मारते हैं, हालांकि दो कदम पर नीम का पेड़ बेकार खड़ा है। हां! मौलवी मुजफ्फर ने एक होल्डर (लकड़ी का निब वाला कलम) भी उनके चार्ज में दिया जो उनके पूर्ववर्तियों ने दातुन की तरह इस्तेमाल किया था। इसका आधे से अधिक हिस्सा चिंतन-मनन के समय लगातार दांतों में दबे रहने के कारण झड़ गया था। बिशारत को इस गलत इस्तेमाल पर बहुत गुस्सा आया कि वो अब इससे नाड़ा नहीं डाल सकते थे।

चार्ज पूरा होने के बाद बिशारत ने कोर्स की किताबें मांगीं तो मौलवी मुजफ्फर ने सूचना दी कि स्कूल कमेटी के रिजोल्यूशन नं. - 5, तारीख 3 फरवरी 1935 के अनुसार मास्टर को कोर्स की किताबें अपनी जेब से खरीद कर लानी होंगी। बिशारत ने जल कर पूछा 'सब' यानी कि पहली क्लास से लेकर आठवीं तक? फरमाया, 'तो क्या आपका खयाल है आप पहली क्लास के कायदे से आठवीं का इम्तहान दिलवा देंगे।'

मौलवी मुजफ्फर ने चलते-चलते यह भी सूचना दी कि स्कूल कमेटी फिजूल के खर्चे कम करने की गरज से ड्रिल मास्टर की पोस्ट खत्म कर रही है। खाली घंटों में आप पड़े-पड़े क्या करेंगे? स्टाफ-रूम ठाली मास्टरों के ऐंड़ने और लोटें लगाने के लिए नहीं है। खाली घंटों में ड्रिल करा दिया कीजिए, (पेट की तरफ इशारा करके) बादी भी छंट जायेगी। जवान आदमी को चाक-चौबंद रहना चाहिए। बिशारत ने विनम्र अस्वीकार से काम लेते हुए कहा 'मुझे ड्रिल नहीं आती।' बहुत मीठे और धीमे लहजे में उत्तर मिला, 'कोई बात नहीं, कोई भी मां के पेट से ड्रिल करता हुआ तो पैदा नहीं होता, किसी भी लड़के से कहिएगा, सिखा देगा। आप तो माशाअल्लाह से जहीन आदमी हैं। बहुत जल्द सीख जायेंगे। आप तो टीपू सुल्तान और स्पेन के जीतने वाले तारिक का नाम लेते हैं।'

बिशारत बड़ी मेहनत और लगन से उर्दू पढ़ा रहे थे कि दो ढाई हफ्ते बाद मौलवी मुजफ्फर ने अपने दफ्तर में तलब किया और फर्माया कि आप तो मुसलमान के बेटे हैं जैसा कि आपने दरख्वास्त में लिखा था। अब जल्दी से जनाजे की नमाज पढ़ाना और नियाज देना सीख लीजिए। वक्त, बेवक्त, जुरूरत पड़ती रहती है। नमाजे-जनाजा तो कोर्स में भी है। हमारे जमाने में तो स्कूल में शवस्नान भी कंपलसरी था। धार्मिक विषय के टीचर की बीबी पर बाराबंकी में जिन्न दोबारा सवार हो गया है। रातों को चारपाई उलट देता है। उसे उतारने जा रहा है। पिछले साल एक पड़ौसी का जबड़ा और दो दांत तोड़ कर आया था। उसकी जगह आपको काम करना होगा। जाहिर है! उस हरामखोर के बदले काम करने के लिए आसमान से फरिश्ते तो आने से रहे।

तीन-चार दिन का भुलावा दे कर मौलवी मुजफ्फर ने पूछा, 'बर्खुरदार, आप इतवार को क्या करते रहते हैं?' बिशारत ने जवाब दिया, 'कुछ नहीं।' फरमाया, 'तो यूं कहिए! केवल सांस लेते रहते हैं। यह तो बड़ी बुरी बात है। सर मुहम्मद इकबाल ने कहा है 'कभी ऐ नौजवां मुस्लिम तदब्बुर भी किया तूने,' जवान आदमी को इस तरह हाथ पर हाथ धरे बेकार नहीं बैठना चाहिए। जुमे को स्कूल की छुट्टी जल्दी हो जाती है। नमाज के बाद यतीमखाने की चिट्ठी-पत्री देख लीजिए। आप तो घर के आदमी हैं आप से क्या परदा, आपकी तनख्वाहें दरअस्ल यतीमखाने के चंदे से ही दी जाती हैं। तीन महीने से रुकी हुई हैं। मेरे पास इलाहदीन का चराग तो है नहीं। दरअस्ल यतीमों पर इतना खर्च नहीं आता, जितना आप हजरात पर। इतवार को यतीमखाने के चंदे के लिए अपनी साइकिल ले कर निकल जाया कीजिए। पुण्य कार्य भी है और आपको बेकारी की लानत से भी छुटकारा मिल जायेगा, सो अलग। आस-पास के देहात में अल्लाह के करम से मुसलमानों के काफी घर हैं। तलाश करने से खुदा मिल जाता है। चंदा देने वाले किस खेत की मूली हैं।'

बिशारत अभी सोच ही रहे थे कि चंदा देनेवाले को कैसे पहचानें और ढूंढ़ेंगे कि इतने में सर पर दूसरा बम गिरा। मौलवी मुजफ्फर ने कहा कि चंदे के अलावा आस-पास के देहात से सही यतीम भी तलाश कर लाने होंगे।

आइडियल यतीम का हुलिया

यतीम जमा करना बिशारत को चंदा जमा करने से भी मुश्किल नजर आया, इसलिए कि मौली मज्जन ने यह पख लगा दी कि यतीम तंदुरुस्त और मुस्टंडे न हों। सूरत से भी दीन, दरिद्र मालूम होने चाहिए। लंबे-चौड़े न हों, न इतने छोटे टुइयां कि चोंच में चुग्गा देना पड़े। न इतने ढऊ के ढऊ और पेटू कि रोटियों की थई-की-थई थूर जायें और डकार तक न लें, पर ऐसे गुलबदन भी नहीं कि गाल पर एक मच्छर का साया पड़ जाये तो शहजादा गुलफाम को मलेरिया हो जाये। फिर बुखार में दूध पिलाओ तो एक ही सांस में बाल्टी की बाल्टी डकोस जायें। बाजा-बाजा लौंडा टखने तक पोला होता है। लड़के बाहर से कमजोर मगर अंदर में बिल्कुल तंदुरुस्त होने चाहिए। न ऐसे नाजुक कि पानी भरने कुएं पर भेजो तो डोल के साथ खुद भी खिंचे कुएं के अंदर चले जा रहे हैं। भरा घड़ा सर पे रखते ही कत्थकों-नचनियों की तरह कमर लचका रहे हैं। रोज एक घड़ा तोड़ रहे हैं। जब देखो हराम की औलाद सुबूत में टूटे घड़े का मुंह लिए चले आ रहे हैं। अबे मुझे क्या दिखा रहा है! ये हंसली अपनी मय्या-बहना को पहना। छोटे कद और बीच की उम्र के हों। इतने बड़े और ढीठ न हों कि थप्पड़ मारो तो घंटे भर तक हाथ झनझनाता रहे और उन हरामियों का बाल भी बांका न हो। जाड़े में जियादा जाड़ा न लगता हो। यह नहीं कि जरा-सी सर्दी बढ़ जाये तो सारे कस्बे में कांपते, कंपकंपाते, किटकिटाते फिर रहे हैं और यतीमखाने को मुफ्त में बदनाम कर रहे हैं। यह जुरूर तसदीक कर लें कि रात को बिस्तर में पेशाब न करते हों। खानदान में ऐब और सर में लीखें न हों। उठान के बारे में मौली मज्जन ने स्पष्ट किया कि इतनी संतुलित बल्कि हल्की हो कि हर साल जूते और कपड़े तंग न हों। अंधे, काने, लूले, लंगड़े, गूंगे, बहरे न हों मगर लगते हों। लौंडे सुंदर हरगिज न हों, मुंह पर मुंहासे और नाक लंबी न हो। ऐसे लौंडे आगे चलकर लूती (जनखे, Gay) निकलते हैं। वो आइडियल यतीम का हुलिया बयान करने लगे तो बार-बार बिशारत की तरफ इस तरह देखते कि जैसे आर्टिस्ट पोट्रेट बनाते वक्त मॉडल का चेहरा देख-देख कर आउट लाइन उभारता है। वो बोलते रहे मगर बिशारत का ध्यान कहीं और था। उनके जहन में एक-से-एक मनहूस तस्वीरें उभर रहीं थीं, जिसमें वो खुद को किसी तरह फिट नहीं कर पा रहे थे।

मसनवी मौलाना रूम और यतीमखाने का बैंड

पहला दृश्य : ट्रेन का गार्ड हरी झंडी हाथ में लिए सीटी बजा रहा है। छह-सात लड़के लपक कर चलती ट्रेन के थर्ड क्लास कंपार्टमेंट में चढ़ते हैं, जिससे अभी-अभी एक सुर्मा और शिलाजीत बेचने वाला उतरा है। सब नेकर पहने हुए हैं, सिर्फ एक लड़के की कमीज के बटन सलामत हैं, लेकिन आपस की लड़ाई में दुश्मन उसकी दाहिनी आस्तीन जड़ से नोच ले गया। किसी के पैर में जूता नहीं, लेकिन टोपी सब पहने हुए हैं। एक लड़के के हाथ में बड़ा-सा फ्रेम है जिसमें जिले के एक गुमनाम लीडर का सर्टिफिकेट जड़ा हुआ है। कंपार्टमेंट में घुसते ही लड़कों ने कोहिनियों और धक्कों से अपनी जगह बना ली। जैसे ही ट्रेन सिगनल से आगे निकली, सबसे बड़े लड़के ने रेजगारी से भरा हुआ टीन का गोलक झुनझुने की तरह बजाना शुरू किया। डिब्बे में खामोशी छा गयी। मांओं की गोद में रोते हुए बच्चे सहम कर दूध पीने लगे और दूध पीते हुए बच्चे दूध छोड़कर रोने लगे। मर्दों ने सामने बैठी औरतों को घूरना और उनके मियां ने ऊंघना छोड़ दिया। जब सब यात्री अपना-अपना काम रोक कर लड़के की तरफ देखने लगे तो उसने अपना गोलक-राज बंद किया। उसके साथियों ने अपने मुंह आसमान की तरफ कर लिए और आसमानी ताकतों से सीधा संबंध बना लेने के सुबूत में सबने एक साथ आंखों की पुतलियां इतनी ऊपर चढ़ा लीं कि सिर्फ सफेदी दिखायी देने लगी। फिर सब मिलकर इंतहाई मनहूस लय में कोरस गाने लगे।

हमारी भी फरियाद सुन लीजिए

हमारे भी इक रोज मां - बाप थे

थर्ड क्लास के डिब्बे में यतीम-खाने के जो लड़के घुसे उन सबकी आवाजें फट कर कभी की बालिग हो चुकी थीं, सिर्फ एक लड़के का कंठ नहीं फूटा था, यही लड़का चील जैसी आवाज में कोरस को लीड कर रहा था। उस जमाने में पेशावर से ट्रावनकोर और कलकत्ते से कराची तक रेल में सफर करने वाला कोई यात्री न होगा जो इस मनहूसियत से भरे गाने और इसकी घर बर्बाद कर देने वाली लय से अपरिचित हो। जब से उपमहाद्वीप में रेल और यतीमखाने आये हैं, यही एक धुन चल रही है। इसी तरह महाद्वीप के तीनों भाग हिंदुस्तान, पाकिस्तान, बंगलादेश में आदमियों से बेजार कोई शख्स मसनवी मौलाना रूम की ऐसी वाहियात मौलवियाना धुन कंपोज करके गया है कि पांच सौ साल से ऊपर गुजर गये, इसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। शेर को इस तरह नाक से गा कर सिर्फ वही मौलवी पढ़ सकता है जो गाने को वाकई हराम समझकर गाता हो। किसी शख्स को गाने, सूफीज्म, फारसी और मौलवी चारों से एक ही समय में नफरत करानी हो तो मसनवी के दो शेर इसी धुन में संवा दीजिये। 'सुना दीजिये' हमने इसलिए नहीं कहा कि ये लय सिर्फ ऐसे शख्स के गले से निकल सकती है जिसने जिंदगी में किसी ईरानी को फारसी बोलते न सुना हो और जिसके गले से मुफ्त की मुर्गी के अलावा कोई चीज न उतरी हो।

दूसरा दृश्य : यतीमखाने का बैंड बज रहा है। आगे-आगे सर को दायें बायें झुलाता बैंड मास्टर चल रहा है। जिस तरह पहलवान, फौज के जवान और कुछ लड़कियां सीना निकाल कर चलती हैं, उसी तरह ये पेट निकाल कर चल रहा है। कुछ लड़कों के हाथों में पीतल के भौंपूनुमा बाजे हैं जो जलेबी और Angry Young Man की तरह बल खाके अंत में बड़ी आंत की शक्ल में समाप्त होते हैं। यूं तो इन बाजों की टोंटी लड़कों ने अपने होठों से लगा रखी है, लेकिन उन्हें फूंकने, धौंकने का गरीबों में दम कहां। लिहाजा अधिकतर समय ढोल और बांसुरी ही बजती रहती है। कई बार बांसुरी की भी सांस उखड़ जाती है और अकेला ढोल सारे ऑरकेस्ट्रा के कर्तव्य पूरे करता है। मिर्जा कहते हैं कि ऐसा बैंड बाजा तो खुदा दुश्मन की शादी में भी न बजवाये। बैंड की उजाड़धुन भी सारे उपमहाद्वीप में एक ही थी, लेकिन हिंदुओं और मुसलमानों के बैंड में कुछ दिलचस्प अंतर थे। उदाहरण के लिए मुसलमान आमतौर पर मंजीरे नहीं बजाते थे और हिंदुओं के अनाथ आश्रम के बैंड में ढोल बजाने वाला इतनी मस्ती से घूम-घूम के ढोल नहीं पीटता था कि तुर्की टोपी का फुंदना हर चोट पर 360 डिग्री का चक्कर लगाये। हिंदू अनाथ लड़के फुंदने के बजाय अपनी अस्ली चोटियां इस्तेमाल करते थे। दूसरे, हिंदुओं में ये बैंड केवल अनाथ-आश्रम के यतीम बजाते थे। मुसलमानों में यतीम होने की शर्त नहीं थी। चुनांचे कराची के कई स्कूलों में हमने स्कूल बैंड को स्पोर्टस डे पर Marching Songs भी उसी धुन पर बजाते सुना है।

हमारे भी इक रोज मां-बाप थे

हमारे भी इक रोज मां-बाप थे

' कुछ इलाज इसका 'शहंशाहे-गजल' है कि नहीं?' इस लाइन (हमारे भी इक रोज मां-बाप थे) की खूबी ये है कि इसके सात लफ्ज चार टुकड़ों पर आधारित हैं और ये चारों ही कुंजी (चाबी) की हैसियत रखते हैं। हमारे भी / इकरोज / मां-बाप / थे। आप किसी भी टुकड़े पर जोर देकर पढ़ें, बेकसी और मनहूसियत का नयी पर्त उभरेगी। हद ये कि 'थे' भी पूरी लाइन के माने, दिशा, लहजा बदल के रख देगा। थे, ए, ए, ए! ऐसे चौमुखे मिसरे बड़े-बड़े शायरों को नसीब नहीं होते। अलबत्ता मेंहदी हसन अपनी गायकी से शेर के जिस लफ्ज को चाहें केंद्रीय बना देते हैं। इनमें जहां एक हजार खूबियां हैं वहां एक बुरी ये पड़ गयी है कि अक्सर अपनी शायरी की समझ का सुबूत देने के

लिए शेर का कोई-सा लफ्ज, जिस पर उन्हें कुंजी की हैसियत होने का शक हो जाये, पकड़ के बैठ जाते हैं। अलाप रोक के श्रोताओं को नोटिस देते हैं कि अब जरा जिगर थाम के बैठो शब्दार्थ के खजाने का तिलिस्म दिखाता हूं। फिर आधा घंटा तक उस लफ्ज को भंभोड़ते हैं, उसे तरह-तरह से पटखियां देकर साबित करते हैं कि सारा अर्थ इस एक लफ्ज में बंद है। बाकी सारे लफ्ज केवल तबला बजाने के लिए हैं, यानी केवल शेर का वज्न पूरा करने और ठेका लगाने के लिए। मकसद ये जताना होता है कि मैं शेर समझ कर ही नहीं, समझा-समझा कर गा रहा हूं। उनकी देखा-देखी औरों ने खुद समझे बगैर ही समझा-समझा कर गाना शुरू कर दिया है।

होता ये है कि मेंहदी हसन कभी इस लफ्ज को खदेड़ते हुए राग और गजल की No-Man's Land में छोड़ आते हैं, और कभी 'कबड्डी-कबड्डी' कहते हुए उसे अपने पाले में ले आते हैं। फिर फ्री स्टाइल में उसके विभिन्न हिस्सों को अपनी ताकत और श्रोताओं की बर्दाश्त की हद तक तोड़ते, मरोड़ते और खींचते हैं। वो बेदम होके सांस छोड़ दे तो उसे फफेड़ने लगते हैं। अभी, लंबी सी गिटकरी के बाद, अजीब सा मुंह बनाये, उसे पपोल-पपोल के ये देख रहे थे और अपने ही मजे से आंखें बंद किये हुए थे। जरा सी देर में उसकी हड्डी तक चिचोड़ के तबलिए के सामने फेंक दी कि उस्ताद! आओ अब कुछ देर जुगलबंदी हो गये। कभी सीधे-साधे राग के अंग जी भर के झिंझोड़ने के बाद उसकी जती पे अपने कढ़े हुए रेशमी कुर्ते, जरी की वास्कट और हार्मोनियम समेत चढ़ जाते हैं। वो उठने की कोशिश करता है तो चूम-चाट के वापस लिटाल देते हैं।

चिमटे रहो सीने से अभी रात पड़ी है

और फिर वो दुलर्भ क्षण भी आता है जब ये राग भोगी उसके मुंह में अपनी जबान इस तरह रख देता है कि रागिनी चीख उठती है।

तुम अपनी जबां मेरे मुंह में रखे

जैसे पाताल से मेरी जां खींचते हो

अंत में, घंटों रगेदने के बाद उसे थप्पड़ मार के छोड़ देते हैं कि 'जा अबके छोड़ दिया, आइंदा यारों के सामने इस तरह न आइयो'

'जिसको हो दीनो-दिल अजीज मेरे गले में आये क्यों'

अच्छा ! आप उस लिहाज से कह रहे हैं

बिशारत की नियुक्ति तो उर्दू पढ़ाने के लिए हुई थी, मगर टीचरों की कमी के कारण उन्हें सभी विषय पढ़ाने पड़ते थे, सिवाय धार्मिक विषय के। जामा मस्जिद धीरजगंज के पेश-इमाम ने यह फत्वा दिया था कि जिस शख्स के घर में कुत्ता हो वो धर्मशास्त्र पढ़ाये तो पढ़नेवालों को आवश्यक रूप से स्नान करना पड़ेगा। बिशारत का गणित, ज्योमेट्री और अंग्रेजी बहुत कमजोर थी, लेकिन वो इस हैंडीकैप से जरा जो परेशान हुए हों। पढ़ाने के गुर उन्होंने मास्टर फाखिर हुसैन से सीखे थे। मास्टर फाखिर हुसैन का विषय तो इतिहास था लेकिन अक्सर उन्हें मास्टर मेंडीलाल की इंग्लिश की क्लास भी लेनी पड़ती थी। मास्टर मेंडीलाल का गुर्दा और ग्रामर दोनों जवाब दे चुके थे।

अक्सर देखा गया था कि जिस दिन नवीं-दसवीं की ग्रामर की क्लास होती वो घर बैठ जाता। उसके गुर्दे में ग्रामर का दर्द उठता था। सब टीचर अपने विषय के अतिरिक्त दूसरा विषय पढ़ाने में कचियाते थे। मास्टर फाखिर हुसैन अकेले शिक्षक थे जो हर विषय पढ़ाने के लिए हर वक्त तैयार रहते, हालांकि उन्होंने बी.ए., वाया भटिंडा किया था मतलब ये कि पहले मुंशी फाजिल किया था। इंग्लिश ग्रामर उन्हें बिल्कुल नहीं आती थी। वो चाहते तो अंग्रेजी ग्रामर का घंटा हंस बोल कर या नसीहत करने में गुजार सकते थे लेकिन उनकी अंतरात्मा ऐसे समय नष्ट करने के कामों की अनुमति नहीं देती थी। दूसरे मास्टरों की तरह वो लड़कों को व्यस्त रखने के लिए इमला भी लिखवा सकते थे, मगर वो इस बहाने को अपनी विद्वत्ता का अपमान समझते थे, इसलिए जिस भारी पत्थर को सब चूम कर छोड़ देते वो उसे अपने गले में बांध कर ज्ञान के समुद्र में कूद पड़ते। पहले ग्रामर की अहमियत पर लैक्चर देते हुए यह बुनियादी नुक्ता बयान करते कि जैसे हमारी गायकी की बुनियाद तबले पर है, गुफ्तगू की बुनियाद गाली पर है, इसी तरह अंग्रेजी की बुनियाद ग्रामर पर है। अगर कमाल हासिल करना है तो बुनियाद मजबूत करो। मास्टर फाखिर हुसैन की अपनी अंग्रेजी, इमारत निर्माण का अद्भुत नमूना और संसार के सात आश्चर्यों में से एक थी, मतलब यह कि बगैर नींव के थी। कई जगह तो छत भी नहीं थी और जहां थी, उसे चमगादड़ की तरह अपने पैरों की अड़वाड़ से थाम रखा था। उस जमाने में अंग्रेजी भी उर्दू में ही पढ़ायी जाती थी, लिहाजा कुछ गिरती हुई दीवारों को उर्दू शेरों के पुश्ते थामे हुए थे। बहुत ही मंझे हुए और घिसे हुए मास्टर थे। कड़े-से-कड़े समय में आसानी से निकल जाते थे। मिसाल के तौर पर Parsing करवा रहे हैं। अपनी जानकारी में निहायत आसान सवाल से शुरुआत करते। ब्लैक बोर्ड पर 'टू गो' लिखते और लड़कों से पूछते, अच्छा बताओ यह क्या है? एक लड़का हाथ उठा कर जवाब देता, Simple Infinite! स्वीकार में गर्दन हिलाते हुए फर्माते, बिल्कुल ठीक, लेकिन देखते कि दूसरा उठा हुआ हाथ अभी नहीं गिरा। उससे पूछते, आपको क्या तकलीफ है? वो कहता, नहीं सर! Noun Infinite है। फर्माते अच्छा आप उस लिहाज से कह रहे हैं। अब क्या देखते हैं कि क्लास का सबसे जहीन लड़का अभी तक हाथ उठाये हुए है। उससे कहते, आपका सिगनल अभी तक डाउन नहीं हुआ। कहिए! कहिए! वो कहता, ये Gerundial Infinite है जो Reflexive Verb से अलग होता है, नेस्फील्ड ग्रामर में लिखा है। इस मौके पर मास्टर फाखिर हुसैन को पता चल जाता कि 'गहरे समंदरों में सफर कर रहे हैं हम।' लेकिन बहुत सहज और ज्ञानपूर्ण अंदाज में फर्माते अच्छा तो आप गोया इस लिहाज के कह रहे हैं। इतने में नजर उस लड़के के उठे हुए हाथ पर पड़ी जो एक कॉन्वेन्ट से आया था और फर-फर अंग्रेजी बोलता था। उससे पूछा, 'वेल! वेल! वेल!' उसने जवाब दिया, "Sir I am afraid, this is an Intransitive Verb" फर्माया, 'अच्छा! तो गोया आप उस लिहाज से कह रहे हैं' फिर I am afraid के मुहावरे से अपरिचित होने के कारण बहुत प्यार भरे अंदाज में पूछा, 'बेटे! इसमें डरने की क्या बात है?'

अक्सर फर्माते कि इंसान को ज्ञान की खोजबीन का दरवाजा हमेशा खुला रखना चाहिए। खुद उन्होंने सारी उम्र बारहदरी में गुजारी। अब ऐसे टीचर कहां जिनके अज्ञान पर भी प्यार आये।

सय्यद सय्यद लोग कहे हैं , सय्यद क्या तुम - सा होगा

अब इस रेखाचित्र में जलील होने के अलग-अलग शेड भरना हम आपकी विचार क्षमता पर छोड़ देते हैं। इन हालात में जैसा वक्त गुजर सकता था, गुजर रहा था। दिसंबर में स्कूल का सालाना जलसा होने वाला था जिसकी तैय्यारियां इतनी जोर-शोर से हो रही थीं कि मौली मज्जन को इतनी फुरसत भी न थी कि मास्टरों की तनख्वाहों

की अदायगी तो दूर, इस विषय पर झूठ भी बोल सकें। दिसंबर का महीना सालाना कौमी जल्सों, मुर्गाबी के शिकार, बड़े दिन पर साहब लोगों को डालियां भेजने, पतंग उड़ाने, कुश्ते खाने और उनके नतीजों से मायूस होने का जमाना होता था। 30 नवम्बर को मौली मज्जन ने बिशारत को बुलवाया तो वो यह समझे कि शायद निजी रूप से एकांत में तन्ख्वाह देंगे ताकि और टीचरों को कानों-कान खबर न हो। मगर वो छूटते ही बोले 'आप अपने शेरों में पराई बहू-बेटियों के बारे में अपने मंसूबों का बयान करने के बजाय कौमी जज्बा क्यों नहीं उभारते। अपने मौलाना हाली पानीपती ने क्या कहा है ऐसी शायरी के बारे में? (चुटकी बजाते हुए) क्या है वो शेर? अमां! वही संडास वाली बात' बिशारत ने मरी-मरी आवाज में शेर पढ़ा

वो शेर और कसाइद का नापाक दफ्तर

उफूनत में संडास है जिससे बेहतर

उनकी बीबी और मौलाना हाली की साझी गलतियां

शेर सुनकर फर्माया, 'आपके हाथों में अल्लाह ने शेर गढ़ने का हुनर दिया है। इसे काम में लाइए, सालाना जलसे में यतीमों पर एक जोरदार नज्म लिखिए। मुस्लिम कौम में चेतना के अभाव, साइंस पर मुसलमानों के अहसानात, सर सय्यद की कुरबानियां, अंग्रेजी-साम्राज्य में अम्न-चैन का दौर-दौरा, चंदे की अहमीयत, तारिक द्वारा स्पेन की विजय और तहसीलदार साहब की क्षमता और अनुभव का जिक्र होना चाहिए। पहले मुझे सुना दीजिएगा। वक्त बहुत कम है।'

बिशारत ने कहा 'मुआफ कीजिएगा, मैं गजल का शायर हूं। गजल में यह विषय नहीं बांधे जा सकते।'

क्रोधित होकर बोले, 'मुआफ कीजिएगा, क्या गजल में सिर्फ पराई बहू-बेटियां बांधी जा सकती है? तो फिर सुनिए, पिछले साल जो उर्दू टीचर था वो डिसमिस इसी बात पर हुआ था। वो भी आपकी तरह शायरी करता था। मैंने कहा, इनआम बांटने के जलसे में बड़े-बड़े लोग आयेंगे। हर दानदाता और बड़े आदमी के आने पर पांच मिनट तक यतीमखाने का बैंड बजेगा। यतीमों की बुरी हालत और यतीमखाने के फायदे और खिदमत पर एक फड़कती हुई चीज हो जाये। तुम्हारी आवाज अच्छी है, गा कर पढ़ना। ऐन जलसे वाले दिन भिनभिनाता हुआ आया। कहने लगा, बहुत सर मारा, पर बात नहीं बनी। इन दिनों तबियत हाजिर नहीं है। मैंने कहा, अमां हद हो गयी। अब क्या हर चपड़कनात मुलाजिम की तबियत के लिए एक अलग रजिस्टर हाजिरी रखना पड़ेगा। कहने लगा, बहुत शर्मिंदा हूं। एक दूसरे शायर की नज्म, मौके के हिसाब से तरन्नुम से पढ़ दूंगा। मैंने कहा, चलो कोई बात नहीं, वो भी चलेगी। बाप रे बाप! उसने तो हद ही कर दी। भरे जलसे में मौलाना हाली पानीपती की मुनाजाते-बेवा (विधवा की ईश्वर से प्रार्थना) के बंद पढ़ डाले। डाइस पर मेरे पास ही खड़ा था। मैंने आंख से, कुहनी के टहूके से, खंखार के, बहुतेरे इशारे किये कि अल्लाह के बंदे! अब तो बस कर। हद ये कि मैंने दायें कूल्हे पर चुटकी काटी तो बायां भी मेरी तरफ करके खड़ा हो गया। स्कूल की बड़ी भद पिटी। सब मुंह पर रूमाल रखे हंसते रहे मगर वो आसमान की तरफ मुंह किये रांड-बेवाओं की जान को रोता रहा। एक मीरासी, जिसके जरिये मैंने कार्ड बंटवाये थे, ने मुझे बताया इस बेहया ने दो तीन सुर मालकोंस के भी लगा दिये। लोगों ने दिल-ही-दिल में कहा होगा कि मैं शायद मौलाना हाली की आड़ में विधवा आश्रम खोलने की जमीन तैयार कर रहा हूं। बाद को मैंने आड़े हाथों लिया तो

कहने लगा, सब की किताबें खंगाल डालीं। यतीम पर कोई नज्म नहीं मिली। सितम ये है कि मीर तकी मीर, जो खुद बचपने में यतीम हो गये थे, ने मोहनी नाम की बिल्ली और कुतिया पर तो प्रशंसा में काव्य लिखे पर मासूम यतीमों पर फूटे मुंह से एक लाइन न कह के दी। इस तरह मिर्जा गालिब ने सेहरे के लिए, प्रशंसा में कसीदे लिखे। बेसनी रोटी, डोमनी की तारीफ में शेर कहे, दो कौड़ी की जली को सरे-पिस्ताने-परीजाद (परी के स्तन का अगला भाग) से भिड़ा दिया मगर यतीमों के बारे में एक शेर भी नहीं कहा। अब हर किताब से मायूस हो गया तो मुझे एक दम खयाल आया कि यतीमों और बेवाओं का चोली-दामन का साथ है। विषय एक और दुख साझा, सो गुलाम ने मुनाजाते-बेवा पढ़ दी। महान रचना है। तीन साल से आठवीं के इम्तहान में इस पर बराबर सवाल आ रहे हैं। चुनांचे मैंने भी गुलाम को उसकी महान रचना और चोली-दामन समेत खड़े-खड़े डिसमिस कर दिया। कुछ दिन बाद उस हरामखोर ने मेरे खिलाफ इंस्पेक्टर ऑफ स्कूल से शिकायत की। उसमें ये भी लिक्खा है कि मैंने अपने नहाने के लिए पांच मर्तबा बाल्टी में पानी मंगवाया। सरासर झूठ बोला। मैंने पंद्रह-बीस बार मंगवाया था। घड़े में भर के छलकाता लाया था।

मौलवी मुजफ्फर की बुराइयां बिल्कुल स्पष्ट और अच्छाइयां आंखों से छुपी हुई थीं। वो बिशारत के अंदाजे और अंदेशे से जियादा जहीन और काइयां निकले। ऐसे ठूंठ जाहिल नहीं थे, जैसा दुश्मनों ने मशहूर कर रखा था। रहन-सहन में एक सादगी और सादगी में इक टेढ़। कानों और जबान के कच्चे, मगर धुन के पक्के थे। उन्हीं का हौसला था कि बारह साल से बगैर साधन के लश्तम-पश्तम स्कूल चला रहे थे। उसे चलाने के लिए उनकी निगाह में हर किस्म की धांधली उचित थी। स्कूल की हालत खराब बतायी जाती थी। आये दिन मास्टरों से दर्द भरी अपील की जाती थी कि आप दिल खोल कर चंदा और दान दें। पांच-छह महीने की नौकरी के दौरान उन्हें कुल साठ रुपये मिले थे, जो स्कूल एकाउंट की किताबों में कर्ज के तौर पर दिखाये गये थे। अब उन्हें तन्ख्वाह का तकाजा करते हुए भी डर लगता था कि कर्ज बढ़ता जा रहा था। इधर न मिली तन्ख्वाह की राशि बढ़ती जाती, उधर मौली मज्जन का लहजा रेशम और बातें लच्छेदार होती जातीं। बिशारत ने एक दिन दबे शब्दों में तकाजा किया तो कहने लगे, 'बेटे! मैं तुम्हारे बाप की तरह हूं मेरी समझ में नहीं आता तुम इस अकेली देह में इतने रुपयों का क्या करोगे? छड़े-छटांक आदमी हो। अकेले घर में बेतहाशा नकदी रखना जोखिम का काम है। रात को तुम्हारी तरफ से मुझे डर ही लगा रहता है। सुल्ताना डाकू ने तबाही मचा रखी है।' बहरहाल इस तकाजे का इतना असर जुरूर हुआ कि दूसरे दिन से उन्होंने उनके घर एक मटकी छाछ की भेजनी शुरू कर दी।

तहसीलदार ने कभी रुपये-पैसे से तो कोई बर्ताव नहीं किया, अलबत्ता एक दो गड्डी पालक या चने का साग, कभी हिरन की टांग, कभी एक घड़ा गन्ने का रस या दो-चार भेलियां गुड़ की साथ कर देता। ईद पर एक हांडी संडीले के लड्डुओं की और बकरईद पर एक नर बकरे का सर भी दिया। उतरती गर्मियों में चार तरबूज फटी बोरी में डलवा कर साथ कर दिये। हर कदम पर निकल-निकल पड़ते थे। एक को पकड़ते तो दूसरा लुढ़क कर किसी और राह पर बदचलन हो जाता। जब बारी-बारी सब तड़ख गये तो आधे रास्ते में ही बोरी एक प्याऊ के पास पटक कर चले आये। उनके बहते रस को एक प्यासा सांड, जो पंडित जुगल किशोर ने अपने पिताजी की याद में छोड़ा था, तब तक चाव और तल्लीनता से चाटता रहा जब तक एक अल्हड़ बछिया ने उसका ध्यान उत्तम से सर्वोत्तम की ओर भटका न दिया।

जनवरी की बारिश में उनके खस की टट्टियों के मकान का छप्पर टपकने लगा तो तहसीलदार ने दो गाड़ी पूले मुफ्त डलवा दिये और चार छप्पर बांधने वाले बेगार में पकड़ कर लगवा दिये। कस्बे के तमाम छप्पर बारिश धूप

और धुएं से काले पड़ गये थे, अब सिर्फ उनका छप्पर सुनहरा था। बारिश के बाद चमकीली धूप निकलती तो उस पर किरन-किरन अशरफियों की बौजर होने लगती। इसके अलावा तहसीलदार ने लिहाफ के लिए बारीक धुनकी हुई रुई की एक बोरी और मुर्गाबी के परों का एक तकिया भी भेजा जिसके गिलाफ पर नाजो ने एक गुलाब का फूल काढ़ा था। (बिशारत इस तकिये पर उल्टे यानी पेट के बल सोते थे... फूल पर नाक और होंठ रख कर)

लार्ड वेलेजली

बिशारत ने एक बार यह शिकायत की कि मुझे रोजाना धूप में तीन कि.मी. पैदल चल कर आना पड़ता है तो तहसीलदार ने उसी वक्त एक खच्चर उनकी सवारी में लगाने का हुक्म दे दिया। ये अड़ियल खच्चर उसने नीलामी में आर्मी टांसपोर्ट से खरीदा था। अब बुढ़ापे में सिर्फ इस लायक रह गया था कि उद्दंड जाटों, बेगार से बचने वाले चमारों तथा लगान और मुफ्त दूध न देने वाले किसानों का मुंह काला करके इस पर कस्बे में गश्त लगवायी जाती थी। पीछे ढोल, ताशे और मंजीरे बजवाये जाते ताकि खच्चर बिदकता रहे। इस पर से गिर कर एक घसियारे की रीढ़ की हड्डी टूट गयी, जिसने मुफ्त में घास देने से अनाकानी की थी। इससे उसे पूरा फालिज हो गया। सवारी के बजाय बिशारत को पैदल चलना अधिक गौरवशाली और शांतिदायक लगा। यह जुरूर है कि लार्ड वेलेजली अगर साथ न होता तो तीन मील की दूरी बहुत खलती। वो रास्ते भर उससे बातें करते जाते, उसकी तरफ से जवाब और हुंकारा खुद ही भरते फिर जैसे ही नाजो का ध्यान आता सारी थकान दूर हो जाती। डग की लंबाई आप-ही-आप बढ़ जाती। वो तहसीलदार के नटखट लड़कों को उस समय तक पढ़ाते रहे जब तक वो वाकया न पेश आया जिसका जिक्र आगे आयेगा। कस्बे में वो मास्टर साहब कहलाते थे और इस हैसियत से उनकी हर जगह आवभगत होती थी। लोगों को तहसीलदार से सिफारिश करवानी होती तो लार्ड वेलेजली तक के लाड़ करते। वो रिश्वत की दूध जलेबी खा-खा कर इतना मोटा और काहिल हो गया था कि सिर्फ दुम हिलाता था। भौंकने में उसे आलस आने लगा था। उसका कोट ऐसा चमकने लगा था जैसा रेस के घोड़ों का होता है। कस्बे में वो लाट लिजलिजी कहलता था। जलने वाले अलबत्ता बिशारत को तहसीलदार का टीपू कहते थे। नाजो ने जाड़े में वेलेजली को अपनी सदरी काट-पीट के पहना दी तो लोग उतरन पर हाथ फेर-फेर के उसपे प्यार जताने लगे। मौली मज्जन की एक बुरी आदत थी कि मास्टर पढ़ा रहे होते तो दबे पांव, सीना ताने क्लास रूम में घुस जाते, यह देखने के लिए कि वो ठीक पढ़ा रहे हैं या नहीं। लेकिन बिशारत की क्लास में कभी नहीं आते थे इसलिए कि उनके दरवाजे पर वेलेजली पहरा देता रहता था।

परिचय बढ़ा और बिशारत शिकार में तहसीलदार के साथ रहने लगे तो वेलेजली तैर कर घायल मुर्गाबी पकड़ना सीख गया। तहसीलदार ने कई बार कहा यह कुत्ता मुझे दे दो, बिशारत हर बार अपनी तरफ इशारा करके टाल जाते कि यह गुलाम मय अपने कुत्ते के आपका खादिम है। आप कहां इसके हगने, मूतने की खखेड़ में पड़ेंगे। जिस दिन से तहसीलदार ने एक कीमती पट्टा लखनऊ से मंगवा कर उसे पहनाया तो उसकी गिनती शहर के मुसाहिबों में होने लगी और बिशारत शहर में इतराते फिरने लगे। उसके खानदानी होने में कोई शक न था। उसका पिता इलाहाबाद हाई कोर्ट के एक जज का पाला हुआ प्वांइटर था जब वो इंग्लैंड जाने लगा तो अपने रीडर को बख्श गया। वेलेजली उसी की औलाद था, जो धीरजगंज में आकर यूं गली-गली खराब हो रहा था।

मौली मज्जन को वेलेजली जहर लगता था। फरमाते थे कि 'पहले तो कुत्ते की जात है और फिर इसे तो ऐसी ट्रेनिंग दी गयी है कि सिर्फ शरीफों को काटता है।' इसमें शक नहीं कि जब मौली मज्जन पे भौंकता तो बहुत ही प्यारा लगता था। अब वो वाकई इतना ट्रेंड हो गया था कि बिशारत हुक्म देते तो स्टाफ रूम से उनका रूलर मुंह में दबा कर ले आता। मौली मज्जन का बयान था कि उन्होंने अपनी आंखों से इस पलीद को हाजिरी रजिस्टर ले जाते देखा, लेकिन शायद तहसीलदार और रेबीज के डर से कुछ न बोले। एक चीनी विद्वान का कथन है कि कुत्ते पर खींच कर ढेला मारने से पहले यह जुरूर पता कर लो कि इसका मालिक कौन है।

टीचर लोग यतीमखाने को खा गये

धीरे-धीरे मौली मज्जन ने कर्ज से भी हाथ खेंच लिया और खुद भी खिंचे-खिंचे रहने लगे। एक दिन बिशारत चाक में लथपथ, डस्टर हाथ में लिए और रजिस्टर बगल में दबाये क्लास रूम से निकल रहे थे कि मौली मज्जन उन्हें आस्तीन पकड़कर अपने दफ्तर में ले गये और उल्टे सर हो गये। शायद 'हमला करने में पहल सबसे अच्छा बचाव है' वाली पालिसी पर अमल कर रहे थे। कहने लगे, 'बिशारत मियां एक मुद्दत से आपकी तन्ख्वाह चढ़ी हुई है और आपके कानों पर जूं नहीं रेंगती। स्कूल इस हालत में पहुंच गया। कुछ उपाय कीजिए। यतीमखाने के चंदे के मद से टीचरों की तन्ख्वाह दी जाती है। टीचर तो यतीमखाने को खा गये। डरता हूं, कहीं आप लोगों को यतीमों की आह न लग जाये।' बिशारत यह सुनते ही आपे से बाहर हो गये। कहने लगे, सात-आठ महीने होने को आये, कुल साठ-सत्तर रुपये मिले हैं। दो बार घर से मनीआर्डर मंगवा चुका हूं, अगर इस पर भी यतीमों की आह का अंदेशा है, तो अपनी नौकरी तह कर के रखिए' यह कह के उन्होंने वहीं चार्ज दे दिया। मतलब यह कि डस्टर और हाजिरी रजिस्टर मौली मज्जन को पकड़ा दिया।

मौली मज्जन ने एकदम पैंतरा बदला और डस्टर उनके चार्ज में वापस दे कर, हाथ झाड़ते हुए बोले, 'आप कैसी बातें कर रहे हैं। बरखुरदार! कसम है अल्लाह की! वो रकम जिसे आप अपने हिसाब से साठ-सत्तर बता रहे हैं, वो भी यतीमों का पेट काट कर जकात और सदके से निकाल कर पेश की थी। इसका आप यह बदला दे रहे हैं। सर सय्यद को भी आखिरी उम्र में ऐसे ही सदमे उठाने पड़े थे जिससे वो उठ न पाये थे। मैं सख्त आदमी हूं। खैर! सब्र से काम लीजिए। अल्लाह ने चाहा तो बकरा-ईद की खालों से सारा हिसाब बेबाक कर दूंगा। बर्खुरदार! ये आपका स्कूल है, आपका अपना यतीमखाना। मैं कोई अंधा नहीं हूं। आप जिस लगन से काम कर रहे हैं, वो अंधे को भी नजर आती है। आप जिंदगी में बहुत आगे जायेंगे। अगर इसी तरह काम करते रहे, अल्लाह ने चाहा तो बीस-पच्चीस बरस में इस स्कूल के हैड मास्टर हो जायेंगे। मैं ठहरा जाहिल आदमी, मैं तो हैडमास्टर बनने से रहा। स्कूल का हाल आपके सामने है। चंदा देने वालों की तादाद घट कर इतनी हो गयी कि सर सय्यद होते तो अपना सर पीट लेते। मगर आप सब अपना गुस्सा मुझी पर उतारते हैं। मैं अकेला क्या कर सकता हूं। अकेला चना भाड़ तो क्या खुद को भी नहीं फोड़ सकता। जुरूरत इस बात की है कि स्कूल और यतीमखाने को अमीरों, रईसों, तअल्लुकेदारों और आस-पास के शहरों में परिचित कराया जाये। लोगों को किसी बहाने बुलाया जाये। एक यतीम का चेहरा दिखाना हजार भाषणों और लाख इश्तहारों से जियादा असर रखता है। यकीन जानिए जबसे टीचरों की तन्ख्वाह रुकी है, मेरी नींदें उड़ गयी हैं। बराबर सलाह मशविरे कर रहा हूं। अल्लाह के लिए अपनी तन्ख्वाह की अदायगी की कोई तरकीब निकालिए। बहुत चिंतन-मनन के बाद अब आप ही के उपाय पर अमल करने का फैसला किया है। स्कूल की प्रसिद्धि के लिए एक शानदार मुशायरा होना बहुत जुरूरी है। लोग आज भी धीरजगंज

को गांव समझते हैं। अभी कल ही एक पोस्टकार्ड मिला। पते में गांव धीरजगंज लिखा था। गांव धीरजगंज! खून खौलने लगा। लोग अर्से तक अलीगढ़ को भी गांव समझते रहे, जब तक कि वहां फिल्म नहीं आई और कार के एक्सीडेंट में पहला आदमी न मरा।

काम बांटने के सिलसिले में उन्होंने बिशारत के जिम्मे सिर्फ शायरों का लाना-ले जाना, ठहरने और खाने के बंदोबस्त, मुशायरे की पब्लिसिटी और मुशायरा-स्थल का इंतजाम दिया। बाकी काम वो अकेले कर लेंगे, जिससे अभिप्राय मुशायरे की अध्यक्षता था।

धीरजगंज का पहला और आखिरी मुशायरा

मुशायरे की तारीख तय हो गयी। धीरजगंज के आस-पास के लोगों को निमंत्रित करना, तरह की पंक्ति तय करना और शायरों का चयन करना, शायरों को कानपुर से आखिरी ट्रेन से लाना और मुशायरे के बाद पहली ट्रेन से दफा करना। मुशायरे से पहले और गजल पढ़ने तक उनकी मुफ्त खातिर किसी और से करवाना... इसी किस्म के कार्य जो सजा का दर्जा रखते थे, बिशारत के सुपुर्द किये गये। शायरों और उनके अपने आने-जाने का रेल और इक्के का किराया, शायरों का धीरजगंज में खाने और रहने का खर्च, पान सिगरेट इत्यादि के खर्च के लिए मौली मज्जन ने दस रुपये दिये और ताकीद की कि अंत में जो राशि बच जाये वो उनको मय रसीद मुशायरे के अगले दिन वापस कर दी जाये। उन्होंने सख्ती से यह भी हिदायत की कि शायरों को आठ आने का टिकिट खुद खरीद कर देना। नक्द किराया हरगिज न देना। बिशारत यह पूछने ही वाले थे कि शायरों के हाथ-खर्च और नजराने का क्या होगा कि मौली मज्जन ने स्वयं ही सवाल हल कर दिया। फरमाया कि शायरों से यतीमखाने और स्कूल के चंदे के लिए अपील जुरूर कीजिएगा। उन्हें शेर सुनाने में जरा भी शर्म नहीं आती तो आपको इस पुण्यकार्य में काहे की शर्म। अगर आपने फूहड़पन से काम न लिया तो हर शायर से कुछ न कुछ वसूल हो सकता है, मगर जो कुछ वसूल करना है मुशायरे से पहले ही धरवा लेना। गजल पढ़ने के बाद हरगिज काबू में नहीं आयेंगे। 'रात गयी, बात गयी' वाला मुआमला है और जो शायर ये कहे कि वो अठन्नी भी नहीं दे सकता तो उसे तो हमारे यतीमखाने में होना चाहिए। कानपुर में बेकार पड़ा क्या कर रहा है।

पाठक सोच रहे होंगे इन व्यवस्थाओं के संदर्भ में स्कूल के हैडमास्टर का कहीं जिक्र नहीं आया। इसका एक उचित कारण यह था कि हैडमास्टर को नौकरी पर रखते समय उन्होंने केवल एक शर्त लगाई थी - वो यह कि हैडमास्टर स्कूल के मुआमलों में बिल्कुल हस्तक्षेप नहीं करेंगे।

इस आत्मश्लाघा कहिए या अनुभवहीनता, बिशारत ने मुशायरे के लिए तरह की जो पंक्ति चुनी वो अपनी ही गजल से ली। इसका सबसे बड़ा फायदा तो यह नजर आया कि मुफ्त में प्रसिद्धि मिल जायेगी। दूसरे उन्हें मुशायरे के लिए अलग गजल पर माथापच्ची नहीं करनी पड़ेगी। यह सोच-सोच के उनके दिल में गुदगुदी होती रही कि अच्छे-अच्छे शायर उनकी पंक्ति पर गिरह लगायेंगे। बहुत जोर मारेंगे। घंटों काव्य-चिंतन में कभी पैर पटकेंगे, कभी दिल को, कभी सर को पकड़ेंगे और शेर होते ही एक-दूसरे को पकड़ के बैठ जायेंगे। उन्होंने अट्ठारह शायरों को सम्मिलित होने के लिए तैयार कर लिया, जिनमें जौहर चुगताई इलाहाबादी, काशिफ कानपुरी और नुशूर वाहिदी भी शामिल थे, जो इसलिए तैयार हो गये थे कि बिशारत की नौकरी का सवाल था। नुशूर वाहिदी और जौहर इलाहाबादी तो उन्हें पढ़ा भी चुके थे। उन दोनों को उन्होंने तरह नहीं दी बल्कि दूसरी गजल पढ़ने की प्रार्थना की।

ऐसा लगता था कि उन्होंने बाकी शायरों के चयन में यह ध्यान रक्खा था कि कोई भी शायर ऐसा न हो जो उनसे बेहतर शेर कह सकता हो।

इन सब शायरों को दो इक्कों में बिठा कर वो कानपुर के रेलवे स्टेशन पर लाये। जिन पाठकों को दो इक्कों में अट्ठारह शायरों की बात में अतिशयोक्ति लगे, शायद उन्होंने न तो इक्के देखे हैं न शायर। यह तो कानपुर था वरना अलीगढ़ होता तो एक ही इक्का काफी था। पाठकों की आसानी के लिए हम इस लाजवाब सवारी का सरसरी वर्णन किये देते हैं। पहले गुस्ले-मय्यत के तख्ते को काट कर चौकोर और चौरस कर लें। फिर उसमें दो अलग साइज के बिल्कुल चौकोर पहिये इस भरोसे के साथ जोत दें कि इनके चलने से अलीगढ़ की सड़कें समतल हो जायेंगी और इस प्रक्रिया में ये खुद भी गोल हो जायेंगे। तख्ता सड़क के गड्ढों की ऊपरी सत्ह से छह, साढ़े छह फिट ऊंचा होना चाहिए ताकि सवारियों के लटके हुए पैरों और पैदल चलने वालों के सरों की सत्ह एक हो जाये। पहिये में सूरज की किरणों की शक्ल की जो लकड़ियां लगी होती हैं वो इतनी मजबूत होनी चाहिए कि नयी सवारी इन पर पांव रख कर तख्ते तक हाई जंप कर सके। पांव के धक्के से पहिये को स्टार्ट मिलेगा। इसके बाद तख्ते में दो बांसों के बम (इक्के और तांगों के आगे लगाये जाने वाली लकड़ी जिसमें घोड़ा जोता जाता है) लगा कर एक कमजोर घोड़े को लटका दें, जिसकी पसलियां दूर से ही गिनकर सवारियां संतोष कर लें कि पूरी हैं। लीजिए इक्का तैयार है।

निहारी, रसावल, जली और धुआं लगी खीर, मुहावरे, सावन के पकवान, अमराइयों में झूले, दाल, रेशमी दुलाई, गरारे, दोपल्ली टोपी, आल्हा-ऊदल और जबान के शेर की तरह इक्का भी यू.पी. की खास चीजों में गिना जाता है। हमारा खयाल है कि इक्के का अविष्कार किसी घोड़े ने किया होगा, इसीलिए इसके डिजाइन में इस बात का ध्यान रखा गया है कि घोड़े से अधिक सवारी को परेशानी उठानी पड़े। इक्के की विशेषता यह है कि अधिक सवारियों का बोझ घोड़े पर नहीं पड़ता बल्कि उन सवारियों पर पड़ता है जिनकी गोद में वो आ-आ कर बैठती है। जोश मलीहाबादी साहब ऐसे इक्कों के बारे में लिखते हैं कि, 'तमाम के तमाम इस कदर जलील हैं कि उन पर सिकंदर महान को भी बिठा दिया जाये तो वो भी किसी देहाती रंडी के भड़वे नजर आने लगेंगे।'

धीरजगंज के प्लेटफार्म को स्कूल के बच्चों ने रंग-बिरंगी झंडियों से इस तरह सजाया था जैसे फूहड़ मां बच्ची का मुंह धुलाये बगैर बालों में शोख रिबन बांध देती है। ट्रेन से उतरते ही हर शायर को गेंदे का हार पहना कर गुलाब का एक-एक फूल और औटते दूध का कांसे का गिलास पेश किया गया जिसे थामते ही वो बिलबिला कर पूछता था कि इसे कहां रक्खूं? स्वागत करने वालों ने पच्चीस मील और एक घंटे दूर, कानपुर से आने वालों से पूछा, 'सफर कैसा रहा! कानपुर का मौसम कैसा है! हाथ मुंह धो के तीन चार घंटे सो लें तो सफर की थकान उतर जायेगी।' प्रत्युत्तर में मेहमानों ने पूछा, 'यहां मगरिब (शाम की नमाज) किस वक्त होती है' धीरजगंज वाले तो मेहमाननवाजी के लिए मशहूर हैं; यहां की कौन सी चीज मशहूर है; क्या यहां के मुसलमान भी उतने ही बुरे हाल में हैं, जितने बाकी हिंदुस्तान के।' अट्ठारह शायर और पांच मिसरा उठाने वाले जो एक शायर अपने साथ लाया था, दो बजे की ट्रेन से धीरजगंज पहुंचे। ट्रेन पहुंचने से तीन घंटे पहले ही यतीमखाना शम्स-उल-इस्लाम का बैंड बजना शुरू हो गया था, लेकिन जैसे ही ट्रेन आ कर रुकी तो कभी ढोल, कभी बांसुरी, कभी हाथी की सूंड़ जैसा बाजा बंद हो जाता और कभी तीनों ही मौन हो जाते, सिर्फ बैंड मास्टर छड़ी हिलाता रह जाता। वो इस कारण कि इन बाजों को बजाने वाले बच्चों ने इससे पहले इंजन को इतने पास से नहीं देखा था। वो उसे देखने में इतने तल्लीन हो जाते कि बजाने की सुध ही न रहती, इंजन उनके इतने पास आ कर रुका था कि उसका एक-एक प्रभावी पुरजा दिखाई दे रहा था...

सीटी बजाने वाला उपकरण, कोयला झोंकने वाला बेलचा, बॉयलर दहकते-चटखते कोयलों का ताप और अंग्रेजी दवाओं की बू जैसा भभकता झोंका। शोलों की आंच से ऐंग्लो इंडियन ड्राइवर का तमतमाता लाल चुकंदर चेहरा और कलाई पर गुदी नीली मेम, मुसलमान खलासी के सर पर बंधा हरा रूमाल और चेहरे पर कोयले की जेबरा धारियां, पहिये से जुड़ी हुई लंबी सलाख जो बिल्कुल उनके हाथ की तरह चलती जिसे वो आगे पीछे करते हुए छुक-छुक रेल चलाते थे, इंजन की टोंटी से उबलती, शोर मचाती स्टीम का चेहरे पर स्प्रे। इन बच्चों ने धुएं के मरगोलों को मटियाले से हल्का सुरमई, सुरमई से गाढ़ा-गाढ़ा काला होते देखा। गले में उसकी कड़वाहट उन्हें अच्छी लग रही थी। घुंघराले धुएं का काला अजगर फुफकारें मारता आखिरी डब्बे से भी आगे निकल कर अब आसमान की तरफ उठ रहा था। बैंड बजाने वाले बच्चे बिल्कुल चुप हो कर पास, बिल्कुल पास से इंजन की सीटी को बजता हुआ देखना चाहते थे। उनका बस चलता तो जाते समय अपनी आंखें वहीं छोड़ जाते। अगर उन बच्चों से बैंड बजवाना ही था तो ट्रेन बगैर इंजन के लानी चाहिए थी।

इन्हीं पत्थरों पे चल कर ...

अट्ठारह शायरों का जुलूस स्कूल के सामने से गुजरा तो एक रहकले से 18 तोपों की सलामी उतारी गयी। ये एक छोटी सी पंचायती तोप थी जो नार्मल हालात में पैदाइश और खत्नों के मौके पर चलाई जाती थी। चलते ही सारे कस्बे के कुत्ते, बच्चे, कव्वे, मुर्गियां और मोर कोरस में चिंघाड़ने लगे। बड़ी बूढ़ियों ने घबरा कर 'दीन जागे, कुफ्र भागे' कहा। खुद वो मिनी तोप भी अपने चलने पर इतनी आश्चर्यचकित और घबरायी हुई थी कि देर तक नाची-नाची फिरी। शायरों को खाते-पीते किसानों के घर ठहराया गया, जो अपने-अपने मेहमान को स्कूल से घर ले गये। एक किसान तो अपने हिस्से के मेहमान की सवारी के लिए टट्टू और रास्ते के लिए नारियल की गुड़गुड़ी भी लाया था। कस्बे में जो गिने-चुने संपन्न घराने थे, उनसे मौली मज्जन की नहीं बनती थी, इसलिए शायरों के ठहरने और खाने का बंदोबस्त किसानों और चौधरियों के यहां किया गया, जिसकी कल्पना ही शायरों की नींद उड़ाने के लिए काफी थी। शेरो-शायरी या नॉविलों में देहाती जिंदगी को रोमेंटिसाइज करके उसकी निश्छलता, सादगी, सब्र और प्राकृतिक सौंदर्य पर सर धुनना और धुनवाना और बात है लेकिन सचमुच किसी किसान के आधे पक्के या मिट्टी गारे के घर में ठहरना किसी शहरी इंटेलेक्चुअल के बस का रोग नहीं। किसान से मिलने से पहले उसके ढोर-डंगर, घी के फिंगर प्रिंट वाले धातु के गिलास, जिन हाथों से उपले पाथे उन्हीं हाथों से पकायी हुई रोटी, हल, दरांती, मिट्टी से खुरदुराये हुए हाथ, बातों में प्यार और प्याज की महक, मक्खन पिलाई हुई मूंछ... इस सबसे एक ही वक्त में गले मिलना पड़ता है।

इन्हीं पत्थरों पे चल कर अगर आ सको तो आओ

इस कस्बे के मुशायरे में, जो धीरजगंज का अंतिम यादगार मुशायरा साबित हुआ, बाहर के 18 शायरों के अलावा 33 स्थानीय तथा संबंधित शायर भी सम्मिलित होने के लिए बुलाये गये, या बिन बुलाये आये। बाहर से आने वालों में कुछ ऐसे भी थे जो इस लालच में आये थे कि नक्द न सही, गांव है; कुछ नहीं तो सब्जियां, फस्ल के मेवे, फल-फलवारी के टोकरे, पांच-छह मुर्गियों का झाबा तो मुशायरा कमेटी वाले जुरूर साथ कर देंगे। धीरजगंज में कुछ शरारती नौजवान ऐसे थे जिनके बारे में मशहूर था कि वो पास-पड़ोस के तीन-चार मुशायरे चौपट कर चुके हैं।

उनके एक पुराने लंगोटिये थे जिन्होंने मैट्रिक में चार-पांच बार फेल होने और परीक्षकों की जत्रों के गुणों को पहचानने के अयोग्यता से तंग आकर चुंगी विभाग में नौकरी कर ली थी। इसमें इंद्रिय-दमन के अलावा इस बदनाम महकमे को सजा देना भी छुपा हुआ था। चुंगी के वातावरण को उन्होंने शायरी के लिए हद से जियादा उपयुक्त पाया। अपनी वर्तमान स्थिति से इतने संतुष्ट और आनंदित थे कि इसी पोस्ट से रिटायर होने के इच्छुक थे। अधिक संतान वाले थे और आशु कविता करते थे। जो शेरों के आने का क्रम था वही औलाद का भी, यानी कि दोनों के अवतरण का आरोप ऊपर वाले पर लगाते थे। आम-सा वाक्य भी उन पर कविता बन कर उतरता था। गद्य बोलने और लिखने में उन्हें उतनी ही उलझन होती थी जितनी एक आम आदमी को कविता लिखने में।

वो शायरी करते थे मगर मुशायरों से विरक्त और उदास थे। फरमाते थे, 'आज कल जिस तरह शेर कहा जाता है बिल्कुल उसी तरह दाद दी जाती है, यानी मतलब समझे बगैर। सही दाद देना तो दूर अब लोगों को ढंग से हूट करना भी नहीं आता। शेर मुशायरे में सुनने-सुनाने की चीज नहीं। एकांत में पढ़ने, समझने, सुनने और सहने की चीज है। शायरी किताब की शक्ल में हो तो लोग शायर का कुछ नहीं बिगाड़ सकते। मैं 'मीर' की किताब से एक-दो नहीं, सौ-दो सौ शेर ऐसे निकाल कर दिखा सकता हूं जो वो किसी मुशायरे में पढ़ देते तो इज्जत और पगड़ी ही नहीं, सर भी सलामत नहीं रहता। उन्हें 'मीर' के सिर्फ यही शेर याद थे। दूसरे उस्ताद शायरों के भी उन्होंने सिर्फ वही शेर याद कर रखे थे जिनमें कोई कमी या गलती थी। उन साहब से बिशारत पांच छह गजलें कहलवा कर ले आये और उन मुशायरा बिगाड़ नौजवानों में बांट दीं कि तुम भी पढ़ना। यह तरकीब काम कर गयी। देखा गया है कि जिस शायर को दूसरे नालायक शायरों से दाद लेने की उम्मीद हो वो उन्हें हूट नहीं करता। चोरियां बंद करने का आजमाया हुआ तरीका यह बताया गया है कि चोर को थानेदार बना दो। हमें इसमें इस फायदे के अलावा कि वो दूसरों को चोरी नहीं करने देगा एक फर्क और नजर आता है। वो ये कि पहले जो माल वो अंधेरी रातों में सेंध लगाकर बड़ी मुसीबतों से हासिल करता था, अब दिन-दहाड़े रिश्वत की शक्ल में थाने में धरवा लेगा।

इसी प्रोग्राम के तहत पांच ताजा गजलें हकीम अहसानुल्लाह 'तस्लीम' से इस वादे पर लिखवा कर लाये कि जाड़े में उनके कुश्तों के लिए पचास तिलेर, बीस तीतर, पांच हरियल और दो काजें नज्र करेंगे और बकराईद पर पांच खस्सी बकरे आधे दामों धीरजगंज से खरीदकर भिजवायेंगे। हकीम अहसानुल्लाह 'तस्लीम' मूलगंज की तवायफों के खास हकीम तो थे ही, गाने के लिए उन्हें फरमाइशी गजल भी लिखकर देते थे। किसी तवायफ के पैर भारी होते तो उसके लिए खास तौर से छोटी बह्र (छंद) में गजल कहते ताकि ठेका और ठुमका न लगाना पड़े। वैसे उस जमाने में तवायफें आमतौर पे दाग और फकीर, बहादुरशाह जफर का कलाम गाती थीं। हकीम साहब किसी तवायफ पर कृपालु होते तो मक्ते में उसका नाम डाल के गजल उसी को बख्श देते। कई तवायफें मसलन मुश्तरी, दुलारी, जोहरा प्रसिद्ध शायरों से गजल कहलवातीं और न सिर्फ गाने की बल्कि गजल कहने की भी दाद पातीं। हकीम 'तस्लीम' तवायफों के उच्चारण के दोष भी ठीक करते, बाकी चीजें ठीक होने से परे थीं मतलब ये कि वैसे दोष-सुधार चाहती थीं लेकिन सुधार से परे थीं। उस जमाने में तवायफों और उनके श्रद्धालुओं के दोष सुधारना अदबी फैशन में दाखिल था। वास्तव में ये समाजी से जियादा खुद सुधारक का ऐंद्रिक विषय होता था, जिसका Catharsis संभव हो न हो, उसका बयान लज्जत भरा था। गुनाह का जिक्र गुनाह से कहीं जियादा लजीज हो सकता है बशर्ते कि विस्तृत हो और बयान करनेवाला शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार से बूढ़ा हो। एमली जोला की Nana रुसवा की उमराव जान अदा, टोलार्ज ट्रेक और देगा (Degas) की तवायफों और चकलों की तस्वीरें शारीरिक वास्तविकता के सिलसिले की पहली कड़ी हैं, जबकि कारी सरफराज हुसैन की 'शाहिदे-राअना' से रंगीनी के एक दूसरे लजीज सिलसिले की शुरुआत होती है, जिसकी कड़ियां काजी अब्दुल गफ्फार के लैला के खत, गुलाम

अब्बास की आनंदी की भरपूर सादगी और मंटों की प्रकट रूप में खुरदरी वास्तविकता लेकिन Inverted Romanticism से जा मिलती हैं। हमारे यहां तवायफ से संबंधित तमाम बचकाना आश्चर्यों, खुमगुमानियों, सुनी-सुनायी बातों और रोमांटिक सोचों... जिससे मिले, जहां से मिले, जिस कदर मिले... सबका बोझल अंबार इस तरह लगाया जाता है कि हर तरफ लफ्जों के तोता मैना फुदकते-चहकते दिखाई देते हैं। जिंदा तवायफ कहीं नजर नहीं आती। रोमेंटिक मलबे तले उसके घुंघरू की आवाज तक सुनाई नहीं देती, इस तवायफ की निर्माण सामग्री उठती जवानी के मुहासों भरे अधकचरे जजबात से ली गयी है, जिसकी महक रिसर्च स्कॉलरों की रगों में दौड़ती फिरती रौशनाई को मुद्दतों गरमाती रहेगी। इस इच्छा भरे शहर की तवायफ ने अपनी Chastity belt की चाबी दरिया में फेंक दी है और अब उसे किसी से... हद ये है कि खुद लेखक और अपने आप से भी कोई खतरा नहीं।

वो सर से है ता नाखुने-पा, नामे-खुदा, बर्फ

बात साठ-सत्तर साल पुरानी लगती है, मगर आज भी उतनी ही सच है। अलग-अलग तबकों के लोग तवायफ को जलील और नफरत के काबिल समझते थे, मगर साथ ही साथ उसकी चर्चा और चिंतन में एक लज्जत महसूस किये बिना नहीं रहते थे। समाज और तवायफ में सुधार के बहाने उसकी जिंदगी की तस्वीर बनाने में उनकी प्यास की संतुष्टि हो जाती थी। इस शताब्दी के पहले आधे भाग का साहित्य, विशेष रूप से फिक्शन, तवायफ के साथ इसी Love-hate यानी दुलार-दुत्कार के ओलते-बदलते संबंध का परिचायक है। उसने एक द्विअर्थी बयान-शैली को जन्म दिया। जिसमें बुरा-भला कहना भी मजे लेने का माध्यम बन जाता है। भोगे हुए यथार्थ के पर्दे में जितनी दाद तवायफ को उर्दू फिक्शन लिखने वालों से मिली उतनी अपने रात के ग्राहकों से भी न मिली होगी। अलबत्ता अंग्रेजी फिक्शन पिछले तीस बरसों में चर्चा के केंद्र का घूंघट उठाकर खुल्लमखुल्ला...।

किबला चूं पीर शुद

मूलगंज में वहीदन बाई के कोठे पर एक बुजुर्ग जो हिल-हिल कर सिल पर मसाला पीसते हुए देखे गये, उनके बारे में यार लोगों ने मशहूर कर रखा था कि तीस बरस पहले जुमे की नमाज के बाद वहीदन बाई के चाल-चलन के सुधार की नीयत से कोठे के जीने पर चढ़े थे, मगर उस वक्त इस छप्पन-छुरी की भरी जवानी थी। लिहाजा इनका मिशन बहुत तूल खींच गया।

कारे-जवां दराज है, अब मेरा इंतजार कर

वहीदन बाई जब फर्स्ट क्लास क्रिकेट से रिटायर हुई और गुनाहों से तौबा करने का तकल्लुफ किया, जिसके लायक अब वो वैसे भी नहीं रही थी तो किबला-आलम की दाढ़ी पेट तक आ गयी थी। अब वो उसकी बेटियों के बावर्ची-खाने का इंतजाम तथा गजलों और ग्राहकों के चयन में मदद देते थे। 1931 में वो हज को गयी तो ये नौ सौ चूहों के अकेले प्रतिनिधि की हैसियत से उसके साथ थे।

जो पैदा किसी घर में होती थी बेटी

हकीम अहसानुल्लाह 'तस्लीम' का दावा था कि उन्होंने इमामत, हकीमी और शायरी बुजुर्गों से पायी है। गर्व से कहते थे कि उनके दादा हकीम अहतिशाम हुसैन राअना की कन्नौज में इतनी बड़ी जमींदारी थी कि एक नक्शे में नहीं आती थी। अब नक्शे उनके कब्जे में और जमींदारी महाजन के कब्जे में थी। हकीम एहसानुल्लाह तसलीम रंगीनमिजाज रईसों का भी इलाज करते थे, फकत कारूरा (पेशाब) देखकर रईस का नाम बता देते और रईस की नब्ज पे उंगली रखते ही ये निशानदेही कर देते कि बीमारी के कीटाणु किस कोठे के आवारा और पले हुए हैं। ये समझ में आने वाली बात है कि किसी तवायफ के यहां लड़का पैदा हो जाये तो रोना पीटना मच जाता है। हकीम तसलीम के पास खानदानी डायरी में एक ऐसा नुस्खा था कि शर्तिया लड़की पैदा होती। यह एक भस्म थी जो तवायफ उस रात के राजा या विशेष अतिथि को चुपके से पान में डाल कर खिला देती। इस नुस्खे के ठीक होने की प्रसिद्धि इस कदर थी कि कानपुर में किसी गृहस्थ के भी लड़की पैदा होती तो वो मियां के सर हो जाती, हो न हो! तुम वहीं से पान खा कर आये थे। तवायफ कितनी भी हसीन हो उनकी नीयत सिर्फ उसके पैसों पर बिगड़ती थी। तवायफें उनसे बड़ी आस्था और श्रद्धा रखती थीं। कहने वाले तो यहां तक कहते थे कि उनके मरने का बड़ी बेचैनी से इंतजार कर रही हैं ताकि संगे-मरमर का मजार बनवायें और हर साल धूमधाम से उर्स मनायें।

भिक्षुओं की फेंटेसी

मूलगंज का जिक्र ऊपर की पंक्तियों और कानपुर से संबंधित दूसरे चित्रों में जगह-जगह बल्कि जगह-बेजगह आया है। इस मुहल्ले में तवायफें रहती थीं। लिहाजा थोड़ा-सा विनम्र स्पष्टीकरण आवश्यक है। ये बिशारत का पसंदीदा विषय है, जिससे हमारे पाठक पूरी तरह से परिचित हो चुके होंगे। वो हिरफिर के इसके वर्णन से अपनी संजीदा बातचीत में विघ्न डालते रहते हैं, हालांकि बिना संदेह वो हैं दूसरे ग्रुप के आदमी।

बाजार से गुजरा हूं खरीदार नहीं हूं

जैसे कई एलर्जिक लोगों को अचानक पित्ती उछल आती है, उसी तरह उनकी बातचीत में तवायफ... अवसर देखे न जगह... छम से आन खड़ी होती है। संयमी हैं, कभी के नाना-दादा बन गये, मगर तवायफ है कि किसी तरह उनके सिस्टम से निकलने के लिए राजी नहीं होती। एक बार हमने आड़े हाथों लिया। हमने कहा, हजरत! पुरानी कहानियों में हीरो और राक्षस की जान किसी तोते में अटकी होती है। कहने लगे, अरे साहब मेरी कहानी पर मिट्टी डालिए। ये देखिए कि आजकल की फिक्शन और फिल्मों में हीरों और हीरोइन से कौन से धर्मग्रंथ पढ़वाये जा रहे हैं। जिस सोच के मुताबिक पहले तवायफ कहानी में डाली जाती थी, अब इस काम के लिए शरीफ घराने की बहू-बेटियों को तकलीफ दी जाती है। पढ़ने वाले और फिल्म देखने वाले आज भी तवायफ को उस तरह उचक लेते हैं जैसे मरीज हकीमों के नुस्खे में से मुनक्का।

निवेदन किया, ये हकीमी उपमा तो तवायफ से भी जियादा Ancient है। कौन समझेगा? फरमाया तवायफ को समझने के लिए यूनानी हिकमत से परिचय जुरूरी है।

और बिशारत कुछ गलत नहीं कहते। शायद आज उस मनस्थिति का अंदाजा करना मुश्किल हो तवायफ उस डगमगाते हुए समाज के संपन्न वर्ग की इंद्रियों पर वर्जित सुख की तरह छायी हुई थी, और ये कुछ उस दौर से ही संबंधित नहीं। औरंगजेब के बारे में मशहूर है कि उसने दुनिया के सबसे पुराने पेशे को समाप्त करने के लिए एक

फरमान जारी किया था कि एक निश्चित तारीख तक सारी तवायफें शादी कर लें, वरना उन सबको नाव में भरके यमुना में डूबो दिया जायेगा। अधिकतर तवायफें डूबने को हांडी-चूल्हे पर और मगरमच्छ के जबड़े को ऐसे लफंगों पर प्रमुखता देती थीं जो प्यार भी करते हैं तो इबादत की तरह, यानी बड़ी पाबंदी के साथ और बेदिली के साथ। बहुत-सी तवायफों ने इस धंधे को अलविदा कहकर निकाह कर लिए।

हो चुकीं गालिब बलाएं सब तमाम

एक अक्दे-नागहानी और है

अब जरा इसके दौ सौ बरस बाद की एक झलक 'तजकिरा-ए-गौसिया' में मुलाहिजा फरमायें। इसके लेखक मौलवी मुहम्मद इस्माईल मेरठी अपने श्रद्धास्पद पीरो-मुर्शिद (गुरु) के बारे में एक घटना लिखते हैं 'एक रोज आदेश हुआ, कि जब हम दिल्ली की जीनतुल-मस्जिद में ठहरे हुए थे, हमारे दोस्त कंबलपोश (यूसुफ खां कंबलपोश लेखक तारीखे-यूसुफी, अजायबाते-फिरंग जो उर्दू का पहला इंग्लैंड का यात्रा वर्णन है) ने हमारी दावत की। शाम की नमाज के बाद हमको लेकर चले। चांदनी चौक में पहुंच एक तवायफ के कोठे पर हमको बैठा दिया और आप चंपत हो गये। पहले तो हमने सोचा कि खाना इसी जगह पकवाया होगा, मगर मालूम हुआ कि यूं ही बिठा कर चल दिया है। हम बहुत घबराये भला ऐसी जगह कमबख्त क्यों लाया। दो घड़ी बात हंसता हुआ आया और कहने लगा मियां साहब! मैं आपकी भड़क मिटाने यहां बैठा गया था। बाद में अपने घर ले गया और खाना खिलाया।

याद रहे कि कंबलपोश एक आजाद और मनमौजी आदमी था, ये घटना उस समय की है जब पीरो-मुरशिद की सोहबत में उसका दिल बदल चुका था। सोचिये, जिसकी पतझड़ का ये रंग हो उसकी बहार कैसी रही होगी।

आखिर में, इस लतीफे के लगभग डेढ़ सौ साल बाद के एक नाखुनी निशान पे उचटती सी निगाह डालते चलें। जोश जैसा शब्दों का जादूगर, खानदानी, सुरुचिसंपन्न और नफासतपसंद शायर जब जीवन के स्वर्ग और असीमित सुख की तस्वीर खींचता है तो देखिए उसका कलम क्या गुल खिलाता है

' कूल्हे पे हाथ रख के थिरकने लगी हयात '

कूल्हे पे हाथ रख के थिरकने में कोई हरज नहीं, बशर्ते कूल्हा अपना ही हो। दूसरे, थिरकना पेशेवर काम हो शौकिया न हो। मतलब ये कि कोई कूल्हे पे हाथ रख के थिरकने लगे तो किसी को क्या एतराज हो सकता है, मगर इससे जात पहचानी जाती है।

तो खुदा आपका भला करे... और मुझे माफ करे... मूलगंज रंडियों का चकला था। उस जमाने में भी लोगों का चाल-चलन इतना ही खराब था, जितना अब है, मगर निगाह अभी उतनी खराब नहीं हुई थी कि तवायफों की बस्ती को आजकल की तरह 'बाजारे-हुस्न' कहने लगें। चकले को चकला ही कहते थे। दुनिया में कहीं और बदसूरत रंडियों के कोठों और बेडौल, बिहंगम जिस्म के साथ यौन रोग बेचने वालियों की चीकट कोठरियों को इस तरह ग्लैमराइज नहीं किया गया। 'बाजारे हुस्न' की रोमेंटिक उपमा आगे चलकर उन साहित्यकारों ने प्रचलित की जो कभी तुरंत उपलब्ध होने वाली औरतों की बकरमंडी के पास भी नहीं गुजरे थे, लेकिन निजी तजरुबा इतना आवश्यक भी नहीं। 'रियाज खैराबादी' सारी उम्र शराब की तारीफ में शेर कहते रहे, जब कि उनकी तरल पदार्थों की बदपरहेजी कभी शरबत और सिकंजबीं से आगे नहीं बढ़ी। दूर क्यों जायें, खुद हमारे समकालीन शायर मकतल,

फांसी घाट, जल्लाद, और रस्सी के बारे में ललचाने वाली बातें करते रहे हैं। इसके लिए फांसी पे झूला हुआ होना जुरूरी नहीं। ऐश की दाद देने और रात की गलियों में चक्कर लगाने की हिम्मत या ताकत न हो तो 'हवस सीनों में छुप-छुप कर बना लेती है तस्वीरें' और सच तो ये है कि ऐसी ही तस्वीरों के रंग जियादा चोखे और लकीरें जियादा दिलकश होती हैं। क्यों? केवल इसलिए कि काल्पनिक होती हैं। अजंता और एलोरा की गुफाओं के Frescoes (भित्ति-चित्र) और मूर्तियां इसके क्लासिक उदाहरण हैं। कैसे भरे-पूरे बदन बनाये हैं बनाने वालों ने, और बनाने पर आये तो बनाते ही चले गये। मांसल मूर्ति बनाने चले तो हर Sensuous लकीर बल खाती, गदराती चली गयी। सीधी-सादी लकीरें आपको मुश्किल से ही दिखायी पड़ेंगी। हद ये कि नाक तक सीधी नहीं। भारी बदन की इन औरतों और अप्सराओं की मूर्तियां अपने मूर्तिकार के विचारों की चुगली खाती हैं। नारंगी की फांक जैसे होठ। बर्दाश्त से जियादा भरी-भरी छातियां जो खुद मूर्तिकार से भी संभाले नहीं संभलती। बाहर को निकले हुए भारी कूल्हे, जिन पर गागर रख दें तो हर कदम पर पानी, देखने वालों के दिल की तरह बांसों उछलता चला जाये। उन गोलाइयों के खमों के बीच बलखाती कमर और जैसे ज्वार भाटे में पीछे हटती लहर, फिर वो टांगें जिनकी उपमा के लिए संस्कृत शायर को केले तने का सहारा लेना पड़ा। इस मिलन से अपरिचित और अनुपलब्ध बदन को और उसकी इच्छा की सीमा तक Exaggerated लकीरों और खुल-खेलते उभारों को उन तरसे हुए ब्रह्मचारियों और भिक्षुओं ने बनाया और बनवाया है जिनपर भोग-विलास वर्जित था और जिन्होंने औरतों को सिर्फ फैंटेसी और सपने में देखा था और जब कभी सपने में वो इतने करीब आ जाती कि उसके बदन की आंच से अपने लहू में अलाव भड़क उठता तो फौरन आंख खुल जाती और वो हथेली से आंखें मलते हुए पथरीली चट्टानों पर अपने सपने लिखने शुरू कर देते।

वो सूरतगर कुछ ख्वाबों के

पश्चिम का सारा Porn और Erotic Art भिक्षुओं और त्यागियों की फैंटेसी के आगे बिल्कुल बचकाना और पतली छाछ लगता है। ऐसे छतनार बदन, इच्छाओं से निहाल स्वरूप और ध्यान-धूप में पके नारफल (तख्ती और छातियों के लिए पुरानी उर्दू में ये शब्द बहुत आम था।) सिर्फ और सिर्फ वो त्यागी और भिक्षु बना सकते थे जो अपनी-अपनी यशोधरा को सोता छोड़कर सच्चाई, निर्वाण की तलाश में निकले थे, पर सारी जिंदगी भीगी, सीली और अंधेरी गुफाओं में जहां सपने के सिवा कुछ दिखाई नहीं देता, पहाड़ का सीना काट कर अपना सपना यानी औरत बरामद करते रहे। बरस दो बरस की बात नहीं, इन ज्ञानियों ने पूरे एक हजार बरस इसी मिथुन कला में बिता दिये। फिर जब सारी चट्टानें खत्म हो गयीं और एक-एक पत्थर ने उनके जीवन-सपने का रूप धारण कर लिया तो वो निश्चिंत होकर अंधेरी गुफाओं से बाहर निकले तो देखा कि धर्म और सत्य का सूरज कभी का डूब चुका और बाहर अब उनके लिए जन्म-जन्म का अंधेरा ही अंधेरा है सो वो बाहर के अंधेरे और हा-हाकार से घबरा कर आंखों पर दोनों हाथ रखे फिर से भीतर के जाने पहचाने अंधेरे में चले गये।

सदियों रूप-स्वरूप और श्रृंगार-रस की भूल-भुलइयों में भटकने वाले तपस्वी तो मिट्टी थे, सो मिट्टी में जा मिले। उनके सपने बाकी रह गये। ऐसे ख्वाब देखने वाले, ऐसे भटकने और भटकाने वाले अब कहां आयेंगे।

कोई नहीं है अब ऐसा जहान में 'गालिब'

जो जागने को मिला देवे आके ख्वाब के साथ

देखिए बात से बात बल्कि खुराफात निकल आई मतलब ये कि बात हकीम एहसानुल्लाह 'तसलीम' से शुरू हुई औ कोठे-कोठे चढ़ती उतरती अजंता और एलोरा तक पहुंच गयी। क्या कीजिये हमारे बांके यार का बातचीत का यही ढंग है। चांद और सूरज की किरणों से चादर बुन के रख देते हैं।

हमने इस चैप्टर में उनके विचारों को यथासंभव उन्हीं के शब्दों और ध्यान को भटकाने वाले अंदाज में इकट्ठा कर दिया है। अपनी तरफ से कोई बढ़ोत्तरी नहीं की। वो अक्सर कहते हैं 'आप मेरे जमाने के घुटे-घुटे माहौल, पवित्र अभाव और इच्छाओं की पवित्रता का अंदाजा नहीं लगा सकते। आपके और मेरी उम्र में एक नस्ल का... बीस साल का... गैप है।'

सही कहते हैं। उनकी और हमारी नस्ल के बीच में तवायफ खड़ी है।

मुशायरा किसने लूटा

जौहर इलाहाबादी, काशिफ कानपुरी और नुशूर वाहिदी को छोड़कर बाकी स्थानीय और बाहरी शायरों को काव्य पाठ में आगे-पीछे पढ़वाने का मसअला बड़ा टेढ़ा निकला, क्योंकि सभी एक-दूसरे के बराबर थे और ऐसी बराबर की टक्कर थी कि यह कहना मुश्किल था कि उनमें कम बुरे शेर कौन कहता है ताकि उसको बाद में पढ़वाया जाये। इस समस्या का हल यह निकाला गया कि शायरों को अक्षरक्रम के उल्टी तरफ से पढ़वाया गया यानी पहले यावर नगीनवी को अपनी हूटिंग करवाने की दावत दी गयी। अक्षरक्रम के सीधी तरफ से पढ़वाने में ये मुश्किल थी उनके उस्ताद जौहर इलाहाबादी को उनसे भी पहले पढ़ना पड़ता।

मुशायरा स्थल पर एक अजब हड़बोंग मची थी। उम्मीद के विपरीत आस-पास के देहात से लोग झुंडों में आये। दरियां और पानी कम पड़ गया। सुनने में आया कि मौली मज्जन के दुश्मनों ने ये अफवाह फैलायी कि मुशायरा खत्म होने के बाद लड्डुओं, खजूर का प्रसाद और मलेरिया तथा रानीखेत (मुर्गियों की बीमारी) की दवा की पुड़ियां बटेंगी। एक देहाती अपनी दस बारह मुर्गियां झाबे में डाल के ले कर आया था कि सुब्ह तक बचने की उम्मीद नहीं थी। इसी तरह एक किसान अपनी जवान भैंस को नहला धुला कर बड़ी उम्मीदों से साथ लाया था, उसके कट्टे ही कट्टे होते थे, मादा बच्चा नहीं होता था। उसे किसी ने खबर दी थी कि शायरों के मेले में तवायफों वाले हकीम अहसानुल्लाह 'तस्लीम' आने वाले हैं। श्रोताओं की बहुसंख्या ऐसी थी जिन्होंने इससे पहले मुशायरा और शायर नहीं देखे थे। मुशायरा खासी देर से यानी दस बजे शुरू हुआ, जो देहात में दो बजे रात के बराबर होते हैं। जो नौजवान वॉलंटियर रौशनी के इंतिजाम के इंचार्ज थे, उन्होंने मारे जोश के छह बजे ही गैस की लालटेनें जला दीं जो नौ बजे तक अपनी बहारें दिखा कर बुझ गयीं। उनमें दोबारा तेल और हवा भरने और काम के दौरान आवारा लौंडों को उनकी शरारत और जुरूरत के मुताबिक बड़ी, और बड़ी गावदुम गाली देकर परे हटाने में एक घंटा लग गया। तहसीलदार को उसी दिन कलैक्टर ने बुला लिया था। उसकी अनुपस्थिति से लौंडों-लहाड़ियों को और शह मिली। रात के बारह बजे तक कुल सत्ताईस शायरों का भुगतान हुआ। मुशायरे के अध्यक्ष मौली मज्जन को किसी जालिम ने दाद का अनोखा तरीका सिखाया था। वो वाह वा! कहने के बजाय हर शेर पर मुकर्रर इरशाद (दुबारा पढ़िये) कहते थे, नतीजा सत्ताईस शायर चव्वन के बराबर हो गये। हूटिंग भी दो से गुणा हो गयी। कादिर बाराबंकवी के तो पहले शेर पर ही श्रोताओं ने तंबू सर पर उठा लिया। वो परेशान हो कर कहने लगा, 'हजरात!

सुनिये तो! शेर पढ़ा है, गाली तो नहीं दी।' इस पर श्रोता और बेकाबू हो गये, मगर उसने हिम्मत नहीं हारी, बल्कि एक शख्स से बीड़ी मांग कर बड़े इत्मीनान से सुलगा ली और ऊंची आवाज में बोला, 'आप हजरात को जरा चैन आये तो अगला शेर पढ़ूं।' मिर्जा के अनुसार मुशायरों के इतिहास में यह पहला मुशायरा था जो श्रोताओं ने लूट लिया।

सागर जलौनवी

रात के बारह बजे थे, चारों ओर श्रोताओं का तूती बोल रहा था। मुशायरे के शोर से सहम कर गांव की सरहद पर गीदड़ों ने बोलना बंद कर दिया था। एक स्थानीय शायर खुद को हर शेर पर हूट करवा कर सर झुकाये जा रहा था कि एक साहब चांदनी पर चलते हुए मुशायरे के अध्यक्ष तक पहुंचे, दायें हाथ से आदाब किया और बायें हाथ से अपनी मटन-चाप मूंछ जो खिचड़ी हो चली थी, पर ताव देते रहे। उन्होंने प्रार्थना की कि मैं एक गरीब परदेसी हूं, मुझे भी शेर पढ़ने की इजाजत दी जाये। उन्होंने खबरदार किया कि अगर पढ़वाने में देर की गयी तो उनका दर्जा खुद-ब-खुद ऊंचा होता चला जायेगा और वो उस्तादों से पहलू मारने लगेंगे। उन्हें इजाजत दे दी गयी। उन्होंने खड़े हो कर दर्शकों को दायें, बायें और सामने घूम कर तीन-बार आदाब किया। उनकी क्रीम रंग की अचकन इतनी लंबी थी कि भरोसे से नहीं कहा जा सकता था कि उन्होंने पाजामा पहन रक्खा है या नहीं। काले मखमल की टोपी को जो भीड़-भड़क्के में सीधी हो गयी थी, उन्होंने उतार कर फूंक मारी और अधिक टेढ़े एंगिल से सर पर जमाया।

मुशायरे के दौरान यह साहब छटी लाइन में बैठे अजीब अंदाज से 'ऐ सुब्हानल्ला-सुब्हानअल्ला' कह कर दाद दे रहे थे। जब सब ताली बजाना बंद कर देते तो यह शुरू हो जाते और इस अंदाज में बजाते जैसे रोटी पका रहे हैं। फर्शी आदाब करने के बाद वो अपनी डायरी लाने के लिए अचकन इस तरह ऊपर उठाये अपनी जगह पर वापस गये जैसे कुछ औरतें भरी बरसात और चुभती नजरों की सहती-सहती बौछारों में, सिर्फ इतने गहरे पानी से बचने के लिए जिसमें चींटी भी न डूब सके, अपने पांयचे दो-दो बालिश्त ऊपर उठाये चलती हैं और देखने वाले कदम-कदम पे दुआ करते हैं कि 'इलाही ये घटा दो दिन तो बरसे'।

अपनी जगह से उन्होंने अपनी डायरी उठायी, जो दरअस्ल स्कूल का एक पुराना हाजिरी रजिस्टर था जिसमें इम्तिहान की पुरानी कापियों के खाली पन्नों पर लिखी हुई गजलें रखी थीं। उसे सीने से लगाये वो साहब वापस मुशायरे के अध्यक्ष के पास पहुंचे। हूटिंग किसी तरह बंद होने का नाम ही नहीं लेती थी। ऐसी हूटिंग नहीं देखी कि शायर के आने से पहले और शायर के जाने के बाद भी जोरों से जारी रहे। अपनी जेबी घड़ी एक बार बैठने से पहले और बैठने के बाद ध्यान से देखी। फिर उसे डमरू की तरह हिलाया और कान लगा कर देखा कि अब भी बंद है या धक्कमपेल से चल पड़ी है। जब फुरसत पायी तो श्रोताओं से बोले, 'हजरात! आपके चीखने से मेरे तो गले में खराश पड़ गयी है।'

इन साहब ने अध्यक्ष और श्रोताओं से कहा कि वे एक खास कारण से गैर-तरही गजल पढ़ने की इजाजत चाहते हैं, मगर कारण नहीं बताना चाहते। इस पर श्रोताओं ने शोर मचाया। हल्ला जियादा मचा तो उन साहब ने अपनी अचकन के बटन खोलते हुए गैर-तरही गजल पढ़ने का यह कारण बताया कि जो मिसरा 'तरह' दिया गया है उसमें 'सकता' (छंद दोष) पड़ता है, 'मरज' शब्द को 'फर्ज' के ढंग पर बांधा गया है। श्रोताओं की आखिरी पंक्ति से एक

दाढ़ी वाले बुजुर्ग ने उठ कर न सिर्फ सहमति व्यक्त की बल्कि ये चिनगारी भी छोड़ी कि अलिफ (आ की ध्वनि को अ बांधना) भी गिरता है।

यह सुनना था कि शायरों पर अलिफ ऐसे गिरा जैसे फालिज गिरता है। सकते में आ गये। श्रोताओं ने आसमान, मिसरा-तरह और शायरों को अपने सींगों पर उठा लिया। एक हुल्लड़ मचा हुआ था। जौहर इलाहाबादी कुछ कहना चाहते थे मगर अब शायरों के कहने की बारी खत्म हो चुकी थी। फब्तियों, ठट्ठों और गालियों के सिवा कुछ सुनाई नहीं दे रहा था। ऐसा स्थिति थी कि अगर उस समय जमीन फट जाती तो बिशारत स्वयं को, मय कानपुर के शायरों और मौलवी मज्जन को गावतकिये समेत उसमें समा जाने के लिए खुशी से ऑफर कर देते।

उस एतराज करने वाले शायर ने अपना उपनाम सागर जलौनवी बताया।

मुशायरा कैसे लूटा गया

लोग बड़ी देर से उकताये बैठे थे। सागर जलौनवी के धमाकेदार एतराज से ऊंघते मुशायरे में जान ही नहीं, तूफान आ गया। दो गैस की लालटेनों का तेल पंद्रह मिनट पहले खत्म हो चुका था। कुछ में वक्त पर हवा नहीं भरी गयी। वो फुस्स हो कर बुझ गयीं। सागर जलौनवी के एतराज के बाद किसी शरारती ने बाकी लालटेनों को झड़झड़ाया, जिससे उनके मेंटल झड़ गये और अंधेरा हो गया। अब मारपीट शुरू हुई, लेकिन ऐसा घुप्प अंधेरा था कि हाथ को शायर सुझाई नहीं दे रहा था इसलिए बेकसूर श्रोता पिट रहे थे। इतने में किसी ने आवाज लगाई, भाइयो! हटो! भागो! बचो! रंडियों वाले हकीम साहब की भैंस रस्सी तुड़ा गयी है। यह सुनते ही घमासान की भगदड़ पड़ी। अंधेरी रात में काली भैंस तो किसी को दिखायी नहीं दी लेकिन लाठियों से लैस मगर घबराये हुए देहातियों ने एक दूसरे को, भैंस समझ कर खूब धुनाई की। लेकिन आज तक यह समझ न आया कि चुराने वालों ने ऐसे घुप अंधेरे में नये जूते कैसे पहचान लिए और जूते की क्या, हर चीज जो चुरायी जा सकती थी चुरा ली गयी। पानों की चांदी की थाली, दर्जनों अंगोछे, सागर जलौनवी की दुगनी साइज की अचकन, जिसके नीचे कुरता या बनियान नहीं था। एक जाजम, तमाम चांदनियां, यतीमखाने के चंदे की संदूकची, उसका फौलादी ताला, यतीमखाने का काला बैनर, मुशायरे के अध्यक्ष का गाव-तकिया और आंखों पर लगा चश्मा, एक पटवारी के गले में लटकी हुई दांत कुरेदनी और कान का मैल निकालने की डोई, ख्वाजा कमरुद्दीन की जेब में पड़े आठ रुपये, इत्र में बसा रेशमी रूमाल और पड़ौसी की बीबी के नाम महकता खत (यही एक चीज थी जो दूसरे दिन बरामद हुई और इसकी नक्ल घर-घर बंटी), हद ये कि कोई बदतमीज उनकी टांगों में फंसे चूड़ीदार का रेशमी नाड़ा एक ही झटके में खींचकर ले गया। एक शख्स बुझा हुआ हंडा सर पर उठा के ले गया। माना कि अंधेरे में किसी ने सर पर ले जाते हुए तो नहीं देखा, मगर हंडा ले जाने का सिर्फ यही एक तरीका था। बीमार मुर्गियों के केवल कुछ पर पड़े रह गये। सागर जलौनवी का बयान था कि एक बदमाश ने उसकी मूंछ तक उखाड़ कर ले जाने की कोशिश की जिसे उसने यथा-समय अपनी चीख से नाकाम कर दिया। यानी इस बात की चिंता किये बिना कि उपयोगी है या नहीं, जिसका जिस चीज पर हाथ पड़ा उसे उठा कर, उतार कर, नोच कर, फाड़ कर, उखाड़ कर ले गया। हद यह कि तहसीलदार के पेशकार मुंशी बनवारी लाल माथुर के इस्तेमाल में आते डेंचर्स भी। केवल एक चीज ऐसी थी जिसे किसी ने हाथ नहीं लगाया। शायर अपनी डायरियां जिस जगह छोड़ कर भागे थे वो दूसरे दिन तक वहीं पड़ी रहीं।

बाहर से आये देहातियों ने यह समझकर कि शायद यह भी मुशायरे का हिस्सा है, मार-पीट और लूट-खसोट में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया और बाद को बहुत दिन तक हर आये-गये से बड़े चाव से पूछते रहे कि अगला मुशायरा कब होगा।

कई पुश्तों की नालायकी का निचोड़

शायर जो भूचाल लाया बल्कि जिसने मुशायरा अपनी मूंछों पर उठा लिया, बिशारत का खानसामा निकला। पुरानी टोपी और उतरन की अचकन का तोहफा उसे पिछली ईद पर मिला था। राह चलतों को पकड़-पकड़ के अपना कलाम फरमाता। सुनने वाला दाद देता तो उसे खींच कर लिपटा लेता, और दाद न देता तो खुद आगे बढ़कर उससे लिपट जाता। अपने कलाम के दैवीय होने में उसे कोई शक न था। शक औरों को भी नहीं था क्योंकि केवल अक्ल या खाली-खूली इल्म के जोर से कोई शख्स ऐसे खराब शेर नहीं कह सकता। दो पंक्तियों में इतनी सारी गलतियां और झोल आसानी से सुमो देना दैवीय मदद के बगैर मुमकिन न था। काव्य चिंतन में अक्सर ये भी हुआ कि अभी पंक्ति पे ठीक से दूसरी पंक्ति भी नहीं लगी थी कि हंडिया धुआं देने लगी। सालन के भुट्टे लग गये। पांचवीं क्लास तक पढ़ाई की थी, जो उसकी निजी जुरूरत और बर्दाश्त से कहीं जियादा थी। वो अपनी संक्षिप्त-सी अंग्रेजी और ताजा शेर को रोक नहीं सकता था। अगर आप उससे दस मिनट भी बात करें तो उसे अंग्रेजी के जितने भी लफ्ज आते थे वो सब आप पर दाग देता। अपने को सागर साहब कहलवाता लेकिन घर में जब खानसामा का काम अंजाम दे रहा होता तो अपने नाम अब्दुल कय्यूम से पुकारा जाना पसंद करता। सागर कह के बुलायें तो बहुत बुरा मानता। कहता था, नौकरी में हाथ बेचा है, उपनाम नहीं बेचा। खानसामागिरी में भी शायराना तूल देने से बाज न आता। खुद को वाजिद अली शाह, अवध के नवाब का खानदानी खानसामा बताता था। कहता था, कि मैं फारसी में लिखी डेढ़ सौ साल पुरानी डायरी देख-देख कर खाना पकाता हूं। उसके हाथ का अस्वादिष्ट खाना दरअस्ल कई पुश्तों की जमा की गयी नालायकी का निचोड़ होता था।

मगर इसमें पड़ती है मेहनत जियादा

उसका दावा था कि मैं एक सौ एक किस्म के पुलाव पका सकता हूं और ऐसा गलत भी न था। बिशारत हर इतवार को पुलाव पकवाते थे। साल भर में कम से कम बावन बार जुरूर पकवाया होगा। हर बार एक अलग तरीके से खराब करता था। सिर्फ वो खाने ठीक पकाता था जिनको और खराब करना मामूली काबलियत रखने वाले आदमी के बस का काम नहीं। उदाहरण के तौर पर खिचड़ी, आलू का भुरता, लगी हुई खीर, रात भर की पकी देग, खिचड़ा, अरहर की दाल और मुतनजन जिसमें मीठे चावलों के साथ गोश्त और नींबू की खटाई डाली जाती है। फूहड़ औरतों की तरह खाने की तमाम खराबियों को मिर्च से और शायरी की खराबियों को तरन्नुम से दूर कर देता था। मीठा बिल्कुल नहीं पका सकता था, इसलिए कि इसमें मिर्च डालने का रिवाज नहीं। अक्सर चांदनी रातों में जियोग्राफी टीचर को उसी के बैंजो पर अपनी गजलें गा के सुनाता, जिन्हें सुनकर वो अपनी महबूबा को, जिसकी शादी मुरादाबाद में एक पीतल के पीकदान बनाने वाले से हो गयी थी, याद कर-कर के षणज में रोता था। गाने की जिस धुन का सागर ने बिना किसी प्यास के आविष्कार किया था उससे गिरने में बहुत मदद मिलती थी।

बिशारत ने एक दिन छेड़ा कि भई, तुम ऐसी मुश्किल जमीनों में ऐसे अच्छे शेर निकालते हो, फिर खानसामागिरी क्यों करते हो? कहने लगा आपने मेरे दिल की बात पूछ ली। अच्छा खाना पकाने के बाद जो रूह को खुशी मिलती है वो शेर के बाद नहीं मिलती। किस वास्ते कि खाना पकाने में वज्न का कहीं जियादा खयाल रखना पड़ता है। खाने वाले जिसे बुरा कह दे उसे बुरा मानना पड़ता है। खाना पकाने में मेहनत भी जियादा पड़ती है। इसीलिए तो आज तक किसी शायर ने बावर्ची का पेशा नहीं पकड़ा।

शायरी को सागर जलौनवी ने कभी जरिया-ए-इज्जत नहीं समझा, जिसका एक कारण ये था कि शायरी के कारण अक्सर उसकी बेइज्जती होती रहती थी। खाना पकाने में जितना दिमागदार था, शेर कहने में उतनी ही उदारता से काम लेता था। अक्सर बड़े खुले दिल से स्वीकार करता था कि 'गालिब' उर्दू में मुझसे बेहतर कह लेता था। 'मीर' को मुझसे कहीं जियादा तन्ख्वाह और दाद मिली। उदारता से इतना मानने के बाद ये जुरूर कहता, हुजूर वो जमाने और थे। उस्ताद सिर्फ शेर कहते और शार्गिदों की गजलें बनाते थे, कोई उनसे चपाती नहीं बनवाता था।

ये कौन हजरते -' आतिश ' का हमजबां निकला

इसमें कोई शक नहीं कि कई-कई शेर बड़े दमपुख्त निकलते थे। कुछ शेर तो वाकई ऐसे थे कि 'मीर' और 'आतिश' भी उन पर गर्व करते, जिसका एक कारण ये था कि ये उन्हीं के थे। खुद को एक विद्यार्थी और अपनी शायरी को दैवी अवतरण बताता था। चुनांचे एक अरसे तक तो उसके भक्त और शिष्यगण इसी खुशगुमानी में रहे कि चोरी नहीं अवतरण में साम्य हो गया है। रुदौली में अपनी ताजा गजल पढ़ रहा था कि किसी गुस्ताख ने भरे मुशायरे में टोक दिया कि ये तो नासिख का है। चोरी है चोरी! जरा जो घबराया हो। उल्टा मुस्कुराया, कहने लगा बिल्कुल गलत! आतिश का है।

फिर अपनी डायरी मुशायरे के अध्यक्ष की नाक के नीचे बढ़ाते हुए बोला 'हुजूर! देख लें, ये शेर डायरी में Inverted Commas में लिखा है और आगे आतिश का नाम भी लिख दिया है।' मुशायरे के अध्यक्ष ने इसकी पुष्टि की और एतराज करने वाला अपना-सा मुंह ले के रह गया।

सागर अपने छोड़े हुए वतन जालौन के कारण प्यार में छोटा सागर (जाम) कहलाता था, मगर वो खुद अपना रिश्ता शायरी के लखनऊ स्कूल से जोड़ता था और जबान के मामले में दिल्ली वालों और पंजाब वालों से बला का पक्षपात करता था, चुनांचे केवल लखनऊ के शायरों के कलाम से चोरी करता था।

तिरे कूचे से हम निकले

हंगामे के बाद किसी को मेहमान शायरों का होश न था। जिसके, जहां सींग समाये वहीं चला गया और जो खुद इस लायक न था उसे दूसरे अपने सींगों पर उठा ले गये। कुछ रात की हड़बोंग की शर्मिंदगी, कुछ रुपया न होने के कारण अव्यवस्था, बिशारत इस लायक न रहे कि शायरों को मुंह दिखा सकें। मौली मज्जन के दिये दस रुपये कभी के चटनी हो चुके थे बल्कि वो अपनी जेब के बहत्तर रुपये खर्च कर चुके थे और अब इतनी क्षमता न थी कि शायरों को वापसी का टिकिट दिलवा सकें। मुंह पर अंगोछा डाल कर छुपते-छुपाते धार्मिक-शिक्षा टीचर के खाली

घर में गये। वेलेजली उनके साथ लगा था। ताला तोड़ कर घर में घुसे और दिन भर मुंह छुपाये पड़े रहे। तीसरे पहर वेलेजली को जंजीर उतार कर बाहर कर दिया कि बेटा जा, आज खुद ही घूम आ। बिफरे हुए कानपुर के शायरों का झुंड उनकी तलाश में घर-घर झांकता फिरा, आखिर थक हार-कर पैदल स्टेशन के लिए रवाना हुआ। सौ-दौ सौ कदम चले होंगे कि लोग साथ आते गये और बाकायदा जुलूस बन गया। कस्बे के तमाम अधनंगे बच्चे, एक पूरा नंगा पागल, म्यूनिस्पिल बोर्ड की हद में काटने वाले तमाम कुत्ते उन्हें स्टेशन छोड़ने गये। जुलूस के आखिर में एक साधू भभूत रमाये, भंग पिये और तीन कटखनी बत्तखें भी अकड़े हुई फौजियों की Ceremonial चाल यानी अपनी ही चाल--- Goose Step--- में चलती हुई साथ थीं। रास्ते में घरों में आटा गूंधती, सानी बनाती, रोते हुए बच्चे का मुंह दूध के ग्लैंड से बंद करती और लिपाई-पुताई करती औरतें अपना-अपना काम छोड़कर, सने हुए हाथों के तोते से बनाये जुलूस देखने खड़ी हो गयीं। एक बंदर वाला भी अपने बंदर और बंदरिया की रस्सी पकड़े ये तमाशा देखने खड़ा हो गया। बंदर और लड़के बार-बार तरह-तरह के मुंह बनाकर एक दूसरे पर खोंखियाते हुए लपकते थे। ये कहना मुश्किल था कि कौन किसकी नकल उतार रहा है।

आते वक्त जिन शायरों ने इस बात पर नाक-भौं चढ़ायी थी कि बैलगाड़ी में लाद कर लाया गया, अब इस बात से नाराज थे कि पैदल खदेड़े गये। चलती ट्रेन में चढ़ते वक्त हैरत कानपुरी एक कुली से ये कह गये कि उस कमीन (बिशारत) से कह देना, जरा धीरजगंज से बाहर निकले, तुझसे कानपुर में निबट लेंगे। सब शायरों ने अपनी जेब से वापसी के टिकिट खरीदे, सिवाय उस शायर के जो अपने साथ पांच मिसरे उठाने वाला लाया था। ये साहब अपने मिसरा उठाने वालों समेत आधे रास्ते में ही बिना टिकिट सफर करने के जुर्म में उतार लिए गये। प्लेटफार्म पर कुछ दर्दमंद मुसलमानों ने चंदा करके टिकिटचेकर को रिश्वत दी तब कहीं जा के छुटे। टिकिटचेकर मुसलमान था वरना कोई और होता तो छहों के हथकड़ी डलवा देता।

बात एक रात की

सिर्फ बेइज्जत हुए शायर नहीं, कानपुर की सारी शायर बिरादरी बिशारत के खून की प्यासी थी। उन शायरों ने बिशारत के खिलाफ इतना प्रोपेगंडा किया कि कुछ गद्य लेखक भी इनको कच्चा चबा जाने के लिए तैयार बैठे थे। कानपुर में हर जगह इस मुशायरे के चर्चे थे। धीरजगंज जाने वाले शायरों ने अपनी जिल्लत और परेशानी की दास्तानें बढ़ा-चढ़ाकर बयान कीं। वो अगर सच नहीं भी थीं तो सुनने वाले दिल से चाहते थे कि खुदा करे! सच हों कि वो इसी लायक थे। लोग कुरेद-कुरेद के विस्तार से सुनते थे। एक शिकायत हो तो बयान करें अब खाने को ही लीजिये, हर शायर को शिकायत थी कि रात का खाना हमें दिन-दहाड़े चार बजे उसी किसान के यहां खिलवाया गया जिसके यहां सुलवाया गया। जाहिर है किसान ने अलग किस्म का खाना खिलाया, चुनांचे जितनी किस्म के खाने थे उतनी ही किस्म की पेट की बीमारियों में शायरों ने खुद को उलझा पाया। हैरत कानपुरी ने शिकायत की कि मैंने नहाने के लिए गर्म पानी मांगा तो चौधराइन ने घूंघट उठा के मुझे सबसे पास के कुएं का रास्ता बता दिया। और ये भरोसा दिलाया कि उसमें से गर्मियों में ठंडा और सर्दियों में गर्म पानी निकलता है। चौधरी ने तो नहाने का कारण भी जानना चाहा (ये उस जमाने का बहुत आम और भौंडा मजाक था) और जब मैंने नहाये बगैर अचकन पहन ली और मुशायरे में जाने लगा तो चौधरी ने मेरी गोद में दो महीने का नंग-धड़ंग बेटा दे कर जबरदस्ती पुष्टि करनी चाही कि नवजात अपने बाप पर पड़ा है। मेरा क्या जाता था मैंने कह दिया हां और बड़े

प्यार से बच्चे के सर पे हाथ फेरा जिससे बेचैन होके उसने मेरी अचकन पे पेशाब कर दिया। उसी अचकन को पहने-पहने मैंने लोकल शायरों को गले लगाया।

फिर कहा कि बंदा आबरू हथेली पे रखे एक बजे मुशायरे से लौटा, तीन बजे तक चारपायी के ऊपर खटमल और नीचे चूहे कुलेलें करते रहे। तीन बजते ही घर में 'सुब्ह हो गयी-सुब्ह हो गयी' का शोर मच गया। और ये शिकायत तो सबने की कि सुब्ह चार बजे हमें झिंझोड़-झिंझोड़ कर उठाया और एक-एक लोटा हाथ में पकड़ा के झड़बेरी की झाड़ियों के पीछे भेज दिया गया। हैरत कानपुरी ने प्रोटेस्ट किया तो उन्हें नवजात के पोतड़े के नीचे से एक चादर घसीट के पकड़ा दी गयी कि ऐसा ही है तो ये ओढ़ लेना। शायरों का दावा था कि उस दिन हमने गांव के मुर्गों को कच्ची नींद उठाकर अजानें दिलवा दीं।

कुछ ने शिकायत की हमें 'ठोस' नाश्ता नहीं दिया गया। निहार मुंह फुट भर लंबे ग्लास में छाछ पिलाकर विदा कर दिया। एक साहब कहने लगे कि उनकी खाट के पाये से बंधी हुई एक बकरी सारी रात मींगनी करती रही। मुंह अंधेरे उसी का दूध दुह के उन्हें पेश कर दिया गया। उनका खयाल था कि ये सुलूक तो कोई बकरी भी बर्दाश्त नहीं कर सकती। खरोश शाहजहांपुरी ने कहा कि उनके सिरहाने रात के ढाई बजे से चक्की चलनी शुरू हो गयी। चक्की पीसने वाली दोनों लड़कियां हंस-हंस के जो गीत गा रही थीं वो देवर-भावज और नंदोई-सलहज की छेड़-छाड़ से संबंधित था, जिससे उनकी नींद और नीयत में खलल पड़ा। एजाज अमरोही ने कहा कि भांति-भांति के परिंदों ने सुब्ह चार बजे से ही शोर मचाना शुरू कर दिया। ऐसे में कोई में शरीफ आदमी सो ही नहीं सकता। मजजूब मथरावी को शिकायत थी कि उन्हें कच्चे सहन में जामुन के पेड़ तले मच्छरों की छांव में सुलाया गया। पुरवा के हर चैन देने वाले झोंके के साथ रात भर उनके सर पर जामुनें टपकती रहीं। सुब्ह उठकर उन्होंने शिकायत की तो मकान मालिक के मैट्रिक फेल लौंडे ने कहा, गलत! जामुनें नहीं, फलेंदे थे। मैंने खुद लखनऊ वालों को फलेंदे कहते सुना है। मजजूब मथरावी के बयान के मुताबिक उनकी चारपायी के पास खूंटे से बंधी हुई भैंस रात-भर डकराती रही। तड़के एक बच्चा दिया जो सीधा उनकी छाती पे आ गिरता, अगर वो कमाल की फुरती से बीच में ही कैच न कर लेते। शैदा जारचवी ने अपनी बेइज्जती में भी अनूठेपन और गर्व का पहलू निकाल लिया। उन्होंने दावा किया कि जैसी बेमिसाल बेइज्जती उनकी हुई वैसी तो एशिया भर में कभी किसी शायर की नहीं हुई। राअना सीतापुरी सुम काकोरवी ने शगूफा छोड़ा जिस घर में मुझे सुलाया गया बल्कि रात-भर जगाया गया, उसमें एक जिद्दी बच्चा सारी रात मां के दूध और उसका बाप चर्चा के पहले विषय के लिए मचलता रहा। अखगर कानपुरी जांनशीन मायल देहलवी बोले कि उनका किसान मेजबान हर आध घंटे बाद उठ-उठकर उनसे पूछता रहा कि 'जनाबे-आली कोई तकलीफ तो नहीं, नींद तो ठीक आ रही है ना?' गरज कि जितने मुंह उनसे दुगनी तिगुनी शिकायतें। हर शायर इस तरह शिकायत कर रहा था जैसे कि उसके साथ किसी व्यवस्थित षड्यंत्र के तहत निजी जुल्म हुआ है। हालांकि हुआ-हवाया कुछ नहीं। हुआ सिर्फ ये कि उन शहरी शायरों ने देहात की जिंदगी को पहली बार... और वो भी चंद घंटों के लिए... जरा करीब से देख लिया और बिलबिला उठे। उन पर पहली बार खुला कि शहर से सिर्फ चंद मील की ओट में इंसान कैसे जीते हैं और अब उनकी समझ में ये नहीं आ रहा था कि यही कुछ है तो किसलिए जीते हैं।

सकते निकलवा लो

कुछ दिन बाद ये भी सुनने में आया कि जिन तरही पढ़ने वालों की बेइज्जती हुई थी उन्होंने तय किया कि आइंदा जब तक किसी उस्ताद के दीवान में खुद अपनी आंख से मिसरा-ए-तरह न देख लें, हरगिज-हरगिज उस जमीन में शेर नहीं निकालेंगे। उनमें से दो शायरों ने सागर जलौनवी से गजलें बनवानी शुरू कर दीं। इधर उस्ताद अखगर कानपुरी-जानशीन माइल देहलवी की दुकान खूब चमकी। उनके पास रोजाना दर्जनों शार्गिद आने लगे कि उन्होंने गजल में करेक्शन की एक खास विधा में स्पेशलाइज कर लिया था। वो सिर्फ सकते निकालते थे और इस तरह निकालते थे जैसे पहलवान लात मारकर कमर की चिक निकाल देते हैं या जिस तरह बारिश में भीगने से बान की अकड़ी हुई चारपाई पर मुहल्ले भर के लौंडों को कुदवा कर उसकी कान निकाल ली जाती है। इस तरह कान तो निकल जाती है, लेकिन लौंडों को परायी चारपायी पर कूदने का चस्का पड़ जाता है।

माई डियर मौलवी मज्जन

दिन तो जैसे-तैसे काटा लेकिन शाम पड़ते ही बिशारत एक करीबी गांव सटक गये। वहां अपने एक परिचित के यहां (जिसने कुछ महीने पहले एक यतीम तलाश करने में मदद दी थी) अंडरग्राउंड हो गये। अभी जूतों के फीते ठीक से खोले भी नहीं थे कि हर जानने वाले को अलग-अलग लोगों के जरिये, अपने गोपनीय भूमिगत स्थान की जानकारी भिजवायी। उन्होंने धीरजगंज में सवा साल रो-रो कर गुजारा था। देहात में वक्त भी बैलगाड़ी में बैठ जाता है। उन्हें अपनी सहनशक्ति पर आश्यर्च हुआ। नौकरी के सब रास्ते बंद नजर आयें तो असहनीय भी सहन हो जाता है। उत्तरी भारत में कोई स्कूल ऐसा नहीं बचा जिसका नाम उन्हें पता हो और उन्होंने वहां दरख्वास्त न भेजी हो। आसाम के एक मुस्लिम स्कूल में उन्हें जिम्नास्टिक मास्टर तक की नौकरी न मिली। चार-पांच जगह अपने खर्च पर जा कर इंटरव्यू में नाकाम हो चुके थे। हर असफलता के बाद उन्हें समाज में एक नयी खराबी नजर आती थी, जिसे सिर्फ रक्त-क्रांति से ही दूर किया जा सकता था। लेकिन जब कुछ दिन एक दोस्त की मेहरबानी से संडीला के हाईस्कूल में एप्वाइंटमेंट लेटर मिला तो अनायास मुस्कुराने लगे। दिल ने अनायास कहा कि मियां -

ऐसा कहां खराब जहाने-खराब है

दस-बारह बार खत पढ़ने और हर बार नयी खुशी अनुभव करने के बाद उन्होंने चार लाइन वाले कागज पर इस्तीफा लिख कर मौली मज्जन को भिजवा दिया। एक ही झटके में बेड़ी उतार फेंकी। इस्तीफा लिखते हुए वो आजादी के भक-से उड़ा देने वाले नशे में डूब गये अतः इस्तीफे की फ की टांग इ के पेट में घुस गयी। बी.ए. का रिजल्ट आने के बाद वो अंग्रेजी में अपने हस्ताक्षर की जलेबी-सी बनाने लगे थे। आज वो जलेबी, इमरती बन गयी। मौलवी मज्जन को चिट्ठी का विषय पढ़ने की थोड़ी भी जुरूरत नहीं थी कि चिट्ठी के हर स्वर से विद्रोह, हर व्यंजन से उद्दंडता और एक-एक लाइन से इस्तीफा टपक रहा था। बिशारत ने लिफाफे को हैरत और नफरत में थूक मिलाकर ऐसे चिपकाया जैसे मौलवी मज्जन के मुंह पर थूक रहे हों। दस्तखत करने के बाद सरकारी होल्डर के दो टुकड़े कर दिये। अपने अन्नदाता मौलवी सय्यद मुहम्मद मुजफ्फर को हुजूर फैज गंजूर लिखने की बजाय माई डियर मौलवी मज्जन लिखा तो वो कांटा जो सवा साल में उनके तलवे को छेदता हुआ तालू तक पहुंच चुका था, एक झटके से निकल गया। उन्हें इस बात पर हैरत थी कि वो सवा साल ऐसे फटीचर आदमी से इस तरह अपनी औकात खराब करवा रहे थे। उन्हें हो क्या गया था। मौलवी मज्जन को भी शायद इसका अहसास था। इसलिए कि जब बिशारत उन्हें खुदा के हवाले करने गये, मतलब ये कि खुदा हाफिज कहने गये तो उन्होंने हाथ तो

मिलाया आंखें न मिला सके, जबकि बिशारत का ये हाल था कि 'आदाब अर्ज' भी इस तरह कहा कि लहजे में हजार गालियों का गुबार भरा था।

बिशारत ने बहुत सोचा। नाजो को तोहफे में देने के लिए उनके पास कुछ भी तो न था। जब कुछ समझ में न आया तो विदा के समय अपनी सोने की अंगूठी उतार कर उसे दे दी। उसने कहा, अल्लाह मैं इसका क्या करूंगी? फिर वो अपनी कोठरी में गयी और कुछ मिनट बाद वापस आई। उसने अंगूठी में अपने घुंघराले बालों की एक लट बांध कर उन्हें लौटा दी। वो दबी सिसकियों में रो रही थी।

तुम तो इतने भी नहीं जितना है कद तलवार का

संडीला हाईस्कूल में और तो सब कुछ ठीक था, लेकिन मैट्रिक में तीन चार प्रॉब्लम, लड़के उनसे भी उनमें तीन चार बरस बड़े निकले। ये लड़के जो हर क्लास में दो-दो तीन-तीन साल दम लेते हुए मैट्रिक तक पहुंचे थे, अपनी उम्र से इतना शर्मिंदा नहीं थे जितने कि खुद बिशारत। जैसे ही वो गोला जो इस क्लास में पांव रखते ही उनके हलक में फंस जाता था, घुला और स्कूल में उनके पैर जमे, उन्होंने अपने एक दोस्त से जो लखनऊ से ताजा-ताजा एलएल.बी. करके आया था, मौलवी मुजफ्फर को एक कानूनी नोटिस भिजवाया कि मेरे मुअक्किल की दस महीने की चढ़ी हुई तन्ख्वाह मनीआर्डर से भिजवा दीजिये वरना आपके खिलाफ कानूनी कारवाई की जायेगी।

इसके जवाब में दो हफ्ते बाद मौलवी मुजफ्फर की तरफ से उनके वकील का रजिस्टर्ड नोटिस आया कि मुशायरे के सिलसिले में जो रकम आपको समय-समय पर दी गयी, उसका हिसाब दिये बगैर आप फरार हो गये। आप इन पैसों में से अपने पैसे काट के बाकी मेरे मुअक्किल को भेज दीजिए। मुशायरे के खर्चों का विवरण अस्ल रसीद के साथ वापसी डाक से भेजें। शायरों को जो पेमेंट, भत्ता और सफर खर्च दिया गया उनकी रसीदें भी संलग्न करें और इसका कारण भी बतायें कि क्यों न आपके खिलाफ कानूनी कारवाई की जाये। इसके अतिरिक्त ये कि शायरों के स्वागत के समय आपने यतीमखाने के बैंड से अपनी एक गजल बजवायी, जिसके एक से जियादा शेर अश्लील थे और ये कि वज्न से गिरे हुए मिसरा-तरह देने से स्कूल की और धीरजगंज के लोगों की जो मानहानि हुई है और उनको जो नुकसान पहुंचा है उसका हर्जाना वुसूल करने का हक यतीमखाना कमेटी सुरक्षित रखती है। नोटिस में ये धमकी भी दी गयी थी कि अगर रकम वापस न की गयी तो गबन के केस के पूरे विवरण से संडीला स्कूल की व्यवस्थापक कमेटी और गवर्नमेंट के शिक्षा विभाग को सूचित कर दिया जायेगा।

नोटिस से तीन दिन पहले मौली मज्जन ने एक टीचर की जबानी बिशारत को कहला भेजा कि बरखुरदार! तुम अभी बच्चे हो। गुरु घंटाल से काहे को उलझते हो। अभी तो तुम्हारे गोलियां और गिल्ली डंडा खेलने और हमारी गोद में बैठकर ईदी मांगने के दिन हैं। अगर टक्कर ली तो परखचे उड़ा दूंगा।

आदमी का काटा कुत्ता

बिशारत का रहा सहा बचाव का लड़खड़ाता किला ढाने के लिए नोटिस के आखिरी पैराग्राफ में एक टाइमबम रख दिया। लिखा था कि जहां आपने शिक्षा विभाग को अपने नोटिस की नक्ल भेजी, वहां उसकी जानकारी में ये बात

भी लानी चाहिए थी कि आपने अपने कुत्ते का नाम ब्रिटिश सरकार के गवर्नर जनरल को जलील करने की नीयत से लार्ड वेलेजली रखा। आपको बार-बार वार्निंग दी गयी मगर आप शासन के खिलाफ एक लैंडी कुत्ते के जरिये नफरत और बगावत को हवा देने पे तुले रहे। जिसकी गवाही देने को कस्बे का बच्चा-बच्चा तैयार है। आप अंग्रेज दुश्मनी के जुनून में अपने को गर्व से टीपू कहलवाते थे।

बिशारत सकते में आ गये। या अल्लाह क्या होगा। वो देर तक उदास और चिंतित बैठे रहे। वेलेजली उनके पैरों पर अपना सर रखे, आंखें मूंदे पड़ा था। थोड़ी-थोड़ी देर में आंखें खोल के उन्हें देख लेता था। उनका जी जरा हल्का हुआ तो वो देर तक उस पर हाथ फेरते रहे, प्यार से जियादा कृतज्ञ भाव से। उसके बदन का कोई हिस्सा ऐसा नहीं था जहां पत्थर की चोट का निशान न हो।

मौली मज्जन ने इस नोटिस की कॉपी सूचना देने के लिए उन तमाम शायरों को भेजी जो यादगार मुशायरे में आये थे। तीन-चार को छोड़ के सबके सब बिशारत के पीछे पड़ गये कि लाओ हमारे हिस्से की रकम। एक बुरा हाल शायर तो कोसनों पर उतर आया। कहने लगा, जो दूसरे शायर भाइयों के गले पर छुरी फेर के मुआवजा हड़प कर जाये, अल्लाह करे उसकी कब्र में कीड़े और शेर में सकते पड़ें। अब वो किस-किस को समझाने जाते कि मुशायरे की मद में उन्हें कुल दस रुपये दिये गये। एक दिलजले ने तो हद कर दी। इसी जमीन में उनकी हिजो (खिल्ली उड़ाने वाली शायरी) कहकर उनके भूतपूर्व खानसामा सागर जलौनवी के पास सुधारने के लिए भेजी, जो उस नमकहलाल ने ये कहके लौटा दी कि हम अवध के नवाब, जाने-आलम वाजिद अली शाह पिया, के खानदानी खानसामा हैं। हमारा उसूल है कि एक बार जिसका नमक खा लिया, उसके खिलाफ हमारी जबान और कलम से एक शब्द भी नहीं निकल सकता। चाहे वो कितना भी बड़ा गबन क्यों न कर ले।

तपिश डिबाइवी ने उड़ा दिया कि बिशारत के वालिद ने उसी पैसे से नया हार्मोनियम खरीदा है जिसकी आवाज दूसरे मुहल्ले तक सुनाई देती है।

इस साज के पर्दे में गबन बोल रहा है

बिशारत के उस्ताद जौहर इलाहाबादी ने खुल कर अमानत में खयानत का इल्जाम तो नहीं लगाया लेकिन उन्हें एक घंटे तक ईमानदारी पर लैक्चर देते रहे।

नसीहत में फजीहत

सच पूछिए तो उन्हें ईमानदारी का पहला पाठ जौहर इलाहाबादी ने ही पढ़ाया था। हमारा इशारा मौलवी मुहम्मद इस्माईल मेरठी की नज्म 'ईमानदार लड़का' की तरफ है। ये नज्म दरअस्ल एक ईमानदार लड़के की स्तुति है जो हमें भी पढ़ायी गयी थी। उसका किस्सा ये है कि उस लड़के ने पड़ौसी के खाली घर में ताजा-ताजा बेर डलिया में रखे देखे। खाने को बेतहाशा जी चाहा। लेकिन बड़ों की नसीहत और ईमानदारी की सोच बेर चुरा कर खाने की इच्छा पर हावी रही। बहादुर लड़के ने बेरों को छुआ तक नहीं। नज्म का समापन इस शेर पर होता है।

वाह-वा, शाबाश लड़के वाह-वा

तू जवां मर्दों से बाजी ले गया

हाय कैसे अच्छे जमाने और कैसे भले लोग थे कि चोरी और बुरी नीयत की मिसाल देने के लिए बेरों से अधिक कीमती, स्वादिष्ट चीज की कल्पना भी नहीं कर सकते थे। खटमिट्ठे बेरों से अधिक बड़ी और बुरी Temptation हमारी दुखियारी नस्ल के लड़कों को उस काल में उपलब्ध न थी। एक दिन बैठे-बैठे हमें यूं ही ध्यान आया कि अगर अब हमें नयी पौध के लड़कों को नेकचलनी का उपदेश देना हो तो चोरी और बुरी नीयत का कौन-सा उदाहरण देंगे जिससे बात उनके दिल में उतर जाये। लीजिये एक मार्डन उदाहरण जिस पर हम ये कहानी खत्म करते हैं।

उदाहरण

ईमानदार लड़के ने अलमारी में ब्लू फिल्म और Cannabis के सिगरेट रखे देखे वो उन्हें अच्छी तरह पहचानता था। इसलिए कि कई बार ग्रामर स्कूल में अपनी क्लास के लड़कों के बस्तों में देख चुका था। उनके मजे का उसे खूब अंदाजा था, मगर वो इस वक्त अपने डैडी की नसीहत के नशे में था। इसलिए सूंघ कर छोड़ दिये।

स्पष्टीकरण

वास्तविकता में इसके तीन कारण थे। पहला, उसके डैडी की नसीहत थी कि कभी चोरी न करना। दूसरा, डैडी ने ये भी नसीहत की थी कि बेटा गंदी चीजों के पास न जाना। नजर हमेशा नीची रखना। सबसे बावला नशा आंख का नशा होता है और सबसे गंदा गुनाह आंख का गुनाह होता है चूंकि इसमें बुजदिली और नामर्दी भी शामिल होती है। कभी कोई बुरा विचार दिल में आ भी जाये तो फौरन अपने किसी बड़े या खानदान के किसी बुजुर्ग की सूरत को आंखों में बांध लेना। चुनांचे ईमानदार लड़के की आंखों के सामने इस वक्त अपने डैडी की सूरत थी और तीसरा कारण ये कि दोनों वर्जित चीजें उसके डैडी की अलमारी में रखी थीं।

वाह-वा, शाबाश लड़के वाह-वा!

तू बुजुर्गों से भी बाजी ले गया

>>पीछे>> >>आगे>>

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

उपन्यास

खोया पानी

मुश्ताक़ अहमद यूसुफ़ी

अनुवाद - तुफ़ैल चतुर्वेदी

अनुक्रम

स्कूल मास्टर का ख्वाब

पीछे

आगे

हर व्यक्ति के मन में ऐश्वर्य और भोग-विलास का एक नक्शा होता है। ये नक्शा दरअस्ल उस ठाट-बाट की नक्ल होता है जो दूसरों के हिस्से में आया है, परंतु जो दुख आदमी सहता है वो अकेला उसका अपना होता है, बिना किसी साझेदारी के, एकदम निजी, एकदम अनोखा। हड्डियों को पिघला देने वाली जिस आग से वो गुजरता है, उसका अनुमान कौन लगा सकता है। नर्क की आग में ये गर्मी कहां। जैसा दाढ़ का दर्द मुझे हुआ है, वैसा किसी और को न कभी हुआ, न होगा। इसके विपरीत ठाट-बाट का ब्लू-प्रिंट हमेशा दूसरों से चुराया हुआ होता है। बिशारत के दिमाग में ऐश्वर्य और विलास का जो सौरंगा और हजार पैवंद लगा चित्र था, वो बड़ी-बूढ़ियों की उस रंगारंग रल्ली की भांति था जो वो भिन्न-भिन्न रंगों की कतरनों को जोड़-जोड़ कर बनाती हैं। उसमें, उस समय का जागीरदाराना दबदबा और ठाट, बिगड़े रईसों का जोश और ठस्सा, मिडिल-क्लास दिखावा, कस्बाती-उतरौनापन, नौकरी-पेशा हुस्न, सादा-दिली और नदीदापन सब बुरी तरह गडमड हो गए थे। उन्हीं का कहना है कि बचपन में मेरी सबसे बड़ी इच्छा थी कि तख्ती फेंक-फांक, किताब फाड़-फूड़ मदारी बन जाऊं, शहर-शहर डुगडुगी बजाता, बंदर, भालू, जमूरा नचाता और 'बच्चा लोग' से ताली बजवाता फिरूं। जब जरा अक्ल आई अर्थात बुरे और बहुत बुरे की समझ पैदा हुई तो मदारी की जगह स्कूल मास्टर ने ले ली और जब धीरजगंज में सच में मास्टर बन गया तो मेरी राय में अय्याशी की चरम-सीमा ये थी कि मक्खन जीन की पतलून, दो-घोड़ा बोस्की की कमीज, डबल कफों में सोने के छटांक-छटांक भर के बटन, नया सोला हैट और पेटेंट लैदर के पंप-शूज पहनकर स्कूल जाऊं और लड़कों को केवल अपनी गजलें पढ़ाऊं। सफेद सिल्क की अचकन जिसमें बिदरी के काम वाले बटन गले तक लगे हों, जेब में गंगा-जमनी काम की पानों की डिबिया, सर पर सफेद किमख्वाब की रामपुरी टोपी, तिरछी मगर जरा शरीफना ढंग से लेकिन ऐसा भी नहीं कि निरे शरीफ ही हो के रह जायें। छोटी बूटी की चिकन का सफेद कुर्ता जो मौसम के लिहाज से हिना या खस की खुशबू में बसा हो। चूड़ीदार पाजामे में सुंदर लड़की के हाथ का बुना हुआ रेशमी कमरबंद। सफेद सलीमशाही जूता। पैरों पर डालने के लिए इटालियन कंबल, जो फिटन में जुते हुए सफेद घोड़े की दुम और उससे दूर तक उड़ने वाले पेशाब-पाखाने के छींटों से पाजामे को सुरक्षित रखे। फिटन के पिछले पायदान पर 'हटो! बचो!' करते और उस पर लटकने का प्रयास करने वाले बच्चों को चाबुक मारता हुआ साईस। जिसकी कमर पर जरदोजी के काम की पेटी और टखने से घुटने तक खाकी नम्दे की पट्टियां बंधी हों। बच्चा अब सयाना हो गया था। बचपन विदा हो गया था, पर बचपना नहीं गया था।

बच्चा अपने खेल में जिस उत्साह और सच्ची लगन के साथ तल्लीन होता है कि अपने-आप को भूल जाता है, बड़ों के किसी मिशन और मुहिम में इसका दसवें का दसवां भाग भी दिखाई नहीं पड़ता। इसमें शक नहीं कि संसार का बड़े-से-बड़ा दार्शनिक भी किसी खेल में मग्न बच्चे से अधिक गंभीर नहीं हो सकता।

खिलौना टूटने पर बच्चे ने रोते-रोते अचानक रौशनी की ओर देखा तो आंसू में इंद्रधनुष झिलमिल-झिलमिल करने लगा। फिर वो सुबकियां लेते-लेते सो गया। वही खिलौना बुढ़ापे में किसी जादू के जोर से उसके सामने लाकर रख दिया जाये तो वो भौंचक्का रह जायेगा कि इसके टूटने पर भला कोई इस तरह जी-जान से रोता है। यही हाल उन खिलौनों का होता है, जिनसे आदमी जीवन भर खेलता रहता है। हां, उम्र के साथ-साथ यह भी बदलते और बड़े होते रहते हैं। कुछ खिलौने अपने-आप टूट जाते हैं, कुछ को दूसरे तोड़ देते हैं। कुछ खिलौने प्रमोट होकर देवता बन जाते हैं और कुछ देवियां दिल से उतरने के बाद गूदड़ भरी गुड़ियां निकलती हैं। फिर एक अभागिन घड़ी ऐसी आती है, जब वो इन सबको तोड़ देता है। उस घड़ी वो खुद भी टूट जाता है।

'तराशीदम, परस्तीदम, शिकस्तम'

(मैंने तराशा, मैंने पूजा, मैंने तोड़ दिया)

आज इन बचकानी इच्छाओं पर स्वयं उनको हंसी आती है। मगर यह उस समय की हकीकत थीं। बच्चे के लिए उसके खिलौने से अधिक ठोस और अस्ल हकीकत पूरे ब्रह्मांड में कुछ और नहीं हो सकती। सपना, चाहे वह आधी रात का सपना हो या जागते में देखा जाने वाला सपना हो, देखा जा रहा होता है तो वही और केवल वही उस क्षण की एकमात्र वास्तविकता होती है। यह टूटा खिलौना, यह आंसुओं में भीगी पतंग और उलझी डोर, जिस पर अभी इतनी मार-कुटाई हुई, यह जलता-बुझता जुगनू, यह तना हुआ गुब्बारा जो अगले पल रबड़ के लिजलिजे टुकड़ों में बदल जायेगा, मेरी हथेली पर सरसराती यह मखमली बीरबहूटी, आवाज की रफ्तार से भी तेज चलने वाली यह माचिस की डिब्बियों की रेलगाड़ी, यह साबुन का बुलबुला - जिसमें मेरा सांस थर्रा रहा है, इंद्रधनुष पर यह परियों का रथ - जिसे तितलियां खींच रही हैं इस पल, इस क्षण बस यही और केवल यही हकीकत है।

यह किस्सा खिलौना टूटने से पहले का है

उन दिनों वो नये-नये स्कूल मास्टर नियुक्त हुए थे और फिटन उनकी सर्वोच्च आकांक्षा थी। सच तो यह है कि इस यूनिफार्म यानी सफेद अचकन, सफेद जूते, सफेद कुर्ते-पाजामे और सफेद कमरबंद की खखेड़ केवल अपने आपको सफेद घोड़े से मैच करने के लिए थी। वरना इस बत्तखा भेस पर कोई बत्तख ही आशिक हो सकती थी। उन्हें चूड़ीदार से सख्त चिढ़ थी। केवल सुंदर कन्या के हाथ के बुने सफेद कमरबंद का प्रयोग करने के लिए यह सितार का गिलाफ टांगों पर चढ़ाना पड़ा। इस हवाई किले की हर ईंट सामंती गारे से निर्मित हुई थी, जो संपन्न सपनों से गुंथा था। केवल इतना ही नहीं कि प्रत्येक ईंट का साइज और रंग भिन्न था, बल्कि उनकी आकृति भी उकेरी हुई थी। कुछ ईंटें गोल भी थीं। बारीक-से-बारीक बात यहां तक कि शालीनता की उस सीमा को भी तय कर दिया गया था कि उनकी उपस्थिति में सफेद घोड़े की दुम कितनी डिग्री के कोण तक उठ सकती है और उनकी सवारी के रूट पर किस-किस खिड़की की चिक के पीछे किस कलाई में किस रंग की चूड़ियां छनक रही हैं, किसकी

हथेली पर उनका नाम मय बी.ए. की डिग्री, मेंहदी से लिखा है और किस-किस की सुरमई आंखें पर्दे से लगी राह तक रही हैं कि कब इंकलाबी शाहजादा ये दावत देता हुआ आता है कि -

तुम परचम लहराना साथी मैं बरबत पर गाऊंगा

यहां ये निवेदन करता चलूं कि इससे बढ़िया तथा सुरक्षित कार्य विभाजन क्या होगा कि घमासान के रण में परचम (युद्ध ध्वज) तो साथी उठाये, कटता-मरता फिरे और खुद शायर दूर किसी संगे-मरमर के मीनार पर बैठा एक फटीचर और वाहियात वाद्य 'बरबत' पर वैसी ही कविता यानी खुद अपनी-ही कविता गा रहा है। गद्य में इसी सिचुएशन को 'चढ़ जा बेटा सूली पर भली करेंगे राम' में जियादा फूहड़ ईमानदारी से बयान किया गया है।

लीजिये! प्रारंभ में ही गड़बड़ हो गयी, वरना कहना सिर्फ इतना था कि मजे की बात यह थी कि इस सोते-जागते सपने के दौरान बिशारत ने स्वयं को स्कूल मास्टर के ही 'शैल' में देखा, पद बदलने का साहस सपने में भी न हुआ! संभवतः इसलिए भी कि फिटन और रेशमी कमरबंद से केवल स्कूल मास्टरों पर ही रोब डाल सकते थे। जमींदारों और जागीरदारों के लिए इन चीजों की क्या हैसियत थी। अपनी पीठ पर बीस वर्ष बाद भी उस आग की लकीर की जलन वो अनुभव करते थे जो चाबुक लगने से उस समय उभरी थी जब मुहल्ले के लौंडों के साथ शोर मचाते और चाबुक खाते वो एक रईस की सफेद घोड़े वाली फिटन का पीछा कर रहे थे।

चौराहे बल्कि संकोच - राहे पर

शेरो-शायरी छोड़कर स्कूल-मास्टरी अपनायी। स्कूल मास्टरी को धता बताकर दुकानदारी की और अंततः दुकान बेच खोंच कर कराची आ गये, जहां हरचंद राय रोड पर दोबारा लकड़ी का कारोबार शुरू किया। नया देश, बदला-बदला सा रहन-सहन, एक नयी और व्यस्त दुनिया में कदम रखा, मगर उस सफेद घोड़े और फिटन वाली फैंटेसी ने पीछा नहीं छोड़ा। Day dreaming और फैंटेसी से दो ही सूरतों में छुटकारा मिल सकता है। पहली जब वह फैंटेसी न रहे, वास्तविकता बन जाये, दूसरे इंसान किसी चौराहे बल्कि संकोच-राहे पर अपने सारे सपने माफ करवा के विदा हो जाये Heart breaker, dreammaker, thank you for the dream और उस खूंट निकल जाये, जहां से कोई नहीं लौटा यानी घर-गृहस्थी की ओर, परंतु बिशारत को इससे भी लाभ नहीं हुआ। वो भरा-पूरा घर औने-पौने बेचकर अपने हिसाब से लुटे-पिटे आये थे। यहां एक-दो साल में खुदा ने ऐसी कृपा की कि कानपुर तुच्छ लगने लगा। सारी इच्छायें पूरी हो गयीं, अर्थात घर अनावश्यक वस्तुओं से अटाअट भर गया। बस एक कमी थी।

सब कुछ अल्लाह ने दे रक्खा है घोड़े के सिवा

अब वो चाहते तो नयी न सही, सेकेंड-हैंड कार आसानी से खरीद सकते थे। जितनी रकम में आज कल चार टायर आते हैं, इससे कम में उस जमाने में कार मिल जाती थी, लेकिन कार में उन्हें वह रईसाना ठाट और जमींदाराना ठस्सा नजर नहीं आता था, जो फिटन और बग्घी में होता है। घोड़े की बात ही कुछ और है।

घोड़े के साथ वीरता भी गयी

मिर्जा अब्दुल वुदूद बेग कहते हैं कि मनुष्य जब बिल्कुल भावुक हो जाये तो उससे बुद्धिमानी की कोई बात कहना ऐसा ही है जैसे बगूले में बीज बोना। इसलिए बिशारत को इस फिजूल शौक से दूर रखने के बजाय उन्होंने उल्टा खूब चढ़ाया। एक दिन आग को पेट्रोल से बुझाते हुए कहने लगे कि जबसे घोड़ा रुखसत हुआ, संसार से बहादुरी, जांबाजी और दिलेरी की रीत भी उठ गयी। जानवरों में कुत्ता और घोड़ा इंसान के सबसे पहले और पक्के मित्र हैं जिन्होंने उसकी खातिर हमेशा के लिए जंगल छोड़ा। कुत्ता तो खैर अपने कुत्तेपन के कारण चिपटा रहा, लेकिन इंसान ने घोड़े के साथ बेवफाई की। घोड़े के जाने से मानव-संस्कृति का एक सामंती-अध्याय समाप्त होता है।

वो अध्याय जब योद्धा अपने शत्रु को ललकार कर आंखों में आंखें डाल के लड़ते थे। मौत एक भाले की दूरी पर होती थी और यह भाला दोनों के हाथ में होता था। मृत्यु का स्वाद अजनबी सही, पर मरने वाला और मारने वाला दोनों एक-दूसरे का चेहरा पहचान सकते थे। बेखबर सोते हुए, बेचेहरा शहरों पर मशरूम-बादल की ओट से आग और एटमी मौत नहीं बरसती थी। घोड़ा केवल उस समय बुजदिल हो जाता है, जब उसका सवार बुजदिल हो। बहादुर घोड़े की टाप के साथ दिल धक-धक करते और धरती थर्राती थी। पीछे दौड़ते हुए बगूले, नालों से उड़ती चिंगारियां, भालों की नोक पर किरण-किरण बिखरते सूरज और सांसों की हांफती आंधियां कोसों दूर से शहसवारों के आक्रमण की घोषणा कर देती थीं। घोड़ों के एक साथ दौड़ने की आवाज से आज भी लहू में हजारों साल पुराने उन्माद के अलाव भड़क उठते हैं।

हमारी सवारी : केले का छिलका

फिटन और घोड़े से बिशारत के लगाव की चर्चा करते-करते हम कहां आ गये। मिर्जा अब्दुल वुदूद बेग ने एक बार बड़े अनुभव की बात कही कि 'जब आदमी केले के छिलके पर फिसल जाये तो फिर रुकने, ब्रेक लगाने का प्रयास कदापि नहीं करना चाहिये, क्योंकि इससे और अधिक चोट आयेगी। बस आराम से फिसलते रहना चाहिये और फिसलने का आनंद लेना चाहिये। तुम्हारे उस्ताद जौक के कथनानुसार -

तुम भी चले चलो ये जहां तक चली चले

केले का छिलका जब रुक जायेगा तो स्वयं रुक जायेगा। Just relax! इसलिए केवल कलम ही नहीं कदम या कल्पना भी फिसल जाये तो हम इसी नियम पर अमल करते हैं। बल्कि साफ-साफ क्यों न मान लें कि इस लंबी जीवन-यात्रा में केले का छिलका ही हमारी एक मात्र सवारी रहा है। ये जो कभी-कभी हमारी चाल में जवानों की-सी तेजी और स्वस्थ प्रकार की चलत-फिरत आ जाती है तो यह उसी के कारण है। एक बार रपट जायें तो फिर यह कदम चाल जो भी कुएं झंकवाये और जिन गलियों-गलियारों में ले जाये, वहां बिना इरादे के लेकिन बड़े शौक से जाते हैं। खुद को रोकने-थामने का जरा भी प्रयास नहीं करते और जब दवात फूट कर कागज पर बिखर जाती है तो हमारी मिसाल उस बच्चे की-सी होती है, जिसकी ठसाठस-भरी जेब के सारे राज कोई अचानक निकालकर सबके सामने मेज पर नुमाइश लगा दे। सबसे अधिक संकोच बड़ों को होता है, क्योंकि उन्हें अपना भूला-बिसरा बचपन और अपनी वर्तमान मेज की दराजें याद आ जाती हैं। जिस दिन बच्चे की जेब से फिजूल चीजों की बजाय पैसे बरामद हों तो समझ लेना चाहिये कि अब उसे चिंता-मुक्त नींद कभी नसीब नहीं होगी।

रेसकोर्स से तांगे तक

जैसे-जैसे बिजनेस में मुनाफा बढ़ता गया, फिटन की इच्छा भी तीव्र होती गयी। बिशारत महीनों घोड़े की तलाश में भटकते रहे। ऐसा लगता था जैसे घोड़े के बिना उनके सारे काम बंद हैं और राजा रिचर्ड तृतीय की भांति घोड़े के लिए वह हर चीज का त्याग करने के लिए तैयार हैं -

"A horse! a horse! my kingdom for a horse!"

उनके पड़ौसी चौधरी करम इलाही ने सलाह दी कि जिला सरगोधा के पुलिस स्टड-फार्म से संपर्क कीजिये। वहां पुलिस की निगरानी में धारू ब्रीड और ऊंची जात के घोड़ों से नस्ल बढ़वाते हैं। घोड़ों का बाप, विशुद्ध और अस्ली हो तो बेटा उसी पर पड़ेगा। कहावत है कि बाप पर पूत, घोड़े पर घोड़ा, बहुत नहीं तो थोड़ा-थोड़ा। मगर बिशारत कहने लगे, 'मेरा दिल नहीं ठुकता। बात यह है कि जिस घोड़े की पैदाइश में पुलिस का हस्तक्षेप बल्कि गर्भक्षेप हो, वो विशुद्ध हो ही नहीं सकता। वो घोड़ा पुलिस पर पड़ेगा।'

घोड़े के बारे में यह बातचीत सुनकर प्रोफेसर काजी अब्दुल कुद्दूस एम.ए.बी.टी. ने वो मशहूर शेर पढ़ा और हमेशा की तरह गलत अवसर पर पढ़ा, जिसमें देखने वाले की पैदाइश में होने वाली पेचीदगियों के डर से नर्गिस हजारों साल रोती है। मिर्जा कहते हैं कि प्रोफेसर काजी अब्दुल कुद्दूस अपनी समझ में कोई बहुत ही बुद्धिमानी की बात कहने के लिए अगर बीच में बोलें तो बेवकूफ लगने लगते हैं, अगर न बोलें तो अपने चेहरे के सामान्य भाव के कारण और अधिक बेवकूफ दिखाई पड़ते हैं।

प्रोफेसर साहब के सामान्य-भाव से तात्पर्य चेहरे पर वो रंग हैं जो उस समय आते और जाते हैं जब किसी की जिप अध-बीच में अटक जाती है।

खुदा-खुदा करके एक घोड़ा पसंद आया जो एक स्टील री-रोलिंग मिल के सेठ का था। तीन-चार बार उसे देखने गये और हर बार पहले से अधिक संतुष्ट लौटे। उसका सफेद रंग ऐसा भाया कि उठते-बैठते उसी के चर्चे, उसी की स्तुति। हमने एक बार पूछा 'पंच-कल्याण है?'

'पंच-कल्याण तो भैंस भी हो सकती है। केवल चेहरा और हाथ-पैर सफेद होने से घोड़े की दुम में सुर्खाब का पर नहीं लग जाता। घोड़ा वो, जो आठों-गांठ कुमैत हो, चारों टखनों और चारों घुटनों के जोड़ मजबूत होने चाहिये। यह भाड़े का टट्टू नहीं, रेस का खानदानी घोड़ा है। यह घोड़ा उनके दिमाग पर इस बुरी तरह सवार था कि अब उसे उन पर से कोई घोड़ी ही उतार सकती थी।

सेठ ने उन्हें ऐसोसिएटिड प्रिंटर्ज में प्रकाशित कराची रेस क्लब की वो किताब भी दिखाई जो उस रेस से संबंधित थी, जिसमें उस घोड़े ने हिस्सा लिया और प्रथम आया था। इसमें उसकी तस्वीर और स्थिति पूरी वंशावली के साथ दर्ज थी। नाम - व्हाइट रोज, पिता - वाइल्ड ओक, दादा ओल्ड डेविल। जब से यह ऊंची-नस्ल का घोड़ा देखा, उन्होंने अपने पुरखों पर गर्व करना छोड़ दिया। उनके कथनानुसार, इसके दादा ने मुंबई में तीन रेसें जीतीं। चौथी में दौड़ते हुए हार्ट फेल हो गया। इसकी दादी बड़ी नरचुग थी। अपने समय के नामी घोड़ों से उसका संबंध रह चुका था। उनसे फायदा उठाने के नतीजे में उसकी छः पुत्र संतानें हुई। प्रत्येक अपने संबंधित बाप पर पड़ी। सेठ से पहले व्हाइट रोज एक बिगड़े रईस की संपत्ति था। जो बाथ आइलैंड में 'वंडर-लैंड' नाम की एक कोठी अपनी एंग्लो

इंडियन पत्नी ऐलिस के लिए बनवा रहा था। री-रोलिंग मिल से जो सरिया खरीद कर ले गया, उसकी रकम कई महीने से उसके नाम खड़ी थी। रेस और सट्टे में दीवाला निकलने के कारण वंडर-लैंड का निर्माण रुक गया और एलिस उसे वंडर की लैंड में छोड़ कर, मुल्तान के एक जमींदार के साथ यूरोप की सैर को चली गयी। सेठ को एक दिन जैसे ही यह खबर मिली कि एक कर्ज लेने वाला अपनी रकम के बदले प्लाट पर पड़ी सीमेंट की बोरियां और सरिया उठवा के ले गया, उसने अपने मैनेजर को पांच लट्ठ-बंद चौकीदारों को साथ लेकर बाथ-आइलैंड भेजा कि भागते भूत की जो भी चीज हाथ लगे खसोट लायें। इसलिए वो यह घोड़ा अस्तबल से खोल लाये। वहीं एक सियामी बिल्ली नजर आ गयी, उसे भी बोरी में भर कर ले आये। घोड़े की ट्रेजडी को पूरी तरह समझाने के लिए बिशारत ने हमसे हमदर्दी जताते हुए कहा 'यह घोड़ा तांगे में जुतने के लिए तो पैदा नहीं हुआ था। सेठ ने बड़ी जियादती की, मगर भाग्य की बात है। साहब! तीन साल पहले कौन कह सकता था कि आप यूं बैंक में जोत दिये जायेंगे। कहां डिप्टी कमिश्नर और डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट की कुर्सी और कहां बैंक का चार फुट ऊंचा स्टूल!'

शाही सवारी

उन्हें इस घोड़े से पहली नजर में मुहब्बत हो गयी और मुहब्बत अंधी होती है, चाहे घोड़े से ही क्यों न हो। उन्हें यह तक सुझायी न दिया कि घोड़े की प्रशंसा में उस्तादों के जो शेर वो ऊटपटांग पढ़ते फिरते थे, उनका संबंध तांगे के घोड़े से नहीं था। यह मान लेने में कोई हरज नहीं कि घोड़ा शाही सवारी है। शाही रोब और राजसी आन-बान की कल्पना घोड़े के बिना अधूरी, बल्कि आधी रह जाती है। बादशाह के कद में घोड़े का कद भी बढ़ाया जाये, तब कहीं जा के वो कद्दे-आदम दिखाई पड़ता है। परंतु जरा ध्यान से देखा जाये तो शाही सवारियों में घोड़ा दूसरे नंबर पर आता है। इसलिए कि बादशाहों और तानाशाहों की मनपसंद सवारी दरअस्ल जनता होती है। ये एक बार उस पर सवारी गांठ लें तो फिर उन्हें सामने कोई कुआं, खाई, बाड़ और रुकावट दिखाई नहीं देती। जोश में वो दीवार भी फलांग जाते हैं। ये लेख वो तब तक नहीं पढ़ सकते जब तक वो Brailie में न लिखा हो।

जिसे वो अपना दरबार समझते हैं, वो वास्तव में उनका घेराव होता है, जो उन्हें यह समझने नहीं देता कि जिस मुंहजोर, सरकश घोड़े को केवल हिनहिनाने की इजाजत दे कर सरलता के साथ आगे से काबू किया जा सकता है, उसे वो पीछे से काबू करने की चेष्टा करते हैं, अर्थात लगाम की बजाय दुम मरोड़ते हैं। लेकिन इस सीधी-सादी लगने वाली सवारी का भरोसा नहीं, क्योंकि यह अबलका सदा एक चाल नहीं चलती। परंतु जो शासक होशियार, पारखी, और शासन में भले-बुरे के भेद से परिचित होते हैं वो पहले ही दिन गरीबों का सर कुचल कर सभी को पाठ समझा देते हैं।

वैसे बड़े और विशिष्ट व्यक्तियों को किसी और अंकुश की आवश्यकता नहीं होती। जो भी उन पर सोने का हौल, चांदी की घंटियां, जरबफ्त की झूल और तमगों की माला डाल दे, उसी के निशान का हाथी बनने के लिए कमर बांधे रहते हैं। चार दिन की जिंदगी मिली थी, सो दो जीहुजूरी की इच्छा में कट गये, दो जीहुजूरी में।

हमारा कजावा :

हमने एक दिन घोड़ों की शान में कुछ कह दिया तो बिशारत भिन्ना गये। हमने तो ठिठोली के उद्देश्य से एक ऐतिहासिक हवाला दिया कि जब मंगोल हजारों के झुंड बना कर घोड़ों पर निकलते तो बदबू के ऐसे भभके उठते थे कि बीस मील दूर से पता चल जाता था। कहने लगे, क्षमा कीजिये, आपने राजस्थान में, जहां आपने जवानी गंवायी, ऊंट ही ऊंट देखे। जिनकी पीठ पर कलफदार राजपूती साफे, चढ़वां दाढ़ियां और दस फुट लंबी नाल वाली तोड़ेदार बंदूकें सजी होती थीं और नीचे... कंधे पर रखी लाठी के सिरे पर तेल पिलाये हुए कच्चे चमड़े के जूतों को लटकाये अर्दली में नंगे पैर जाट।

'कमर बांधे, और हाथ पैर बांधे, फिर मुंह बांधे'

घोड़ा तो आपने यहां आन के देखा है। मियां अहसान इलाही गवाह हैं, उन्हीं के सामने आपने उन ठाकुर साहब का किस्सा सुनाया था जो महाराजा की ऊंटों की पल्टन में रिसालदार थे। जब रिटायर होकर अपने पुरखों के कस्बे... क्या नाम था उसका - उदयपुर तोरावाटी - पहुंचे तो अपनी गढ़ी में भेंट करने आने वालों के लिए दस-बारह मूढ़े डलवा दिये और अपने लिए अपने सरकारी ऊंट जंग बहादुर का पुराना कजावा, उसी पर अपनी पल्टन का लाल रंग का साफा बांधे, सीने पर तमगे सजाये, सुब्ह से शाम तक बैठे हिलते रहते। एक दिन हिल-हिल कर जंग बहादुर के कारनामे बयान कर रहे थे और मैडल झन-झन कर रहे थे कि दिल का दौरा पड़ा। कजावे पर ही आत्मा का पंछी पंचभूत-रूपी पिंजड़े से उड़ कर अपनी यात्रा पर रवाना हो गया। वापसी के क्षणों में होंठों पर मुस्कान और जंग बहादुर का नाम, क्षमा कीजिये, ये सब आप ही के द्वारा लिए गये स्नेप शाट्स हैं। आप भी तो अपने कजावे से नीचे नहीं उतरते। न उतरें! मगर यह कजावा इस अधम की पीठ पर रखा हुआ है। साहब! आप घोड़े का मूल्य क्या जानें। आप तो यह भी नहीं जानते कि खच्चर का 'क्रास' कैसे होता है? खरेरा किस शक्ल का होता है? कनौतियां कहां होती है? बैल के आर कहां चुभोई जाती हैं? चिल्गोजा किस भाषा का शब्द है? अंतिम दो प्रश्न आवश्यक और निर्णायक थे क्योंकि इनसे पता चलता था कि बहस किस नाजुक मोड़ पर आ चुकी है।

यह बहस हमें इसलिए और अधिक नागवार गुजरी कि हमें एक भी सवाल का जवाब नहीं आता था। स्वभाव के लिहाज से वो टेढ़े नहीं, बड़े धीमे और मीठे आदमी हैं, लेकिन जब इस प्रकार पटरी से उतर जायें तो हमें दूर तक कच्चे में खदेड़ते, घसीटते ले जाते हैं। कहने लगे जो व्यक्ति घोड़े पर न बैठा हो वो कभी संतुष्ट स्वाभिमानी और शेर, दिलेर नहीं हो सकता। ठीक ही कहते होंगे क्योंकि वो स्वयं भी कभी घोड़े पर नहीं बैठे थे।

जनाजे से दूर रखना

लंबे समय से उन्हें जीवन में जो खालीपन खटकता था वो इस घोड़े ने पूरा किया। उन्हें बड़ा आश्यर्च होता था कि इसके बिना अब तक कैसे बल्कि काहे को जी रहे थे।

I wonder by my troth what thou and I did till we loved-done.

इस घोड़े से उनका प्रेम इस हद तक बढ़ चुका था कि फिटन का विचार छोड़ कर सेठ का तांगा भी साढ़े चार सौ रुपये में खरीद लिया, हालांकि तांगा उन्हें जरा-भी पसंद नहीं आया था। बहुत बड़ा और गंवारू-सा था, लेकिन क्या किया जाये। सारे कराची में एक भी फिटन नहीं थी। सेठ घोड़ा और तांगा साथ बेचना चाहता था। यही नहीं उसने दाने की दो बोरियों, घास के पांच पूलों, घोड़े के फ्रेम किये हुए फोटो, हाज्मे के नमक, दवा और तेल पिलाने की

नाल, खरेरे और तोबड़े का मूल्य - साढ़े उंतीस रुपये - अलग से धरवा लिया। वो इस धांधली को 'पैकेज-डील' कहता था। घोड़े के भी मुंहमांगे दाम देने पड़े। घोड़ा यदि अपने मुंह से दाम मांग सकता तो सेठ के मांगे हुए दामों यानी नौ सौ रुपये से कम ही होते। घोड़े की खातिर बिशारत को सेठ का तकिया कलाम 'क्या' और 'साला' भी सहन करना पड़ा। हिसाब चुकता करके जब उन्होंने लगाम अपने हाथ में ले ली और उन्हें यह विश्वास हो गया कि अब संसार की कोई शक्ति उनसे उनकी इच्छा के स्वप्नफल को नहीं छीन सकती, तो उन्होंने सेठ से पूछा कि आपने इतना अच्छा घोड़ा बेच क्यों दिया? कोई ऐब है?

उसने जवाब दिया, 'दो महीने पहले की बात है। मैं तांगे में लारेंस-रोड से ली-मार्केट जा रहा था। म्यूनिस्पिल वर्कशाप के पास पहुंचा होगा कि सामने से एक साला जनाजा आता दिखाई पड़ा... क्या? किसी पुलिस अफसर का था। घोड़ा आल-आफ-ए-सडन बिदक गया, पर कंधा देने वाले इससे भी अधिक बिदके। बेफिजूल डर के भाग खड़े हुए... क्या? बीच सड़क पे जनाजे की मिट्टी खराब हुई। हम साला उल्लू के माफिक बैठा देखता पड़ा। वो दिन है और आज का दिन, बेकार बंधा खा रहा है। दिल से उतर गया... क्या? वैसे ऐब कोई नहीं, बस जनाजे से दूर रखना। अच्छा, सलामालेकुम।' 'आपने पहले क्यों नहीं बताया?' 'तुमने पहले क्यों नहीं पूछा? सलामालेकुम।'

जग में चले पवन की चाल

उन्होंने रहीम बख्श नाम का एक कोचवान नौकर रख लिया। तन्ख्वाह मुंह-मांगी, यानी पैंतालीस रुपये और खाना कपड़ा। घोड़ा उन्होंने केवल रंग, दांत और घनी दुम देखकर खरीदा था। वो इनसे इतने संतुष्ट थे कि बाकी घोड़े की जांच-पड़ताल आवश्यकता न समझी। कोचवान भी कुछ इसी प्रकार रखा अर्थात केवल जबान पर रीझ कर। बातें बनाने में माहिर था। घोड़े जैसा चेहरा, हंसता तो लगता कि घोड़ा हिनहिना रहा है। तीस वर्ष घोड़ों की संगत में रहते-रहते उनकी सारी आदतें, बुराइयां, और बदबुएँ अपना ली थीं। घोड़े की अगर दो टांगें होतीं तो इसी प्रकार चलता, बच्चों को कई बार अपना बायां कान हिला कर दिखाता। फुटबाल को एड़ी से दुलत्ती मारकर पीछे की ओर गोल करता तो बच्चे खुशी से तालियां बजाते। घोड़े के चने की चोरी करता था। बिशारत कहते थे, 'यह मनहूस चोरी-छुपे घास भी खाता है। वरना एक घोड़ा इतनी घास खा ही नहीं सकता। जभी तो इसके बाल अभी तक काले हैं। देखते नहीं, हरामखोर तीन औरतें कर चुका है!' विषय कुछ भी हो, सारी बातचीत साईसी भाषा में करता और रात को चाबुक साथ लेकर सोता। दो मील के भीतर कहीं भी घोड़ा या घोड़ी हो, वो तुरंत बू सूंघ लेता और उसके नथुने फड़कने लगते। रास्ते में कोई सुंदर घोड़ी दिखाई पड़ जाये तो वहीं रुक जाता और आंख मार-के तांगे वाले से उसकी उम्र पूछता। फिर अपने घोड़े से कहता 'प्यारे! तू भी जलवा देख ले, क्या याद करेगा!' और पंकज मलिक की आवाज, अपनी लय और घोड़े की टाप की ताल पर 'जग में चले पवन की चाल' गाता हुआ आगे बढ़ जाता। मिर्जा कहते थे कि यह व्यक्ति पूर्व-जन्म में घोड़ा था और अगले जन्म में भी घोड़ा ही होगा। ऐसा केवल महात्माओं और ऋषियों, मुनियों के साथ होता है कि वो जो पिछले जन्म में थे, अगले में भी वहीं हों। वरना ऐसे-वैसों की तो एक ही बार में जून पलट जाती है।

घोड़े-तांगे का उद्घाटन कहिये, मुहूर्त कहिये, जो कहिये - बिशारत के पिता के हाथों हुआ। सत्तर के पेटे बल्कि लपेटे में आने के पश्चात, लगातार बीमार रहने लगे थे। कराची आने के उपरांत उन्होंने बहुत हाथ-पांव मारे, मगर न कोई मकान और जायदाद अलाट करा सके, न कोई ढंग का बिजनेस शुरू कर पाये। बुनियादी तौर पर वो बहुत

सीधे आदमी थे। बदली हुई परिस्थितियों में वो अपने बंधे-टिके उसूलों और आउट-आफ-डेट जीवन-शैली में परिवर्तन लाने को सरासर बदमाशी मानते थे। इसलिए असफलता के कारण दुखी अथवा शर्मिंदा होने की बजाय एक गौरव और संतोष अनुभव करते। वो उन लोगों में से थे, जो जीवन में नाकाम होने को अपनी नेकी और सच्चाई की सबसे रोशन दलील समझते हैं।

अत्यंत भावुक और स्वाभिमानी व्यक्ति थे, किसी से अधिक मिलते-जुलते भी न थे। कभी किसी के सामने हाथ नहीं फैलाया था, पॉमिस्ट के सामने भी नहीं। अब यह भी किया। खुशामद से जबान को कभी दूषित नहीं किया था। यह कसम भी टूटी मगर, काम न बनना था, न बना। मिर्जा अब्दुल वुदूद बेग का कहना है कि, जब स्वाभिमानी और बाउसूल व्यक्ति अपनी हिम्मतानुसार धक्के खाने के पश्चात डीमॉरलाइज होकर कामयाब लोगों के हथकंडे अपनाने का भोंडा प्रयास करता है तो रही-सही बात और बिगड़ जाती है। एकाएक उनको लकवा मार गया। शरीर के बायें भाग ने काम करना बंद कर दिया। डाइबिटीज, एलर्जी, पार्किंसन और खुदा जाने कौन-कौन से रोगों ने घेर लिया। कुछ ने कहा उनके घायल स्वाभिमान ने रोगों में शरण ढूंढ़ ली है। स्वयं स्वस्थ नहीं होना चाहते कि फिर कोई तरस नहीं खायेगा। अब उन्हें अपनी असफलता का इतना अफसोस नहीं था जितना कि अपनी जीवनशैली हाथ से जाने का दुख। लोग आ-आ कर उनका साहस बढ़ाते और कामयाब होने के तरीके सुझाते तो उनके आंसू बहने लगते।

लज्जा और अपमान की सबसे जलील सूरत यह है कि व्यक्ति स्वयं अपनी दृष्टि में भी कुछ न रहे। सो वो इस नर्क से भी गुजरे - उनका बायां बेजान हाथ अलग लटका इस गुजरने की तस्वीर खींचता रहता। लेकिन बेबसी का चित्रण करने के लिए उन्हें कुछ अधिक चेष्टा करने की आवश्यकता न थी। वो सारी उम्र दाग की गजलों पर सर धुनते रहे थे। उन्होंने कभी किसी तवायफ को फानी या मीर की गजल गाते नहीं सुना था। दरअस्ल उन दिनों नृत्य और गायन की महफिलों में किसी हसीना से फानी या मीर की गजल गवाना ऐसा ही था जैसे शराब में बराबर का नींबू का रस निचोड़ कर पीना, पिलाना। गुस्ताखी माफ, ऐसी शराब पीने के बाद तो आदमी केवल तबला बजाने योग्य रह जायेगा! तो साहब! बाबा सारी उम्र फानी और मीर से दूर रहे। अब जो शरण मिली तो उन्हीं के शेरों में मिली। वो मजबूत और बहादुर आदमी थे। मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था कि उनको कभी रोते हुए देखूंगा। मगर देखा, इन आंखों से, कई बार।'

अलाहदीन अष्टम

उनके रोग न केवल बहुत से थे, बल्कि बहुत बढ़े हुए भी थे। इनमें सबसे खतरनाक रोग बुढ़ापा था। उनका एक दामाद विलायत से सर्जरी में नया-नया एफ.आर.सी.एस. करके आया था। उसने अपनी ससुराल में किसी का एपेंडिक्स बाकी नहीं छोड़ा। किसी की आंख में भी तकलीफ होती तो उसका एपेंडिक्स निकाल देता था। आश्चर्य इस पर होता कि आंख की तकलीफ जाती रहती। हालांकि वो सारी उम्र पेट के दर्द से परेशान रहे लेकिन अपने पेट पर हाथ रखकर सौगंध उठा कर कहते थे कि मैंने आज तक किसी डॉक्टर को अपने एपेंडिक्स पर हाथ नहीं डालने दिया। लंबे समय से बिस्तर पर पड़े थे लेकिन उनकी लाचारी अभी अपूर्ण थी। मतलब यह कि सहारे से चल-फिर सकते थे।

उन्होंने उद्घाटन इस प्रकार किया कि अपने कमरे के दरवाजे, जिससे निकले उन्हें कई महीने हो गये थे, एक लाल-रिबन बांध कर अपने डांवाडोल हाथ से कैंची से काटा। ताली बजाने वाले बच्चों में लड्डू बांटने के बाद शुक्राने (धन्यवाद) की नमाज अदा की। फिर घोड़े को अपने हाथ से गेंदे का हार पहनाया, उसके माथे पर एक बड़ी-सी भौंरी थी। केसर में उंगली डुबोकर उस पर 'अल्लाह' लिखा और कुछ पढ़कर फूंक मारी। चारों सुमों और दोनों पहियों पर शगुन के लिए सिंदूर लगाकर दुआ दी कि जीते रहो, सदा सरपट चलते रहो। रहीम बख्श कोचवान का मुंह खुलवा कर उसमें पूरा लड्डू फिट किया। खुद चांदी के वरक में लिपटा हुआ पान कल्ले में दबाया। पुरानी कश्मीरी शाल ओढ़-लपेट कर तांगे की पिछली सीट पर बैठे और अगली सीट पर अपना बीस साल पुराना हार्मोनियम रखवा कर उसकी मरम्मत कराने मास्टर बाकर अली की दुकान रवाना हो गये।

घोड़े का नाम बदल कर उन्होंने बलबन रखा। कोचवान से कहा, हमें तुम्हारा नाम रहीम बख्श बिल्कुल पसंद नहीं। तुम्हें अलादीन कह कर पुकारेंगे। जब से उनकी याददाश्त खराब हुई थी वो हर नौकर को अलादीन कह कर बुलाते थे। यह अलादीन-अष्टम था। इससे पहले वाला अलादीन सप्तम कई बच्चों का बाप था। हुक्के के तंबाकू और रोटियों की चोरी में निकाला गया। गरम रोटियां पेट पर बांध कर ले जा रहा था, चाल से पकड़ा गया। मान्यवर इस अलादीन अर्थात रहीम बख्श को आमतौर से अलादीन ही कहते थे। हां, यदि कोई खास काम जैसे पैर दबवाने हों या बेवक्त चिलम भरवानी हो या महज प्यार जताना हो तो अलादीन मियां कहकर बुलाते। परंतु गाली देना हो तो अस्ल नाम लेकर गाली देते थे।

हाफ मास्ट चाबुक

दूसरे दिन से तांगा सुब्ह बच्चों को स्कूल ले जाने लगा। उसके बाद बिशारत को दुकान छोड़ने जाता। तीन दिन यही नियम रहा। चौथे दिन कोचवान बच्चों को स्कूल छोड़कर वापस आया तो बहुत परेशान दिखाई पड़ा। घोड़ा फाटक से बांधकर सीधा बिशारत के पास आया। हाथ में चाबुक ऐसे उठा रखा था जैसे पुराने समय में ध्वजवाहक युद्धध्वज लेकर चलता था, बल्कि यूं कहना चाहिये, जिस प्रकार न्यूयार्क की स्टेच्यू ऑफ लिबर्टी ने अपने हाथ को आखिरी सेंटीमीटर तक ऊंचा करवा कर आजादी की मशाल बुलंद कर रखी है। आगे चलकर मालूम हुआ कि कोई बिजोग पड़ जाये या अशुभ समाचार सुनाना हो तो वो इसी प्रकार चाबुक का झंडा ऊंचा किये आता था। चाबुक को सीधी हालत में देख बिशारत ऐसे व्याकुल होते, जैसे हेमलेट घोस्ट देखकर होता था।

Here it cometh, my Lord!

बिशारत के निकट आकर उसने चाबुक को हाफ-मास्ट किया और पंद्रह रुपये मांगे। कहने लगा 'स्कूल की गली के नुक्कड़ पे अचानक चालान हो गया। घोड़े के बायें पैर में लंगड़ापन है! स्कूल से निकला ही था कि अत्याचार वालों ने धर लिया। बड़ी मिन्नतों से पंद्रह रुपये देकर घोड़ा छुड़ाया है वरना उसके साथ सरकार भी बेफिजूल खिंचे-खिंचे फिरते। मेरी आंखों के सामने 'अत्याचार' वाले एक गधागाड़ी के मालिक को चाबुक से मारते हुए हंकाल के थाने ले गये। उसके गधे का लंग तो अपने घोड़े के मुकाबले कुछ भी नहीं 'कोचवान ने गधे के लंग की बात इतने मामूली ढंग से कही और अपने घोड़े का लंग इतना बढ़ा-चढ़ा कर बयान किया कि बिशारत ने क्रोध से कांपते हाथ से पंद्रह रुपये देकर उसे चुप किया।

शेर की नीयत और बकरी की अक्ल में फितूर

उसी समय एक सलोतरी को बुलाकर घोड़े को दिखाया। उसने बायीं नली हाथ से सूंती तो घोड़ा चमका। पता चला कि पुराना लंग है। सारा घपला अब कुछ-कुछ समझ में आने लगा। संभवतः, नहीं निःसंदेह, घोड़ा इसी कारण रेस में डिसक्वालिफाई हुआ होगा। ऐसे घोड़े को तो उसी समय गोली मार दी जाती है और यह उसके लिए तांगे में जुतकर जलील होने से कई गुना बेहतर सूरत होती है, लेकिन सलोतरी ने उम्मीद दिलाई कि छः महीने तक मुर्गाबी के तेल की मालिश करायें। मालिश का मेहनताना पांच रुपये रोज! यानी डेढ़ सौ रुपया माहवार। छह महीने के नौ सौ रुपये हुए। नौ सौ का घोड़ा, नौ सौ की मालिश अर्थात टाट की गुदड़ी में मखमल का पैवंद! अभी कुछ दिन हुए अपने अब्बा की मालिश और पैर दबाने के लिए एक आदमी को अस्सी रुपये माहवार पर रखा था। इसका मतलब तो यह हुआ कि उनकी कमाई का आधा हिस्सा तो इन्कम टैक्स वाले रखवा लेंगे और एक-तिहाई चंपी मालिश वाले खा जायेंगे। हलाल की कमाई के बारे में उन्होंने कभी नहीं सुना था कि वो इस अनुपात से गैर हकदारों में बंटती है। चार बजे तांगा जुतवा कर वो सेठ से निपटने के लिए रवाना हो गये। तांगे में बैठने से पहले उन्होंने गहरे रंग का धूप का चश्मा लगा लिया, ताकि कड़ी, खरी, खोटी सुनाने में झिझकें नहीं और चेहरे पर एक रहस्यमय खूंखारी का भाव आ जाये। आधा रास्ता ही तय किया होगा कि एक व्यक्ति ने बम पकड़ कर तांगा रोक लिया। कहने लगा, आपका घोड़ा बुरी तरह लंगड़ा रहा है, चालान होगा। बिशारत भौंचक्के रह गये। पता चला 'अत्याचार' वाले आजकल बहुत सख्ती कर रहे हैं। हर मोड़ पर बात-बेबात चालान हो रहा है। वो किसी प्रकार न माना तो बिशारत ने कानूनी पेंच निकाला कि आज सुब्ह ही इसका चालान हो चुका है। सात घंटे में एक ही अपराध में दो चालान नहीं हो सकते। इंस्पेक्टर ने यह बात भी चार्जशीट में टांक ली और कहा कि इससे तो अपराध और संगीन हो गया। बचने का कोई मार्ग न सूझा तो बिशारत ने कहा, 'अच्छा बाबा! तुम्हीं सच्चे सही, दस रुपये पे मामला रफा-दफा करो। ब्रांड न्यू घोड़ा है, खरीदे हुए तीसरा दिन है। 'यह सुनते ही वो व्यक्ति आग बबूला हो गया।' कहने लगा 'बड़े साब! गागल्ज के बावजूद आप भले आदमी मालूम होते हैं, मगर आपको पता होना चाहिये कि आप पैसे से लंगड़ा घोड़ा खरीद सकते हैं', आदमी नहीं खरीद सकते। चालान हो गया।

स्टील री-रोलिंग मिल पहुंचे तो सेठ घर जाने की तैयारी कर रहा था। आज इसके यहां एक पीर की याद में डेढ़-दो सौ फकीरों को पुलाव खिलाया जा रहा था। उसका मानना था कि इससे महीने-भर की कमाई पाक हो जाती है और यह Laundering कोई अनोखी बात नहीं थी। एक बैंक में पंद्रह बीस वर्ष तक यह नियम रहा कि प्रत्येक ब्रांच में जितने नये खाते खुलते, शाम को उतने ही फकीर खिलाये जाते। यह पता नहीं चल पाया कि यह खाना, खाते खुलने की खुशी में खिलाया जाता था या ब्याज के व्यापार में बढ़ोतरी के प्रायश्चित में। हमारा एक बार मुल्तान जाना हुआ। वहां उस दिन बैंक के मालिकों में से एक बहुत सीनियर सेठ इंस्पेक्शन पर आये हुए थे। शाम को ब्रांच में बराबरी का यह दृश्य देखकर हमारी खुशी की सीमा न रही कि सेठ साहब पंद्रह-बीस फकीरों के साथ जमीन पर पंजों के बल बैठे पुलाव खा रहे हैं और हर फकीर और उसके बीबी-बच्चों का अकुशल-अमंगल पूछ रहे हैं। परंतु मिर्जा अब्दुल वुदूद बेग को गुब्बारे पंक्चर करने की बड़ी बुरी आदत है। उन्होंने यह कहकर हमारी सारी खुशी किरकिरी कर दी कि जब शेर और बकरी एक ही घाट पानी पीने लगें तो समझ लो कि शेर की नीयत और बकरी की अक्ल में फितूर है। महमूद व अयाज का एक ही पंक्ति में बैठकर खाना भी 'ऑडिट एंड इंस्पेक्शन' का हिस्सा है। सेठ साहब वास्तव में यह पता लगाना चाहते हैं कि खाने वाले अस्ली फकीर हैं या मैनेजर ने अपने यारों-रिश्तेदारों की पंगत बिठा दी है।

हम कहां से कहां आ गये। बात स्टील मिल वाले सेठ की थी, जो सात-आठ वर्ष से काले धन को प्रत्येक महीने नियाज के लोबान की धूनी से पाक और 'व्हाइट' करता रहता था।

महात्मा बुद्ध बिहारी थे

सेठ ने घोड़े के लंग के बारे में एकदम अज्ञानता व्यक्त की। उल्टा उन्हीं के सर हो गया कि 'तुम घोड़े को देखने हाफ-डजन टाइम तो आये होगे। घोड़ा तलक तुम को पिछानने लगा था। दस-दफे घोड़े के दांत गिने... क्या? तुमने हमको यहां तलक बोला कि घोड़ा नौ हाथ लंबा हैं उस समय तुम्हें यह नौ-गजा दिखलाई पड़ता था। आज चार-पांच दिन बाद घोड़े के गॉगल्ज खुद पहन के इल्जाम लगाने आये हो... क्या? तीन दिन में तो कब्र में मुर्दे का भी हिसाब-किताब बरोबर खल्लास हो जाता है। उस टेम आपको माल में यह डिफेक्ट दिखलाई नहीं पड़ा। तांगे में जोत के गरीबखाने ले गये तब भी नजर नहीं आया।' बिशारत सेठ के सामने अपने घर को इतनी बार गरीबखाना कह चुके थे कि वो यह समझा कि यह उनके घर का नाम है।

बिशारत ने कुछ कहना चाहा तो बात काटते हुए बोला - अरे बाबा! घोड़े का कोई पार्ट, कोई पुर्जा ऐसा नहीं बचा, जिसपे तुमने दस-दस दफे हाथ नहीं फेरा हो! क्या? तुम बिजनेसमेन हो के ऐसी कच्ची बात मुंह से निकालेगा तो हम किधर को जायेंगा? बोलो जी! हल्कट मानुस के माफिक बात नहीं करो... क्या?' सेठ जिम्मेदारी से बरी हो गया।

बिशारत ने तंग आकर कहा, 'हद तो यह कि सौदा करने से पहले यह भी न बताया कि घोड़ा जनाजा उलट चुका है। आप खुद को मुसलमान कहते हैं' सीने पर हाथ रखते हुए सेठ बोला तो क्या तुम्हारे को बुद्धिष्ट दिखलाई पड़ता हूं? हमने जूनागढ़ काठियावाड़ से माइग्रेट किया है... क्या? अपने पास बरोबर सिंध का डोमेसाइल है। महात्मा बुद्ध तो बिहारी था। (अपने मुंह के पान की ओर संकेत करते हुए) मेरे मुंह में रोजी है। तुम भी बच्चों की कसम खा के बोलो। जब तुमने पूछा - घोड़ा काये को बेच रहे हो, हमने तुरंत बोल दिया। सौदा पक्का करने से पहले पूछते तो हम पहले बोल देते। तुम लकड़ी बेचते हो तो क्या ग्राहक को लक्कड़ की हर गांठ, हर दाग पे उंगली रख-रख के बताते हो कि पहले इसे देखो? हम साला अपना व्यापार करे कि तुम्हारे को घोड़े की बयाग्राफी (बायोग्राफी) बताये। फादर मेरे को हमेशा बोलता था कि ग्राहक 420 हो तो पहले देखो भालो, फिर सौदे की टेम बोलो कम, तोलो जियादा। पर तुम्हारे ऊपर तो -खोलो, अभी खोलो! - की धुन सवार थी। तुम्हारे मुंह में पैसे बज रहे थे। गुजराती में कहावत है कि पैसा तो शेरनी का दूध है! इसे हासिल करना और पचाना दोनों बराबर मुश्किल है। पर तुम तो साला शेर को ही दुहना मांगता है। हम करोड़ों का बिजनेस करेला है। आज दिन-तलक जबान दे-के नईं फिरेला। अच्छा अगर तुम कुरान पर हाथ रख के बोल दो कि तुम घोड़ा खरीदते टेम पियेला था तो हम तुरंत एक-एक पाई रिफंड कर देगा।'

बिशारत ने मिन्नतें करते हुए कहा 'सेठ, सौ-डेढ़ सौ कम में घोड़ा वापस ले लो। मैं बीबी-बच्चों वाला आदमी हूं। जिंदगी भर अहसानमंद रहूंगा।' सेठ आपे-से बाहर हो गया, 'अरे बाबा! खच्चर के माफिक हमसे अड़ी नईं करो। हमसे एक दम कड़क उर्दू में डायलाग मत बोलो। तुम फिलम के विलन के माफिक गॉगल्ज लगा के इधर काये को तड़ी देता पड़ा हैं। भाई साहब! तुम पढ़ेला मानुस हो। कोई फड्डेबाज मवाली, मल्बारी नईं, जो शरीफों से दादागीरी करे। तुमने साइन-बोर्ड नईं पढ़ा। बाबा! यह री-रोलिंग मिल है। इसटील री-रोलिंग मिल। इधर घोड़े का धंधा नईं

होता... क्या? कल को तुम बोलेंगा कि तांगा भी वापस ले लो। हम साला अक्खा उम्र इधर बैठा घोड़े-तांगे का धंधा करेंगा तो हमारा फेमिली क्या घर में बैठा कव्वाली करेंगा? भाई साब! अपुन का घर तो गिरस्तियों का घर है, किसी बुजुर्ग का मजार नईं कि बाई लोग गज-गज भर के लंबे बाल खोल के धम्माल डाल दें। धमा धम मस्त कलंदर!'

बिशारत ने तांगा स्टील री-रोलिंग मिल के बाहर खड़ा कर दिया और स्वयं एक थड़े पर पैर लटकाये प्रतीक्षा करने लगे कि अंधेरा जरा गहरा हो जाये तो वापस जायें, ताकि नौ घंटे में तीसरी बार चालान न हो। गुस्से से अभी तक उनके कानों की लवें तप रही थीं और हल्क में कैक्टस उग रहे थे। बलबन गुलमोहर के पेड़ से बंधा सर झुकाये खड़ा था। उन्होंने पान की दुकान से एक लोमोनेड की गोली वाली बोतल खरीदी। एक ही घूंट में उन्होंने अनुमान लगा लिया कि उनकी प्रतीक्षा में यह बोतल कई महीनों से धूप में तप रही थी। फिर अचानक याद आया कि इस परेशानी में आज दोपहर बलबन को चारा और पानी भी नहीं मिला। उन्होंने बोतल रेत पर उंडेल दी और गॉगल्ज उतार दिये।

जादू मंत्र द्वारा उपचार

रिश्वत और मालिश की रकम अब घोड़े की कीमत और उनकी सहनशक्ति की सीमा को पार कर चुकी थी। पकड़-धकड़ का सिलसिला किसी प्रकार समाप्त होने में नहीं आता था। तंग आकर उन्होंने रहीम बख्श की जबानी इंस्पेक्टर को यह तक कहलाया कि तुम मेरी दुकान में उगाही की नौकरी कर लो। तुम्हारी तन्ख्वाह से अधिक दूंगा। उसने कहला भेजा 'सेठ को मेरा सलाम बोलना और कहना कि हम तीन हैं।'

उन्होंने घोड़ा-तांगा बेचना चाहा तो किसी ने सौ रुपये भी न लगाये। अंततः अपने वालिद से इस बारे में बात की। वो सारा हाल सुनकर कहने लगे 'इसमें परेशानी की कोई बात नहीं। हम दुआ करेंगे। तांगे में जोतने से पहले एक गिलास फूंक मारा हुआ दूध पिला दिया करो। अल्लाह ने चाहा तो लंग जाता रहेगा और चालानों का सिलसिला भी बंद हो जायेगा। एक बार वजीफे का प्रभाव तो देखो।

पिताश्री ने उसी समय रहीम बख्श से बिस्तर पर हार्मोनियम मंगाया। वो धौंकनी से हवा भरता रहा और पिताश्री कांपती-कंपकंपाती आवाज में हम्द (ईश्वर की स्तुति) गाने लगे।

आंख जहां पड़ती, वहां उंगली नहीं पड़ रही थी और जिस पर्दे पर उंगली पड़ती, उस पर पड़ी ही रह जाती। एक पंक्ति गाने और बजाने के बाद यह कहकर लेट गये कि इस हार्मोनियम के काले पर्दे के जोड़ अकड़ गये हैं। मास्टर बाकर अली ने क्या खाक मरम्मत की है!

दूसरे दिन किबला की चारपायी ड्राइंग रूम में आ गयी। क्योंकि यही ऐसा कमरा था जहां घोड़ा रोज-सुब्ह अपने माथे पर 'अल्लाह' लिखवाने और फूंक मारने के लिए अंदर लाया जा सकता था। तड़के किबला ने नमाज के बाद गुलाब जल में उंगली डुबो कर घोड़े के माथे पर 'अल्लाह' लिखा और खुरों को लोबान की धूनी दी। कुछ देर बाद उस पर साज कसा जाने लगा तो बिशारत दौड़े-दौड़े किबला के पास आये और कहने लगे घोड़ा दूध नहीं पी रहा। किबला हैरान हुए। फिर आंखें बंद करके सोच में पड़ गये। कुछ पलों के बाद आंखें अधखुली करके बोले, कोई हरज

नहीं कोचवान को पिला दो, घोड़ा दांतों के दर्द से पीड़ित है। इसके बाद यह नियम बन गया कि दुआ पढ़कर फूंका गया दूध रहीम बख्श पीने लगा। ऐसी अरुचि के साथ पीता जैसे उन दिनों यूनानी दवाओं के पियाले पिये जाते थे अर्थात नाक पकड़ के, मुंह बना बना के। दूध के लिए न जाने कहां से धातु का बहुत लंबा गिलास ले आया जो उसकी नाभि तक पहुंचता था। किबला के उपचार का प्रभाव पहले ही दिन नजर आ गया। वह इस प्रकार कि उस दिन चालान एक दाढ़ी वाले ने किया। रहीम बख्श अपना लहराता हुआ चाबुक हाफ मास्ट करके कहने लगा 'सरकार! बावजूद धर लिया' फिर उसने विस्तार से बताया कि एक दाढ़ी वाला आज ही जमशेद रोड के हल्के से तबादला होकर आया है। बड़ा ही दयालु, अल्लाह-वाला व्यक्ति है। इसलिए केवल साढ़े तीन रुपये लिए, वह भी चंदे के तौर पर। पड़ोस में एक विधवा के बच्चे के इलाज के लिए। आप चाहें तो चल के मिल लीजिये। मिल के बहुत खुश होंगे। हर समय भीतर ही भीतर जाप करता रहता है। अंधेरी रात में सिजदे के निशान से ऐसी रौशनी निकलती है कि सुई पिरो लो। (अपने बाजू से तावीज खोलते हुए) घोड़े के लिए ये तावीज दिया है।

कहां पच्चीस रुपये, कहां साढ़े तीन रुपये! किबला ने रिश्वत में कमी को अपने आशीर्वाद और उसके चमत्कार का परिणाम समझा और कहने लगे कि तुम देखते जाओ। इंशाल्लाह चालीसवें दिन 'अत्याचार' के इंस्पेक्टर को घोड़े की टांग नजर आनी बंद हो जायेगी। उनकी चारपायी के चारों ओर उनका सामान भी ड्राइंग रूम में सजा दिया गया। दवाएँ, बैडपैन, हुक्का, सिलफ्ची, हार्मोनियम, आगा हश्र के ड्रामे, एनीमा का उपकरण और कज्जन एक्ट्रेस का फोटो। ड्राइंग रूम अब इस योग्य नहीं रहा था कि उसमें घोड़े, किबला और इन दोनों का पाखाना उठाने वाली मेहतरानी के अतिरिक्त कोई और पांच मिनट भी ठहर सके। बिशारत के दोस्तों ने आना छोड़ दिया परंतु वो घोड़े की खातिर किबला को सहन कर रहे थे।

एक घोड़ा भरेगा कितने पेट ?

जिस दिन से दाढ़ी वाले मौलाना नियुक्त हुए, रहीम बख्श हर चौथे-पांचवें दिन आ के सर पे खड़ा हो जाता। 'चंदा दीजिये।' परंतु ढाई-तीन रुपये या अधिक-से-अधिक पांच में आई बला टल जाती। उससे जिरह की तो पता चला कि कराची में तांगे अब केवल इसी इलाके में चलते हैं। तांगे वालों का हाल घोड़ों से भी खराब है। उन्होंने पुलिस और 'अत्याचार' वालों का नाम-मात्र को महीना बांध रखा है, जो उनकी गुजर बसर के लिए बिल्कुल अपर्याप्त है। उधर नंगे, भूखे गधागाड़ी वाले मकरानी सर फाड़ने पर उतर आते हैं। घायल गधा, पसीने में तर-ब-तर गधागाड़ी वाला और फटे हाल 'अत्याचार' का इंस्पेक्टर। यह निर्णय करना मुश्किल था कि इनमें कौन अधिक बदहाल और जुल्म का शिकार है। यह तो ऐसा ही था जैसे एक सूखी-भूखी जोंक, दूसरी सूखी-भूखी जोंक का खून पीना चाहे। नतीजा यह कि 'अत्याचार वाले' तड़के ही इकलौती मोटी आसामी यानी उनके तांगे की प्रतीक्षा में गली के नुक्कड़ पे खड़े हो जाते और अपने पैसे खरे करके चल देते। अकेला घोड़ा सारे स्टाफ के बाल-बच्चों का पेट पाल रहा था। लेकिन करामत हुसैन (दाढ़ी वाले मौलाना का यही नाम था) का मामला कुछ अलग था। वो अपने हुलिए और फटे-हाल होने के कारण ऐसे दिखाई पड़ते थे कि लगता था उन्हें रिश्वत देना पुण्य का काम है और वो रिश्वत लेकर वास्तव में रिश्वत देने वाले को पुण्य कमाने का अवसर प्रदान कर रहे हैं। वो रिश्वत मांगते भी ऐसे थे जैसे दान मांग रहे हों। ऐसा प्रतीत होता था कि उनके भाग का सारा अन्न घोड़े की लंगड़ी टांग के माध्यम से ही उतरता है। ऐसे फटीचर रिश्वत लेने वाले के लिए उनके भीतर न कोई सहानुभूति थी न डर।

कुत्तों के चाल चलन की चौकीदारी

दोस्तों ने सलाह दी कि घोड़े को इंजेक्शन से ठिकाने लगवा दो, लेकिन उनका मन नहीं मानता था। किबला तो सुनते ही रुआंसे हो गये। कहने लगे आज लंगड़े घोड़े की बारी है, कल अपाहिज बाप की होगी। शरीफ घरानों में आई हुई दुल्हन और जानवर तो मर कर ही निकलते हैं। वो स्वयं तीन दुल्हनों के जनाजे निकाल चुके थे, इसलिए घोड़े के बारे में भी ठीक ही कहते होंगे। रहीम बख्श भी घोड़े की हत्या कराने का कड़ा विरोध करता था। जैसे ही बात चलती, अपना तीस वर्ष के अनुभव बताने बैठ जाता। यह तो हमने भी सुना था कि इतिहास अस्ल में बड़े लोगों की बायोग्राफी है परंतु रहीम बख्श कोचवान की सारी आटोबायोग्राफी दरअस्ल घोड़ों की बायोग्राफी थी। उसके जीवन से एक घोड़ा पूरी तरह निकल नहीं पाता था कि दूसरा आ जाता। कहता था कि उसके तीन पूर्व-मालिकों ने 'वैट' से घोड़ों को जहर के इंजेक्शन लगवाये थे। पहला मालिक तीन दिन के भीतर चटपट हो गया। दूसरे का चेहरा लक्वे से ऐसा टेढ़ा हुआ कि दायीं बांछ कान की लौ से जा मिली। एक दिन गलती से आईने में खुद पर नजर पड़ी तो घिग्घी बंध गयी। तीसरे की बीबी जॉकी के साथ भाग गयी। देखा जाये तो इन तीनों में - जो तुरंत मर गया, उसी का अंत सम्मानजनक मालूम होता है।

उन्हीं दिनों एक साईस ने सूचना दी कि लड़काना में एक घोड़ी तेलिया कुमैत बिलकुल मुफ्त यानी तीन सौ रुपये में मिल रही है। बस वडेरे के दिल से उतर गयी है। गन्ने की फस्ल की आमदनी से उसने गन्ने ही से लंबाई नाप कर एक अमरीकी कार खरीद ली है। आपकी सूरत पसंद आ गयी तो हो सकता है मुफ्त ही दे दे। इसका विरोध पहले हमने और बाद में किबला ने किया। उन दिनों कुत्ते पालने का नया-नया शौक हुआ था। हर बात उन्हीं के संदर्भ में करते थे। कुत्तों के लिए अचानक मन में इतना आदर-भाव पैदा हो गया था कि कुतिया को मादा-कुत्ता कहने लगे थे।

हमने बिशारत को समझाया कि खुदा के लिए मादा घोड़ा न खरीदो। आमिल कालोनी में दस्तगीर साहब ने एक मादा-कुत्ता पाल लिया है। किसी शुभचिंतक ने उन्हें सलाह दी थी कि जिस घर में कुत्ते हों, वहां फरिश्ते, बुजुर्ग और चोर नहीं आते। उस जालिम ने यह न बताया कि फिर सिर्फ कुत्ते ही आते हैं। अब सारे शहर के बालिग कुत्ते उनकी कोठी का घेराव करे पड़े रहते हैं। शहजादी स्वयं शत्रु से मिली हुई है।

ऐसी तनदाता नहीं देखी। जो ब्वॉय स्काउट का 'मोटो' है - वही उसका - Beprepared - मतलब यह कि हर आक्रमणकारी से सहयोग के लिए पूरे तन-मन से तैयार रहती है। फाटक खोलना असंभव हो गया है। महिलाओं ने घर से निकलना छोड़ दिया। पुरुष स्टूल रखकर फाटक और कुत्ते फलांगते हैं। दस्तगीर साहब इन कुत्तों को दोनों वक्त नियमित रूप से खाना डलवाते हैं, ताकि आने-जाने वालों की पिंडलियों से अपना पेट न भरें। एक बार खाने में जहर डलवा कर भी देख लिया। गली में मुर्दा कुत्तों के ढेर लग गये। अपने खर्च पर उनको दफ्न किया। एक साहब का पालतू कुत्ता जो बुरी संगत में पड़ गया था, उस रात घर वालों की नजर बचा कर सैर-तमाशे को चला आया था, वो भी वहीं खेत रहा। इन चंद कुत्तों के मरने से जो रिक्त-स्थान पैदा हुआ, वो इसी प्रकार पूरा हुआ जैसा साहित्य और राजनीति में होता है। हम तो इतना जानते हैं कि स्वयं को indispensable समझने वालों के मरने से जो रिक्त-स्थान पैदा होता है, वह वास्तव में केवल दो गज जमीन में होता है, जो उन्हीं के पार्थिव शरीर से उसी समय पूरा हो जाता है। खैर! यह एक अलग किस्सा है। कहना यह था कि अब दस्तगीर साहब सख्त परेशान हैं।

खानदानी मादा है। नीच जात के कुत्तों से वंशावली बिगड़ने का डर है। मैंने तो दस्तगीर साहब से कहा था कि इनका ध्यान बंटाने के लिए कोई मामूली जात की कुतिया रख लीजिये ताकि कम-से-कम यह धड़का तो न रहे, रातों की नींद तो हराम न हो। इतिहास में आप पहले व्यक्ति हैं जिसने कुत्तों के चाल-चलन की चौकीदारी का बीड़ा उठाया है।

अकेलेपन का साथी

इस किस्से से हमने उन्हें सीख दिलाई। किबला ने दूसरे पैंतरे से घोड़ी खरीदने का विरोध किया। वो इस बात पर गुस्से से भड़क उठते थे कि बिशारत को उनके चमत्कारी वजीफे पर विश्वास नहीं। वो खासे गलियर थे। बेटे को खुल कर तो गाली नहीं दी। बस इतना कहा कि अगर तुम्हें अपना वंश चलाने के लिए पेडिग्री घोड़ी ही रखनी है तो शौक से रखो, मगर मैं ऐसे घर में एक मिनट नहीं रह सकता। उन्होंने यह धमकी भी दी कि जहां बलबन घोड़ा जायेगा वो भी जायेंगे।

किस्सा दरअस्ल यह था कि किबला और घोड़ा एक दूसरे से इस हद तक घुल-मिल चुके थे कि अगर घर वाले न रोकते तो वे उसे ड्राइंग रूम में अपनी चारपायी के पाये से बंधवा कर सोते। वो भी उनके पास आकर अपने-आप सर नीचे कर लेता ताकि वो उसे बैठे-बैठे प्यार कर सकें। वो घंटों मुंह-से-मुंह भिड़ाये उससे घर वालों और बहुओं की शिकायतें और बुराइयां करते रहते। बच्चों के लिए वो जीता-जागता खिलौना था। किबला कहते थे जब से यह आया है, मेरे हाथ का कंपकंपाना कम हो गया है और बुरे सपने आने बंद हो गये हैं। वो अब उसे बेटा कहने लगे थे। सदा के रोगी से अपने-पराये सब उकता जाते हैं। एक दिन वो चार-पांच घंटे दर्द से कराहते रहे, किसी ने खबर न ली। शाम को घबराहट और मायूसी अधिक बढ़ी तो रसोइये से कहा कि बलबन बेटे को बुलाओ। बुढ़ापे और बीमारी के भयानक सन्नाटे में यह दुखी घोड़ा उनका अकेला साथी था।

इक तर निवाले की सूरत

घोड़े को जोत नहीं सकते, बेच नहीं सकते, मरवा नहीं सकते, खड़े खिला नहीं सकते, फिर करें तो क्या करें। जब ब्लैक मूड आता तो अंदर-ही-अंदर खौलते और अक्सर सोचते कि सेठ, सरमायेदार, वडेरे, जागीरदार और बड़े अफसर अपनी सख्ती और करप्शन के लिए जमाने-भर में बदनाम हैं। मगर, यह 'अत्याचार वाले' दो टके के आदमी किससे कम हैं। उन्हें इससे पूर्व ऐसे प्रतिक्रियावादी और आक्रांतकारी विचार कभी नहीं आये थे। उनकी सोच में इंसानों से परेशान व्यक्ति की झुंझलाहट उतर आई। ये लोग तो गरीब हैं, दुःखी हैं, मगर यह किसको छोड़ते हैं। संतरी बादशाह भी तो गरीब है, वो रेहड़ी वाले को कब छोड़ता है और गरीब रेहड़ी वाले ने कल शाम आंख बचाकर एक सेर सेबों में दो दागदार सेब मिलाकर तोल दिये। उसकी तराजू एक छटांक कम तोलती है। केवल एक छटांक इसलिए कि एक मन कम तोलने की गुंजाइश नहीं। स्कूल मास्टर दया और आदर के योग्य हैं। मास्टर नजमुद्दीन बरसों से चीथड़े लटकाये जालिम समाज को कोसते फिरते हैं। उन्हें साढ़े-चार सौ रुपये खिलाये, तब जा के भांजे के मैट्रिक के नंबर बढ़े और रहीम बख्श कोचवान से बढ़कर बदहाल कौन होगा?

जुल्म, जालिम और जुल्म सहने वाले दोनों को खराब करता है। जुल्म का पहिया जब अपना चक्कर पूरा कर लेता है और मजलूम की बारी आती है तो वो भी वही सब करता है जो उसके साथ किया गया था। अजगर पूरे का पूरा निगलता है, शार्क दांतों से खूनम-खून करके खाती है। शेर डॉक्टरों के बताये नियमों के अनुसार अच्छी तरह चबा-चबा के खाता है। बिल्ली, छिपकली, मकड़ी और मच्छर अपनी-अपनी हिम्मतानुसार खून की चुस्की लगाते हैं। वो यहां तक पहुंचे थे कि सहसा उन्हें अपने इन्कमटैक्स के डबल बहीखाते याद आ गये और वो अनायास मुस्कुरा उठे। भाई मेरे! छोड़ता कोई नहीं, हम सब एक-दूसरे का भोजन हैं। बड़े जतन से एक-दूसरे को चीरते-फाड़ते हैं। 'तब नजर आती है इक लुक्म-ए-तर की सूरत'

समुद्र तल और गरीबी रेखा से नीचे

आये दिन के चालान, तावान से वो तंग आ चुके थे। कैसा अंधेर है। सारे देश में यही एक जुर्म रह गया है! बहुत हो चुकी। अब वो इसका दो टूक फैसला करके छोड़ेंगे। मौलाना करामत हुसैन से वो एक बार मिल चुके थे और सारी दहशत निकल चुकी थी। पौन इंच कम पांच फ़ुट का पोदना! उसकी गर्दन उनकी कलाई के बराबर थी। गोल चेहरे और तंग माथे पर चेचक के दाग ऐसे चमकते थे, जैसे तांबे के बर्तन पर ठुंके हुए खोपरे। आज वो घर का पता मालूम करके उसकी खबर लेने जा रहे थे। पूरा डायलॉग हाथ के इशारों और आवाज के उतार-चढ़ाव के साथ तैयार था।

उन्हें मौलाना करामत हुसैन की झुग्गी तलाश करने में काफी परेशानी हुई। हालांकि बताने वाले ने बिल्कुल सही पता बताया था कि झुग्गी बिजली के खंबे नं.-23 के पीछे कीचड़ की दलदल के उस पार है। तीन साल से खंबे बिजली के इंतजार में खड़े हैं। पते में उसके दायीं ओर एक ग्याभिन भैंस बंधी हुई बतायी गयी थी। सड़कें, न रास्ते, गलियां, न फुटपाथ। ऐसी बस्तियों में घरों के नंबर या नाम का बोर्ड नहीं होता। प्रत्येक घर का एक इंसानी चेहरा होता है, उसी के पते से घर मिलता है। खंबा तलाश करते-करते उन्हें अचानक एक झुग्गी के टाट के पर्दे पर मौलाना का नाम सुर्ख रोशनाई से लिखा नजर आया। बारिश के पानी के कारण रोशनाई बह जाने से नाम की लकीरें खिंची रह गयी थीं। चारों ओर टखनों-टखनों बजबजाता कीचड़, सूखी जमीन कहीं दिखाई नहीं पड़ती थी। चलने के लिए लोगों ने पत्थर और ईंटें डालकर पगडंडियां बना लीं थीं। एक नौ-दस साल की बच्ची सर पर अपने से अधिक भारी घड़ा रखे अपनी गर्दन तथा कमर की हरकत से पैरों को डगमगाते पत्थरों और घड़े को सर पर संतुलित करती चली आ रही थी। उसके चेहरे पर पसीने के रेले बह रहे थे। रास्ते में जो भी मिला, उसने बच्ची को संभल कर चलने का मशवरा दिया। थोड़ी-थोड़ी दूरी पर पांच-छः ईंटों का ट्रैफिक आईलैंड आता था, जहां जाने-वाला आदमी खड़े रह कर आने वाले को रास्ता देता था। झुग्गियों के भीतर भी कुछ ऐसा ही नक्शा था। बच्चे, बुजुर्ग और बीमार दिन भर ऊंची-ऊंची खाटों और खट्टों पर टंगे रहते। कुरान-शरीफ, लिपटे हुए बिस्तर, बर्तन-भांडे, मैट्रिक के सर्टिफिकेट, बांस के मचान पर तिरपाल तले और तिरपाल के ऊपर मुर्गियां। मौलाना करामत हुसैन ने झुग्गी के एक कोने में खाना पकाने के लिए एक टीकरी पर चबूतरा बना रखा था। एक खाट के पाये से बकरी भी बंधी थी। कुछ झुग्गियों के सामने भैंसें कीचड़ में धंसी थीं और उनकी पीठ पर कीचड़ का प्लास्टर पपड़ा रहा था। यह भैंसों की जन्नत थी। इनका गोबर कोई नहीं उठाता था। क्योंकि उपले थापने के लिए कोई दीवार या सूखी जमीन नहीं थी। गोबर भी इंसानी गंदगी के साथ इसी कीचड़ में मिल जाता था। इन्हीं झुग्गियों में टीन की चादर के सिलेंडरनुमा डिब्बे भी दिखाई दिये। जिनमें दूध भरने के बाद सदर की सफेद टाइलों वाली डेरी की दुकानों में

पहुंचाया जाता था। एक लंगड़ा कुत्ता झुग्गी के बाहर खड़ा था। उसने अचानक खुद को झड़झड़ाया तो उसके घाव पर बैठी हुई मक्खियों और अध-सूखे कीचड़ के छर्रे उड़-उड़ कर बिशारत की कमीज और चेहरे पर लगे।

मुगल वंश का पतन

बिशारत ने झुग्गी के बाहर खड़े होकर मौलाना को आवाज दी। हालांकि उसके 'अंदर' और 'बाहर' में कुछ ऐसा अंतर नहीं था। बस चटायी, टाट और बांसों से अंदर के कीचड़ और बाहर के कीचड़ के बीच हद बंदी करके एक काल्पनिक एकांत, एक संपत्ति की लक्ष्मण रेखा खींच ली गयी थी।

कोई जवाब न मिला तो उन्होंने हैदराबादी अंदाज से ताली बजाई, जिसके जवाब में अंदर से छः बच्चों का तले ऊपर की पतीलियों का-सा सेट निकल आया। इनकी आयु में नौ-नौ महीने से भी कम का अंतर दिखाई दे रहा था। सबसे बड़े लड़के ने कहा, मगरिब की नमाज पढ़ने गये हैं। तशरीफ रखिये। बिशारत की समझ में न आया, कहां तशरीफ रखें। उनके पैरों-तले ईंटें डगमगा रही थीं। सड़ांध से दिमाग फटा जा रहा था। 'जहन्नुम अगर इस धरती पर कहीं हो सकता है तो, यहीं है, यहीं है, यहीं है।'

वो दिल-ही-दिल में मौलाना को डांटने का रिहर्सल करते हुए आये थे - यह क्या अंधेर है मौलाना? किचकिचा कर मौलाना कहने के लिए उन्होंने बड़े कटाक्ष और कड़वाहट से वह स्वर कंपोज किया था - जो बहुत सड़ी गाली देते समय अपनाया जाता है, लेकिन झुग्गी और कीचड़ देखकर उन्हें अचानक खयाल आया कि मेरी शिकायत पर इस व्यक्ति को अगर जेल हो भी जाये तो इसके तो उल्टे ऐश हो जायेंगे। मौलाना पर फेंकने के लिए लानत-मलामत के जितने पत्थर वो जमा करके आये थे, उन सब पर दाढ़ियां लगाकर नमाज की चटाइयां लपेट दी थीं ताकि चोट भले ही न आये, शर्म तो आये - वो सब ऐसे ही धरे रह गये।

उनका हाथ जड़ हो गया था। इस व्यक्ति को गाली देने से फायदा? इसका जीवन तो खुद एक गाली है। उनके गिर्द बच्चों ने शोर मचाना शुरू किया तो सोच का सिलसिला टूटा। उन्होंने उनके नाम पूछने शुरू किये। तैमूर, बाबर, हुमायूं, जहांगीर, शाहजहां, औरंगजेब, या अल्लाह! पूरा मुगल वंश इस टपकती झुग्गी में ऐतिहासिक रूप से सिलसिलेवार उतरा है।

ऐसा लगता था कि मुगल बादशाहों के नामों का स्टॉक समाप्त हो गया, मगर औलादों का सिलसिला समाप्त नहीं हुआ। इसलिए छुटभैयों पर उतर आये थे। मिसाल के तौर पर एक जिगर के टुकड़े का प्यार का नाम मिर्जा कोका था जो अकबर का दूध-शरीक भाई था, जिसको उसने किले की दीवार पर से नीचे फिंकवा दिया था। अगर सगा भाई होता तो इससे भी कड़ी सजा देता यानी समुद्री डाकुओं के हाथों कत्ल होने के लिए हज पर भेज देता या आंखें निकलवा देता। वो रहम की अपील करता तो भाई होने के नाते दया और प्रेम की भावना दिखाते हुए जल्लाद से एक ही वार में सर कलम करवा कर उसकी मुश्किल आसान कर देता।

हम अर्ज यह कर रहे थे कि तैमूरी खानदान के जो बाकी कुलदीपक झुग्गी के अंदर थे, उनके नाम भी तख्त पर बैठने, बल्कि तख्ता उलटने के क्रम के लिहाज से ठीक ही होंगे, इसलिए कि मौलाना की स्मरण शक्ति और

इतिहास का अध्ययन बहुत अच्छा प्रतीत होता था। बिशारत ने पूछा तुममें से किसी का नाम अकबर नहीं? बड़े लड़के ने जवाब दिया, नहीं जी, वो तो दादा जान का शायरी का उपनाम है।

बातचीत का सिलसिला कुछ उन्होंने कुछ बच्चों ने शुरू किया। उन्होंने पूछा, तुम कितने भाई-बहन हो? जवाब में एक बच्चे ने उनसे पूछा, आपके कितने चचा हैं? उन्होंने पूछा, तुम में से कोई पढ़ा हुआ भी है? बड़े लड़के तैमूर ने हाथ उठा कर कहा, जी हां, मैं हूं। मालूम हुआ यह लड़का जिसकी उम्र तेरह-चौदह साल होगी, मस्जिद में बगदादी कायदा पढ़ कर कभी का निबट चुका। तीन साल तक पंखे बनाने की एक फैक्ट्री में मुफ्त काम सीखा। एक साल पहले दायें हाथ का अंगूठा मशीन में आ गया, काटना पड़ा। अब एक मौलवी साहब से अरबी पढ़ रहा है। हुमायूं अपने हमनाम की भांति अभी तक आवारागर्दी की मंजिल से गुजर रहा था। जहांगीर तक पहुंचते-पहुंचते पाजामा बार-बार हो रहे राजगद्दी परिवर्तन की भेंट चढ़ गया। हां! शाहजहां का शरीर फोड़ों, फुंसियों पर बंधी पट्टियों से अच्छी तरह ढंका हुआ था। औरंगजेब के तन पर केवल अपने पिता की तुर्की टोपी थी। बिशारत को उसकी आंखें और उसे बिशारत दिखाई न दिये। सात साल का था, मगर बेहद बातूनी। कहने लगा, ऐसी बारिश तो मैंने सारी जिंदगी में नहीं देखी। हाथ पैर माचिस की तीलियां, लेकिन उसके गुब्बारे की तरह फूले हुए पेट को देखकर डर लगता था कि कहीं फट न जाये। कुछ देर बाद नन्हीं नूरजहां आई। उसकी बड़ी-बड़ी आंखों में काजल और कलाई पर नजर-गुजर का डोरा बंधा था। सारे मुंह पर मैल, काजल, नाक, और धूल लिपी हुई थी। केवल वो हिस्से इससे अलग थे जो अभी-अभी आंसुओं से धुले थे। उन्होंने उसके सर पर हाथ फेरा। उसके सुनहरे बालों में गीली लकड़ियों के कड़वे-कड़वे धुएं की गंध बसी हुई थी। एक भोली-सी सूरत का लड़का अपना नाम शाह आलम बता कर चल दिया। आधे रास्ते से लौट कर कहने लगा कि मैं भूल गया था। शाह आलम तो बड़े भाई का नाम है। ये सब मुगल शहजादे कीचड़ में ऐसे मजे से फचाक-फचाक चल रहे थे जैसे इनकी वंशावली अमीर तैमूर के बजाय किसी राजहंस से मिलती हो।

हर कोने-खुदरे से बच्चे उबले पड़ रहे थे। एक कमाने वाला और यह टब्बर! दिमाग चकराने लगा।

कोई दीवार सी गिरी है अभी

कुछ देर बाद मौलाना आते हुए दिखाई दिये। कीचड़ में डगमग-डगमग करती ईंटों पर संभल-संभल कर कदम रख रहे थे। इस डांवाडोल पगडंडी पर इस तरह चलना पड़ता था जैसे सरकस में करतब दिखाने वाली लड़की तने हुए तार पर चलती है। लेकिन क्या बात है, वो तो अपने आप को खुली छतरी से संतुलित करती रहती है। जरा डगमगा कर गिरने लगती है तो दर्शक पलकों पर झेल लेते हैं। मौलाना खुदा जाने बिशारत को देखकर बौखला गये या संयोग से उनकी खड़ाऊं ईंट पर फिसल गयी, वो दायें हाथ के बल जिसमें नमाजियों की फूंकें मारे हुए पानी का गिलास था - गिरे। उनका तहबंद और दाढ़ी कीचड़ में लथपथ हो गयी और हाथ पर कीचड़ की जुराब-सी चढ़ गयी। एक बच्चे ने बिना कलई के लोटे से पानी डालकर उनका मुंह हाथ धुलाया, बिना साबुन के। उन्होंने अंगोछे से तस्बीह, मुंह और हाथ पोंछकर बिशारत से हाथ मिलाया और सर झुका कर खड़े हो गये। बिशारत ढह चुके थे, इस कीचड़ में डूब गये। अनायास उनका जी चाहा कि भाग जायें, मगर दलदल में व्यक्ति जितनी तेजी से भागने का प्रयास करता है उतनी ही तेजी से धंसता चला जाता है।

उनकी समझ में न आया कि अब शिकायत और चेतावनी की शुरुआत कहां से करें, इसी सोच एवं संकोच में उन्होंने अपने दाहिने हाथ से जिससे कुछ देर पहले हाथ मिलाया था, होंठ खुजाया तो उबकाई आने लगी। इसके बाद उन्होंने उस हाथ को अपने शरीर और कपड़ों से एक बालिश्त की दूरी पर रखा। मैलाना आने का उद्देश्य भांप गये। खुद पहल की। यह मानने के साथ कि मैं आपके कोचवान रहीम बख्श से पैसे लेता रहा हूं - लेकिन पड़ोसन की बच्ची के इलाज के लिए। उन्होंने यह भी बताया कि मेरी नियुक्ति से पहले यह नियम था कि आधी रकम आपका कोचवान रख लेता था। अब जितने पैसे आपसे वसूल करता है, वो सब मुझ तक पहुंचते हैं। उसका हिस्सा समाप्त हुआ। हुआ यूं कि एक दिन वो मुझसे अपनी बीबी के लिए तावीज ले गया। अल्लाह ने उसका रोग दूर कर दिया। उसके बाद वो मेरा भक्त हो गया। बहुत दुखी आदमी है।

मौलाना ने यह भी बताया कि पहले आप चालान और रिश्वत से बचने के लिए जब भी उसे रास्ता बदलने का आदेश देते थे, वो महकमे वालों को इसका एडवांस नोटिस दे देता था। वो हमेशा अपनी इच्छा, अपनी मर्जी से पकड़ा जाता था। बल्कि यहां तक हुआ कि एक बार इंस्पेक्टर को निमोनिया हो गया और वो तीन सप्ताह तक ड्यूटी पर नहीं आया तो रहीम बख्श हमारे आफिस में ये पता करने आया कि इतने दिन से चालान क्यों नहीं हुआ, खैरियत तो है? बिशारत ने कोचवान से संबंधित दो-तीन प्रश्न तो पूछे, परंतु मौलाना को कुछ कहने सुनने का साहस अब उनमें न था। उनका बयान जारी था, वो चुपचाप सुनते रहे।

मेरे वालिद के कूल्हे की हड्डी टूटे दो बरस हो गये। वो सामने पड़े हैं। बैठ भी नहीं सकते। चारपायी काट दी है। लगातार लेटे रहने से नासूर हो गये हैं। पड़ोसी आये दिन झगड़ता है कि 'तुम्हारे बुढ़ऊ दिन भर तो खर्राटे लेते हैं और रातभर चीखते-कराहते हैं, नासूरों की सड़ांध के मारे हम खाना नहीं खा सकते।

वो भी ठीक ही कहता है। खाली चटायी की दीवार ही तो बीच में है। चार माह पहले एक और बेटे ने जन्म लिया। अल्लाह की देन है। बिन मांगे मोती मिले, मांगे मिले न भीख। जापे के बाद ही पत्नी को Whiteleg हो गयी। मौला की मर्जी! रिक्शा में डालकर अस्पताल ले गया। कहने लगे, तुरंत अस्पताल में दाखिल कराओ, मगर कोई बेड खाली नहीं था। एक महीने बाद फिर ले गया। अब की बार बोले - अब लाये हो, लंबी बीमारी है, हम ऐसे मरीज को दाखिल नहीं कर सकते। फज्र और मगरिब की नमाज से पहले दोनों का गू-मूत करता हूं। नमाज के बाद स्वयं रोटी डालता हूं तो बच्चों के पेट में कुछ जाता है। एक बार नूरजहां ने मां के लिए बकरी का दूध गर्म किया तो कपड़ों में आग लग गयी थी। अल्लाह का लाख-लाख शुक्र है, मेरे हाथ-पांव चलते हैं।

पलीद हाथ

मौलाना को जैसे कोई बात अचानक याद आ गयी। वो 'एक्सक्यूज मी' करके कुछ देर के लिए अंदर चले गये। इधर बिशारत अपने विचारों में खो गये। इस एक आरपार झुग्गी में जिसमें न कमरे हैं, न पर्दे, न दीवारें, न दरवाजे, जिसमें आवाज, टीस और सोच तक नंगी है, जहां लोग शायद एक दूसरे का सपना भी देख सकते हैं। यहां एक कोने में बूढ़ा बाप पड़ा दम तोड़ रहा है, दूसरे कोने में बच्चा पैदा हो रहा है और बीच में बेटियां जवान हो रही हैं। भाई मेरे! जहां इतनी रिश्वत ली थी, वहां थोड़ी-सी और लेकर पत्नी को अस्पताल में दाखिल करा देते तो क्या हरज था। जान पर बनी हो तो शराब तक हराम नहीं रहती, लेकिन फिर हांडी, चूल्हा, बुहारी कौन करता? इस टब्बर का पेट कैसे भरता? मौलाना ने बताया था कि उन्होंने बच्चों के लिए रोटी पकायी और कपड़े धोये थे।

बिशारत सोचने लगे कि उन जंगजू तातारी स्त्रियों की प्रशंसा से तो इतिहास भरा पड़ा है जो अरब शाह के कथनानुसार तैमूर की फौज में कंधे से कंधा मिला कर लड़ती थीं। अगर यात्रा के दौरान किसी स्त्री को प्रसव पीड़ा आरंभ हो जाती तो वो दूसरे घुड़सवारों के लिए रास्ता छोड़कर एक तरफ खड़ी हो जाती। घोड़े से उतर कर बच्चा जनती, फिर उसे कपड़े में लपेट कर अपने गले में लटकाती और घोड़े की नंगी पीठ पर सवार होकर फौज से जा मिलती, मगर झुग्गियों में चुपचाप जान से गुजर जाने वाली इन महिलाओं का शोकगीत कौन लिखेगा?

बिशारत का दम घुटने लगा। अब तलक मौलाना ने कुल मिलाकर यही सौ, डेढ़ सौ रुपये वसूल किये होंगे। वो फिजूल यहां आये। उन्होंने विषय बदला और फूंकें मारे हुए पानी के प्रभाव के बारे में सोचने लगे कि अभी तो ये बेचारी एक रोग से ग्रस्त है। सौ आदमियों का फूंका हुआ पानी पी कर सौ नयी बीमारियों में घिर जायेगी।

कुछ देर बाद मौलाना ने अंदर पर्दा कराया यानी जब नूरजहां ने अपनी बीमार मां को सर से पैर तक चीकट लिहाफ उढ़ा कर लिटा दिया तो मौलाना ने बिशारत से झुग्गी में चलने को कहा। दोनों एक चारपायी पर पैर लटका कर बैठ गये। अदवान पर दो कप रखे थे। कप के किनारे पर मक्खियों की कुलबुलाती झालर, मौलाना ने कप में थोड़ी सी चाय डाली और उंगली से अच्छी तरह रगड़ कर धोया। फिर उसमें चाय बनाकर बिशारत को पेश की। अगर वो उस उंगली से न धोते जो कुछ देर पहले कीचड़ में सनी हुई थी तो शायद इतनी उबकाई न आती। मौलाना चाय देने के लिए झुके तो उनकी दाढ़ी से गटर की गंध आ रही थी।

मौलाना का बयान जारी था। बिशारत में अब इतना साहस बाकी नहीं रहा था कि नजर उठाकर उनकी सूरत देखें। मुझे महकमा साठ रुपये तन्ख्वाह देता है। एक बेटा सात बरस का है। दिमाग, डील डौल और शक्ल-सूरत में सबसे अच्छा। चार-पांच महीने हुए, उसे तीन दिन बड़ा तेज बुखार रहा। चौथे दिन बायीं टांग रह गयी। डॉक्टर को दिखाया, बोला, पोलियो है। इंजेक्शन लिख दिये। खुदा का शुक्र किस मुंह से अदा करूं कि मेरा बच्चा केवल एक ही टांग से अपाहिज हुआ। पड़ोस में चार झुग्गी छोड़कर एक बच्ची की दोनों टांगें रह गयीं। महामारी फैली हुई है। जो रब चाहता है वही होता है। बिन बाप की बच्ची है। डॉक्टर की फीस कहां से लायें। मैंने अपने बेटे के तीन इंजेक्शन उस बच्ची के लगवा दिये। क्या बताऊं उस विधवा ने कैसी दुआयें दीं। हर नमाज में उस बच्ची के लिए भी दुआ करता हूं। प्रत्येक शुक्रवार को जंगली कबूतर के खून और लौंग तथा बादाम के तेल से बेटे और उस बच्ची की टांगों की मालिश करता हूं। वैसे डॉक्टरी उपचार भी चल रहा है। आपके कोचवान से जितनी बार पैसे लिए उसी के लिए लिए।

बिशारत को ऐसा लगा, जैसे दिमाग सुन्न हो गया हो। बीमारी, बीमारी, बीमारी! यहां लोग कचर-धान बच्चे पैदा करने और बीमार पड़ने के अतिरिक्त कुछ और भी करते हैं या नहीं? इस आधे घंटे में उनके मुंह से मुश्किल से दस-बारह वाक्य निकले होंगे। मौलाना ही बोलते रहे। बिशारत की जबान पर एक प्रश्न आ-आ कर रह जाता था। क्या सब झुग्गियों में यही हाल है? क्या हर घर में लोग इसी तरह रिंझ-रिंझ कर जीते हैं?

मौलाना जारी थे 'आपके कोचवान ने धमकी दी थी कि हमारा साब कहता है दढ़ियल को बोल देना ऐसा जलील करूंगा, ऐसा मटियामेट करूंगा कि याद करेगा। यह आप देख रहे हैं, बरसता बादल हमारा ओढ़ना और कीचड़ हमारा बिछौना है। इसके बाद अब और क्या होगा? मौला से दुआ की थी, इज्जत की रोटी मिले। गुनाहगार हूं, दुआ कुबूल न हुई। उससे कुछ छुपा नहीं। आज सुब्ह नाश्ते में एक रोटी खाई थी। उसके बाद खील का दाना भी मुंह में

गया हो तो सुअर खाया हो। वो जिसको चाहता है बेहिसाब देता है। वो कहता है, तुम इतने बेबस और लाचार हो कि तुम्हारे हाथ से मक्खी भी एक जर्रा उठाकर ले जाये तो तुम उससे छीन नहीं सकते।

मौलाना ने कुर्ता उठाकर अपना पेट दिखाया जिसमें गार पड़ा हुआ था। धोंकनी-सी चल रही थी। बिशारत ने नजरें झुका लीं।

अर्से से हजरत जहीन शाह ताजी का मुरीद होना चाहता हूं। एक पड़ोसी ने जो उस विधवा से शादी करने का इच्छुक है और मुझे इसमें रुकावट समझता है, पीरो-मुर्शिद को एक गुमनाम पत्र भेजा कि मैं रिश्वत लेता हूं। अब हजरत फर्माते हैं कि हजरत बाबा फरीदुद्दीन गंजे-शकर ने हलाल के खाने को इस्लाम का छटा स्तंभ माना है। जब तक तुम रिश्वत का एक-एक पैसा वापस न कर दोगे दीक्षा नहीं दूंगा। खुदा मुझ पर रहम करे। मेरे लिए दुआ कीजिये।

दो अकेले

एक सप्ताह बाद देखा कि मौलाना करामत हुसैन बिशारत की दुकान पर मुंशी की ड्यूटी अंजाम दे रहे हैं, और फीता हाथ में लिए 'देवदार' और 'पेन' लकड़ी नापते खुश-खुश फिर रहे हैं। उनकी तन्ख्वाह तिगुनी हो गयी। तीन चार दिन बाद बिशारत ने केवल इतना कहा कि मौलाना ईमानदारी अच्छी चीज है, मगर आप ग्राहक के सामने लकड़ी की गांठ को इस तरह न तका कीजिये जैसे घोड़े की गर्दन के घाव को देख रहे हों। रहीम कोचवान को बर्खास्त करने की आवश्यकता न पड़ी। मौलाना के आते ही वो बिना कहे सुने गायब हो गया।

घोड़े के बिकने के कोई आसार नजर नहीं आते थे। मौलाना के लिहाज में 'अत्याचार' वालों ने सताना छोड़ दिया। बिशारत ने आदरणीय से इशारों में कहा कि आपकी दुआ से चालानों का सिलसिला समाप्त हो गया है, अब आप ड्राइंग रूम से अपने कमरे में तशरीफ ले जा सकते हैं। लेकिन आदरणीय घोड़े के इतने आदी हो गये थे कि किसी प्रकार वजीफा छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे। घोड़ा उन्हें देखते ही (कोचवान के कहे अनुसार) बुचियाने लगता था, यानी मारे खुशी के अपने कान खड़े करके दोनों सिरे मिला देता था। तड़के घोड़ा ड्राइंग रूम में आग्रह करके आवश्यक तौर पर बुलवाया जाता। जैसे ही 'घोड़ा आ रहा है!' का शोर होता तो जिसे दीनो-दिल या कुछ और भी अजीज होता, रास्ता छोड़कर तमाशा देखने दूर खड़ा हो जाता। यह दृश्य दूल्हा दुल्हन के आईने में एक दूसरे को देखने की रस्म की याद दिलाता था। जब दूल्हा को जनाने में बुलवाया जाता है तो बार-बार ऐलान किया जाता है 'लड़का आ रहा है! लड़का आ रहा है!' यह सुनकर लड़कियां बालियां और पर्दानशीन बीबियां नकाब उलट कर चेहरे खोलकर बैठ जाती हैं।

यह धारणा अकारण प्रतीत नहीं होती कि कुछ मर्द बुढ़ापे में शादी केवल 'लड़का आ रहा है' सुनने के लालच में करते हैं। वरना जहां तक महज निकाह या स्त्री का संबंध है तो

इससे गरज निशात है किस रू-सियाह को

(इससे खुशी कौन कलमुंहा हासिल करना चाहता है - गालिब *)* ।

किबला उसके माथे पर तर्जनी से 'अल्लाह' लिखते। कुछ अर्से से उसके पैर पर दुआ पढ़के, फूंक मार के हाथ भी फेरने लगे थे। जिस दिन से वो उसकी दुम में उंगलियों से कंघी करते हुए उससे घर वालों की शिकायतें नाम ले-लेकर करने लगे, उस दिन से रिश्ता इंसान और जानवर का नहीं रहा। जब वो अपनी नयी तकलीफों का हाल सुनाकर चुप हो जाते तो वो बड़े प्यार से अपना मुंह उनके लक्वाग्रस्त शरीर से रगड़ता और फिर सर झुका लेता। जैसे कह रहा हो कि बाबा! आप तो मुझसे भी अधिक दुखी निकले। वो कहते थे कि मुझे ऐसा महसूस होता है, मेरी बायीं टांग में फिर से सेंसेशन आ रही है।

गरज यह कि आदरणीय अब उसे घोड़ा समझ कर बात नहीं करते थे। उधर घोड़ा भी उनसे इतना हिल गया और ऐसा अपनापन दिखाने लगा मानो वो इंसान न हों। वो अब उसे कभी घोड़ा नहीं कहते थे बलबन या बेटा कहकर बुलाते। वो आता तो दोनों के मिलने का दृश्य देखने-सुनने वाला होता।

किबला एक दिन कहने लगे कि घोड़े की टांगों के जोड़ अकड़ गये हैं। फिर उसके जोड़ खोलने के लिए ड्राइंग रूम में अंगीठी जलवा कर अपनी निगरानी में तीन सेर खोये और अस्ली घी में घीक्वार का हलवा बनवा कर चालीस दिन तक खुद खाया, जिससे उनकी अपनी जबान और भूख खुल गयी। इधर कुछ दिनों से वो यह भी कहने लगे थे कि घोड़े में जिन्न समा गया है। उसे उतारने के लिए हर बृहस्पतिवार को मिर्चों की धूनी देते और आधा सेर दानेदार कलाकंद पर नियाज देकर बांट देते। मतलब यह कि आधा खुद खाते, आधा अपने दोस्त चौधरी करम इलाही के यहां भिजवाते। कलाकंद खाते जाते और फर्माते जाते कि कुछ जिन्नों की नीयत किसी तरह नहीं भरती। पूर्व कोचवान रहीम बख्श भी कहता था कि यह घोड़ा नहीं जिन्न है। जिन्न नापाक पलीद लोगों को दिखाई नहीं देते।

उसी का कहना है कि एक दिन मैं बलबन को सुब्ह ड्राइंगरूम में न ले जा सका तो शाम को नमाज के बाद रस्सी तुड़ाकर खुद ही दुआ पढ़वा के वापस आ गया। मैं दाना चारा ले के गया तो उधर कुछ और ही दृश्य था। देखा कि उसके खुर कपूर के हो गये हैं और उनमें से ऐसी चकाचौंध करने वाली किरणें निकल रही हैं कि आप उधर आंख भर-कर देख नहीं सकते। नथुनों से लोबान का धुआं निकल रहा है। इस पर अब्दुल्लाह गजक वाले ने रहीम बख्श के सर की कसम खाकर कहा, जिस समय यह घटना घटी, ठीक उसी समय मैंने घोड़े को हजरत अब्दुल्लाह शाह गाजी की दरगाह के सामने खड़ा देखा। उस पर एक नूरानी दाढ़ी वाले हरे कपड़े पहने बुजुर्ग सवार थे।

आदरणीय ने घोड़े के चमत्कार को अपना चमत्कार समझा। कुरेद कुरेद-कर कई बार बुजुर्ग का हुलिया पूछा और हर बार उन्हें झुंझलाहट हुई, क्योंकि बुजुर्ग का हुलिया उनसे नहीं मिलता था। अब वो बलबन बेटे को शाम की नमाज के बाद भी अपने पास बुलवाने लगे। दोनों रात तक सर जोड़े ऐसी बातें करते कि

'लोग सुन पायें तो दोनों ही को दीवाना कहें।'

इस घटना के पश्चात कोचवान घोड़े को बलबन साहब और शाह जी कहने लगा। आदरणीय अक्सर फर्माते कि घोड़ा शुभ है। बिशारत के यहां पुत्र जन्म को वो घोड़े के आने से जोड़ते थे। मोहल्ले की कुछ बांझ औरतें शाह जी के दर्शन को आईं।

घट घटना गयी

हम यह बताना भूल ही गये कि रहीम बख्श के जाने के बाद उन्होंने एक नया कोचवान रखा। नाम मिर्जा वहीदुज्जमां बेग, मगर नौकरी की शर्तों के अनुसार किबला इसे भी अलादीन ही बुलाते थे। बातचीत और शक्ल सूरत से भलामानुस लगता था। उसने अपना हुलिया ऐसा बना रखा था कि उसके साथ चाहे न चाहे भलाई करने को जी चाहता। मंगोल नैन नक्श, सांवला रंग, गठा हुआ बदन, छोटे-छोटे कान, ऊंचा माथा, काठी ऐसी ठांठी कि उम्र कुछ भी हो सकती थी। सदरी की अंदरूनी जेब में पिस्तौल के बजाय एक घिसी हुई नाल का शेरपंजा तेज करके रख छोड़ा था। बंदर रोड के पीछे ट्राम डिपो के पास जहां थियेटर कंपनी थी, उसके खेल-रुस्तम सोहराब में वो डेढ़ महीने तक रुस्तम का घोड़ा 'रख्श' बना था। स्टेज पर पूरी ताकत से हिनहिनाता तो थियेटर के बाहर खड़े हुए तांगों की घोड़ियां अंदर आने के लिए लगाम तुड़ाने लगतीं। उसकी एक्टिंग से खुश होकर एक दर्शक ने यह नाल स्टेज पर फेंकी थी। छोटे से शरीर पर बड़ी पाटदार आवाज पायी थी। आगा हश्र के धुंआधार ड्रामों के गरजते कड़कते संवाद जबानी याद थे, जिन्हें घोड़े के साथ बोलता रहता था। जिस समय की यह चर्चा है, उस समय तांगे वाले, मिलों के मजदूर और खोमचे वाले तक आपस में इन्हीं संवादों के टुकड़े बोलते फिरते थे।

मिर्जा वहीदुज्जमां बेग, जिसके नाम के आगे या पीछे कोचवान लिखते हुए कलेजा खून होता है, अपना हर वाक्य 'कुसूर माफ' से शुरू करता था। इंटरव्यू के दौरान उसने दावा किया कि मैं मोटर ड्राइविंग भी बहुत अच्छी जानता हूं। बिशारत ने जल कर कहा तो फिर तुम तांगा क्यों चलाना चाहते हो? दुआ के अंदाज में हाथ उठाते हुए कहने लगा, अल्लाह पाक आपको कार देगा तो कार भी चला लेंगे।

बिशारत ने उसे यह सोचकर नौकरी पर रखा था कि चलो सीधा-सादा आदमी है। काबू में रहेगा। मिर्जा अब्दुल वुदूद बेग ने टिप दी कि बुद्धिमानी पर रीझ कर कभी किसी को नौकर नहीं रखना चाहिये। नौकर जितना ठस होगा उतना अधिक आज्ञाकारी और सेवा करने वाला होगा। उसने कुछ दिन तो बड़ी आज्ञाकारिता दिखाई फिर यह हाल हो गया कि स्कूल से कभी एक घंटा लेट आ रहा है। कभी दिन में तीन तीन घंटे गायब। एक बार उसे एक आवश्यक इन्वाइस लेकर भेजा। चार घंटे बाद लौटा। बच्चे स्कूल के फाटक पर भूखे-प्यासे खड़े रहे। बिशारत ने डांटा तो अपनी पेटी, जिसे राछ औजार की पेटी बताता था और तांगे में हर समय साथ रखता था, की ओर इशारा करके कहने लगा, 'कुसूर माफ, घटना घट गयी। म्यूनिस्पिल कार्पोरेशन की बगल वाली सड़क पर घोड़ा ठोकर खा कर गिर पड़ा। एक तंग टूट गया था। नाल भी झांझन की तरह बजने लगी। कुसूर माफ, नाल की एक भी कील ढीली हो तो एक मील दूर से केवल टाप सुनकर बता सकता हूं कि कौन सा खुर है।' बिशारत ने आश्चर्य से पूछा, 'तुम स्वयं नाल बांध रहे थे?' बोला, 'और नहीं तो क्या, कहावत है, 'खेती, पानी, बिंती और घोड़े का तंग, अपने हाथ संवारिये चाहे लाखों हों संग', घोड़े की चाकरी तो खुद ही करनी पड़ती है।'

वो हर बार नयी कहानी, नया बहाना गढ़ता था। झूठे लपाड़ी आदमी की मुसीबत यह है कि वो सच भी बोले तो लोग झूठ समझते हैं। अक्सर ऐसा हुआ कि उसी की बात सच निकली, फिर भी उसकी बात पर दिल नहीं ठुकता था। एक दिन बहुत देर से आया। बिशारत ने आड़े हाथों लिया तो कहने लगा, 'जनाबे-आली मेरी भी तो सुनिये। मैं रेस क्लब की घुड़साल के सामने से अच्छा भला गुजर रहा था कि घोड़ा एक दम रुक गया। चाबुक मारे तो बिल्कुल ही अड़ गया। राहगीर तमाशा देखने खड़े हो गये। इतने में अंदर से एक बूढ़ा सलोतरी निकल के आया। घोड़े को पहचान के कहने लगा, 'अरे अरे! तू इस शहजादे को काये को मार रिया है। इसने अच्छे दिन देखे हैं, किस्मत की बदनसीबी को सैयाद क्या करे। यह तो अस्ल में दुर्रे-शहवार (घोड़ी का नाम) की बू लेता यहां आन के मचला है। जिस रेस में इसकी टांग में मोच आई, दुर्रे-शहवार भी इसके साथ दौड़ी थी। दो इतवार पहले फिर पहले नंबर पर

आई है। अखबारों में फोटो छपे थे। भागवान ने मालिक को लखपती कर दिया।' फिर उसने इसके पुराने साईस को बुलाया। हम तीनों इसे तांगे से खोल के भीतर ले जाने लगे। इसे सारे रास्ते मालूम थे। सीधा हमें अपने थान पर ले गया। वहां एक बेडौल, काला भुजंग घोड़ा खड़ा दुलत्ती मार रहा था। जरा दूर पे दूसरी ओर दुर्रे-शहवार खड़ी थी। वो इसे पहचान के बेचैन हो उठी। कहां तो ये इतना मचल रहा था और कहां यह हाल कि बिल्कुल चुपका, बेसुध हो गया। गर्दन के घाव की मक्खियां तक नहीं उड़ायीं। साहब जी! इसका घाव बहुत बढ़ गया है। साईस ने इसे बहुत प्यार किया। कहने लगा, बेटा इससे तो अच्छा था कि तुझे उसी समय इंजेक्शन देकर सुला देते। ये दिन तो न देखने पड़ते, पर तेरे मालिक को तरस आ गया, फिर उसने इसके सामने क्लब का रातिब रखा। साहब, ऐसा चबेना तो इंसान को भी नसीब नहीं पर कसम ले लो जो उसने चखा हो। बस सर झुकाये खड़ा रहा। साईस ने कहा इसे तो बुखार है। उसने इसका सब सामान खोल दिया और लिपट के रोने लगा।

'साहब जी मेरा भी जी भर आया। हम दोनों जने मिलके रो रहे थे कि इतने में रेस क्लब का डॉक्टर आन टपका। उसने हम तीनों को निकाल बाहर किया। कहने लगा, अबे भिनकती हत्या को यहां काये को लाया है? और घोड़ों को भी मारेगा?'

नथ का साइज

एक और अवसर पर देर से आया तो इससे पूर्व कि बिशारत डांट डपट करें, खुद ही शुरू हो गया, 'साहब जी! कुसूर माफ, घटना घट गयी। म्यूनिस्पिल कार्पोरेशन के पास एक मुश्की घोड़ी बंधी हुई थी। उसे देखते ही दोनों बेकाबू हो गये। आगे-आगे घोड़ी उसके पीछे घोड़ा। फिर क्या नाम, यह रूसियाह। चौथे नंबर पे घोड़ी का धनी। साहब जी, अपना घोड़ा इस तरियो जा रिया था जैसे गले से मलाई उतर रही हो।' यहां उसने चाबुक अपनी टांगों के बीच में दबाया और दौड़कर बताया कि किस तरह घोड़ा, आपका गुलाम और घोड़ी का मालिक, इसी क्रम से घोड़े की इच्छा का पीछा करते सरपट जा रहे थे। 'जनाबे-वाला उस आदमी ने पहले तो मुझे, क्या नाम कि, नर्गिसी कोफ्ते जैसी आंखें से देखा, फिर उल्टा मुझी पे गुर्राया हालांकि मेरे घोड़े का कुसूर नहीं था। सारे रस्ते उसी की घोड़ी मुड़-मुड़ के अपुन के घोड़े को देखती रही कि पीछे बरोबर आ रहा है कि नहीं। मैंने उसको बोला कि ऐसा ही है तो अपनी बेनथनी शंखनी को संभाल के क्यों नहीं रखता। मालिक की इज्जत तो घोड़ी के हाथ में होती है। राह चलते घोड़े के साथ छेड़जड़ करती है। जिनावर को पैगंबरी इम्तिहान में डालती है। आखिर को मर्द जात है। बर्फ का पुतला तो है नहीं। साहब जी! मैंने क्या नाम कि उस दय्यूस को बोला कि जा जा! तेरी जैसी घोड़ियां बहुत देखी हैं। इस ठेटर (थियेटर) कंपनी में इस जैसी ही एक उजल छक्का छोकरी है पर उसकी नायिका मां उसे अब भी कुंवारपने की नथ पहनाये रहती है। जैसे-जैसे उस पटाखा का चाल-चलन खराब होता जाये है, नथ का साइज बड़ा होता जाता है। साहब जी! यह सुनते ही उसका गुस्सा रफूचक्कर हो गया। मुझसे ठेटर कंपनी का पता और छोकरी का नाम पूछने लगा। कहां तो गाली पे गाली बक रहा था और अब मुझे उस्ताद! उस्ताद! कहते जबान सूख रही थी। बोला उस्ताद! गुस्सा थूको, यह पान खाओ! कसम से अपुन का घोड़ा तो नजरें नीची किये, तोबड़े में मुंह डाले, म्यूनिसिपल कार्पोरेशन के पास खड़ा जुगाली कर रहा था। जनाबे-वाला! सोचने की बात है, उसकी घोड़ी तो बहुत ऊंची थी, ढऊ की ढऊ! जबकि घोड़ा बहुत से बहुत आपके कद के बराबर होगा।' बिशारत के आग ही तो लग गयी 'अबे कद के बच्चे! तेरे घोड़े के साथ हर घटना म्यूनिस्पिल कारपोरेशन के पास ही घटती है।'

हाथ जोड़ के बोला 'कुसूर माफ अबकी बार घटना घोड़े के साथ नहीं घटी बल्कि...'

बिशारत हेयर कटिंग सेलून

म्यूनिस्पिल कारपोरेशन वाली गुत्थी भी आखिर खुल गयी। उन दिनों बिशारत अपनी दुकान में सड़क वाली साइड पर कुछ परिवर्तन करना और बढ़ाना चाहते थे। नक्शा पास कराने के सिलसिले में म्यूनिस्पिल कार्पोरेशन जाने की आवश्यकता पड़ी, मगर कोचवान का कहीं पता न था। थक हार कर वो तीन बजे रिक्शा में बैठकर म्यूनिसिपल कार्पोरेशन चल दिये। वहां क्या देखते हैं कि फुटपाथ पर मिर्जा वहीदुज्जमां बेग कोचवान फटी दरी का टुकड़ा बिजये एक आदमी की हजामत बना रहा है। वो ओट में खड़े होकर देखने लगे। हजामत के बाद उसने अपनी कलाई पर लगे साबुन और शेव के टुकड़े उस्तरे से साफ किये और उस्तरा चिमोटे और अपनी कलाई पर तेज किया। फिर घुटनों के बल आधे खड़े होकर बगलें लीं। उन्हें अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हुआ। लेकिन औजारों की जानी पहचानी पेटी से फिटकरी की डली और तिब्बत टेल्कम पाउडर निकालते देखा तो अपनी आंखों पर विश्वास बहाल हो गया। अब जो गौर से देखा तो दरी के किनारे पर गत्ते का एक साइन बोर्ड भी नजर आया, जिस पर बड़े सुंदर ढंग से मोटे-मोटे अक्षरों में लिखा था...

बिशारत हेयर-कटिंग सैलून हेडआफिस

हरचंद राय रोड पर बीच बाजार में उसे अपमानित करना उचित न जाना। क्रोध में भरे, रिक्शा लेकर दुकान वापस आ गये। उस रोज वो स्कूल से बच्चों को लेकर शाम को सात बजे घर लौटा। बिशारत ने आव देखा न ताव। उसके हाथ से चाबुक छीनकर धमकी भरे अंदाज में लहराते हुए बोले 'सच सच बता, वरना अभी चमड़ी उधेड़ दूंगा। हरामखोर, तुम नाई हो! पहले क्यों नहीं बताया? हर बात में झूठ, बात-बेबात झूठ। अब देखता हूं कैसे झूठ बोलता है। सच-सच बता कहां था। वो हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया और थर-थर कांपते हुए कहने लगा 'कुसूर माफ! सरकार सच फर्माते हैं। आज से, कसम अल्लाह पाक की, हमेशा सच बोलूंगा।'

इसके बाद जीवन में उसकी जितनी भी बेइज्जती हुई, सब सच बोलने के कारण हुई। मिर्जा कहते हैं कि सच बोल कर जलील होने की तुलना में झूठ बोल कर अपमानित होना बेहतर है। आदमी को कम से कम सब्र तो आ जाता है कि किस बात की सजा मिल रही है।

बिशारत की जिरह पर पहला सच जो उसने बोला वो ये था कि म्यूनिस्पिल कार्पोरेशन के बंधे हुए ग्राहकों को निपटा कर मैं साढ़े चार बजे बर्नस रोड पर खत्ने करने गया। खत्ने के बरातियों को जमा होने में खासी देर हो गयी फिर लौंडा किसी तरह राजी नहीं होता था। इकलौता लाड़ला है, आठ साल का धींगड़ा, उसके बाप ने बहुतेरा बहलाया-फुसलाया कि बेटा! मुसलमान डरते नहीं। जरा तकलीफ नहीं होगी, मगर लौंडा अड़ा हुआ था कि पहले आप! आपके तो दाढ़ी भी है। बिशारत का चेहरा गुस्से से लाल हो गया।

एक और सच चाबुक के जोर पर उससे यह बुलवाया गया कि उसका अस्ल नाम बुद्धन है। उसके मेट्रिक पास बेटे को उसके नाम और काम दोनों पर आपत्ति थी, बार-बार आत्महत्या की धमकी देता था। उसने बहुत समझाया कि बेटा! बुजुर्गों के नाम ऐसे ही होते हैं। नाम में क्या धरा है। झुंझला के बोला 'अब्बा! यह बात तो शेख पीर

(शेक्सपियर) ने कही थी, पर उसके बाप का नाम बुद्धन थोड़े ही था। वो क्या जाने। तुम और कुछ नहीं बदल सकते तो कम से कम नाम तो बदल लो।' इसलिए जब कुछ दिन उसने ईस्टर्न फेडरल इंश्योरेंस कंपनी में चपरासी की नौकरी की तो अपना नाम मिर्जा वहीदुज्जमां बेग लिखवा दिया। बस उसी समय से चला आ रहा है। दरअस्ल यह उस अफसर का नाम था, जिसकी वो बीस बरस पहले हजामत बनाया करता था। वो निःसंतान मरा। रिश्वत से बनायी हुई जायदाद पर भतीजियों, भांजों ने और नाम पर उसने अधिकार जमा लिया।

अब जो कमबख्त सच बोलने पर आया तो बोलता ही चला गया। मिर्जा अब्दुल वुदूद बेग का कहना है कि आज के युग में 100 प्रतिशत सच बोल कर जीना ऐसा ही है जैसे बजरी मिलाये बिना सिर्फ सीमेंट से मकान बनाना। कहने लगा, कुसूर माफ! अब मैं सारा सच एक ही किस्त में बोल देना चाहता हूं। मेरा खानदान गैरतदार है। अल्लाह का शुक्र है, मैं जात का साईस नहीं। सौ वर्षों से बुजुर्गों का पेशा हज्जामी है। माशाअल्लाह, दस-बारह खाने वाले हैं। सरकार जानते हैं कि एक घोड़े पर जितना खर्च आता है उसकी आधी तन्ख्वाह मुझे मिलती है। सत्तर रुपये से किस किसकी नाक में धूनी दूं। झक मार कर यह प्राइवेट प्रेक्टिस करनी पड़ती है। बरसों अपना और बीबी बच्चों का पेट काट के बड़े लड़के को मेट्रिक करवाया।

'अलीमुद्दीन साहब के बाल बीस बरस से काट रहा हूं। सरकार! सर पे तो अब कुछ रहा नहीं। बस भौंहे बना देता हूं। सरकार! इस फन के कद्रदान तो सब अल्लाह को प्यारे हो गये। अब तो बाल्बर (बार्बर) इस तरह बाल उतारें हैं, जैसे भेड़ मूंड रहे हों। मेरी नजर मोटी हो गयी है, मगर आज भी पैर के अंगूठे के नाखून निहरनी रोके बिना एक बार में काट लेता हूं। अलीमुद्दीन साहब के हाथ पैर जोड़ के लौंडे को बैंक में क्लर्क लगवा दिया। अब वो कहता है मुझे तुम्हारे नाई होने में शर्म आती है, पेशा बदलो। सरकार! मेरे बाप-दादा नाई थे, नवाब नहीं। मेहनत मुशक्कत से हक-हलाल की रोटी कमाता हूं। पर साब जी, मैंने देखा है कि जिन कामों में मेहनत अधिक पड़ती है लोग उन्हें नीचा और घृणित समझते हैं। बेटा कहता है कि मेरे साथ के सब लड़के एकाउंटेंट हो गये। तिजोरी की चाबियां बजाते फिरते हैं। केवल बाप के कारण मेरी तरक्की रुकी हुई है, अगर तुमने नाई का धंधा नहीं छोड़ा तो तुम्हारे ही उस्तरे से अपना गला काट लूंगा। कभी-कभी अपनी मां को डराने के लिए रात गये ऐसी आवाजें निकालने लगता है, जैसे बकरा काटा जा रहा हो। वो भागवान मुझे खुदा-रसूल के वास्ते देने लगी। मजबूर हो के मैंने कोचवानी शुरू कर दी। यह प्राइवेट प्रेक्टिस उससे लुक-छुप के करता हूं। उसकी बेइज्जती के डर से पेटी, औजार आदि कभी घर नहीं ले जाता। यकीन कीजिये, इसी वज्ह से अपने हेयर ड्रेसिंग-सेलून के साइन-बोर्ड पे हुजूर का नाम पता लिखवाया, बड़ी बरकत है आपके नाम में -कुसूर माफ!'

अलादीन बेचिराग

वो हाथ जोड़ कर जमीन पर बैठ गया और फिर हिल-हिल के उनके घुटने दबाने लगा, जैसे ही वो पसीजे उसने एक और सच बोला। कहने लगा कि सरकार के चेहरे को रोजाना सुब्ह देखकर उसका दिल खून हो जाता है। देसी ब्लेड बाल कम और खाल अधिक उतारता है, खूंटियां रह जाती हैं। कुसूर माफ! कलमें भी ऊंची-नीची। जैसे नौ बजकर बीस मिनट हुए हों। उसने अनुरोध किया कि उसे घोड़े का खरेरा करने से पहले उनकी शेव बनाने की इजाजत दे दी जाये। अन्य सेवायें ये कि बच्चों के बाल काटेगा, निहारी, कबाब, बंबइया बिरयानी, मुर्ग का कोरमा और शाही टुकड़े लाजवाब बनाता है। देग का हलीम और ढिबरियों की फीरनी ऐसी कि उंगलियां चाटते रह जायें। सौ-डेढ़ सौ

आदमियों की दावत के लिए तीन घंटे में पुलाव जर्दा बना सकता है। बिशारत चटोरे आदमी ठहरे। यूं भी अंग्रेजी मुहावरे के अनुसार, आदमी के दिल तक पहुंचने का रास्ता पेट से हो कर गुजरता है। कार्ल मार्क्स भी यही कहता है।

हर रह जो उधर को जाती है

मेदे से गुजर कर जाती है

उन्हें यह हज्जाम अच्छा लगने लगा। उसने यह भी कहा कि घोड़े के खरेरे के बाद वो उनके वालिद के पैर दबायेगा और रात को उनकी (बिशारत की) मसाज करेगा। गर्दन के पीछे जहां से रीढ़ की हड्डी शुरू होती है, एक रग ऐसी है कि नरम-नरम उंगलियों से हौले-हौले दबायी जाये तो सारे बदन की थकान उतर जाती है। यह आंख को दिखाई नहीं देती। उसके उस्ताद स्वर्गवासी लड्डन मियां कहते थे कि मालिशिया अपनी उंगली की पोर से देखता है। यही उसकी दूरबीन है, जो छूते ही बता देती है कि दर्द कहां है। फिर उसने बिशारत को लालच दिया कि जब वो रोगन-बादाम से सर की मालिश करेगा और अंगूठे से हौले-हौले कनपटियां दबाने के बाद दोनों हाथों को सर पर परिंदे के बाजुओं की तरह फड़फड़ायेगा तो यूं महसूस होगा जैसे बादलों से नींद की परियां कतार-बांधे रुई के परत-दर-परत गौलों सी हौले-हौले उतर रही हैं। हौले-हौले, हौले-हौले।

बिशारत दिन भर के थके हारे थे। उसकी बातों से आंखें आप-ही-आप बंद होने लगीं।

और अंतिम नॉक आउट वार उस जालिम ने ये किया कि 'माशाल्लाह से नन्हें मियां तीन महीने के होने को आये। खत्ने जित्ती कम उम्र में हो जायें वित्ती जल्दी खुरंड आयेगा'।

अब तो चेहरे का गुलाब खिल उठा। बोले, 'भई, खलीफा जी! तुमने पहले क्यों न बताया, अमां हद कर दी! तुम तो छुपे रुस्तम निकले!' इस पर उसने जेब से वो नाल निकाल कर दिखाई जो उसे रुस्तम का घोड़ा बनने पर इनआम में मिली थी।

मिर्जा वहीदुज्जमां बेग उस दिन से खलीफा कहलाये जाने लगे। वैसे यह अलादीन नवम था। काम कम करता था, डींगें बहुत मारता था। मिर्जा अब्दुल वुदूद बेग इसे अलादीन बेचिराग कहते थे। आदरणीय ने उसको अलादीन के बजाय खलीफा कहना इस शर्त पर स्वीकार कर लिया कि आइंदा उसकी जगह कोई और कोचवान या नौकर रखा जायेगा तो उसे भी खलीफा ही कहेंगे।

घोड़े के आगे बीन

आहिस्ता-आहिस्ता मौलाना, खलीफा, घोड़ा और बुजुर्गवार महत्व के लिहाज से इसी क्रम में परिवार के सदस्य समझे जाने लगे। यह मेल जोल इतना संपूर्ण था कि घोड़े की लंगड़ी टांग भी कुनबे का अटूट अंग बन गयी। घोड़े की वज्ह से घर के मामलात में आदरणीय का दुबारा अमल-दख्ल हो गया। अमल-दख्ल हमने मुहावरे में कह दिया, वरना सरासर दख्ल ही दख्ल था।

सब घर वाले बलबन को चुमकारते, थपथपाते। दाना चारा तो शायद अब भी उतना ही खाता होगा। प्यार की नजर से उसकी दुम और चमड़ी ऐसी चमकीली और चिकनी हो गयी कि निगाहें और मक्खियां फिसलें। बच्चे छुप-छुप कर उसे अपने हिस्से की मिठाई खिलाने आते और उसी की तरह कान हिलाने का प्रयास करते। कुछ बच्चे अब फुटबाल को आगे किक करने के बजाय एड़ी से दुलत्ती मार कर पीछे की ओर गोल करने लगे थे, बैतबाजी के मुकाबले में जब किसी लड़के का गोला बारूद समाप्त हो जाता या कोई गलत शेर पढ़ देता तो विरोधी टीम और श्रोतागण मिलकर हिनहिनाते। स्वयं आदरणीय कोई अच्छी खबर सुनते या सूरज के सामने बादल का कोई टुकड़ा आ जाता तो तुरंत घोड़े को हार्मोनियम सुनाने बैठ जाते। अक्सर कहते कि जब वाकई अच्छा बजाता हूं तो ये अपनी दुम चनोर की तरह हिलाने लगता है। हमें उनके दावे की सच्चाई में न तब संदेह था न अब है, आश्चर्य इस पर है कि उन्होंने कभी यह गौर नहीं किया कि घोड़ा उनकी कला की दाद किस अंग से दे रहा है!

बलबन आदरणीय का खिलौना, संतान का विकल्प, अकेलेपन का साथी, आंसुओं से भीगा तकिया-सभी कुछ था। उसके आने से पहले वो सारा समय अपनी जंग खाई चूल पर अनघड़ किवाड़ की भांति कराहते रहते। चाहे दर्द हो या न हो, अगर उनके सामने कोई दूसरा बोझ उठाता तो मुंह से ऐसी आवाजें निकालते मानों स्वयं भी बोझा भर रहे हों। कोई पूछता तबियत कैसी है तो उत्तर में दायां हाथ आसमान की ओर उठाकर नकारात्मक ढंग से डुगडुगी की तरह हिलाते और दो तीन मिनट तक सुर बदल-बदल कर खांसते। ऐसा लगता था जैसे वो अपनी बीमारी को 'एंज्वाय' करने लगे हैं।

कुछ अभ्यासी रोगी यह मानना अपने रोग की शान के विरुद्ध समझते हैं कि अब दर्द में फायदा है। आदरणीय बड़ी जबर्दस्त आत्मशक्ति के मालिक थे, यदि रोग कभी दूर हो जाता तो महज अपनी आत्मशक्ति के बल पर दुबारा पैदा कर लेते। आपने उन्हें नहीं देखा, मगर उन जैसे चिररोगी बुजुर्ग अवश्य देखे होंगे जो अपनी पाली-पोसी बीमारियों का हाल इस तरह सुनाते हैं जैसे निन्यानवे पर आउट होने वाला बैट्समैन अपनी अधूरी सेंचुरी और देहात की औरतें अपने प्रसवों के किस्से सुनाती हैं, मतलब ये कि हर बार नयी कमेंट्री और नये पछतावे के साथ। बलबन के आने से पूर्व तबीयत बेहद चिड़चिड़ी रहने लगी थी। लोग उनका हाल चाल पूछने आने से कतराने लगे थे। सबने उनको अपने हाल पर छोड़ दिया। किसी का साहस नहीं था कि उनके रोगानंद में विघ्न डाले।

नश्शा बढ़ता है शराबी जो शराबी से मिले

उनके एक पुराने, बड़े रख-रखाव वाले मित्र फिदा हुसैन खां तायब हर शुक्रवार मिलने आते थे। किसी समय बड़े जिंदादिल और रंगीनमिजाज हुआ करते थे। चोरी छुपे पीते भी थे, मगर मुफ्त की। गुनाह समझ कर चोरी छुपे पीने में फायदा ये है कि एक पैग में सौ बोतलों का नशा चढ़ जाता है, लेकिन एक अजीब आदत थी। जब बहुत चढ़ जाती तो सारे विषय छोड़ कर केवल इस्लाम पर बातचीत करते। इस पर तीन-चार बार शराबियों से पिट भी चुके थे। वो कहते थे हमारा नशा खराब करते हो, लेकिन शेख हमीदुद्दीन, जिनके साथ तायब पीते थे, उनके विषय पर कोई ऐतराज नहीं करते थे। शेख साहब बड़े एहतमाम से पीते और यारों को पिलाते थे। बढ़िया व्हिस्की, चेकोस्लोवाकिया के क्रिस्टल के गिलास, तेज मिर्चों की भुनी कलेजी और कबाब, रियाज खैराबादी के अशआर और एक तौलिए से मदिरापान आरंभ होता। तायब को जैसे ही चढ़ती अपनी पहली पत्नी को याद करके भूं भूं रोते और तौलिए से आंसू पोंछते जाते। कभी लंबा नागा हो जाता तो शराब पर केवल इसलिए टूट पड़ते कि

इक उम्र से हूं लछजते-गिरिया से भी महरूम

कभी नशा अधिक चढ़ जाता और घर या मुहल्ले में जाकर चांदनी रात में स्वर्गवासी पत्नी को याद करके दहाड़ें मारते, या गुल-गपाड़ा करते तो मौजूदा बीबी और मुहल्ले वाले मिलकर उनके सर पर भिश्ती से एक मशक छुड़वा देते। एक बार जनवरी में ठंडी बर्फ मशक से उन्हें जुकाम हो गया, जिसने बाद में निमोनिया का रूप धारण कर लिया। इसके बाद पत्नी उनको तुर्की टोपी उढ़ा कर मशक छुड़वाती थीं।

फिदा हुसैन खां तायब

फिदा हुसैन खां तायब की उम्र यही साठ के लगभग होगी, लेकिन ताकने-झांकने का लपका नहीं गया था। जिस नजर से वो परायी बहू बेटियों को देखते थे, उस नजर के लिए उनकी अपनी बीबी एक उम्र से तरस रही थी। तीसरे बच्चे के बाद उनके पति प्रेम में कुछ अंतर आ गया था कि हमारे यहां गृहस्थी, मुहब्बत के लिए बच्चे स्पीड ब्रेकर्ज का काम देते हैं। उदार स्वभाव ने एक ही पत्नी तक सीमित न रहने दिया। मुद्दतों शीघ्र-प्राप्त सुंदरियों के बिस्तरों में निर्वाण ढूंढ़ते रहे। जब तक बादशाह होने की हिम्मत रही, निकाह की तंग गली से निकल-निकल कर रात के अंधेरे में जपामारी करते रहे। उधर बेजबान बीबी यह समझ कर सब सहती रही।

'कुछ और चाहिये वुस्अत मेरे मियां के लिए'

तायब किसी समय एक सहकारी बैंक में नौकरी और शायरी करते थे। अंकों, संख्याओं के साथ भी शायरी करने की कोशिश की और गबन के आरोप में निकाले गये। शायरी अब भी करते थे, मगर साल में केवल एक बार, पचासवीं वर्षगांठ के उपरांत यह नियम बना लिया था कि हर साल पहली जनवरी को अपनी मरण-तिथि मानकर इस मौके पर कित्आ कह कर रख लेते, जो बारह-तेरह बरस से उनके काम आने से वंचित था। साल के दौरान किसी मित्र या परिचित का निधन हो जाता तो उसका नाम किसी मिसरे में ठूंस कर अपनी कविता उसे बख्श देते।

Thy need is yet greater than mine

नाम परिवर्तन की वज्ह से बहुत से कित्ओं का छंद टूटता, जिसे वो काव्य की आवश्यकता तथा मृत्यु के तकाजे के तहत जाइज समझते थे। कुछ दोस्त, जिनके पैर कब्र में लटक रहे थे, महज उनकी कविता के डर से मरने से बच रहे थे। आदरणीय को तायब साहब का आना भी नागवार गुजरने लगा। एक दिन कहने लगे, 'यह मनहूस क्यों मंडराता रहता है। मैं तो जानूं, इसकी नीयत मुझ पे खराब हो रही है। इस बरस का कित्आ मेरे सर, मेरे सरहाने चिपकाना चाहता है।' फिर विशेष रूप से वसीयत की कि अव्वल तो मैं ऐसा होने नहीं दूंगा, परंतु मान लो, अगर मैं फिदा हुसैन खां तायब से पहले मर जाऊं, अगरचे मैं हरगिज ऐसा होने नहीं दूंगा - तो इसका कित्आ मेरी पांयती लगाना।

जिन कब्रों के समाधिलेख पर यह कित्ए स्वर्गवासियों के नामों और उनके उपनाम 'तायब' के साथ लिखे थे, उनसे यह पता नहीं चलता था कि वास्तव में कब्र में कौन दफ्न है। बकौल काजी अब्दुल कुद्दूस, निधन कब्र वाले का हुआ है अथवा शायर का?

कुछ लोग यह शिलालेख देखकर आश्चर्य करते कि एक ही शायर को बार-बार क्यों कब्र में उतारा गया लेकिन जब कित्आ पढ़ते तो कहते कि ठीक ही किया। किसी शायर ने ही कहा है कि बहुत से शरीर ऐसे होते हैं जो मृत्यु के उपरांत भी जीवित रहते हैं। शायर मर जाता है, मगर कलाम बाकी रह जाता है। उर्दू शायरी को यही चीज ले डूबी।

महफिले - समाखराशी (कानों को कष्ट देनी वाली महफिल)

यूं कोई दिन ऐसा नहीं जाता था कि आदरणीय मरने की धमकी न देते हों। कब्रिस्तान में एक भूखंड खरीद कर अपना पक्का मजार बनवा लिया था जो काफी समय से गैरआबाद पड़ा था क्योंकि उस पर अधिकार लेने से वो अभी तक कतराते थे। अक्सर खुद पर निराशा तारी करके यह शेर पढ़ते

देखते ही देखते दुनिया से उठ जाऊंगा मैं

देखती की देखती रह जायेगी दुनिया मुझे

शेर में अपनी चटपट मौत पर जबान का खेल दिखाया गया है। इससे तो मिर्जा अब्दुल वुदूद बेग के कथानुसार यही पता चलता है कि आदरणीय की मृत्यु जबान के चटखारे के कारण हुई, यानी जबान से अपनी कब्र खोदी।

जिस दिन से घोड़ा उनकी संगीत की महफिल में आने लगा, उन्होंने पुरानी कमख्वाब की अचकन उधड़वा कर हार्मोनियम का गिलाफ बनवा लिया। खलीफा धोंकनी संभालता और वो लरजती कांपती उंगलियों से हार्मोनियम बजाने लगते। कभी बहुत जोश में आते तो मुंह से अनायास गाने के बोल निकल जाते। यह फैसला करना मुश्किल था कि उनकी आवाज जियादा कंपकंपाती है या उंगलियां। जैसे ही अंतरा गाते सांस झकोले खाने लगता, उनके पड़ोसी चौधरी करम इलाही, रिटायर्ड एक्साइज इंस्पेक्टर टिलकते हुए आ निकलते। अर्सा हुआ पानी उतर आने के कारण उनकी दोनों आंखों की रोशनी जाती रही थी। उन्होंने खासतौर पर गुजरात से एक घड़ा मंगवाकर उसके चटख रंग पर सिंधी टाइल्ज के चित्र पेंट करवा लिए थे। कहते थे - औरों को तो नजर आता है। वो जब अपनी आस्तीन चढ़ाकर चौड़ी कलाई पर चमेली का गजरा लपेटे घड़े पर संगत करते तो समां बांध देते। वो अक्सर कहते थे कि जब से आंखें गयी हैं मालिक ने मुझ पर सुर, संगीत और सुगंध के अनगिनत भेद खोल दिये हैं। गम्मत हो चुकती और राग खुशबू बन कर सारे में रच बस जाता तो आदरणीय कहते 'वाह वा! चोई साहब! भई खूब बजाते हो' और चौधरी साहब अपने अंधेरी आंखें आनंद में बंद करते हुए कहते 'लो जी! तुसी भी अज वड्डा कमाल कीता ए' और यह वास्तव में कला की पराकाष्ठा नहीं तो और क्या थी कि दोनों अपाहिज बुजुर्ग जब झूम-झूम के अपने-अपने साज पर एक साथ अपने अपने राग यानी राग दरबारी और तीन ताल बेताल में माहिया की धुन बजा कर एक दूसरे की संगत करते तो ये कहना बहुत कठिन होता कि कौन किसका साथ नहीं दे रहा।

क्या - क्या मची है यारों , बरसात की बहारें :

आदरणीय अपनी लकवाग्रस्त टांग की पोजीशन चौधरी करम इलाही से बदलवाते हुए अक्सर कहते कि जवानी में ऐसा हार्मोनियम बजाता था कि अच्छे-अच्छे हार्मोनियम मास्टर कान पकड़ते थे। उनका यह शौक उस दौर की

यादगार था जब वो बंबई से आई हुई थियेट्रिकल कंपनी का एक ही खेल एक महीने तक रोज देखते और शेष ग्यारह महीने उसके डायलॉग बोलते फिरे। 1925 से वो हर खेल आर्केस्ट्रा के पिट में बैठकर देखने लगे थे, जो उस जमाने में शौकीनी और रईसाना ठाठ की चरम सीमा समझी जाती थी। हार्मोनियम एक कंपनी के रिटायर्ड हार्मोनियम बजाने वाले से सीखा था, जो पेटी मास्टर कहलाता था। कहते थे कि पोरों के जोड़ों और उंगलियों के रग पट्ठों को नरम और रवां रखने के लिए मैंने महीनों उंगलियों पर बारीक सूजी का हलवा बांधा। उनका रंग गोरा और त्वचा अत्यंत साफ तथा कोमल थी। इतनी लंबी बीमारी के बावजूद अब भी जाड़े में गालों पर सुर्खी झलकती थी। गिलाफी आंखें बंद कर लेते तो और खूबसूरत लगतीं। सफेद अचकन, भरी-भरी पिंडलियों पर फंसा हुआ चूड़ीदार। जवानी में वो बहुत सुंदर थे। हर प्रकार के कपड़े उन पर सजते थे। अपनी जवानी का जिक्र आते ही तड़प उठते।

इक तीर तूने मारा जिगर में कि हाय हाय !

वो भी कैसे अरमान भरे दिन थे। जब हर दिन, एक नये कमल की भांति खिलता था

जब साये धानी होते थे

जब धूप गुलाबी होती थी

उनकी कल्पना से ही सांस तेज-तेज चलने लगती। बीते हुए दिन, महीना और साल पतझड़ के पत्तों की तरह चारों ओर उड़ने लगते। हाय! वो उस्ताद फय्याज खां का वहशी बगूले जैसा उठता हुआ आलाप, वो गौहरजान की ठिनकती, ठिंकारती आवाज और मुख्तार बेगम कैसी भरी-भरी संतुष्ट आवाज से गाती थी। उसमें उनकी अपनी जवानी तान लेती थी। फिर स्वप्न पियाले पिघलने लगते। यादों का दरिया बहते-बहते स्वप्न मरीचिका के खोये पानियों में उतरता चला जाता। मोटी-मोटी बूंदें पड़ने लगतीं। धरती से लपट उठती और बदन से एक गर्म मदमाती महक फूटती। बारिश में भीगे महीन कुर्ते कुछ भी तो न छुपा पाते। फिर बादल बाहर भीतर ऐसा टूट के बरसता कि सभी कुछ बहा ले जाता।

सीने से घटा उड़े , आंखों से झड़ी बरसे

फागुन का नहीं बादल जो चार घड़ी बरसे

ये बरखा है यादों की बरसे तो बड़ी बरसे

झमाझम मेंह बरसता रहता और वो हार्मोनियम पर दोनों हाथों से कभी बीन, कभी उस्ताद झंडे खां की चहचहाती धूम मचाती सलामियां बजाते तो कहने वाले कहते कि काले नाग बिलों से निकल के झूमने लगते। दरीचों में चांद निकल आते, कहीं अधूरे छिड़काव से कोरे बदन की तरह सनसनाती छतों पर लड़कियां इंद्रधनुष को देख देख कर उसके रंग अपने लहरियों में उतारतीं और कहीं चंदन बांहों पर से चुटकी और कच्ची चुनरी के रंग छुटाये नहीं छूटते। अंतरे की लय तेज होती तो वातावरण कैसा झन-झनन-झनन गूंज उठता, जैसे किसी ने मस्ती में धरती

और आकाश को उठा कर मंजीरे की तरह टकरा दिया हो और अब रंग-तारों की झलक-झंकार है कि किसी तौर थमने का नाम नहीं लेती।

अखबारी टोपी

तीन-चार महीने बड़ी शांति से बीते, बच्चों का स्कूल गर्मियों की छुट्टियों में बंद हो गया था। एक दिन बिशारत ने तांगा जुतवाया और कोई दसवीं बार नक्शा पास करवाने म्यूनिसिपल कॉरपोरेशन गये, चलते-चलते मौलाना से कह गये कि आज नक्शा पास करवा के ही लौटूंगा। बहुत हो चुकी। देखता हूं, आज बास्टर्ड कैसे पास नहीं करते। यह केवल गाली भरी शेखी नहीं थी। अब तक वो तर्क और उदाहरण साथ ले के जाते थे लेकिन आज पांच हरे नोटों से सशस्त्र हो के जा रहे थे कि पैसे की तलवार हर गुत्थी और गिरह को काट के रख देती है। तांगा गलियों-गलियों, बड़े लंबे रास्ते से ले जाना पड़ा। इसलिए कि बहुत कम सड़कें बची थीं, जिन पर तांगा चलाने की अनुमति थी। तांगा अब रिक्शा से अधिक फटीचर चीज समझा जाने लगा था, इसलिए सिर्फ अत्यंत गरीब इलाकों में चलता था जो शहर में होते हुए भी शहर का हिस्सा नहीं थे।

समय के उलटफेर को क्या कहिये। कानपुर से यह सपना देखते हुए आये थे कि अल्लाह एक दिन ऐसा भी लायेगा, जब फिटन में टांगों पर इटालियन कंबल डाल के निकलूंगा तो लोग एक दूसरे से पूछेंगे, किस रईस की सवारी जा रही है? परंतु जब सपने की परिणिति सामने आई तो दुनिया इतनी बदल चुकी थीं कि न सिर्फ तांगा छुप कर निकलता बल्कि वो खुद भी उसमें छुप कर बैठते। उनका बस चलता तो इटालियन कंबल सर से पैर तक ओढ़ लपेट कर निकलते कि कोई पहचान न ले। दिन में जब भी तांगे में बैठते तो अखबार के दोनों पृष्ठ अपने चेहरे और सीने के सामने इस प्रकार फैलाकर बैठते कि उनकी लटकी हुई टांगें अखबार का ही परिशिष्ट प्रतीत होती थीं। मिर्जा अब्दुल वुदूद बेग ने तो एक दिन कहा भी कि तुम अखबार की एक टोपी बनवा लो जिसमें अपना मुंह छुपा सको। वैसी ही टोपी जैसी मुजरिम को फांसी पर लटकाने से पहले पहनाई जाती है। बल्कि वो तो यहां तक कहते हैं कि मुजरिम को अखबारी टोपी ही पहना कर फांसी देनी चाहिये ताकि अखबार वालों को भी तो सीख मिले।

घोड़े की इक छलांग ने ...

म्यूनिस्पिल कॉरपोरेशन की इमारत चार-पांच सौ गज दूर रह गयी होगी कि अचानक गली के मोड़ से एक जनाजा आता दिखाई दिया। खलीफा को नौकरी पर रखते समय उन्होंने सख्ती से निर्देश दिया था कि घोड़े को हर हाल में जनाजे से दूर रखना, परंतु इस समय उसका ध्यान कहीं और था और जनाजा था कि घोड़े पर चढ़ा चला आ रहा था। बिशारत अखबार फेंक कर संपूर्ण शक्ति के साथ चीखे 'जनाजा! जनाजा!! खलीफा!!!' यह सुनते ही खलीफा ने चाबुक मारने शुरू कर दिये। घोड़ा वहीं खड़ा हो के हिनहिनाने लगा। खलीफा और बदहवास हो गया। बिशारत ने खुद लगाम पकड़ कर घोड़े को दूसरी ओर मोड़ने का प्रयास किया, लेकिन वो अड़ियल होकर दुलत्तियां मारने लगा। उन्हें मालूम नहीं था कि दरअस्ल यही वो जगह थी, जहां खलीफा रोज घोड़े को बांध कर हजामत करने चला जाता था। वो चीखे, 'जरा ताकत से चाबुक मार' उधर खतरा यानी जनाजा पल-प्रतिपल निकट आ रहा था। उन पर

अब दहशत तारी हो गयी। उनके बौखलाये अनुमान के अनुसार जनाजा अब उसी 'रेंज' में आ गया था जहां चंद माह पूर्व, बकौल स्टील मिल सेठ के

घोड़े की इक छलांग ने

तय कर दिया किस्सा तमाम

इस समय वो खुद घोड़े से भी जियादा बिदके हुए थे। इसलिए कि घोड़े के पेट पर लात मारने की कोशिश कर रहे थे, उसकी हिनहिनाहट उनकी चीखों में दब गयी। घोड़े के उस पार खलीफा दीवानों की तरह चाबुक चला रहा था। चाबुक जोर से पड़ता तो घोड़ा पिछली टांगों पर खड़ा हो-हो जाता। खलीफा ने गुस्से में बेकाबू हो कर दो बार उसे 'तेरा धनी मरे!' की गाली दी तो बिशारत सन्नाटे में आ गये, परंतु फिलहाल वो घोड़े को नियंत्रित करना चाहते थे। खलीफा को डांटने लगे 'अबे क्या ढीले-ढीले हाथों से मार रहा है। खलीफे!'

यह सुनना था कि खलीफा फास्ट बॉलर की तरह स्टार्ट लेकर दौड़ता हुआ आया और दांत किचकिचाते हुए, आंखें बंद करके पूरी ताकत से चाबुक मारा जिसका अंतिम सिरा बिशारत के मुंह और आंख पर पड़ा। ऐसा लगा, जैसे किसी ने तेजाब से लकीर खींच दी हो। कहते थे, 'यह कहना तो ठीक न होगा कि आंखों तले अंधेरा छा गया। मुझे तो ऐसा लगा जैसे दोनों आंखों का फ्यूज उड़ गया हो।' खलीफा से खलीफे, खलीफे से अबे और अबे से उल्लू के पट्ठे की सारी मंजिलें एक ही चाबुक में तय हो गयीं। वहशत की हालत में वो खलीफा तक कैसे पहुंचे, घोड़े को छलांग कर गये या टांगों के नीचे से, याद नहीं। खलीफा के हाथ से चाबुक छीनकर दो तीन उसी के मारे। उसने अपनी चीखों से घोड़े को सर पर उठा लिया।

एक आंख में इतनी जलन थी कि उसके असर से दूसरी भी बंद हो गयी और वो बंद आंखों से घोड़े पर चाबुक चलाते रहे। कुछ देर बाद अचानक महसूस हुआ कि चाबुक को रोकने के लिए सामने कुछ नहीं है। घायल दायीं आंख पर हाथ रखकर बायीं खोली तो नक्शा ही कुछ और था। जनाजा बीच सड़क पर डायग्नल रखा था। तांगा बगटुट जा रहा था। कंधा देने वाले गायब, खलीफा लापता। अलबत्ता एक शोकाकुल बुजुर्ग जो अमलतास के पेड़ से लटके हुए थे, घोड़े की वंशावली में पिता की हैसियत से दाखिल होने की इच्छा व्यक्त कर रहे थे।

कुछ मिनट के बाद लोगों ने अपनी-अपनी घुड़पनाह से निकल कर उन्हें घेरे में ले लिया। जिसे देखो अपनी ही धांय-धांय कर रहा था। उनकी सुनने को कोई तैय्यार नहीं। तरह-तरह की आवाजें और वाक्य सुनायी दिये। 'इस पर साले अपने आप को मुसलमान कहते हैं' 'घोड़े को शूट कर देना चाहिए' 'थाने ले चलो'। (बिशारत की टाई पकड़ कर घसीटते हुए) 'हमारी मय्यत की बेइज्जती हुई है।' 'इसका मुंह काला करके इसी घोड़े पे जुलूस निकालो।' बिशारत ने उसी समय फैसला कर लिया कि वो इंजेक्शन से बलबन को मरवा देंगे।

घर आकर उन्होंने बलबन को चाबुक से इतना मारा कि मोहल्ले वाले जमा हो गये।

उस रात वो और बलबन दोनों न सो सके। इससे पहले उन्होंने नोटिस नहीं किया था कि खलीफा ने चाबुक में बिजली का तार बांध रखा है।

बलबन को सजा - ए - मौत

सुब्ह उन्होंने खलीफा को बर्खास्त कर दिया। वो पेटी बगल में मार के जाने लगा तो हाथ जोड़ के बोला, 'बच्चों की कसम! घोड़ा बेकुसूर था। वो तो चुपका खड़ा था। आप नाहक में पिटवा रहे थे। इतनी मार खा के तो मुर्दा घोड़ा भी तड़प के सरपट दौड़ने लगता। अस्सलामअलैकुम (लौट कर आते हुए) कुसूर माफ! हजामत बनाने शुक्रवार को किस समय आऊं?'

एक दोस्त ने राय दी कि घोड़े को 'वैट' से इंजेक्शन न लगवाओ। जानवर बड़ी तकलीफ सह के तड़प-तड़प के मरता है। मैंने अपने अल्सेशियन कुत्ते को अस्पताल में इंजेक्शन से मरते देखा तो दो दिन तक ठीक से खाना न खा सका। वो मेरे कठिन समय का साथी था। मुझे बड़ी बेबसी से देख रहा था। मैं उसके माथे पर हाथ रखे बैठा रहा। ये बड़ा बदनसीब, बड़ा दुखी घोड़ा है। इसने अपनी अपंगता और तकलीफ के बावजूद तुम्हारी, बच्चों की बड़ी सेवा की है।

उसी दोस्त ने किसी से फोन पर बात करके बलबन को गोली मारने की व्यवस्था कर दी। बलबन को ठिकाने लगवाने का काम मौलवी करामत हुसैन के सुपुर्द हुआ। वो बहुत उलझे, बड़ी बहस की। कहने लगे, पालतू जानवर, खिदमती जानवर, जानवर नहीं रहता वो तो बेटा बेटी की तरह होता है। बिशारत ने उत्तर दिया, आपको मालूम है घोड़े की उम्र कितनी होती है? इस लंगड़दीन को आठ नौ बरस तक खड़ा कौन खिलायेगा? मैंने सारी उम्र इसे ठुंसाने, जिंदा रखने का ठेका तो नहीं लिया। मौलाना अपनी नौकर की हैसियत भूल कर एकाएक क्रोध में आ गये। जमीन के झगड़े का रुख आसमान की ओर मोड़ते हुए कहने लगे कि इंसान की यह ताकत, यह मजाल कहां कि किसी को रोजी दे सके। अन्नदाता तो वही है जो पत्थर के कीड़े को भी खाना देता है। जो बंदा यह समझता है कि वो किसी को रोजी देता है वो दरअस्ल खुदाई का दावा करता है। प्रत्येक प्राणी अपना खाना अपने साथ लाता है। अल्लाह का वादा सच्चा है। वो हर हाल में हर सूरत में खाना देता है।

'बेशक! बेशक! रिश्वत की सूरत में भी!' बिशारत के मुंह से निकला और मौलाना के दिल में तीर की तरह उतर गया। मौलाना ही नहीं स्वयं बिशारत भी धक से रह गये कि क्या कह दिया। जिस कमीने, प्रतिशोधी वाक्य को व्यक्ति वर्षों सीने में दबाये रखता है, वो एक न एक दिन उछल कर अचानक मुंह पर आ ही जाता है। पट्टी बांधने से कहीं दिल की फांस निकलती है और जब तक वो न निकल जाये, आराम नहीं आता।

मौलाना तड़के बलबन को लेने आ गये। ग्यारह बजे गोली मारी जाने वाली थी।

बिशारत नाश्ते पर बैठे तो ऐसा महसूस हुआ जैसे हल्क में फंदा लग गया हो। आज उन्होंने बलबन की सूरत नहीं देखी। 'गोली तो जाहिर है माथे पर ही मारते होंगे' उन्होंने सोचा बायीं आंख के ऊपर वाली भौरी सच में मनहूस निकली। जान लेके रहेगी। मौलाना को उन्होंने रात ही को समझा दिया था कि लाश को अपने सामने ही गढ़े में दफ्न करायें। जंगल में चील कौओं के लिए पड़ी न छोड़ दें। उन्हें झुरझुरी आई और वो कबाब-परांठा खाये बिना अपनी दुकान रवाना हो गये। रास्ते में उन्होंने उसका सामान और पुरानी रुई का वो खून से भरा पैड देखा तो उसकी घायल गर्दन पर बांधा जाता था। ऐसा लगा जैसे उन्हें कुछ हो रहा है। वो तेज-तेज कदम उठाते हुए निकल गये।

आदरणीय को अस्ल सूरते-हाल नहीं बतायी गयी। उन्हें सिर्फ यह बताया गया कि बलबन दो ढाई महीने के लिए चरायी पर पंजाब जा रहा है। वो कहने लगे, गाय भैंसों को तो चरायी पर जाते सुना था मगर घोड़े को घास खाने के वास्ते जाते आज ही सुना!' यह उनसे उलझने का अवसर नहीं था! उनका ब्लड प्रेशर पहले ही बहुत बढ़ा हुआ था। उन्हें किसी जमाने में अपनी ताकत और कसरती बदन पर बड़ा घमंड था। अब भी बड़े गर्व से कहते थे कि मेरा ब्लड प्रेशर दो आदमियों के बराबर है। दो आदमियों के बराबर वाले दावे की पुष्टि हम भी करेंगे। हमने अपनी आंखों से देखा कि उन्हें मामूली सा दर्द होता तो दो आदमियों की ताकत से चीखते थे, इसलिए बिशारत अपने झूठ पर डटे रहे, और ठीक ही किया। मिर्जा अक्सर कहते हैं कि अपने छोटों से कभी झूठ नहीं बोलना चाहिये, क्योंकि इससे उन्हें भी झूठ बोलने की प्रेरणा मिलती है, परंतु बुजुर्गों की और बात है, उन्हें किसी बाहरी प्रेरणा की आवश्यकता नहीं होती।

मौलाना रास पकड़े बलबन को आदरणीय से मिलवाने ले गये। उनका आधे से जियादा सामान उनके अपने कमरे में शिफ्ट हो चुका था। हार्मोनियम रहीम बख्श के लाल खेस में लपेटा जा रहा था। बलबन का फोटो जो रेस जीतने के बाद अखबार में छपा था, अभी दीवार से उतारना बाकी था। वो रात से बहुत उदास थे। अपने नियम के विरुद्ध रात की नमाज के उपरांत दो बार हुक्का भी पिया। अब वो सुब्ह शाम कैसे काटेंगे? इस समय जब बलबन उनके पास लाया गया तो वो सर झुकाये देर तक अपनी दुम में उंगलियों से कंघी कराता रहा। आज उन्होंने उसके पांव पर दुआ पढ़के फूंक नहीं मारी। जब वो उसके माथे पर अल्लाह लिखने लगे तो उनकी उंगली चाबुक के उपड़े हुए लंबे निशान पर पड़ी और वो चौंक पड़े। जहां तक यह दर्द की लकीर जाती थी वहां तक वो उंगली की पोर से खुद को जख्माते रहे। फिर दुख-भरे स्वर में कहने लगे 'किसने मारा है, हमारे बेटे को?' मौलाना उसे ले जाने लगे तो उसके सर पर हाथ रखते हुए बोले 'अच्छा बलबन बेटे! हमारा तो चल-चलाव है। खुदा जाने वापसी पर हमें पाओगे भी या नहीं। जाओ अल्लाह की हिफाजत में दिया।' बलबन की जुदाई के खयाल से वो ढह गये। अब वो अपने मन की बात किससे कहेंगे? किसकी सेहत की दुआ को हाथ उठेंगे? उन्होंने सोचा भी न था कि कुदरत को इतना-सा आसरा, एक जानवर की दुसराथ तक स्वीकार न होगी। जो कभी स्वयं अकेलेपन की जान को घुला देने वाली पीड़ा से न गुजरा हो, वो अनुमान नहीं लगा सकता कि अकेला आदमी कैसी-कैसी दुसराथ का सहारा लेता है।

मौलाना दिन भर अनुपस्थित रहे, दूसरे दिन वो बंद-बंद और खिंचे-खिंचे से नजर आये। कई सवाल होंठों पर कांप-कांप कर रह गये। किसी को उनसे पूछने की हिम्मत न हुई कि बलबन को गोली कहां लगी। कहते हैं जानवरों को मौत का पूर्वाभास हो जाता है। तो क्या जब वो वीरान पहाड़ियों में ले जाया जा रहा था तो उसने भागने की कोशिश की? और कभी अंतिम क्षण में चमत्कार भी तो हो जाता है। वो बहुत मेहनती, सख्त जान, और साहसी था। दिल नहीं मानता था कि उसने आसानी से मौत से हार मानी होगी।

Do not go gentle into that good night,

rage, rage against the dying of the light.

आहा आहा ! बरखा आई !

कोई दो सप्ताह बाद बिशारत की ताहिर अली मूसा भाई से मुठभेड़ हो गयी। मूसा भाई वोहरी था और उसकी लकड़ी की दुकान उनसे इतनी दूरी पर थी कि पत्थर फेंकते तो ठीक उसकी सुनहरी पगड़ी पर पड़ता। यह हवाला

इसलिए भी देना पड़ा कि कई बार बिशारत का दिल उस पर पत्थर फेंकने को चाहा। वो कभी सीधे मुंह बात नहीं करता था। उनके लगे हुए ग्राहक तोड़ता और तरह-तरह की अफवाहें फैलाता रहता। दरअस्ल वो उनका बिजनेस खराब करके उनकी दुकान खरीदना चाहता था। उसकी छिदरी दाढ़ी तोते की चोंच की तरह मुड़ी रहती थी।

वो कहने लगा 'बिशारत सेठ! लास्ट मंथ हमको किसी ने बोला आप घोड़े को शूट करवा रहे हो। हम बोला, बाप रे बाप! ये तो एकदम हत्या है। वो घोड़ा तो मुहर्रम में जुलजिनाह बना था। हमारी आरा मशीन पे एक मजूर काम करता है तुराब आली, उसने हमको आ के बोला कि मेरी झुग्गी के सामने से दुलदुल की सवारी निकली थी। आप ही का घोड़ा था सेम टू सेम सोला आने। तुराब अली ने उसको दूध जलेबी खिलाई। आपके कोचवान ने उसका पूरा भाड़ा वसूल किया। पचास रुपये, बोलता था कि बिशारत सेठ दुलदुल को भाड़े टैक्सी पे चलाना मांगता है। दुलदुल के आगे आगे वो शाहे-मर्दां, शेरे-यजदां वगैरा वगैरा गाता जा रहा था। उसके पंद्रह रुपये अलग से। घोड़े को हमारे पास भी सलाम कराने लाया था। गरीब बाल-बच्चेदार मानुस है।'

उसके अगले रोज मौलाना काम पर नहीं आये। दो दिन से मुसलसल बारिश हो रही थी। आज सुब्ह घर से चलते समय कह आये थे 'बेगम आज तो कढ़ाई चढ़नी चाहिये।' कराची में तो सावन के पकवान को तरस गये। खस्ता समोसे, करारे पापड़, और कचौरियां। कराची के पपीते खा-खा के हम तो बिल्कुल पिलपिला गये। शाम को जब दुकान बंद करने वाले थे, एक व्यक्ति सूचना लाया कि कल शाम मौलाना के पिता का देहांत हो गया। आज दोपहर के बाद जनाजा उठा। चलो अच्छा हुआ, अल्लाह ने बेचारे की सुन ली। बरसों का कष्ट समाप्त हुआ। मिट्टी सिमट गयी। बल्कि यूं कहिये कीचड़ से उठा के सूखी मिट्टी में दबा आये। वो पुर्से के लिए सीधे मौलाना के घर पहुंचे। बारिश थम चुकी थी और चांद निकल आया था। आकाश पर ऐसा लगता था जैसे चांद बड़ी तेजी से दौड़ रहा है और बादल अपनी जगह खड़े हैं। ईटों, पत्थरों और डालडा के डिब्बों की पगडंडियां जगह-जगह पानी में डूब चुकी थीं। नंग धड़ंग लड़कों की एक टोली पानी में डुबक-डुबक करते एक घड़े में बारी-बारी मुंह डाल कर फिल्मी गाने गा रही थी। एक ढही हुई झुग्गी के सामने एक बहुत बुरी आवाज वाला आदमी बारिश को रोकने के लिए अजान दिये चला जा रहा था। हर लाइन के आखिरी शब्द को इतना खींचता जैसे अजान के बहाने पक्का राग अलापने की कोशिश कर हो। कानों में उंगली की पोर जोर से ठूंस रखी थी ताकि अपनी आवाज की यातना से बचा रहे। एक हफ्ते पहले इसी झुग्गी के सामने इसी आदमी ने बारिश लाने के लिए अजानें दी थीं। उस वक्त बच्चों की टोलियां घरों के सामने 'मौला मेघ दे! मौला पानी दे! ताल, कुएं, मटके सब खाली मौला! पानी! पानी! पानी!' गातीं और डांट खातीं फिर रही थीं।

अजीब बेबसी थी। कहीं चटाई, टाट, और अखबार की रद्दी से बनी हुई छतों के पियाले पानी के लबालब बोझ से लटके पड़ रहे थे और कहीं घर के मर्द फटी हुई चटाइयों में दूसरी फटी चटाइयों के जोड़ लगा रहे थे। एक व्यक्ति टाट पर पिघला हुआ तारकोल फैला कर छत के उस हिस्से के लिए तिरपाल बना रहा था, जिसके नीचे उसकी बीमार मां की चारपायी थी। दूसरे की झुग्गी बिलकुल ढेर हो गयी थी। उसकी समझ में नहीं आ रहा था मरम्मत कहां से शुरू करे, इसलिए वो एक बच्चे की पिटाई करने लगा।

एक झुग्गी के बाहर बकरी की आंतों पर बरसाती मक्खियां खुजलटे कुत्ते के उड़ाये से नहीं उड़ रही थीं। ये दूध देने वाली मगर बीमार और दम तोड़ती हुई बकरी की आंतें थी जिसे थोड़ी देर पहले उसके दो महीने के बच्चे से एक गज दूर तीन पड़ौसियों ने मिलकर हलाल किया था ताकि छुरी फिरने से पहले ही खत्म न हो जाये इसका खून

नालों और नालियों के जरिये दूर-दूर तक फैल गया था। वो तीनों एक दूसरे को बधाई दे रहे थे कि एक मुसलमान भाई की मेहनत की कमाई को हराम होने से बाल-बाल बचा लिया। मौत के मुंह से कैसा निकाला था उन्होंने बकरी को, झुग्गियों में महीनों बाद गोश्त पकने वाला था। जगह-जगह लोग नालियां बना रहे थे जिनका उद्देश्य अपनी गंदगी को पड़ौसी की गंदगी से अलग रखना था।

एक साहब आटे की भीगी बोरी में बगल तक हाथ डाल-डाल कर देख रहे थे कि अंदर कुछ बचा भी है या सारा ही पेड़े बनाने योग्य हो गया। सबसे जियादा आश्चर्य उन्हें उस समय हुआ जब वो उस झुग्गी के सामने से गुजरे, जिसमें लड़कियां शादी के गीत गा रही थीं। बाहर लगी हुई कागज की रंग-बिरंगी झंडियां तो अब दिखाई नहीं दे रही थीं लेकिन उनके कच्चे रंगों के लहरिये टाट की दीवार पर बन गये थे। एक लड़की आटा गूंधने के तस्ले पर संगत कर रही थी कि बारिश से उसकी ढोलक का गला बैठ गया था।

अम्मा! मेरे बाबा को भेजो री के सावन आया!

अम्मा! मेरे भैया को भेजो री के सावन आया!

हर बोल के बाद लड़कियां अकारण बेतहाशा हंसतीं, गाते हुए हंसतीं और हंसते हुए गातीं तो राग अपनी सुर सीमा पार करके जवानी की दीवानी लय में लय मिलाता कहीं और निकल जाता। सच पूछिये तो कुंवारपने की किलकारती, घुंघराली हंसी ही गीत का सबसे अलबेला हरियाला अंग था।

एक झुग्गी के सामने मियां-बीबी लिहाफ को रस्सी की तरह बल दे कर निचोड़ रहे थे। बीबी का भीगा हुआ घूंघट हाथी की सूंड़ की तरह लटक रहा था। बीस हजार की इस बस्ती में दो दिन से बारिश के कारण चूल्हे नहीं जले थे। निचले इलाके की कुछ झुग्गियों में घुटनों-घुटनों पानी खड़ा था। बिशारत आगे बढ़े तो देखा कि कोई झुग्गी ऐसी नहीं जहां से बच्चों के रोने की आवाज न आ रही हो। पहली बार उन पर खुला कि बच्चे रोने का आरंभ ही अंतरे से करते हैं। झुग्गियों में आधे बच्चे तो इस लिए पिट रहे थे कि रो रहे थे और बाकी आधे इसलिए रो रहे थे कि पिट रहे थे।

वो सोचने लगे, तुम तो एक व्यक्ति को धीरज बंधाने चले थे। यह किस दुख सागर में आ निकले। तरह-तरह के खयालों ने घेर लिया। बड़े मियां को तो कफन भी भीगा हुआ नसीब हुआ होगा। यह कैसी बस्ती है। जहां बच्चे न घर में खेल सकते हैं, न बाहर। जहां बेटियां दो गज जमीन पर एक ही जगह बैठे-बैठे पेड़ों की तरह बड़ी हो जाती हैं जब ये दुल्हन ब्याह के परदेस जायेगी तो इसके मन में बचपन और मायके की क्या तस्वीर होगी? फिर खयाल आया, कैसा परदेस, कहां का परदेस। यह तो बस लाल कपड़े पहन कर यहीं कहीं एक झुग्गी से दूसरी झुग्गी में पैदल चली जायेगी। यही सखियां सहेलियां 'काहे को ब्याही बिदेसी रे! लिखी बाबुल मोरे!' गाती हुई इसे दो गज पराई जमीन के टुकड़े तक छोड़ आयेंगी। फिर एक दिन मेंह बरसते में जब ऐसा ही समां होगा, वहां से अंतिम दो गज जमीन की ओर डोली उठेगी और धरती का बोझ धरती की छाती में समा जायेगा। मगर सुनो! तुम काहे को यूं जी भारी करते हो? पेड़ों को कीचड़ गारे से घिन थोड़ा ही आती है। कभी फूल को भी खाद की बदबू आई है?

उन्होंने एक फुरेरी ली और उनके होठों के दायें कोने पर एक कड़वी-सी, तिरछी-सी मुस्कराहट का भंवर पड़ गया। जो रोने की ताकत नहीं रखते वो इसकी तरह मुस्करा देते हैं।

उन्होंने पहले इस अघोरी बस्ती को देखा था तो कैसी उबकाई आई थी। अब डर लग रहा था। भीगी-भीगी चांदनी में यह एक भुतहा नगर प्रतीत हो रहा था। जहां तक नजर जाती थी ऊंचे-नीचे बांस ही बांस और टपकती चटाइयों की गुफायें; बस्ती नहीं बस्ती का पिंजर लगता था, जिसे परमाणु धमाके के बाद बच पाने वाले ने खड़ा किया हो। हर गढ़े में चांद निकला हुआ था और भयानक दलदलों पर भुतहा किरणें अपना छलावा नाच नाच रही थीं। झींगुर हर जगह बोलते सुनायी दे रहे थे और किसी जगह नजर नहीं आ रहे थे। भुनगों और पतंगों के डर से लोगों ने लालटेनें गुल कर दी थीं। ठीक बिशारत के सर के ऊपर से चांद को काटती हुई एक टिटहरी बोलती हुई गुजरी और उन्हें ऐसा लगा जैसे उसके परों की हवा से उनके सर के बाल उड़े हों। नहीं! यह सब कुछ एक भयानक सपना है। जैसे ही वो मोड़ से निकले, अगरबत्तियों और लोबान की एक उदास-सी लपट आई और आंखें एकाएकी चकाचौंध हो गयीं। या खुदा! होश में हूं या सपना है?

क्या देखते हैं कि मौलाना करामत हुसैन की झुग्गी के दरवाजे पर एक पेट्रोमेक्स जल रही है। चार-पांच पुर्सा देने वाले खड़े हैं और बाहर ईंटों के एक चबूतरे पर उनका सफेद बुर्राक घोड़ा बलबन खड़ा है। मौलाना का पोलियो-ग्रस्त बेटा उसको पड़ोसी के घर से आये हुए मौत के खाने की नान खिला रहा था।

>>पीछे>> >>आगे>>

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

उपन्यास

खोया पानी

मुश्ताक़ अहमद यूसुफ़ी

अनुवाद - तुफ़ैल चतुर्वेदी

अनुक्रम

पीछे

आगे

खंडहर में दीवाली

न्यूनाधिक 45 बरस का साथ था। आधी सदी ही कहिये। बीबी की मौत के बाद बिशारत बहुत दिन खोये-खोये से गुम-सुम रहे। जैसे उन्होंने कुछ खोया न हो खुद खो गये हों। जवान बेटों ने मय्यत कब्र में उतारी, उस समय भी सब्र, धीरज की तस्वीर बने ताजा खुदी मिट्टी के ढेर पर चुपचाप खड़े देखते रहे। अभी उनके बटुए में स्वर्गीया के हाथ की रखी हुई इलाइचियां बाकी थीं और डीप फ्रीज में उसके हाथ के पकाये हुए खानों की तहें लगी थीं।

क्रोशिये की जो टोपी वो उस वक्त पहने हुए थे वो इस स्वर्गीया बीवी ने चांदरात को दो बजे पूरी की थी ताकि वो सुब्ह इसे पहन कर ईद की नमाज पढ़ सकें। सब मुट्ठी भर-भरकर मिट्टी डाल चुके और कब्र गुलाब के फूलों से ढक गयी तो उन्होंने स्वर्गीया के हाथ के लगाये हुए मोतिया की चंद कलियां जिनके खिलने में अभी एक पहर बाकी था, कुर्ते की जेब से निकाल कर अंगारा फूलों पर बिखेर दीं, फिर खाली-खाली नजरों से अपना मिट्टी में सना हुआ हाथ देखने लगे।

अचानक ऐसी दुर्घटना हो जाये तो कुछ अर्से तक तो विश्वास ही नहीं होता कि जिंदगी भर का साथ यूं अचानक आनन-फानन बिछड़ सकता है। नहीं, अगर वो सब कुछ सपना था तो ये भी सपना ही होगा। ऐसा लगता था जैसे वो अभी यहीं किसी दरवाजे से मुस्कुराती हुई आ निकलेंगी। रात के सन्नाटे में कभी-कभी तो कदमों की परिचित आहट और चूड़ियों की खनक तक साफ सुनायी देती और वो चौंक पड़ते कि कहीं आंख तो नहीं झपक गयी। किसी ने उनकी आंखें भीगी नहीं देखीं। अपने-बेगाने सभी ने उनके सब्र और धीरज की दाद दी फिर अचानक एक दरार डालने वाला क्षण आया और एकदम यकीन आ गया फिर सारे भरोसे, सारे आंसुओं के बांध और तमाम धीरज की दीवारें एक साथ ढह गयीं और वो बच्चों की तरह फूट-फूट कर रोये।

लेकिन हर दुःख बीतने वाला है हर सुख समाप्त होने वाला। जैसे और दिन गुजर जाते हैं ये दिन भी गुजर गये। लारोश फोको के अनुसार प्रकृति ने कुछ ऐसी जुगत रखी है कि इंसान मौत और सूरज को जियादा देर तक टकटकी बांध कर नहीं देख सकता। धीरे-धीरे सदमे की जगह दुःख और दुःख की जगह उदास तन्हाई ने ले ली।

मैं जब मियामी से कराची पहुंचा तो वो इसी दौर से गुजर रहे थे, बेहद उदास, बेहद अकेले। जाहिर में वो इतने अकेले नहीं थे जितना महसूस करते थे मगर आदमी उतना ही अकेला होता है जितना महसूस करता है। तन्हाई आदमी को सोचने पर विवश कर देती है। वो जिधर नजर उठाता है आईने को सामने पाता है इसलिए वो तन्हाई यानी अपने साथ से ही बचता है और डरता है। अकेले आदमी की सोच उसकी अंगुली पकड़कर खेंचती हुई, हर छोड़े राजपथ, एक-एक पगडंडी, गली-कूचे और चौराहे पर ले जाती है। जहां-जहां रास्ते बदले थे वहां खड़े होकर इंसान पर ये बात प्रकट होती है कि वस्तुतः रास्ते नहीं बदलते इंसान बदल जाता है। सड़क कहीं नहीं जाती वो तो वहीं की वहीं रहती है मुसाफिर खुद कहां से कहां पहुंच जाता है। राह कभी गुम नहीं होती राह चलने वाले गुम हो जाते हैं।

बुढ़ापे में पुरानी कहावत के अनुसार सौ बुराइयां हो न हों, एक बुराई ऐसी है जो सौ बुराइयों पर भारी है और वो है नास्टेलजिया। बुढ़ापे में आदमी आगे अपनी अप्राप्य और अनुपलब्ध मंजिल की तरफ बढ़ने के बजाय उल्टे पैरों उस तरफ जाता है जहां से यात्रा शुरू की थी। बुढ़ापे में अतीत अपनी तमाम रौशनियों के साथ जाग उठता है। बूढ़ा और अकेला आदमी एक ऐसे खंडहर में रहता है जहां भरी दोपहर में दीवाली होती है और जब रोशनियां बुझा कर सोने का वक्त आता है तो यादों के फानूस जगमग-जगमग रौशन होते चले जाते हैं। जैसे-जैसे उनकी रौशनी तेज होती जाती है खंडहर की दरारें, जाले और टूटी-फूटी ढही दीवारें उतनी जियादा रौशन होती जाती हैं। सो उनके साथ भी यही कुछ हुआ।

खोये अतीत की तलाश

कराची में अल्लाह ने उन्हें इतना दिया था कि सपने में भी अपने छूटे बल्कि छोड़े हुए वतन कानपुर जाने की इच्छा नहीं हुई मगर इस दुर्घटना के बाद अचानक एक हूक सी उठी और उन्हें कानपुर की याद बेतहाशा सताने लगी। इससे पहले अतीत ने उनके अस्तित्व पर यूं पंजे गाड़ कर कब्जा नहीं जमाया था। वर्तमान से मुंह फेरे प्रत्यक्ष और प्रकट से आंखें मूंदे भविष्य से निराश अब वो सिर्फ अतीत में जी रहे थे। वर्तमान में कोई विशेष बुराई नहीं थी सिवाय इसके कि बूढ़े आदमी के वर्तमान की सबसे बड़ी बुराई उसका अतीत होता है जो भुलाये नहीं भूलता।

हर घटना बल्कि सारी जिंदगी की फिल्म उलटी चलने लगी। जटाधारी बरगद क्रोध में आकर फुनंग के बल अपनी भुजंग-जटायें और पाताल-जड़ें आसमान की तरफ करके शीर्षासन में उल्टा खड़ा हो गया। 35 बरस बाद उन्होंने अपनी खोयी जन्नत कानपुर जाने का फैसला किया। वो गलियां, बाजार, मुहल्ले, आंगन, चारपायी, अधूरे छिड़काव से रात गये तक जवान बदन की तरह सुलगती छतें, वो दीवानी ख्वाहिशें जो रात को ख्वाब बन कर आतीं और ख्वाब जो दिन में सचमुच ख्वाहिश बन जाते... एक-एक करके बेतहाशा याद आने लगे। हद ये कि वो स्कूल भी जन्नत का टुकड़ा मालूम होने लगा जिससे भागने में इतना मजा आता था। सब मजों, सब यादों ने एकाएक हमला कर दिया। दोस्तों से चरचराती चारपाइयां और हरी-हरी निबोलियों से लदे-फंदे नीम की छांव, आमों की बौर, महुए की महक से बोझल पुरवा, इमली पर गदराये हुए कतारे और उन्हें ललचायी नजरों से देखते हुए लड़के, हिरनों से भरे जंगल, छर्रे से जख्मी होकर दो-तीन सौ फिट की ऊंचाई से गद से गिरती हुई मुर्गाबी, खस की टट्टियां, सिंघाड़ों से पटे तालाब, गले से फिसलता मखमल फलूदा, मौलश्री के गजरे, गर्मियों की दोपहर में जामुन के घने पत्तों में छुपे हुए गिरगिट की लपलपाती महीन जबान, अपने चौकन्ने कानों को हवा की दिशा के

साथ ट्यून किये टीले पर अकेला खड़ा हुआ बारहसिंघा, उमड़-घुमड़ जवानी और पहले प्यार की घटाटोप उदासी, ताजा कलफ लगे हुए दुपट्टे की करारी महक, धूम मचाते दोस्त... अतीत के पहाड़ों से ऐसे बुलावे, ऐसी आवाजें आने लगीं कि -

इक जगह तो घूम के रह गयी

एड़ी सीधे पांव की

वो बच्चे नहीं रहे थे। हमारा मतलब है कि सत्तर के आसपास थे। लेकिन उन्हें एक पल के लिए भी ये ध्यान नहीं आया कि तमाम रंगीन और रोमांटिक चीजें... जिन्हें याद करके वो सौ-सौ decibel की आहें भरने लगे थे, पाकिस्तान में न केवल उपलब्ध थीं बल्कि बेहतर क्वालिटी की थीं। हां! सिर्फ एक चीज पाकिस्तान में न थी और वो थी उनकी जवानी, जो तलाश करने के बाद कानपुर में भी न मिली।

ये बच्चे कितने बूढ़े हैं, ये बूढ़े कितने बच्चे हैं

उन्होंने अपने नार्थ नाजिमाबाद वाले घर के सामने मौलश्री का पेड़ लगाने को तो लगा लिया, लेकिन यादों की मौलश्री की भीनी-भीनी महक, फबन और छब-छांव कुछ और ही थी। अब वो पहली सी किस्म के फूल कहां कि हर फूल से अपनी ही खुश्बू आये। उन पर भी वो मुकाम आया जो बुढ़ापे के पहले हमले के बाद हर शख्स पर आता है, जब अचानक उसका जी बचपन की दुनिया की एक झलक... आखिरी झलक... देखने के लिए बेकरार हो जाता है, लेकिन उसे ये मालूम नहीं होता कि बचपन और बुढ़ापे के बीच कोई दैवीय हाथ चुपके-से सौगुनी ताकत का Magnifier (बड़ा दिखाने वाला शीशा) रख देता है। बुद्धिमान लोग कभी इस शीशे को हटाकर देखने की कोशिश नहीं करते। इसके हटते ही हर चीज खुद अपना Miniature मालूम होने लगती है। कल के राक्षस बिल्कुल बालिश्तिये नजर आने लगते हैं, अगर आदमी अपने बचपन के Locale से लंबे समय तक दूर रहा है तो उसे एक नजर आखिरी बार देखने के लिए हरगिज नहीं जाना चाहिये लेकिन वो जाता है। वो दृश्य उसे एक अदृश्य चुंबक की तरह खींचता है और वो खिंचा चला जाता है। उसे क्या मालूम कि बचपन के सारे इंद्रजाल, अगर प्रौढ़ locale पड़ जाये तो टूट जाते हैं। रूपनगर की सारी परियां उड़ जाती हैं और शीश महल पर कालिख पुत जाती है; और इस जगह तो अब सुगंधों की जगह धुआं ही धुआं है। यहां जो कामदेव का दहकता इंद्रधनुष हुआ करता था वो क्या हुआ?

ये धुआं जो है ये कहां का है

वो जो आग थी वो कहां की थी

आदमी को किसी तरह अपनी आंखों पर यकीन नहीं आता वो सौंदर्य क्या हुआ? वो चहकती बोलती महक कहां गयी? नहीं, ये तो वो चित्रकारों की बनाई गलियां और बाजार नहीं जहां हर चीज अचंभा लगती थी। ये हर चीज, हर चेहरे को क्या हो गया? Was this face that launched a thousand ships and burnt the topless towers of Ilium! जिस घड़ी ये इंद्रजाल टूटता है, अतीत के तमन्नाई का स्वप्न महल ढह जाता है, फिर उस शख्स की गिनती न बच्चों में होती है न बूढ़ों में। जब ये पड़ाव आता है तो आंखें अचानक कलर ब्लाइंड हो जाती हैं। फिर

इंसान को सामने नाचते मोर के सिर्फ पैर दिखाई देते हैं और वो उन्हें देख-देख कर रोता है। हर तरफ बेरंगी और बेदिली का राज होता है।

बेहलावत उसकी दुनिया और मुजबजब उसका दीं

जिस शहर में भी रहना, उकताये हुए रहना

सो इस बच्चे बूढ़े ने कानपुर जा कर बहुत आंसू बहाये। 35 बरस तक तो इस पर रोया किये कि हाय ऐसी जन्नत छोड़ कर कराची क्यों आ गये, अब इस पर रोये कि लाहौल विला कूव्वत! इससे पहले ही छोड़कर क्यों न आ गये। ख्वामख्वाह प्यारी जिंदगी का एक तिहाई हिस्सा गलत बात पर रोने में गंवा दिया। रोना ही जुरूरी था तो इसके लिए 365 मुनासिब कारण मौजूद थे, इसलिए कि साल में इतनी ही मायूसियां होती हैं। अपनी ड्रीमलैंड का चप्पा-चप्पा जन मारा लेकिन

वो लहर न दिल में फिर जागी

वो रंग न लौट के फिर आया

35 साल बाद पुराना नास्टेल्जिया अचानक टूटा तो हर जगह उजाड़, हर चीज खंडहर नजर आई। हद ये जिस मगरमच्छ भरे दरिया में जिसका ओर न छोर, वो आसमान चूमने वाले बरगद की फुंगी से बिना डरे छलांग लगा दिया करते थे, अब उसे जाकर पास से देखा तो वो एक मेंढक भरा बरसाती नाला निकला। अब वो विराट बरगद तो निरा बोंजाई पेड़ लग रहा था।

कबूतर खाने की नक्ल

यूनानी कोरस (Greek Chorus) बहुत दर्शन बघार चुका। अब इस कहानी को खुद इसके हीरो बिशारत की जुबानी सुनिये कि इसका मजा ही कुछ और है

ये अफसाना अगरचे सरसरी है

वले उस वक्त की लज्जत भरी है

साहब मैं तो अपना मकान देख कर भौंचक्का रह गया कि हम इसमें रहते थे और इससे जियादा हैरानी इस पर कि बहुत खुश रहते थे। मिडिल क्लास गरीबी की सबसे दयनीय और असह्य किस्म वो है, जिसमें आदमी के पास कुछ न हो लेकिन उसे किसी चीज की कमी महसूस न हो। ईश्वर की कृपा से हम तले-ऊपर के नौ भाई थे और चार बहनें, और तले-ऊपर तो मैंने मुहावरे की मजबूरी के कारण कह दिया वरना खेल-कूद, खाने और लेटने-बैठने के वक्त ऊपर-तले कहना जियादा सही होगा। सबके नाम त पर खत्म होते थे। इतरत, इशरत, राहत, फरहत, इस्मत, इफ्फत वगैरा। मकान खुद वालिद ने मुझसे बड़े भाई की स्लेट पर डिजाइन किया था। सवा सौ कबूतर भी पाल रखे थे, हर एक की नस्ल और जात अलग-अलग। किसी कबूतर को दूसरी जात की कबूतरी से मिलने नहीं देते थे। लकड़ी की दुकान थी। हर कबूतर की काबक उसकी लंबाई बल्कि दुम की लंबाई-चौड़ाई और बुरी आदतों

को ध्यान में रखते हुए खुद बनाते थे। साहब अब जो जाके देखा तो मकान के आर्किटेक्चर में उनके फालतू शौक का प्रभाव और दबाव नजर आया बल्कि यूं कहना चाहिये कि सारा मकान दरअस्ल उनके कबूतरखाने की भौंडी सी नक्ल था। वालिद बहुत प्रैक्टिकल और दूर की सोचने वाले थे। इस भय से कि उनकी आंख बंद होते ही औलाद घर के बंटवारे के लिए झगड़ा करेगी, वो हर बेटे के पैदा होते ही अलग कमरा बनवा देते थे। कमरों के बनाने में खराबी की एक जियादा सूरत छिपी हुई थी, यानी बड़े-छोटे का लिहाज-पास था कि हर छोटे भाई का कमरा अपने बड़े भाई के कमरे से लंबाई-चौड़ाई दोनों में एक-एक गज छोटा हो। मुझ तक पहुंचते-पहुंचते कमरे की लंबाई-चौड़ाई तकरीबन पंजों के बल बैठ गयी थी। मकान पूरा होने में पूरे सात साल लगे। इस अरसे में तीन भाई और पैदा हो गये। आठवें भाई के कमरे की दीवारें उठायीं तो कोई नहीं कह सकता था कि कदमचों की नींव रखी जा रही है या कमरे की। हर नवजात के आने पर स्लेट पर पिछले नक्शे में जुरूरी परिवर्तन और एक कमरे में बढ़ोतरी करते। धीरे-धीरे सारा आंगन खत्म हो गया। वहां हमें विरसे में मिलने वाली कोठरियां बन गयीं।

साहब! कहां कराची की कोठी, उसके एयरकंडीशंड कमरे, कालीन, खूबसूरत पेंट और कहां ये ढंढार कि खांस भी दो तो प्लास्टर झड़ने लगे। चालीस बरस से रंग सफेदी नहीं हुई। फुफेरे भाई के मकान में एक जगह तिरपाल की छत बंधी देखी। कराची और लाहौर में तो कोई छतगीरी और नमगीरी के अर्थ भी नहीं बता पायेगा।

छतगीरी पर तीन जगह नेल पालिश से X का निशान बना है मतलब ये कि इसके नीचे न बैठो। यहां से छत टपकती है। कानपुर और लखनऊ में जिस दोस्त और रिश्तेदार के यहां गया, उसे परेशान हाल पाया। पहले जो सफेदपोश थे, वो अब भी हैं मगर सफेदी में पैवंद लग गये हैं। अपने स्वाभिमान पर कुछ जियादा ही घमंड करने लगे हैं। एक छोटी-सी महफिल में मैंने इस पर उचटता सा जुमला कस दिया तो एक जूनियर लैक्चरर जो किसी स्थानीय कॉलेज में इकोनोमिक्स पढ़ाते हैं, बिगड़ गये। कहने लगे 'आपकी अमीरी अमेरिका और अरब देशों की देन है। हमारी गरीबी हमारी अपनी गरीबी है। (इस पर उपस्थित लोगों में से एक साहब ने गा कर अल्हम्दुलिल्लाह कहा) कर्जदारी का सुख आप ही को मुबारक हो। अरब अगर थर्ड वर्ल्ड को भिखारी कहते हैं तो गलत नहीं कहते।' मैं मेहमान था उनसे क्या उलझता। देर तक जौ की रोटी, कथरी, चटायी, सब्र, गरीबी और स्वाभिमान की आरती उतारते रहे और इसी तरह के शेर सुनाते रहे। लिहाज में मैंने भी दाद दी।

कोई चीज ऐसी नहीं जो हिंदुस्तान में नहीं बनती हो। एक कानपुर ही क्या सारा देश कारखानों से पटा पड़ा है। कपड़े की मिलें, फौलाद के कारखाने, कार और हवाई जहाज की फैक्ट्रियां। टैंक भी बनने लगे। एटम बम तो बहुत दिन हुए फोड़ लिया। सैटेलाइट भी अंतरिक्ष में छोड़ लिया। अजब नहीं कि चांद पर भी पहुंच जायें। एक तरफ तो ये है, दूसरी तरफ ये नक्शा भी देखा कि एक दिन मुझे इनआमुल्ला बरमलाई के यहां जाना था। एक पैडल-रिक्शा पकड़ी। रिक्शा वाला टी.बी. का मरीज लग रहा था। बनियान में से भी पसलियां नजर आ रहीं थीं। मुंह से बनारसी किवाम वाले पान के भबके निकल रहे थे। उसने उंगली का आंकड़ा-सा बना कर माथे पर फेरा तो पसीने की तलल्ली बंध गयी। पसीने ने मुंह और हाथों पर लसलसी चमक पैदा कर दी थी जो धूप में ऐसी लगती थी जैसे वैसलीन लगा रखा हो। नंगे पैर, सूखी कलाई पर कलाई से जियादा चौड़ी घड़ी, हैंडिल पर परवीन बॉबी का एक सैक्सी फोटो। पैडिल मारने में दोहरा हो हो जाता और पीसने में तर माथा बार-बार बॉबी पर सिजदे करने लगता। मुझे एक मील ढो कर ले गया मगर अंदाजा लगाइये कितना किराया मांगा होगा? जनाब! कुल पिचहत्तर पैसे, खुदा की कसम! पिचहत्तर पैसे। मैंने उनके अलावा चार रुपये पच्चीस पैसे का टिप दिया तो पहले तो उसे यकीन नहीं आया फिर बांछें खिल गयीं। कद्दू के बीज जैसे पान में लिथड़े दांत निकले के निकले रह गये। मेरे बटुए को

ललचाई नजरों से देखते हुए पूछने लगा, बाऊजी आप कहां से आये हैं? मैंने कहा - पाकिस्तान से। मगर 35 बरस पहले यहीं हीरामन के पुरवे में रहता था। उसने पांच का नोट अंटी से निकाल कर लौटाते हुए कहा `बाबूजी मैं आपसे पैसे कैसे ले सकता हूं? आपसे तो मुहल्लेदारी निकली। मेरी खोली भी वहीं है।`

गरीब गुर्राने लगे

और आबादी, खुदा की पनाह। बारामासी मेले का-सा हाल है। जमीन से उबले पड़ते हैं। बाजार में आप दो कदम नहीं चल सकते। जब तक कि दायें-बायें हाथ और कुहनियां न चलायें। सूखे में खड़ी तैराकी कहिये। जहां कोहनी मारने की भी गुंजाइश न हो वहां धक्के से पहुंच जाते हैं। लाखों आदमी फुटपाथ पर सोते हैं और वहीं अपनी जीवन की सारी यात्रा पूरी कर लेते हैं, मगर फुटपाथ पर सोने वाला किसी से दबता है-न डरता है, न सरकार को बुरा कहने से पहले मुड़ कर दायें-बायें देखता है। हमारे जमाने के गरीब वास्तव में दयनीय होते थे। अब गरीब गुर्राते बहुत हैं। रिक्शे को तो फिर भी रास्ता दे देंगे मगर कार के सामने से जरा जो हट जायें।

अजीजुद्दीन वकील कह रहे थे कि हमारे यहां राजनैतिक जागरूकता बहुत बढ़ गयी है। खुदा जाने, मैंने तो यह देखा कि जितनी गरीबी बढ़ती है उतनी ही हेकड़ी भी बढ़ती जाती है। ब्लैक का पैसा वहां भी बहुत है, मगर किसी की मजाल नहीं कि बिल्डिंग में नुमाइश करे। शादियों में खाते-पीते घरानों तक की औरतों को सूती साड़ी और चप्पलें पहने देखा। मांग में अगर सिंदूर न हो तो विधवा-सी लगें। चेहरे पर बिल्कुल मेक-अप नहीं। जबकि अपने यहां ये हाल कि हम मुर्गी की टांग को भी हाथ नहीं लगाते जब तक उस पर रूज न लगा हो। साहब आपने तारिक रोड के लाल-भबूका चिकन सिकते देखे होंगे? कानपुर में मैंने अच्छे-अच्छे घरों में दरियां और बेंत के सोफा-सेट देखे हैं और कुछ तो वही हैं जिन पर हम 35 साल पहले ऐंडा करते थे। साहब रहन-सहन के मामले में हिंदुओं में इस्लामी सादगी पायी जाती है।

जो होनी थी सो बात हो ली, कहारो!

कहने को तो आज भी उर्दू बोलने वाले उर्दू ही बोलते हैं, मगर मैंने एक अजीब परिवर्तन महसूस किया। आम आदमी का जिक्र नहीं, उर्दू के प्रोफेसरों और लिखने वालों तक का वो ढंग नहीं रहा जो हम-आप छोड़ कर आये थे। करारापन, खड़ापन, वो कड़ी कमान वाला खटका चला गया। देखते-देखते ढुलक कर हिंदी के पंडताई लहजे के करीब आ गया है `Sing-Song` लहजा You know what I mean. विश्वास न हो तो ऑल इंडिया रेडियो की उर्दू खबरों के लहजे की, कराची रेडियो या मेरे लहजे से तुलना कर लीजिये। मैंने पाइंट आउट किया। इनामुल्ला बरमलाई सचमुच नाराज हो गये। अरे साहब! वो तो आक्षेपों पर उतर आये। कहने लगे `और तुम्हारी जुबान और लहजे पर जो पंजाबी छाप है तुम्हें नजर नहीं आती, हमें आती है। तुम्हें याद होगा 2 अगस्त 1947 को जब मैं तुम्हें ट्रेन पर सी-ऑफ करने गया तो तुम काली रामपुरी टोपी, सफेद चूड़ीदार पाजामा और जोधपुरी जूते पहने हाथ का चुल्लू बना-बना कर आदाब-तस्लीमात कर रहे थे, कहो हां! कल्ले में पान, आंखों में ममीरे का सुरमा, मलमल के चुने हुए कुर्ते में इत्रे-गिल! कहो, हां! तुम यहां से चाय को चांय, घास को घांस और चावल को चांवल कहते हुए गये! कहो हां! और जिस वक्त गार्ड ने सीटी बजायी तुम चमेली का गजरा गले में डाले थर्मस से गरम चाय प्लेट में डाल

कर, फूंकें मार-मार कर सुटर-सुटर पी रहे थे। उस वक्त भी तुम कराची को किरांची कह रहे थे। कह दो कि नहीं। और अब तीन Decades of decadence के बाद सर पर सफेद बालों का टोकरा रखे, टखने तक हाजियों जैसा झाबड़ा-झिल्ला कुर्ता पहने, टांगों पर घेरदार शलवार फड़काते, कराची के कंक्रीट जंगल से यहां तीर्थ यात्रा को आये हो तो हम तुम्हें पंडित-पांडे दिखाई देने लगे। भूल गये? तुम यहां `अमां! और ऐ हजरत` कहते हुए गये थे और अब सांईं-सांईं कहते लौटे हो।` साहब मैं मेहमान था। बकौल आपके, अपनी बेइज्जती खराब करवा के चुपके से उठकर रिक्शा में घर आ गया।

जो होनी थी सो बात हो ली, कहारो

चलो ले चलो मेरी डोली, कहारो

हम चुप रहे , हम हंस दिये

लखनऊ और कानपुर उर्दू के गढ़ थे। अनगिनत उर्दू अखबार और पत्रिकायें निकलती थीं। खैर आप तो मान कर नहीं देते। मगर साहब, हमारी जबान प्रामाणिक थी। अब हाल यह है कि मुझे तो सारे शहर में एक भी उर्दू साइन बोर्ड नजर नहीं आया। लखनऊ में भी नहीं। मैंने ये बात जिससे भी कही वो आह भर के या मुंह फेर के खामोश हो गया। मत मारी गयी थी कि ये बात एक महफिल में दोहरा दी तो एक साहब बिखर गये। शायद जहीर नाम है। म्यूनिस्पिलिटी के मैंबर हैं। वकालत करते हैं। न जाने कब से भरे बैठे थे। कहने लगे `खुदा के लिए हिंदुस्तानी मुसलमानों पर रहम कीजिये। हमें अपने हाल पर छोड़ दीजिये। पाकिस्तान से जो भी आता है, हवाई जहाज से उतरते ही अपना फॉरेन एक्सचेंज उछालता, यही रोना रोता हुआ आता है। जिसे देखो, आंखों में आंसू भरे शहर का मर्सिया पढ़ता चला आ रहा है। अरे साहब! हम आधी सदी से पहले का कानपुर कहां से ला कर दें। बस जो कोई भी आता है, पहले तो हर मौजूदा चीज की तुलना पचास बरस के पहले के हिंदुस्तान से करता है। जब ये कर चुकता है तो आज के हिंदुस्तान की तुलना आज के पाकिस्तान से करता है। दोनों मुकाबलों में चाबुक दूसरे घोड़े के मारता है, जितवाता है अपने ही घोड़े को।` वो बोलते रहे। मैं मेहमान था क्या कहता, वरना वही सिंधी कहावत होती कि गयी थी सींगों के लिए, कान भी कटवा आई।

लेकिन एक सच्चाई को स्वीकार न करना बेईमानी होगी। हिंदुस्तान का मुसलमान कितना ही परेशान, बेरोजगार क्यों न हो, वो मिलनसार, मुहब्बत-भरा, स्वाभिमानी और आत्मविश्वासी है। नुशूर भाई से लंबी-लंबी मुलाकातें रहीं। साक्षात् मुहब्बत, साक्षात् प्यार, साक्षात् रोग। उनके यहां लेखकों और शायरों का जमाव रहता है। पढ़े-लिखे लोग भी आते हैं। पढ़े-लिखे हैं मगर बुद्धिमान नहीं। सब एक सुर में कहते हैं कि उर्दू बड़ी सख्त जान है। पढ़े-लिखे लोगों को उर्दू का भविष्य अंधकारपूर्ण दिखाई देता है। बड़े-बड़े मुशायरे होते हैं। सुना है कि एक मुशायरे में तो तीस हजार से जियादा श्रोता थे। साहब! मैं आपकी राय से सहमत नहीं कि जो शेर एक साथ पांच हजार आदमियों की समझ में आ जाये वो शेर नहीं हो सकता, कोई और चीज है।

अनगिनत सालाना कांफ्रैंस होती हैं। सुना है कई उर्दू लेखकों को पद्मश्री और पद्मभूषण के एवार्ड मिल चुके हैं। मैंने कइयों से पद्म और भूषण के अर्थ पूछे तो जवाब में उन्होंने वो रकम बतायी जो एवार्ड के साथ मिलती है। आज भी फिल्मी गीतों, द्विअर्थी डॉयलॉग, कव्वाली और आपस की मारपीट की जबान उर्दू है। संस्कृत शब्दों पर बहुत जोर

है मगर आप आम आदमी को संस्कृत में गाली नहीं दे सकते। इसके लिए संबोधित का पंडित और विद्वान होना जुरूरी है। साहब! गाली, गिनती और गंदा लतीफा तो अपनी मादरीजबान में ही मजा देता है। तो मैं कह रहा था कि उर्दू वाले काफी उम्मीद से भरे हैं। कठिन हिंदी शब्द बोलते समय इंदिरा गांधी की जुबान लड़खड़ाती है तो उर्दू वालों को कुछ आस बंधती है।

कौन ठहरे समय के धारे पर

नुशूर वाहिदी उसी तरह तपाक और मुहब्बत से मिले। तीन-चार घंटे गप के बाद जब भी मैंने ये कह कर उठना चाहा कि अब चलना चाहिये तो हाथ पकड़ कर बिठा लिया। मेरा जी भी यही चाहता था कि इसी तरह रोकते रहें। याददाश्त खराब हो गयी है। एक ही बैठक में तीन-चार बार आपके बारे में पूछा `कैसे हैं? सुना है हास्य व्यंग्य लेख लिखने लगे हैं। भई हद हो गयी।` रोगी तो आप जानते हैं सदा के थे। वज्न 75 पौंड रह गया है। उम्र भी इतनी ही होगी। चेहरे पर नाक ही नाक नजर आती है। नाक पर याद आया, कानपुर में चुनिया केले, इसी साइज के अब भी मिलते हैं। मैंने खास तौर पर फरमाइश करके मंगवाये। मायूसी हुई। अपने सिंध के चित्तीदार केलों के आसपास भी नहीं। एक दिन मेरे मुंह से निकल गया कि सरगोधे का मालटा, नागपुर के संतरे से बेहतर होता है, नुशूर तड़प कर बोले `ये कैसे मुमकिन है?` वैसे नुशूर माशाअल्लाह चाक-चौबंद हैं। सूरत बहुत बेहतर हो गयी है। इसलिए कि आगे को निकले हुए लहसुन की पोथी जैसे ऊबड़-खाबड़ दांत सब गिर चुके हैं।

आपको तो याद होगा, सुरैया एक्ट्रेस क्या कयामत का गाती थी? मगर लंबे दांत सारा मजा किरकिरा कर देते थे। सुना है कि हमारे पाकिस्तान आने के बाद सामने के निकलवा दिये थे। एक फिल्मी मैगजीन में उसका ताजा फोटो देखा तो खुद पर बहुत गुस्सा आया कि क्यों देखा? फिर उसी डर के मारे उसके रिकार्ड नहीं सुने। एजाज हुसैन कादरी के पास उस जमाने के सारे रिकार्ड मय भोंपू वाले ग्रामोफोन के अभी तक सुरक्षित हैं। साहब! विश्वास नहीं हुआ कि यह हमारे लिए साइंस, गायकी और ऐश की इंतहा थी। उन्होंने उस जमाने के सुर-संगीत सम्राट सहगल के दो-तीन गाने सुनाये। साहब! मुझे तो बड़ा शॉक लगा कि माननीय के नाक से गाये हुए गानों से मुझ पर ऐसा रोमांटिक मूड कैसे तारी हो जाता था।

मोती बेगम का मुंह झुरिया कर बिल्कुल किशमिश हो गया है। नुशूर कहने लगे, मियां तुम औरों पर क्या तरस खाते फिरते हो। जरा अपनी सूरत तो 47 के पासपोर्ट फोटो से मिला कर देखो। कोई अखिल भारतीय मुशायरा ऐसा नहीं होता, जिसमें नुशूर न बुलाये जायें। शायद किसी शायर को इतना पारिश्रमिक नहीं मिलता, जितना उन्हें मिलता है। बड़ी इज्जत की नजर से देखे जाते हैं। अब तो माशाअल्लाह घर में फर्नीचर भी है मगर अपनी पुरानी परंपरा पर डटे हुए हैं। तबियत हमेशा की तरह थी, यानी बहुत खराब।

मैं मिलने जाता तो बान की खुर्री चारपायी पर लेटे से उठ बैठते और तमाम वक्त बनियान पहने तकिये पर उकड़ू बैठे रहते। अक्सर देखा कि पीठ पर चारपायी के बानों का नालीदार पैटर्न बना हुआ है। एक दिन मैंने कहा प्लेटफॉर्म पर जब एनाउंस हुआ कि ट्रेन अपने निर्धारित समय से ढाई घंटा विलंब से प्रवेश कर रही है तो खुदा की कसम मेरी समझ में ही नहीं आया कि ट्रेन क्या कर रही है। आ रही है या जा रही है या ढाई घंटे से महज कुलेलें कर रही है। ये सुनना था कि नुशूर बिगड़ गये।

जोश में बार-बार तकिये पर से फिसल पड़ते थे। एक बेचैन पल में जियादा फिसल गये तो बानों की झिरी में पैर के अंगूठे को जड़ तक फंसा के फुट ब्रेक लगाया और एकदम तन कर बैठ गये। कहने लगे `हिंदुस्तान से उर्दू को मिटाना आसान नहीं। पाकिस्तान में पांच बरस में उतने मुशायरे नहीं होते होंगे जितने हिंदुस्तान में पांच महीने में हो जाते हैं। पंद्रह बीस हजार की भीड़ की तो कोई बात ही नहीं। अच्छा शायर आसानी से पांच सात हजार पीट लेता है। रेल का किराया, ठहरने-खाने का इंतजाम और दाद इसके अलावा। जोश ने बड़ी जल्दबाजी की। बेकार चले गये, पछताते हैं।` अब मैं उन्हें क्या बताता कि जोश को 7-8 हजार रुपये महीना... और कार... दो बैंकों और एक इंश्योरेंस कंपनी की तरफ से मिल रहे हैं। शासन की तरफ से मकान अलग से। यूं इसकी शक्ल कृपा की जगह कष्ट की-सी है।

गा कर पढ़ने में अब नुशूर की सांस उखड़ जाती है। ठहर-ठहर कर पढ़ते हैं, मगर आवाज में अब भी वही दर्द और गमक है। बड़ी-बड़ी आंखों में वही चमक। तेवर और लहजे में वही खरज और निडरपन जो सिर्फ उस वक्त आता है जब आदमी पैसे ही नहीं, जिंदगी और दुनिया को भी हेच समझने लगे। दस-बारह ताजा गजलें सुनायीं। क्या कहने। मुंह पर आते-आते रह गया कि डेंचर लगाकर सुनाइये। आपने तो उन्हें बहुत बार सुना है। एक जमाने में `ये बातें राज की हैं किबला-ए-आलम भी पीते हैं` वाली गजल ने सारे हिंदुस्तान में तहलका मचा दिया था, मगर अब `दौलत कभी ईमां ला न सकी, सरमाया मुसलमां हो न सका` वाले शेरों पर दाद के डोंगरे नहीं बरसते। सुनने वालों का मूड बदला हुआ है। श्रोताओं का मौन भी एक प्रकार की बेआवाज हूटिंग है, अगर उस्ताद दाग या नवाब साइल देहलवी भी अपनी वो तोप गजलें पढ़ें जिनसे 70-80 बरस पहले छतें उड़ जाती थीं तो श्रोताओं की अरसिकता से तंग आ कर उठ खड़े हों मगर अब नुशूर का रंग बदल गया। मुशायरे अब भी लूट लेते हैं। हमेशा के मस्त-मलंग हैं। कह रहे थे कि अब कोई तमन्ना, कोई हसरत बाकी नहीं। मैंने तो हमेशा उन्हें बीमार, कमजोर, बुरे हाल और निश्चिंत पाया। उनके स्वाभिमान और रुतबे में कोई फर्क नहीं आया। धनी-मानी लोगों से कभी पिचक कर नहीं मिले। साहब ये नस्ल ही कुछ और थी। वो सांचे ही टूट गये जिनमें ये मस्त और दीवाने चरित्र ढलते थे। भला बताइये, असगर गोंडवी और जिगर मुरादबादी से जियादा दिमाग वाला और स्वाभिमानी कौन होगा? पेशा, चश्मे बेचना। वो भी दुकान या अपने ठिये पर नहीं... जहां पेट का धंधा ले जाये। नुशूर से मेरी दोस्ती तो अभी हाल में चालीस बरस से हुई है वरना इससे पहले दूसरा रिश्ता था। मैंने कसाइयों के मुहल्ले में स्थित मदरसा-उल-इस्लाम में फारसी इन्हीं से पढ़ी थी। और हां! अब इस मुहल्ले के कसाई पोथ की अचकन और लाल पेटेंट लेदर के पंप-शू नहीं पहनते। उस जमाने में कोई शख्स अपनी बिरादरी का लिबास छोड़ नहीं सकता था। उसका हुक्का-पानी बंद कर दिया जाता।

दुबारा रिश्वत देने को जी चाहता है

जाने पहचाने बाजार अब पहचाने नहीं जाते। ऐसे मिलनसार दुकानदार नहीं देखे। बिछे जाते थे। दुकान में पैर रखते ही ठंडी बोतल हाथ में थमा देते थे। मेरा ऐसी जालिम सेल्समैनशिप से वास्ता नहीं पड़ा था। बोतल पी कर दुकान से खाली हाथ निकलना बड़ा खराब मालूम होता था, इसलिए सेल्समैनों की पसंद की चीजें खरीदता चला गया। अपनी जुरूरत और फरमाइश की चीजें खरीदने के पैसे ही नहीं रहे। यकीन नहीं आया जहां इस वक्त धक्कम-पेल, चीखम-दहाड़ मच रही है और बदबुओं के बगोले मंडरा रहे हैं, ये वही चौड़ी साफ-सुथरी `मॉल` बल्कि `दी मॉल` है। साहब! अंग्रेज ने हर शहर में `दी मॉल` जुरूर बनायी। फैशनेबल ऊंची दुकानों वाली माल। धनी लोगों

की धन-राह कहिये, अभी कल की-सी बात मालूम होती है। मॉल के किनारे काफी दूर तक बबूल की छाल बिछी होती थी, ताकि कोतवाले के लौंडे के घोड़े को दुलकी चलने में आसानी रहे। दायें बायें दो साईस नंगे पैर साथ-साथ दौड़ते जाते कि लौंडा गिर न जाये। वो हांफने लगते तो हंसी से दोहरा हो जाता। हमारी उससे दोस्ती हो गयी थी।

एक दफा हम पंद्रह बीस दोस्तों को बहराइच के पास अपने गांव शिकार पे ले गया। हर पांच लोगों के लिए एक अलग खेमा। खेमों के पीछे एक सम्मानित फासले पर नौकरों की छोलदारी। हम खेमों में सोते थे। क्या बताऊं जंगल में कैसे ऐश रहे। एक रात मुजरा भी हुआ। सूरत इतनी अच्छी थी कि खुदा की कसम! गलत सोच पर भी प्यार आने लगा। पेशेवर शिकारी रोज शिकार मार कर ले आते थे, जिसे बावर्ची लकड़ियों और छपटियों की आग पर भूनते। हमारे जिम्मे तो सिर्फ पचाना और ये बताना था कि कल कौन किस जानवर का गोश्त खाना पसंद करेगा। सांभर का गोश्त पहले-पहल वहीं चखा। आखिरी शाम चार भुने हुए पूरे काले हिरन दस्तरख्वान पर सजा दिये गये। हर हिरन के अंदर एक काज और काज में तीतर और तीतर के पेट में मुर्गी का अंडा। हमारी आंखें फटी की फटी रह गयीं। खाते क्या खाक।

कानपुर का वो कोतवाल हद दर्जा लायक, सूझ-बूझ वाला, इंतहाई मिलनसार और उसी दर्जे का बेईमान था। साहब आप रिश्वतखोर, व्यभिचारी और शराबी को हमेशा मिलनसार और मीठे स्वभाव का पायेंगे। इस वास्ते कि वो अक्खड़पन, सख्ती और बदतमीजी एफोर्ड कर ही नहीं सकता। इस लड़के ने कुछ करके नहीं दिया। लिवर के सिरोसिस में मरा। उसका छोटा भाई पाकिस्तान आ गया। लोगों से कह सुन कर मारीपुर के स्कूल में टीचर लगवा दिया। कोई तीन बरस हुए मेरे पास आया था। कहने लगा मैं बी.टी. नहीं हूं। थोड़ी-सी तन्ख्वाह में गुजारा नहीं होता। सऊदाबाद से मारीपुर जाता हूं। दो जगह बस बदलनी पड़ती है। आधी तन्ख्वाह तो बस के किराये में निकल जाती है। अपने यहां मुंशी रख लीजिये। उसकी तीन जवान बेटियां कुवांरी बैठी थीं। एक के कपड़ों में आग लग गयी, वो जल कर मर गयी। लोगों ने तरह-तरह की बातें बनायीं। खुद उसे दो बार हार्ट अटैक हो चुके थे। जिन्हें उसने स्कूल वालों से छिपाया, वरना वो गयी-गुजरी नौकरी भी जाती रहती। कोतवाल सारे शहर का, गुंडों समेत, बादशाह होता था, मतलब यह जिसे चाहे जलील कर दे। साहब मिर्जा ठीक ही कहते हैं कि डेढ़ सौ साल के हालात पढ़ने के बाद हम इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि तीन डिपार्टमेंट ऐसे हैं जो पहले दिन से बेईमान हैं। पहला पुलिस, दूसरा पी.डब्ल्यू.डी., तीसरा इंकमटैक्स। अब इनमें मेरी तरफ से एंटीकरेप्शन विभाग को और बढ़ा लीजिये। ये सिर्फ रिश्वत लेने वालों से रिश्वत लेता है। रिश्वत हिंदुस्तान में भी खूब चलती है। मुझे भी थोड़ा बहुत निजी अनुभव हुआ मगर साहब हिंदू रिश्वत लेने में ऐसी नम्रता, ऐसी शालीनता और गंभीरता बरतता है कि खुदा की कसम दुबारा देने को जी चाहता है।

और साहब विनम्रता का ये हाल कि क्या हिंदू-क्या मुसलमान, क्या बूढ़ा-क्या जवान सब बड़ी नम्रता से हाथ जोड़कर सलाम-प्रणाम करते हैं। बड़े-बड़े लीडर स्पीच से पहले और स्पीच के बाद और बड़े से बड़ा संगीत सम्राट भी पक्के राग गाने से पहले और गाने के बाद इंतहाई विनम्रता के साथ श्रोताओं के सामने हाथ जोड़ कर खड़ा हो जाता है। मैंने खुद अपनी आंखों और कानों से एक मुशायरे में हजरत अली सरदार जाफरी को दस-बारह बहुत लंबी नज़्में सुनाने के बाद हाथ जोड़ते हुए स्टेज से उतरते देखा। खैर ऐसी वारदात के बाद तो हाथ जोड़ने का कारण हमारी समझ में भी आता है।

बाजारे-हुस्न पे क्या गुजरी

और साहब मूलगंज देखकर तो कलेजा मुंह को आ गया। ये हुस्न का बाजार हुआ करता था। आप भी दिल में कहते होंगे, अजीब आदमी है। डबल हाजी, माथे पर गट्टा मगर हर किस्से में तवायफ को जुरूर कांटों में घसीटता है। क्या करूं, हमारी नस्ल तो तरसती फड़कती बूढ़ी हो गयी। उस जमाने में तवायफ साहित्य और स्नायु-समूह पर बुरी तरह सवार थी। कोई जवानी और कहानी उसके बगैर आगे नहीं बढ़ सकती थी। ये भी ध्यान रहे कि रंडी अकेली वो परायी औरत थी, जिसे आप नजर भर कर देख सकते थे। वरना हर वो औरत जिससे निकाह जायज हो, मुंह ढांके रखती थी। मैंने देखा कि अब तवायफों ने गृहस्थिनों के से शरीफाना लिबास और ढंग अपना लिए हैं। अब उन्हें कौन समझाये कि इसी चीज से तो घबरा कर दुखियारे तुम्हारे पास आते थे। गृहस्थी, पवित्रता और एकरंगी के उकताये हुए लोग अजनबी बदन-सराय में रात-बिरात विश्राम के लिए आ जाते थे। यह आसरा भी न रहा।

तो मैं कह रहा था कि मूलगंज में हुस्न का बाजार हुआ करता था। जमाने भर की दुर-दुर, हुश-हुश के बाद तवायफों ने अब रोटी वाली गली में पनाह ली है। बाजार काहे को है, बस एक गटर है, यहां से वहां तक। वो जगह भी देखी जहां पचास बरस पहले मैं और मियां तजम्मुल हुसैन दीवार की तरफ मुंह करके सींक से उतरे कबाब खाया करते थे। जैसे चटखारेदार कबाब तवायफों के मुहल्ले में मिलते थे, कहीं और नहीं देखे। सिवाय लखनऊ के मौलवी मुहल्ले के। गजरे भी गजब के होते थे और हां! आपके लिए असलम रोड का एक कबाबिया डिस्कवर किया है। आपके लंदन जाने से पहले बानगी पेश करूंगा। साहब! कबाब मैंने बाहर का और पान हमेशा घर का खाया है। आपने कभी तवायफ के हाथ की गिलौरी खाई है, मगर आप तो कहते हैं कि आपने अपने खत्नों पर (लिंग की खाल काटना) मुजरे के बाद कभी रंडी का नाच ही नहीं देखा और बरसों इसी इंप्रेशन में रहे कि मुजरा देखने से पहले हर बार इस पड़ाव से गुजरना होता है। रंडी के हाथ का पान कभी नहीं रचता। मैंने देखा है कि बुड्ढों, भड़भड़ियों और शायरों को पान नहीं रचता। मगर आप नाचीज के होंठ देख रहे हैं। आदाब!

मियां तजम्मुल घर जाने से पहले रगड़-रगड़ के होंठ साफ करते और कबाब, प्याज के भबके को दबाने के लिए जिंतान की गोली चूसते। हाजी साहब (उनके बाप) ताजा-ताजा चेंवट से आये थे, सींक के कबाब और पान को यू.पी. की अय्याशियों में गिनते थे। कहते थे बेटो! तुम्हें जो कुछ करना है मेरे सामने करो लेकिन अगर उनके सामने ये काम किया जाता तो कुल्हाड़ी से सर फाड़ देते, जो उनके लिए बायें हाथ का खेल था कि वो एक अरसे से रोज कसरत के तौर पर सुब्ह की नमाज के बाद दस सेर लकड़ी फाड़ते थे। आंधी-पानी हो तो मर्दाना बैठक में दस-दस सेर के मुगदर घुमा लेते। वो चेंवट से रोजी-रोटी की तलाश में निकले थे। उनके वालिद यानी मियां तजम्मुल के दादा ने बुरी राह पे भटकने से रोकने के लिए एक हजार दाने की जपने की माला, एक जोड़ी मुगदर, कुल्हाड़ी और बीबी सफर के सामान में रख दी और कुछ गलत नहीं किया, इसलिए कि इन उपकरणों पे अभ्यास करने के बाद बुराई तो एक तरफ रही, आदमी अच्छाई करने के लायक भी नहीं रहता।

मगर खुदा के लिए आप मेरी बातों से कुछ और न समझ बैठियेगा। बार-बार तवायफ और कोठे का जिक्र आता है, मगर `तमाम हो गयीं सब मुश्किलात कोठे पर` वाला मामला नहीं। खुदा गवाह है, बात कभी पान, कबाब खाने और कोठे पर जाने वालों को ईर्ष्या की नजर से देखने से आगे न बढ़ी। कभी-कभी मियां तजम्मुल बड़ी हसरत से कहते, यार! ये लोग कितने लकी हैं। इनके बुजुर्ग या तो मर चुके हैं या अंधे हैं।

बात ये है कि वो जमाना और था। नयी पौध पर जवानी आती थी तो बुजुर्ग-नस्ल दीवानी हो जाती थी। सारे शहर के लोग एक दूसरे के चाल-चलन पर पहरा देना अपना फर्ज समझते थे।

हम उसके पासबां हैं वो पासबां हमारा

बुजुर्ग कदम-कदम पर हमारी इस्तेमाल में न आई जवानी की चौकीदारी करते थे; बल्कि यूं कहना चाहिये कि हमारी भटकनों और लड़खड़ाहटों को पकड़ने के लिए अपना सारा बुढ़ापा चौकन्ने विकेट कीपर की तरह घुटनों पर झुके-झुके गुजार देते थे। समझ में नहीं आता था कि अगर यही सब कुछ होना था तो हम जवान काहे को हुए।

साहब अपनी तो सारी जवानी-दीवानी दंड पेलने और भैंस का दूध पीने में गुजर गयी। अब इसे दीवानापन नहीं तो और क्या कहें?

खुली आंखों से गाना सुनने वाले

मेरे वालिद, अल्लाह-बख्शे, थियेटर और गाने के रसिया थे। ऐसे-वैसे! जब मौज में होते और बैठक में हारमोनियम बजाते तो रस्ता चलते लोग खड़े हो जाते। बजाते में आंखें बंद रखते। उस जमाने में शौकीन सुनने वाले भी गाना सुनते वक्त आंखें बंद ही रखते थे ताकि ध्यान केवल सुरों पर ही केन्द्रित रहे। अलबत्ता तवायफ का गाना खुली आंखों से सुनना जायज था। उस्ताद बुंदू खां की तरह वालिद के मुंह से कभी-कभार अनायास गाने का बोल निकल जाता जो कानों को भला लगता था। वैसे बाकायदा गाते भी थे मगर उसके सामने, जो खुद भी गाता हो। ये उस जमाने के शरीफों का ढंग था। शाहिद अहमद देहलवी भी यही करते थे।

आपने तो वालिद साहब का आखिरी जमाना देखा जब वो बिल्कुल बिस्तर पर लेट चुके थे। जवानी में हीराबाई के गाने के आशिक थे। `दादर कंठिया` थी यानी दूसरों में कयामत ढाती थी। `बेशतर मुजरई`, मेरा मतलब है बैठ कर गाती थी। सौ मील के दायरे में कहीं उसका गाना हो, तो सारा काम-धंधा छोड़ कर पहुंच जाते। इत्तफाकन किसी महफिल में न पहुंच पायें तो खुद भी बेचैन-सी रहती। राजस्थानी मांड और भैरव थाट सिर्फ उन्हीं के लिए गाती थी। धैवत और रिषभ सुरों को लगाते वक्त जरा थम-थम के उन्हें झुलाती तो एक समां बांध देती। जैसी चौंचाल तबियत पायी, वैसी ही गायकी थी। दादरा गाते-गाते कभी चंचल सुर लगा देती तो सारी महफिल फड़क उठती। आपको बखूबी मालूम है कि वालिद घर के रईस नहीं थे। इमारती लकड़ी की छोटी सी दुकान थी। मेरी मौजूदा दुकान की एक चौथाई समझिये। बस काम-चलाऊ। लकड़मंडी में किसी की दुकान तीन दिन तक बंद रहे तो उसका ये मतलब होता था कि किसी करीबी रिश्तेदार की मौत हो गयी है। चौथे दिन बंद होने का मतलब था कि खुद उसकी मौत हो गयी है लेकिन वालिद साहब की दुकान सात दिन भी बंद रहे तो लोग चिंतित नहीं होते थे। समझ जाते कि हीराबाई से अपनी गुणग्राहकता की दाद लेने गये हैं, लेकिन उनके बंधे ग्राहक लकड़ी उन्हीं से खरीदते। हफ्ते-हफ्ते भी वापसी का इंतजार करते बल्कि आखिर-आखिर तो ये हुआ कि तीन-चार ग्राहकों को भी चाट लगा दी। वो भी उनकी अर्दली में हीराबाई का गाना सुनने जाने लगे। जब उन्हें पूरी तरह चस्का लग गया तो सवारी का इंतजाम, सेहरा गाने पर बेल और हर अच्छे शेर या मुरकी पर रुपया देने का काम भी उन्हीं के सुपुर्द कर दिया। हीराबाई रुपया उनसे लेती, सलाम वालिद को करती। ये तो मुझे मालूम नहीं कि उन दुखियारों को संगीत की भी कुछ सूझ पैदा हुई कि नहीं लेकिन आखिर में वो लकड़ी खरीदने के लायक नहीं रहे थे। एक ने तो दीवाला

निकालने के बाद हारमोनियम मरम्मत करने की दुकान खोल ली। दूसरा इस लायक भी न रहा। कर्जदारों से इज्जत बचा कर बंबई चला गया जहां बगैर टिकिट के रोज थियेटर देखता और मुख्तार बेगम, मास्टर निसार का गाना सुनता था। मतलब यह कि थियेटर में पर्दा खींचने का औनरेरी काम करने लगा। दिन में तुर्की टोपी के फुंदने बेचता था। उस जमाने में दाऊद सेठ भी बंबई में फुंदने बेचा करता था, हालांकि उसने तो हीराबाई का गाना भी नहीं सुना था।

और ये जो आप ठुमरी, दादरा और खयाल में मेरा शौक देख रहे हैं, ये बाबा की ही मेहरबानी है। इकबाल बानो, सुरैया और फरीदा खानम अब मेरी सूरत पहचानने लगी हैं; मगर मियां तजम्मुल कहते हैं कि सूरत से नहीं सफेद बालों से पहचानती हैं। अरे साहब! पिछले साल जो डांस टॉप आया था, उसके शो में खुदा झूठ न बुलवाये हजार आदमी तो होंगे। मियां तजम्मुल का टिकट भी मुझी को खरीदना पड़ा। तीसरा हज करने के बाद उन्होंने अपने पैसे से नाच-गाना और सिनेमा देखना छोड़ दिया है। कहने लगे `इस भीड़ में एक आदमी तुम जैसा नहीं` मैंने शुक्रिया अदा किया `आदाब` तो बोले `मेरा मतलब तुम्हारी तरह झड़ूस नहीं, एक आदमी नहीं, जिसके तमाम बाल और भवें तुम्हारी तरह सफेद हों। भाई मेरे या तो इन्हें काले कर लो या डांस मुजरे से तौबा कर लो।` मैंने कहा `भाई तजम्मुल मुंह काला करने के लिए तुम्हारे साथ इस गली की परिक्रमा मेरे लिए काफी है। मैं एक साथ अपना मुंह और बाल काले नहीं करना चाहता।`

कोई नमाज और मुजरा नहीं छोड़ा

वैसे तो आपको मालूम ही है कि वालिद पाक-साफ, पांचों वक्त नमाज पढ़ने वाले आदमी थे। हम सब भाई-बहन पांचों वक्त नमाज पढ़ते हैं ये सब उन्हीं के कारण है। उन्होंने कभी कोई नमाज और मुजरा नहीं छोड़ा। 1922-23 का जिक्र है जब एक पारसी थ्येट्रिकल कंपनी आई तो एक महीने तक एक ही खेल रोजाना... बिना नागा... इस तरह देखा जैसे पहली बार देख रहे हैं। कुछ ही दिनों में थियेटर वालों से ऐसे घुल-मिल गये कि डॉयलाग में तीन-चार जगह मूड के हिसाब से परिवर्तन करवाया। एक मौके पर दाग के बजाय उस्ताद जौक की गजल राग यमन कल्याण में गवायी। बिब्बू को समझाया कि तुम डॉयलाग के दौरान एक ही वक्त में आंखें भी मटकाती हो, कमर और कूल्हे भी। मौके की जुरूरत के हिसाब से तीनों में से सिर्फ एक हथियार चुन लिया करो। दो मर्तबा हीरो को स्टेज पर पहनने के लिए अपना साफ पाजामा दिया। मैनेजर को आगाह किया कि तुमने जिस शख्स को लैला का बाप बनाया है उसकी उम्र मजनूं से भी कम है। नकली दाढ़ी की आड़ में वो लैला को जिस नजर से देखता है उसे बाप का प्यार हरगिज नहीं कहा जा सकता।

एक दिन पेटी मास्टर गुर्दे के दर्द से निढाल हो गया तो हमारे बाबा हारमोनियम बजाने बैठ गये। हिना के इत्र में बसा रूमाल सर पर डाल लिया और मान लिया कि कोई नहीं पहचानेगा। लाली मिला हुआ सफेद रंग सफेद चमकदार दांत, पतले होंठ, कम हंसते थे मगर जब हंसते थे तो गालों पर लाली और आंखों से आंसू छलकने लगते। हर लिबास उन पर फबता था। चुनांचे शीरीं बात फरहाद से करती मगर नजरें हमारे बाबा पर ही जमाये रखती। थियेटर से उनका ये लगाव मां को बुरा लगता था। हम भाई-बहन सयाने हो गये तो एक दिन मां ने उनसे कहा `अब तो ये शौक छोड़ दीजिये। औलाद जवान हो गयी है` कहने लगे `बेगम! तुम कमाल करती हो। जवान वो हुए हैं और नेक चलनी का उपदेश मुझे दे रही हो।`

उन्हें ये शौक पागलपन की हद तक था। आगा हश्र कश्मीरी को शेक्सपियर से बड़ा ड्रामा लिखने वाला समझते थे। इस तुलना में जान बूझकर डंडी मारने या धार्मिक भेदभाव का जरा भी हाथ न था। उन्होंने शेक्सपियर सिरे से पढ़ा ही नहीं था। इसी तरह अपने दोस्त पंडित सूरज नारायण शास्त्री से इस बात पर लड़ मरे कि दाग देहलवी कालीदास से बड़ा शायर है। तुलना के समय दलील में जोर पैदा करने के लिए उन्होंने कालीदास को एक गाली भी दी। जिसका पंडितजी पर गहरा असर हुआ और उन्होंने दाग देहलवी के शागिर्द नवाब साइल देहलवी तक को कालीदास से बड़ा मानने के लिए अपनी तरफ से प्रतिबद्धता प्रकट की।

जिस दिन आगा हश्र काश्मीरी की मौत की खबर आई तो वालिद की जेबी घड़ी में दस बज रहे थे। दुकान पर ग्राहकों का झुंड था मगर उसी समय दुकान में ताला डाल कर घर आ गये। दिन भर मुंह-औंधे पड़े रहे। पंडितजी ढांढस बंधाने आये तो चादर से मुंह निकाल कर बार-बार पूछते कि पंडितजी! मुख्तार बेगम (जो आगा हश्र काश्मीरी की संभावित बीबी थीं) का क्या बनेगा? पहाड़ सी जवानी कैसे कटेगी? आखिर में पंडितजी ने जवाब दिया। हर पहाड़ को कोई न कोई काटने वाला फरहाद मिल ही जाता है। कला का सुहाग भी कभी उजड़ा है? उसकी मांग तो सदा सिंदूर और सितारों से भरी रहेगी। वालिद जैसे ही सुब्ह घर में दुखी और उदास दाखिल हुए, बरामदे की चिवफें डाल दीं और मां से कहा `बेगम! हम आज लुट गये। आज घर में चूल्हा नहीं जलेगा` सरे-शाम ही कलाकंद खा कर सो गये।

पंडितजी को गाने से बिल्कुल शौक नहीं था लेकिन बला के मुहब्बती और उतने ही दूसरे के दुःख में शरीक होने वाले। दूसरे दिन सुब्ह तड़के वालिद साहब से भी जियादा उदास रोनी सूरत बनाये, आहें भरते आये। शेव भी बढ़ा हुआ था। घर से हलवा पूरी और काशीफल की तरकारी बनवा कर लाये थे। वालिद को नाश्ता करवाया। हमें तो आशंका हो गयी थी कि वालिद के डर के मारे पंडितजी कहीं भदरा (किसी निकट संबंधी की मृत्यु के बाद सर, दाढ़ी और मूंछ के बाल मुंड़वाना) न करवा लें।

आसमान से उतरा, कोठे पर अटका

माफ कीजिये ये किस्सा शायद मैं पहले भी सुना चुका हूं। आप बोर तो नहीं हो रहे? हर बार वर्णन में कुछ अंतर आ जाये तो याददाश्त का कुसूर है गलत बताना उद्देश्य नहीं है। बाबा से कभी हम नाटक देखने की फरमाइश करते तो वो मैनेजर को चिट्ठी लिख देते कि बच्चों को भेज रहा हूं, अगली सीटों पर जगह दे दीजियेगा। बाद को तो मैं खुद चिट्ठी लिख कर बाबा के दस्तखत बना देता था। ये बात उनकी जानकारी में भी थी, इसलिए कि एक दिन झुंझला कर कहने लगे, जाली दस्तखत बनाते हो तो बनाओ मगर गलतियों से तो मुझे शर्मिंदा मत करो। सही शब्द `बराहे-करम` है `बराए-करम` नहीं।

हमेशा मैटिनी शो में भेजते थे। उनका खयाल था कि मैटिनी शो में खेल देखने से होने वाली बरबादी और बिगड़ने का असर, टिकट की कीमत की तरह आधा रह जाता है। सब मुझे बच्चा समझते थे, मगर अंदर कयामत की खद-बद मची थी। मुन्नी बाई जब स्टेज पर गाती तो एक समां बंध जाता। ये वो उस्ताद दाग वाली मुन्नी बाई हिजाब नहीं, जिस पर उन्होंने पूरा महाकाव्य लिख डाला। गजब की आवाज, बला की खूबसूरत। पलक झपकने, सांस भी लेने को जी नहीं चाहता कि इससे भी खलल पड़ता था। क्या शेर है वो अच्छा-सा, आपको तो याद होगा। `वो मुखातिब भी हैं, करीब भी हैं` लुक्मा, `उनको देखूं कि उनसे बात करूं` शुक्रिया, साहब! याददाश्त तो बिल्कुल

चौपट हो गयी है। महफिल में पहले तो शेर याद नहीं आता और आ भी जाये तो पढ़ने के बाद पता लगता है कि बिल्कुल गलत मौके का शेर पढ़ा, जैसा कि उस समय हुआ। दोगुनी झुंझलाहट होती है। दरअस्ल उस समय `नज्जारे को ये जुंबिशे-मिजगां भी बार है` (दृश्य को पलक झपकना भी बोझ है) वाला शेर पढ़ना चाहता था। खैर, फिर कभी। आपने उस दिन बड़े अनुभव और पते की बात कही कि पचपन के बाद शेर की सिर्फ एक पंक्ति पर सब्र करना चाहिये। तो साहब! जिस वक्त मुन्नी बाई उस्ताद दाग की गजल गाती तो न उसे होश रहता, न सुनने वालों को।

माना कि दाग आशिक की हैसियत से निरा लौंढिहार है और उसका माशूक बाजारी, मगर इश्क की बातचीत बाजारी नहीं है। जबान जमुना में धुली किला मुअल्ला की है। मुहावरा और रोजाना की बातचीत की जबान दाग की शायरी का ओढ़ना-बिछौना है, मगर गजब ये किया कि बिछाने की चीज ओढ़ कर सार्वजनिक जगह पर लंबे हो गये। हजरते-दाग जहां लेट गये, लेट गये। बकौल आपके मिर्जा वदूद बेग के, दाग का कलाम सरल भाषा के आसमान से उतरा तो कोठे पर अटका, वहां से फिसला तो कूल्हे पे आके मटका। लेकिन ये फिराक गोरखपुरी की सरासर जियादती है कि, `उस शख्स ने हरमजदगी को जीनियस की जगह बिठा दिया।` आपने तो खैर वो समय नहीं देखा, मगर आज भी... किसी भी गायकी की सभा में दाग की गजल पिट नहीं सकती। देखने वालों ने दाग की सर्वप्रियता का वो समय भी देखा है जब मौलाना अब्दुल सलाम नियाजी जैसे अद्‌वितीय विद्‌वान को शायरी का शौक चर्राया तो दाग के शिष्य हो गये। श्रद्धा की यह स्थिति कि कोई उस्ताद का शेर पढ़ता तो सुब्हानअल्लाह कह कर वहीं सिजदे में चले जाते।

तो मैं ये कह रहा था कि, जह्रे-इश्क में मुन्नी बाई ने दाग की पांच गजलें गाईं। पांचों लाजवाब और पांचों की पांचों बेमौका। साहब! सन् 47 के बाद रंडियां तो ऐसी गयीं जैसे कभी थीं ही नहीं मगर ये भी सही है कि अब वैसे कद्रदान भी नहीं रहे।

चांदी का कुश्ता और चिन्योट की चिलम

खूब याद आया। हमारे एक जानने वाले थे, मियां नजीर अहमद, चिन्यौट बिरादरी से तअल्लुक रखते थे। चमड़े के कारोबार से सिलसिले में बंबई जाते रहते थे। वहां रेस का चस्का लग गया। घोड़ों से जो कमाई बच रहती, उसी से घर-परिवार का खर्चा चलता। गुलनार तवायफ से निकाह पढ़वा लिया था। हज करने के बाद जो तौबा की सो की। बल्कि मियां नजीर अहमद को भी बहुत-सी इल्लतों से तौबा करवा दी और उनके दिन फिर गये। जो अधेड़ उम्र में तवायफों की सूरत पे फिटकार बरसने लगती है और आवाज फटा बांस हो जाती है वो हालत कतई नहीं थी। मीलाद (धार्मिक प्रवचन के काव्य) खूब पढ़ती थी, आवाज में गजब का दर्द था। जब सफेद दोपट्टे से सर ढांके जामी (एक शायर) की नात (पैगंबर मुहम्मद के सिलसिले की कविता) या अनीस का मर्सिया (शोक काव्य) पढ़ती तो माहौल में आस्था तैर जाती।

हम छुप-छुप कर सुनते। मुहर्रम में काले कपड़े उस पर फबते थे। पाकिस्तान आ गयी थी। बर्नस रोड पर अदीब सहारनपुरी के फ्लैट से जरा दूर तीन कमरों का फ्लैट था। मियां साहब जाड़े में भी मलमल का कुरता पहनते और सुब्ह ठंडे पानी से नहा कर लस्सी पीते थे। मशहूर था कि तुरंत ताकत हासिल करने के हौके में ढेर सारा रूप-रस यानी चांदी का अधकच्चा कुश्ता (उस जमाने की वियाग्रा) खा बैठे थे।

गुलनार की छोटी बहनें मुन्नी और चुन्नी भी आफत की परकाला थीं। आपने भी तो एक बार किसी छोटी इलायची और बड़ी इलायची का जिक्र किया था। बस वैसा ही कुछ नक्शा था। अफसोस अब खानों में बड़ी इलायची का इस्तेमाल खत्म होता जा रहा है। हालांकि इसकी महक, इसका जायका ही और है। आप तो खैर बड़ी इलायची से चिढ़ते हैं, मुझे तो किसी तरफ से भी काकरोच जैसी नहीं लगती। तो साहब, मुन्नी बेगम का चेहरा और भरे-भरे बाजू कुछ ऐसे थे कि कुछ भी पहन ले, नंगी-नंगी सी लगती थी। यू नो व्हाट आई मीन। चुन्नी बेगम फारसी की गजलें गाती थी। लोग बार-बार फरमाइश करते। वो भी आम तौर पर बैठ कर गाती।

कभी दाद कम मिलती या यूं ही तरंग आती तो अचानक उठ खड़ी होती। दोनों सारंगे और तबलची भी अपने-अपने जरी के कामदार पटके कस लेते और खड़े हो कर संगत करते। महफिल में दो तीन चक्कर तो नाचती हुई लगाती, फिर एक जगह खड़ी हो कर फिरकी की तरह तेजी से घूमने लगती। जरदोजी की लश्कारा मारती पिशवाज (लहंगा) हर चक्कर के बाद ऊंची उठती-उठती कमर तक पहुंच जाती। यूं लगता कि जुगनुओं का एक झुंड नाचता हुआ घूम रहा है। लय और चाल तेज होती। किरन से किरन में आग लगती चली जाती, फिर नाचने वाली नजर न आती, सिर्फ नाच नजर आता था।

और जब अचानक रुकती तो पिशवाज सुडौल टांगों पर अमरबेल की तरह तिरछी लिपटी चली जाती। साजिंदे हांफने लगते और खिरन (तबले की सियाही) पर तबलची की तन्नाती उंगलियों से लगता कि खून अब टपका कि अब टपका।

देखिये, मैं फिर भटक कर उसी लानत के मारे बाजार में जा निकला। आपने Nots लेने बंद कर दिये। बोर हो गये? या मैं घटनाओं को दुहरा रहा हूं। वादा है, अब किसी तवायफ को चाहे वो कितनी आफत की परकाला क्यों न हो, अपने और आपके बीच नहीं पड़ने दूंगा। साहब, हमारी बातें ही बातें हैं।

बातें हमारी याद रहें, फिर बातें न ऐसी सुनियेगा

परसों आप लंदन चले जायेंगे। मीर ही ने अस्थिर दुनिया पर अपने एक शेर में यारों की महफिल को जाने वाली महफिल कहा है, कि यहां हर यार मुसाफिर और हर साथ बीतने वाला है। तो साहब! जिक्र मियां नजीर अहमद साहब का हो रहा था। मियां साहब कानपुर के 104 डिग्री टेंप्रेचर से घबराकर मई का महीना हमेशा से चिन्यौट की 104 डिग्री टेंप्रेचर की गर्मी में गुजारते थे। उनका दावा था कि चिन्यौट की लू कानपुर की लू से बेहतर होती है। हम लोग आपस में शेक्सपियर के गीत की दुर्गति बनाते थे,

'Blow thou Chinyot loo'

"Thou art not so unkind

As local specimen`s of mankind,

who could not care who is who!"

मियां साहब अक्सर कहते थे कि प्रकृति का कोई भी काम अकारण नहीं होता। चिन्यौट की गर्मी में साल भर के इकट्ठे, गंदे विचार पसीने के रास्ते बह जाते हैं। रोजे कभी रेस और बीमारी की हालत में भी नहीं छोड़े। मई जून में भी एक डली लाहौरी नमक की चाट कर हुक्के के आंतों तक उतर जाने वाले कश से रोजा खोलते।

पहले तीन-चार बार यूं ही चैक करने के लिए गुड़गुड़ाते जैसे संगत करने से पहले सितार बजाने वाले मिजराब से तारों की कसावट को और तबलची हथौड़ी से तबले के रग-पट्ठों को ठोक बजा कर टैस्ट करता है। फिर एक ही सिसकी भरे कश में सारे तंबाकू की जान निकाल लेते, बल्कि अपनी जान से भी गुजर जाते। सु सु सु, शूअ शूअ, सू सू, वू वू वू...वह। हाथ पैर ढीले पड़ जाते। ठंडे पसीने आने लगते। पुतलियां ऊपर चढ़ जातीं। पहले बेसत, फिर बेसुध हो कर वहीं पड़े रह जाते। गुलनार उन्हें अनार का शर्बत पिला कर नमाज के लिए खड़ा करती।

हुक्के की नय पर चमेली का हार और नेचे पर खस लिपटी होती। तंबाकू तेज और कड़वा बेबना पसंद करते थे। किवाम लखनऊ से मंगवाते थे। चांदी की मुंहनाल दिल्ली के कारीगर से गढ़वायी थी। मिट्टी की चिलम और तवा हमेशा चिन्यौट से आता था। फर्माते थे, बादशाहो! इस मिट्टी की खुशबू अलग से आती है।

लाहौर में आज बसंत है।

मियां नजीर अहमद संक्रांति के दिन कड़कड़ाते जाड़े में मलमल का कुरता पहने, नंगे सर छत पर पतंग जुरूर उड़ाते थे। यह भी उनका भोलापन ही था कि मलमल के कुरते को जवानी का सर्टिफिकेट बल्कि पोस्टर समझ कर पहनते थे। मियां साहब लिहाफ सिर्फ उस वक्त ओढ़ते जब हिल-हिला कर जाड़ा-बुखार चढ़ता। यू.पी. के जाड़े को कुछ नहीं समझते थे। हिकारत से कहते, ये भी कोई सर्दी है। दरअस्ल वो लाहौर के जाड़े के बाद सिर्फ मलेरिया के जाड़े के कायल थे।

आपके मिर्जा अब्दुल वुदूद बेग भी तो यही इल्जाम लगाते हैं ना कि यू.पी. के कल्चर में जाड़े को रज के सैलिब्रेट करने की कोई सोच ही नहीं, जबकि पंजाब में गर्मी के इस तरह चोंचले और नखरे नहीं उठाये जाते जिस तरह यू.पी. में। साहब यू.पी. में जाड़े और पंजाब में गर्मी को केवल सालाना सजा के तौर पर बर्दाश्त किया जाता है। कमो-बेश इसी तरह का अंतर बरसात में दिखाई देता है। पंजाब में बारिश को केवल इसलिए सह लेते हैं कि इसके बगैर फस्लें नहीं उग सकतीं। जबकि यू.पी. में सावन का एकमात्र उद्देश्य ये होता है कि कड़ाही चढ़ेगी। पेड़ों पर आम और झूले लटकेंगे। झूलों में कुंवारियां। पंजाब में पेड़ों पर आम या कुछ और लटकने की खुशी केवल तोतों को होती है।

और इंग्लैंड में बारिश का फायदा, जो साल के 345 दिन होती है (बाकी बीस दिन बर्फ पड़ती है) आप यह बताते हैं कि इससे शालीनता और विनम्रता को बढ़ावा मिलता है। मतलब ये कि जो गालियां अंग्रेज एक दूसरे को देते, अब मौसम को देते हैं। संक्रांति के दिन मियां नजीर अहमद पेंच तो क्या खाक लड़ाते, बस छह-सात पतंगें कटवा और डोर लुटवा कर अपना... और अपनों से जियादा दूसरों का... जी खुश कर लेते थे। हर पतंग कटवाने के बाद लाहौर के मांझे को बेतहाशा याद करते। अरे साहब, पतंग कटती नहीं तो और क्या। पेच कानपुर में लड़ाते और किस्से लाहौर के बसंत के रंगीले आसमान के सुनाते जाते। आंखें भी अच्छी खासी कमजोर हो चली थीं, लेकिन चश्मा केवल नोट गिनने और मछली खाते समय सावधानी और परेशानी के कारण लगा लेते थे। चश्मा न लगाने का एक नतीजा ये निकलता कि जिस पतंग को वो प्रतिस्पर्धी की पतंग समझ कर बेतहाशा खेंच करते, वो दरअस्ल उनकी अपनी ही पतंग निकलती जो कुछ क्षणों बाद विरोधी रगड़ से कट कर हवा में लालची की नीयत की तरह डांवाडोल होने लगती। डोर अचानक लिजलिजी पड़ जाती तो अचानक उन्हें पता चलता।

कटी पतंग तिरी डोर अब समेटा कर

मियां साहब अक्सर फर्माते कि पतंग और कनकव्वे बनाने में तो बेशक लखनऊ वालों का जवाब नहीं, लेकिन बादशाहो! हवा लाहौर ही की बेहतर है। सच पूछो तो पतंग लाहौर ही की हवा में पेटा छोड़े (झोल खाये) बिना डोर पे डोर पीती और जोर दिखाती है। पतंग के रंग और मांझे के जौहर तो लाहौर ही के आसमान में खुलते और निखरते हैं। कानपुर में वो काटा इस तरह कहते हैं जैसे क्षमा मांग रहे, बल्कि शोक व्यस्त कर रहे हों। लाहौर में वो काटा में पिछड़े हुए पहलवान की छाती पर चढ़े हुए पहलवान का नारा सुनायी देता है बल्कि पसीने में डूबे हुए बदन से चिमटी हुई अखाड़े की मिट्टी तक दिखाई देती है।

मियां साहब की चर्खी लाहौर ही के एक जिंदादिल पकड़ते थे, जो हलीम कॉलेज कानपुर में लेक्चर थे। अब्दुल कादिर नाम था। शायरी भी करते थे। दोनों मिल कर पतंग को लंतरानी का मांझा और यादों की उलझी-सुलझी तल चांवली (दुरंगी) डोर ऐसी पिलाते कि चर्खियां खाली हो जातीं और पतंग आसमान पे तारा हो कर लाहौर की चौबुर्जी पे जा निकलती।

यहां से बिशारत का बयान खत्म और ख्वाबे-नीम रोज (दोपहर का सपना) शुरू होता है।

दोपहर का सपना : अब यह चढ़ी पतंग जो कुछ रावी पार देखती, उसका हाल कुछ इन दोनों लाहौर के जिंदादिलों, कुछ बिशारत और रहा-सहा तीनों से दुखी किस्सा कहने वाले की जबानी सुनिये।

आज लाहौर में बसंत है। रंग हवा से यूं टपके है जैसे शराब चुवाते हैं। बसंत और बरसात में लाहौर का आसमान आपको कभी बेरंग, उकताया हुआ और निचला नजर नहीं आयेगा। लाड़ले बच्चे की तरह हर वक्त चीख-चीख कर अपनी मौजूदगी का अहसास दिलाता है और ध्यान खींचता है कि इधर देखो, इस वक्त मुझे एक और शोखी सूझी है। कैसे कैसे रंग बदलता है। कभी तारों भरा... बच्चों की आंखों की तरह जगमग-जगमग, कभी प्रकाशवर्षों की दूरी पर आकाशगंगा-सा झिलमिलाता, कभी सांवली घटाओं से सोने के तार-सा बरसता हुआ, कभी तांबे की तरह तपता-तपता एकाएकी अमृत बरसाने लगा और सूखी खेतियों और उदास आंखों को जल-थल कर गया। अभी कुछ और था, अभी कुछ और है। घड़ी भर को चैन नहीं। कभी कृपालु, कभी अनिष्टकारी।

पल में अग्निकुंड, पल में नील-झील, पल भर पहले बीहड़ रेगिस्तानों की धूल-धमास उठाये, लाल-पीली आंधियों से भरा बैठा था, फिर आप-आप धरती के गले में बांहें डाल कर खुल गया, जैसे कुछ हुआ ही न था। समुद्री झाग जैसे बादलों के बजरे पिघले नीलम में फिर तैरने लगे। कल शाम ढले जब क्षितिज लाल हुआ तो यूं लगा जैसे आसमान और धरती का मलगिजा संगम जो सूरज को निगल गया, अब यूं ही तमतमाता रहेगा। फिर गर्म हवा एकाएकी थम गयी, सारा वातावरण ऐसे दम साधे खड़ा था कि पत्ता नहीं हिलता था। देखते-देखते बादल घिर आये और पिछले पहर तक बिजली के त्रिशूल आसमान पर लपकते, लहराते रहे। पर आज दोपहर से न जाने क्या दिल में आई कि अचानक ऐसा मोरपंखी नीला हुआ कि देखे से रंग छूटे। पहर रात गये तक अपनी धुली-धुलाई नीलाहटें रावी की चांदी में घोलता रहा।

लाहौर के आसमान से अधिक सुंदर और अधिक रंगों से भरी, चंचल कोई चीज है तो वो है सिर्फ लाहौर की फूलों भरी धरती, चार सौ साल पहले भी ये धरती और आसमान ऐसे ही थे। तभी तो नूरजहां ने जान के बदले में लाहौर की जन्नत में दो गज जमीन खरीद ली, मगर लाहौर के जिंदादिल लोगों ने लाहौर को इस कदर चाहने वाले को याद रखने की तरह याद न रखा, नूरजहां की कब्र में अब अबाबीलों का डेरा है।

दोपहर का सपना तो खत्म हुआ। अब बाकी कहानी बिशारत की जबानी उन्हीं के अंदाज में सुनिये। जहां तक कलम और याददाश्त साथ देगी हम उनका खास मुहावरा और लहजा... और लहजे की ललक और लटक ज्यों की त्यों बरकरार रखने की कोशिश करेंगे। वो एक बार कहानी सुनाना शुरू करें तो विवादी स्वर भी अपना अलग सम्वाद करने लगते हैं। हुंकार भरने की भी मुहलत नहीं देते। मिर्जा ऐसे शिकंजे में जकड़े जाने को कहानी पाठ कहते हैं।

तो साहब! मियां नजीर अहमद का मकान भी देखने गया। कैसी-कैसी यादें जुड़ीं हैं मकान से, मगर अब पहचाना नहीं जाता। अच्छी खासी फेस लिफ्टिंग हुई है। तीन एयरकंडीशनर चल रहे थे। बरामदे में एक बूढ़े सरदार जी कंघा हाथ में पकड़े जूड़ा बांध रहे थे। सिर्फ यही ऐसा मकान है जो पहले से बेहतर दिखाई दिया। मैंने अपना परिचय दिया और अपने आने का कारण बताया तो खुशी-खुशी अंदर ले गये। बड़ी आवभगत की। देर तक अपनी जन्मभूमि गुजरांवाला का हाल पूछते रहे। मैं गढ़-गढ़ के सुनाता रहा, और क्या करता? एक साल पहले मिनी बस में गुजरांवाला से गुजरा था, उस एक स्नेप शाट को एनलार्ज करके उर्दू का बैस्ट-सेलर यात्रा वृतांत बना दिया।

गुजरांवाला गुजरांवाला है : सरदार जी कुरेद-कुरेद कर बड़े चाव से पूछते रहे और मैं बड़े भरोसे के साथ गुजरांवाला का झूठा सच्चा हाल सुनाता रहा। उन्होंने आवाज दे कर अपने बेटों, पोतों और बहुओं को बुलाया, इधर आओ। बिशारत जी को सलाम करो। ये नवंबर में अपने गुजरांवाला हो कर आये हैं। इधर मेरी ये मुसीबत कि मैंने लाहौर के अलावा सिर्फ एक कस्बा टोबा टेक सिंह करीब से देखा है। वहां मेरा एक रिश्तेदार, अक्खन खाला का पोता, एग्रीकल्चर बैंक में तीन महीने नौकरी करने के बाद, ग्यारह महीने से निलंबित पड़ा था, बस इसी कस्बे के भूगोल को ध्यान में रख कर गुजरांवाला को याद करते हुए सरदार जी की प्यास बुझाता रहा।

आश्चर्य इस बात पर हुआ कि सरदार जी मेरे झूठे विस्तृत विवरण से न केवल संतुष्ट हुए बल्कि एक-एक बात की पुष्टि भी की। मैंने उस नहर का भी काल्पनिक चित्रण कर दिया जिसमें सरदार जी कपड़े उतार कर पुल पर से छलांग लगाते थे और कुंवारी भैंसों के साथ तैरा करते थे। मैंने उनके उस प्रश्न के उत्तर में यह भी स्वीकार किया कि पुल की दायीं तरफ कैनाल के ढलवान पर जिस टाहली थले वो अपनी हरक्यूलिस साइकिल और कपड़े रखते थे, वो जगह मैंने देखी है। यहां से एक बार चोर उनके कपड़े उठा कर ले गया मगर साइकिल छोड़ गया। इस घटना के बाद सरदार जी ने एहतियातन साइकिल लानी छोड़ दी।

मैंने जब ये टुकड़ा बताया कि अब वो शीशम बिल्कुल सूख गया है और कोई दिन जाता है कि बूढ़े तने पर नीलामी का आरा चल जाये तो बूढ़े सरदार जी की आंखें डबडबा आईं। उनकी मंझली बहू ने जो बहुत सुंदर और शोख थी मुझसे कहा, बाबू जी को अभी पिछले महीने ही हार्ट अटैक हुआ है। आप उन्हें मत रुलायें अंकल। उसका मुझे अंकल कहना जरा भी अच्छा नहीं लगा, और यह तो मुझे आप ही से पता लगा कि नहर में भैंस नहीं तैर सकती चाहे वो कुंवारी ही क्यों न हो।

सरदार जी मेरी किसी बात या सुंदर वाक्य पर खुश होते तो मेरी जांघ पर हाथ मारते और अंदर से लस्सी का एक गिलास और मंगा कर पिलाते। तीसरे गिलास के बाद मैंने टॉयलेट का पता पूछा। अपनी जांघों को उनके कृपापूर्ण हाथों से बचाया और बातचीत में एहतियात बरतनी शुरू कर दी कि बेध्यानी में कोई शोख वाक्य न निकल जाये। सरदार जी कहने लगे, इधर अपना ट्रांसपोर्ट का बड़ा शानदार बिजनेस है। सारा हिंदुस्तान घूमा हूं, पर गुजरांवाला की बात ही और है। यहां की मकई और सरसों के साग में वो स्वाद, वो सुगंध नहीं और गुड़ तो बिल्कुल फीका फूक है। उन्होंने यहां तक कहा कि यहां के पानी में पानी बहुत है जबकि गुजरांवाला के पानी में शराब की ताकत है। वो शरीर को शक्ति देने वाली हर वस्तु की उपमा शराब से देते थे।

विदा होते हुए मैंने कहा कि मेरे योग्य कोई सेवा हो तो निसंकोच कहें। बोले, तो फिर किसी आते जाते के हाथ लाहौरी नमक के तीन-चार बड़े से डले भेज देना। उनकी इच्छा थी कि मरने से पहले एक बार अपने बेटों पोतों को साथ लेकर गुजरांवाला जायें और अपने मिडिल स्कूल के सामने खड़े होकर फोटो बनवायें। उपहार में उन्होंने मुझे Indian Raw Silk का छोटा थान दिया। चलने लगा तो मंझली बहू ने मुझे आदाब किया। इस बार अंकल नहीं कहा।

सरदार जी ने मुझे सारा घर दिखाया। बहुओं ने लपक-झपक बिखरी हुई चीजें बड़े करीने से गलत जगह पर रख दी थीं। जो चीजें जल्दी में रखी न जा सकीं उन्हें समेट कर बिस्तर पर डाल दिया और ऊपर सफेद चादर डाल दी। इसलिए घर में जहां जहां साफ चादर नजर आई मैं ताड़ गया कि नीचे काठ कबाड़ दफ्न है। साहब Curiosity भी बुरी बला है। एक कमरे में मैंने नजर बचा कर चादर का कोना सरकाया तो नीचे से सरदार जी के मामा निहायत संक्षिप्त कच्छा पहने केश खोले बरामद हुए। उनकी दाढ़ी इतनी लंबी और घनघोर थी कि कच्छे के तकल्लुफ की जरा भी जुरूरत नहीं थी।

घर का नक्शा बदल गया है। सहन अब पक्का करवा लिया है। चमेली की बेल और अमरूद का पेड़ नहीं दिखाई दिया। यहां मियां साहब शाम को छिड़काव करके मूढ़े बिछवा दिया करते थे। अपने लिए खराद पर बने चिन्यौट के रंगीन पायों वाली चारपायी बिछवाते थे। वतन की याद जियादा सताती तो हमें लोकल गंडीरियां खिलाते। उनका गला लायलपुर की गंडीरियों की याद करके रुंध जाता। चांदनी रातों में अक्सर ड्रिल मास्टर की आवाज में मिर्जा साहिबां और जुगनी चिमटा बजा कर सुनाते। खुद भी रोते और हमें भी रुलाते। यूं हमारे रोने का कारण दूसरा होता। कुछ देर बाद खुद ही अपने बेसुरेपन का अहसास होता तो चिमटा बड़ी खिन्नता से सहन में फेंक कर कहते कि बादशाहो! कानपुर के चिमटे गाने की संगत के लिए नहीं, चिलम भरने के लिए ही स्यूटेबिल हैं।

सरदार जी से झूठ-सच बोल कर बाहर निकला तो सारा नास्टेल्जिया हिरन हो चुका था। पुराना मकान दिखाने मुझे इनआमुल्ला बरमलाई ले गये थे। वापसी में एक गली के नुक्कड़ पर मिठाई की दुकान के सामने रुक गये। कहने लगे, रमेश चंद अडवानी एडवोकेट के यहां भी झांकते चलें। जेकबाबाद का रहने वाला है, सत्तर का है, मगर लगता नहीं। अस्सी का लगता है। जबसे सुना है, कोई साहब कराची से आये हैं, मिलने के लिए तड़प रहा है। जेकबाबाद और सक्खर की खैरियत मालूम करना चाहता है। सितार पर तुम्हें काफियां सुनायेगा, अगर तुमने प्रशंसा की तो और सुनायेगा, न की तो भी और सुनायेगा कि शायद ये बेहतर हों। शाह अब्दुल लतीफ भट्टायी का रसालू जबानी याद है। हिंदी सीख ली है मगर जोश में आता है तो अजीब प्रेत-भाषा में बात करने लगता है। खिसका हुआ है मगर है दिलचस्प।

तो साहब अडवानी से भी बातचीत रही। बातचीत क्या Monologue कहिये। `कंधा भी कहारों को बदलने नहीं देते` वाला मामला है। उन्होंने यह पुष्टि चाही कि जेकबाबाद अब भी उतना ही हसीन है या नहीं, जैसा वो जवानी में छोड़ कर आया था? यानी क्या अब चौदहवीं को पूरा चांद होता है? क्या अब भी सिंध नदी की लहरों में लश-लश करती मछलियां दूर से ललचाती हैं? मौसम वैसा ही हसीन है? (यानी 115 डिग्री गर्मी पड़ती है या उस पर भी उतार आ गया है) और क्या अब भी खैरपुर से आने वाली हवायें लू से पकती हुई खजूरों की महक से बोझल होती हैं? सब्बी में सालाना दरबार मेला मवेशियां लगता है कि नहीं।

मैंने जब उसे बताया कि मेला मवेशियां में अब मुशायरा भी होता है तो देर तक मेले के पतन पर अफसोस करता रहा और पूछने लगा कि सिंध में अच्छे मवेशी इतने कम हो गये? उसे गंगा जमनी मैदान जरा नहीं भाता। कहने लगा, सांईं। हम सीधे, खुरदरे, रेगमाली, रेगिस्तानी लोग हैं। अपने रिश्ते, प्यार और संबंधों पर काई नहीं लगने देते। आप सफाचट दोआबे और दलदली मैदानों में रहने वाले, आप क्या जानें कि रेगिस्तान में गर्म हवा रेत पर कैसी चुलबुली लहरें, कैसे कैसे चित्र बना-बना के मिटाती और मिटा-मिटा के बनाती है। सांईं, हमारा सारा Sand Scape अंधड़, आंधियां तराशती हैं।

गर्म हवा, झक्कड़ और जेठ के मीनार बगूले सारे रेगिस्तान को मथ के रख देते हैं। आज जो रेत की वादी है, कल वहां से लाल आंधी की धूम सवारी गुजरती थी। जलती दोपहर में भूबल, धूल बरसाती रेत पहाड़ियां। पिछले पहर की ठंडी होती मखमल बालू पर धीमी-धीमी पवन पखावज, जवान बलवान बांहों की मछलियों की तरह रेत की उभरती फड़कती लहरें, एक लहर दूसरे लहर जैसी नहीं। एक टीला दूसरे टीले से, एक रात दूसरी रात से नहीं मिलती। बरसात की रातों में जब थोथे बादल सिंध के रेत सागर से आंख मिचौली खेलते गुजरते हैं तो उदास चांदनी अजब इंद्रजाल रचती है। जिसको सारा रेगिस्तान एकसार लगता है, उसकी आंख ने अभी देखना ही नहीं सीखा, सांईं। हम तुम्हारे पैरों की धूल, हम रेत महासागर की मछली ठहरे। आधी रात को भी रेत की तहों में उंगली गड़ा के ठीक-ठाक बता देंगे कि आज पोछांड़ू कहां था। (यानी टीले का वो हिस्सा जिस पर सूरज की पहली किरन पड़ी) दोपहर को हवा का रुख क्या था। ठीक इस समय शहर की घड़ियों में क्या बजा होगा। धरती ने हमें फूल, फल और हरियाली देते समय हाथ खींच लिया तो हमने इंद्रधनुष के सारे चंचल रंगों की पिचकारी अपनी अजरकों, रल्लियों, ओढ़नियों, शलूकों, चोलियों और सजावटी टाइलों पर छोड़ दी।

वो अपनी आंसू-धार पिचकारी छोड़ चुका तो मैंने बाहर आकर इनामुल्ला बरमलाई से कहा, भाई मेरे, बहुत हो चुकी, ये कैसा हिंदू है जो गंगा-किनारे खड़ा रेगिस्तान के सपने देखता है।

कहीं दिल और कहीं नगरी है दिल की

ये सारी उम्र का वनवास देखो

ऐसा ही है तो उसे ऊंट पर बिठा कर बीकानेर ले जाओ और किसी टीले या कीकर के ठूंठ पर बिठाओ कि `ऊपर छांव नहीं-नीचे ठांव नहीं।` अबके तुमने मुझे किसी अतीत में खोये आदमी से मिलाया तो कसम खुदा की लोटा, डोर, चटाई, नजीर अकबराबादी की किताब और फ्रूटसाल्ट बगल में मार कर बियाबान को निकल जाऊंगा और कान खोल कर सुन लो, अब मैं किसी ऐसे व्यक्ति से हाथ भी मिलाना नहीं चाहता जो मेरा हमउम्र हो, साहब! मुझे

तो आपसे कै आने लगी। आपके मिर्जा साहब ने कुछ गलत नहीं कहा था कि अपने हमउम्र बूढ़ों से हाथ मिलाने से आदमी की उम्र हर बार एक साल घट जाती है।

मुल्ला आसी भिक्षू : कानपुर में जी भर कर घूमा। एक एक से मिला। एक जमाना आंखों के आगे से गुजर गया मगर यात्रा की उपलब्धि मुल्ला आसी अब्दुल मन्नान से भेंट रही। अब्दुल मन्नान के नाना अपने हस्ताक्षर से पहले आसी लिखा करते थे। उन्होंने उचक लिया और सातवीं क्लास से अपना नाम आसी अब्दुल मन्नान लिखना शुरू कर दिया। आठवीं में ही दाढ़ी निकल आई थी। दसवीं तक पहुंचते पहुंचते मुल्ला आसी कहलाने लगे। ये ऐसा चिपका कि इसी नाम से पहचाने और पुकारे जाते हैं। नेम प्लेट पर भी A. Asi A. Mannan लिखा है।

अजीब तमाशा है। इकहरा गठा हुआ बदन। खुलता हुआ गेहुंआ रंग, मंझोला कद। आजानुभुज यानी असाधारण लंबे हाथ, जैसे बंदर के होते हैं। कोट हैंगर के से ढलके हुए कंधे। घने बाल अब सफेद हो गये हैं मगर घुंघरालापन बाकी है। बाहर निकली हुई मछली जैसी गोल गोल आंखें, दायीं आंख और मुंह के दायें कोने में बचपन में ही Tick था। अब भी इसी तरह फड़कते रहते हैं। दाढ़ी निकलने के दस साल बाद तक रेजर नहीं लगने दिया। सच पूछिये तो दाढ़ी से बहुत बेहतर लगते थे। लंबी गर्दन, छोटा और गोल मटोल चेहरा, जिस रोज दाढ़ी मुंडवा आये तो ऐसे लगे जैसे हुक्के पर चिलम रक्खी है।

मुल्ला आसी खुद कहते हैं कि समझ आने और बालिग होने के बाद मैंने कभी नमाज नहीं पढ़ी। अलबत्ता कहीं नमाज के समय फंस जाता और लोग जिद करते तो पढ़ा देता था। दाढ़ी का ये बड़ा हैंडीकैप था। आखिर तंग आकर मुंडवा दी। जबसे उन्होंने बुद्धिज्म का ढोंग रचाया, लोगों ने मुल्ला भिक्षू कहना शुरू कर दिया। अभी तक `र` साफ नहीं बोल सकते थे मगर उनके मुंह से अच्छा लगता है। बातचीत का लहजा जैसे मिसरी की डली। सनकी जैसे तब थे, अब भी हैं, बल्कि और उभार पर हैं। करीब से देखा तो देखता-ही रह गया, जीवन ऐसे भी गुजारा जा सकता है। सारा काम छोड़ कर साये की तरह साथ रहे, मजा आ गया, क्या बताऊं ऐसी दरिया मुहब्बत, ऐसा बरखा प्यार।

यकीन कीजिये सन् 48 में जैसा छोड़ कर आये थे वैसे के वैसे ही हैं। पिचहत्तर से कुछ ऊपर ही होंगे, लगते नहीं। मैंने पूछा, इसका क्या राज है? बोले कभी शीशा नहीं देखता, कसरत नहीं करता। कल के बारे में नहीं सोचता। आखिरी बात उन्होंने कुछ जियादा ही बढ़ा-चढ़ा कर कही, इसलिए कि कल तो बाद की बात है, ऐसा लगता है वो आज के बारे में भी नहीं सोचते। जिस पीड़ा से जीवन शुरू किया, उसी से बिता दिया। बड़ी गर्मजोशी से मिले। सीने से क्या लगाया, अचानक Twenties में पहुंचा दिया। ऐसा लगा जैसे अपने ही जवान स्वरूप से भेंट हो गयी है। वैसे मैं आपकी इस राय से सहमत हूं कि कुछ लोग इस तरह सीने से लगते हैं कि उसके बाद आप वो नहीं रहते जो इससे पहले थे लेकिन आपने जिस चपड़कनात बुजुर्ग की मिसाल दी, मैं उससे सहमत नहीं, दिल नहीं ठुकता।

आप आज भी मुल्ला आसी को हर एक का काम, हर तरह का काम करने के लिए तैयार पायेंगे, सिवाय अपने काम के। शहर में हर अफसर से उनकी जान पहचान है। किसी को आधी रात को भी सिफारिश की जुरूरत हो तो वो साथ हो लेते हैं। कोई बीमार बेआसरा हो तो दवा-दारू, हाथ-पैर की सेवा के लिए पहुंच जाते हैं। होम्योपैथी में भी दख्ल रखते हैं। होम्योपैथिक दवा में असर हो या न हो उनके हाथ में शिफा जुरूर है। बीमार घेरे रहते हैं। मशवरे और दवा का कुछ नहीं लेते।

जवानी में भी ऐसे ही थे। इलाहदीन के जिन्न की तरह हर काम करने के लिए तैयार। बला के इंतजाम करने वाले। सन् 47 की घटना है, गर्मियों के दिन थे, मियां तजम्मुल हुसैन को दूर की सूझी, किसलिए कि उनके वालिद कलकत्ता गये हुए थे। कहने लगे यार मुल्ला `मुजरा देखे अरसा हुआ, आखिरी मुजरा जमाल साहब के बेटे की शादी पर देखा था, सात महीने होने को आये, दस बारह जने मिल कर चंदा कर लेंगे। बस तुम बिल्ली की गर्दन बल्कि पैरों में घुंघरू बांध कर लिवा लाओ तो मजा आ जाये।`

कोर्निश बजा लायेगी : शनिवार को देखा कि दोपहर की नमाज के बाद अपनी जिम्मेदारी को इक्के में बिठाये लिए आ रहे हैं। खुद इक्के के पर (तख्ते का बाहर निकला किनारा) पे टिके हुए थे। पानदान, तबले, सारंगी, चौरासी (घुंघरू) और बुढ्ढे तबलची को अपने हाथों से उतारा। मेरे कान में कहने लगे, दाढ़ी के कारण तवायफ को मेरे साथ आने में संकोच था। रुपया तो खैर हम सबने चंदा करके इकट्ठा किया मगर बाकी सारा इंतजाम उन्हीं पर था। इसमें शहर के बाहर इस सरकारी बंगले का चयन और अनुमति भी सम्मिलित थी जहां ये महफिल होनी थी। डिप्टी कलक्टर से उनकी यारी थी।

दस्तरख्वान पर खाना उन्होंने अपने हाथ से चुना। कानपुर से सफेद और लाल रसगुल्लों के कुल्हड़ स्वयं खरीद कर लाये, मीठे में मिला कर खाने के लिए मलाई खासतौर से लखनऊ से मंगवायी। उनका कहना था कि गिलौरियां भी वहीं की एक बांकी तंबोलिन के हाथ की हैं। करारे पान की गिलौरी इस तरकीब से बनाती है कि किसी के खींच के मारे तो बिलबिला उठे। गिलौरी टुकड़े-टुकड़े भले ही हो जाये लेकिन मजाल है कि खुल जाये। दस्तरख्वान बिछने से जरा पहले अपनी निगरानी में तंदूरी रोटी पर गुड़ और नमक का छींटा दिलवाया। कानपुर में इसे छींटे की रोटी कहते थे। दो ताजा कलई की हुई सिलफचियों में नीम के पत्ते डाल कर रखवा दिये। मुजरे और दावत का सारा इंतजाम कर दिया। सब खाने पर बैठ गये तो किसी ने पूछा मुल्ला कहां हैं? ढुंडैया पड़ी। कहीं पता न था। महफिल तो हुई मगर उकतायी हुई रही। दूसरे दिन उनसे पूछा गया तो तुनक कर बोले, आपने मुझे इन्वाइट कब किया था। मेरे सुपुर्द इंतजाम किया गया था, सो मैंने कर दिया।

क्या छिपकली दूध पिलाती है : स्वभाव का सदैव से यही रंग रहा। जो टेढ़ और सनक तब थी, वो अब भी है। कुछ बढ़ ही गयी है। एक घटना हो तो सुनाऊं। पढ़ाई का जमाना था। वो कोई असामान्य बौड़म नहीं थे। मेरा मतलब है सामान्य श्रेणी के नार्मल नालायक थे। परीक्षाओं में तीन महीने रह गये थे, दिसंबर का महीना-कड़कड़ाते जाड़े। उन्होंने क्रिसमस के दिन से पढ़ाई की तैयारियां प्रारंभ कीं।

वो इस तरह कि आंखों और दिमाग को तरावट पहुंचाने के लिए सर मुंडवा कर तेल से सिंचाई की, जो एक मील दूर से पहचाना जाता था कि विशुद्ध सरसों का है। पहली ही रात उनके सर पर नजला गिरा तो दूसरे दिन चहकते हरे रंग का रुई का टोपा सिलवाया जिसे पहन कर पान खाते तो बिल्कुल तोता लगते थे। वृहस्पतिवार को तड़के सफेद बकरी की सिरी और कलेजी खरीद लाये। सिरी पकवा कर शाम को फकीरों को खिलाई। उस जमाने में बेपर्दगी के अंदेशे से मुहल्ले के मर्दों को छत पर चढ़ना मना था। इसके बावजूद छत पर खड़े हो कर देर तक चील, चील, चील, पुकारा किये, फिर हवा में उछल-उछल कर चीलों को कलेजी की बोटियां और खुद को पर्दे वाले घरों के मर्दों की गालियां खिलवायीं। दोपहर को बान की चारपायी बाहर निकाली और औटते पानी से उन खटमलों को जिन्हें बरसों अपना खून पिला कर बड़ा किया था, अंतिम स्नान कराया, फिर चारपायी धूप में उल्टी करके मुर्दों और अधमरों पर ढेरों गर्म मिट्टी डाली।

मच्छरदानी के बांस में झाड़ू बांध कर ततैया के छत्ते और जाले उतारे। रात को अलग-अलग समय पर छत पर टार्च से रौशनी डाल-डाल कर छिपकलियों की संख्या की गिनती की। उनमें तीन छिपकलियां शायद छिपकले थे। शायद इसलिए कि मिर्जा के कथानानुसार पक्षियों, छिपकलियों, मछलियों, पंक्स और उर्दू शब्दों में नर-मादा पहचान पाना मनुष्य के बस का काम नहीं। पक्षी, छिपकलियां, मछलियां और पंक्स तो फिर भी शारीरिक आवश्यकताओं के वशीभूत अपने-अपने विपरीत लिंग को पहचान कर क्रिया और कार्य करते हैं लेकिन उर्दू शब्दों के केस में तो यह सुविधा भी उपलब्ध नहीं। उनके लिंग तय करना और स्त्री-पुरुष की पहचान करना, टटोलना संभव ही नहीं।

उस्ताद जलील मानकपुरी ने कभी एक शोधपरक लेख स्त्रीलिंग और पुलिंग पर लिखा था, जिनमें सात हजार शब्दों के यौन-परीक्षण के बाद हर एक के बारे में दो टूक फैसला कर दिया था कि वे स्त्री हैं या पुरुष। साथ ही उन शब्दों की भी पहचान कर दी थी, जिनके लिंग के बारे में असमंजस था और जिन पर लखनऊ वाले और दिल्ली वाले एक-दूसरे का सर फोड़ने को तैयार हो जाते थे।

वो तीन रंगीन स्वभाव के छिपकले, जिनके कारण से यह बात निकली, टर्राते थे। रात भर डबलडैकर बने छत पर छुटे फिरते थे, जिसके कारण पढ़ायी और मानसिक शांति के भंग होने का भय था। इन सब कुकर्मियों को उनके अंतिम बुरे परिणाम तक पहुंचाने के लिए वो एक दोस्त से डायना एयरगन मांग कर लाये, मगर चलाई नहीं क्योंकि उनके अनुसार, लिबलिबी पर हाथ रचाते ही ध्यान आया कि उनमें कइयों के दूध पीते बच्चे हैं।

मैंने टोका कि यार, छिपकली अपने बच्चों को दूध नहीं पिलाती। बोले, तो फिर जो कुछ पिलाती है वो समझ लो। छत की झाड़-पोंछ के बाद दीवार की बारी आई, लिखने की मेज के ऊपर टांगी हुई माधुरी, कज्जन और सुलोचना एक्ट्रेसों की तस्वीरें हटायीं तो नहीं, मगर उल्टी कर दीं। खुद को सही मार्ग पर रखने और खुदा का खौफ दिलाने की गरज से तस्वीरों के बीचों-बीच आपने वालिद गिरामी (पूज्य पिता) का, जो बड़े हथछुट और विकट बुजुर्ग थे, फोटो टांग दिया। ड्रेकुला की तरह शीशे भी कपड़े से ढंक दिये ताकि चेहरे पर इम्तहान की घबराहट देख कर और न घबरायें। उनके दोस्त हरि प्रकाश पांडे ने इम्तहान के जमाने में सात्विक रहने और ब्रह्मचर्य का बड़ी सख्ती से पालन करने की ताकीद की जो बिल्कुल बेतुकी थी। कारण कि उनकी और हमारी नस्ल के लिए असात्विक रहना प्रॉबलम नहीं, हार्दिक इच्छा थी।

खुद को ठंडा, और शांत रखने का उन्होंने यह गुर बताया कि मन में कोई ऐसी वैसी कामना आ जाये, तो फौरन अपने अंगूठे में पिन चुभो लिया करो और जब तक इच्छा पूरी तरह दिल से निकल न जाये पिन चुभोये रखो, मगर हुआ ये कि उनके मुंह से हमेशा चीख निकल गयी लेकिन इच्छा नहीं निकली। पहले ही दिन यह नौबत आ गयी कि दोनों Pin Cushions यानी दोनों अंगूठों में पिन चुभोने की जगह न रही। पांव के अंगूठे प्रयोग करने पड़े। दूसरे दिन जब वो जूते पहनने के काबिल न रहे तो पिन चुभोने की बजाय मुस्कुरा देते और कपड़ा हटा कर शीशा देख लेते थे।

बुरी आदतों से तौबा कर ली थी, मतलब यह कि रात गये तक अनुपस्थित दोस्तों की बुराई, ताश, शतरंज, बाइस्कोप और बुरी सुहबत यानी अपने-ही जैसे दोस्तों की सुहबत से मीयादी तौबा की, यानी क्रिसमस के दिन से परीक्षा के दिन तक और दिल में both days inclusive कह कर मुस्कुरा दिये। मसनवी `जह्रे-इश्क`, जो एक प्रतिबंधित किताब थी और दस-बारह बदनाम मसनवियों के वृहद संस्करण, जिनकी गिनती उन दिनों Porn में

होती थी, ताला बंद अलमारी से निकाले। यह सब उनके हाथ की लिखी नक्लें थीं। इन सब को ताश की दो गड्डियों के साथ, जिनमें से एक नयी थी, जलाने के लिए सहन में ले गये।

लालटेन से तेल निकाल कर अभी पुरानी गड्डी जलाई ही थी कि बड़ों की एक नसीहत याद आ गयी कि कोई भी काम हो, जल्दबाजी नहीं करनी चाहिये। जल्दी का काम शैतान का। अतः शैतान के काम पर लानत भेजी और नयी गड्डी और मसनवियां वापस ले आये। फिर दो पेन्सिलें और छह रबर खरीदे कि उनके यहां इन चीजों के इस्तेमाल का यही अनुपात था। आप भी तो पेन्सिल से लिखते हैं कि पांडुलिपि फेयर करने के झमेले से बच जायें, मगर दुश्मनों का कहना है - लिखते कम हैं, मिटाते अधिक हैं। आपने पेन्सिल की लत मुख्तार मसऊद को भी लगा दी। अब वो भी आपकी तरह रबर से लिखते हैं।

फिर मुल्ला आसी `रफ-वर्क` के लिए रद्दी वाले के यहां से रेलवे की बड़ी रसीदों और बिल्टियों की पांच सेर कापियां एक आने में खरीद लाये। उस समय के मितव्ययी लड़के उनकी पीठ पर रफ वर्क करते थे। आधा सेर सौंफ भी लाये। उसके कंकर मुहल्ले की एक कुंवारी लड़की से बिनवा कर एक शीशी में इस तरह सुरक्षित कर लिए, जिस तरह आप्रेशन के बाद कुछ वाचाल मरीज गुर्दे और पित्ते की पथरियां सजा कर रखते हैं और दिखाते, बताते हैं मगर कुंवारी लड़की की अलग कहानी है, कभी और सही। फिर सौंफ में एक पाव धनिये के बीज मिला कर दोनों मर्तबान में भर दिये। हरि प्रकाश पांडे ने कहा था कि धनिये के अर्क की दो बूंदें भी मस्त सांड़ या भड़कते ज्वालामुखी पे डाल दो तो वहीं बुलबुले की तरह बैठ जायेगा। सौंफ से आंखों की ज्योति बढ़ती है और दिमाग को तरावट पहुंचती है, चुनांचे एक फुंकी नींद के झोंके से पहले और एक बाद में मार लेते थे।

जब पढ़ाई का माहौल बन गया तो पढ़ाकू लड़कों से पूछताछ करके कोर्स की किताबों की लिस्ट बनायी; कुछ नयी, मगर अधिकतर सेकिंड-हैंड खरीदीं। सैकिंड-हैंड किताबों को कम कीमत के कारण नहीं, बल्कि केवल इसलिए प्रमुखता दी कि कई एडीशन ऐसे मिल गये जिनमें फेल होने वाली दो-तीन अनुभवी पीढ़ियों ने एक के बाद दूसरे आवश्यक हिस्सों पर निशान लगाये थे। कई निशान तो लाइट हाउस की तरह थे, जहां ज्ञान की तलाश में निकले हुए बेध्यान लड़कों की उदास नस्लों का बेड़ा गर्क हुआ था।

एक अद्भुत किताब ऐसी भी हाथ लगी जिसमें केवल अनावश्यक हिस्से अंडरलाइन किये गये थे ताकि उन्हें छोड़-छोड़ कर पढ़ा जाये। उन्हें विश्वास था कि कोर्स की किताबों की उपलब्धता के बाद परीक्षक के विरुद्ध युद्ध में आधी विजय तो प्राप्त कर ही चुके हैं। इसके बाद वो हरि प्रकाश पांडे के घर गये, जो गवर्नमेंट कॉलेज में हमेशा फर्स्ट आता था। चिरौरी, विनती करके उसकी सारी किताबें दो दिन के लिए उधार लीं और इक्के में ढोकर घर लाये, फिर छठी क्लास के एक गरीब लड़के को एक आने दैनिक की दिहाड़ी पर इस काम के लिए तैनात किया कि हरि प्रकाश पांडे की किताबों में जो हिस्से अंडरलाइन किये हुए हैं, उन्हीं के अनुसार मेरी तमाम किताबें हरी पेन्सिल से अंडर लाइन कर दो। फिर एक आने में रबर की दो मुहरें Important और Most Important की खड़े-खड़े बनवायीं और अपनी किताबों के सैट पांडे को दे आये कि जिन-जिन हिस्सों को तुम इम्तहान की दृष्टि से आवश्यक समझते हो, आवश्यकता के हिसाब से मुहरें लगा दो। ...प्लीज!

किताबों की किस्में और नकटे दुश्मन : सब निशान लग गये तो उन्होंने अनावश्यक और फालतू ज्ञान से छुटकारा पाने के लिए एक और हंगामी टैकनीक का आविष्कार किया, जिसे वो Selective Study कहते थे। इसका उर्दू पर्यायवाची तो मुझे मालूम नहीं;

विस्तृत विवरण ये कि जो सवाल पिछले साल आ चुके थे, उनसे संबंधित चैप्टर पूरे के पूरे कैंची से काट कर फेंक दिये कि उनके कारण ध्यान भटकता था और दिल पर किताब की मोटायी देख-देख कर घबराहट बैठती थी। यही नहीं उनकी अमर बेल की-सी जड़ें जो दूसरे चैप्टरों में कैंसर की Secondaries की तरह फैली हुईं जहां-जहां नजर आईं, काट कर फेंक दीं। फिर वो चैप्टर भी निकाल फेंके जिनके बारे में उनके परामर्शदाताओं और शुभचिंतकों ने कहा कि इनमें से कोई सवाल आ ही नहीं सकता। थोड़ा-बहुत अपने अंतर्ज्ञान से भी काम लिया। अंत में जी कड़ा करके वो कठिन हिस्से भी निकाल फेंके जिन्हें वो दस बार भी पढ़ते तो कुछ पल्ले न पड़ता। इस शल्यक्रिया से किताबें छंट-छंटा कर एक-चौथाई से भी कम रह गयीं।

इनमें से तीन के चिथड़े तो ऐसे उड़े कि उनके अवशेषों को क्लिप से दूसरी किताबों के नेफे में उड़सना पड़ा। एक किताब का तो केवल गत्ता ही शेष रह गया, इसके कुछ अनावश्यक पन्ने शगुन और परीक्षक का दिल बहलाने के लिए रख लिए। उनका प्रोग्राम था कि जीवन और आंखों ने साथ न छोड़ा तो इन चयनित पन्नों के खास-खास हिस्सों पर एक उचटती-सी नजर डाल लेंगे। आखिर हर किताब एक ही ढंग से तो नहीं पढ़ी जा सकती। फिर ईश्वरीय कृपा और स्वाभाविक समझ-बूझ भी तो कोई चीज है। रही फेल होने की आशंका तो `इस तरह तो होता है, इस तरह के कामों में` बहरहाल अपनी शक्तिशाली बांहों से मेहनत करके सम्मानित ढंग से फेल होना, नक्ल करके पास होने से हजार-गुना बेहतर है।

किसी ने इन्हें किताबों के बारे में बेकन का मशहूर कथन सुनाया जो उनके दिल को बहुत भाया। मजे की बात यह है कि बेकन का यह निबंध उनके कोर्स में शामिल था और उसे उन्होंने बेकार समझते हुए काट कर फेंक दिया था। वो `कोटेशन` आपको तो याद होगा। कुछ इस तरह है कि कुछ किताबें सिर्फ चखी जानी चाहिये, कुछ को निगल जाना चाहिये। कुछ इस लायक होती हैं कि आहिस्ता-आहिस्ता चबा-चबा कर हज्म की जायें; कुछ ऐसी होती हैं, जिन्हें किसी वैकल्पिक व्यक्ति से पढ़वा कर संक्षिप्त करवा लेना चाहिये। मुल्ला आसी ने इस अंतिम निष्कर्ष में इतना जोड़ अपनी ओर से किया कि अगर सब नहीं तो अधिकतर किताबें इस लायक होती हैं कि सूंघ कर ऐसों के लिए छोड़ दी जायें, जो नाक नहीं रखते।

इतिहास का कलेजा : इतिहास की समस्या को भी उन्होंने पानी कर दिया। वो इस तरह कि हरि प्रकाश पांडे से कहा कि परीक्षक की दृष्टि से जितने सन् आवश्यक हों उनकी List बना कर मुझे दे दो, ताकि एक ही हल्ले में सबसे निपट लूं, लेकिन बीस से अधिक न हों। अब तक वो केवल पांच-छह सनों से काम चला रहे थे। मास्टर फाखिर हुसैन ने एक बार कहा था कि इतिहास, जैसा कि इसके नाम से ही प्रकट है, सनों के संकलन के अतिरिक्त कुछ नहीं। अपने जवाब में जितने अधिक सन् लिखोगे, उतने ही अधिक नंबर मिलेंगे। लेकिन जब मास्टर फाखिर हुसैन ने यह कहा कि हमारे यहां बड़े आदमियों का मरण दिवस उनके जन्म दिवस से अधिक महत्वपूर्ण होता है तो मुल्ला आसी का माथा ठनका कि दाल में कुछ काला है। मास्टर साहब ने ये टिप भी दिया कि परीक्षक अपना मन तुम्हारे पहले उत्तर के पहले पैराग्राफ से बना लेता है। इस आंखें खोल देने वाले ज्ञानार्जन के बाद दसवीं क्लास की जो छहमाही परीक्षा हुई, उसमें मुल्ला आसी ने पहले ही सवाल में कॉपी पर इतिहास का कलेजा निकाल कर रख दिया। मतलब ये कि पहले पन्ने के पहले पैराग्राफ की गागर में वो सारे सन् भर दिये जो वो अपनी हथेली और "Swan ink" के डिब्बे के पेंदे पर लिख कर ले गये थे।

इन सनों का मूल प्रश्न से कोई संबंध नहीं था, बल्कि आपस में भी कोई संबंध नहीं था। उन सबको एक लड़ी में इस तरह पिरो देना कि मास्टर फाखिर हुसैन पर अपनी नसीहत के परिणाम प्रकट हो जायें, सिर्फ उन्हीं का काम था।

सवाल लार्ड डलहौजी की पॉलिसी पर आया था। उनका जवाब मुझे पूरा तो याद नहीं, लेकिन उसका पहला पैराग्राफ जिसमें उन्होंने धर्म-संप्रदाय की चिंता, परवाह किये बिना सारे बादशाहों को एक ही लाठी से हांक कर मौत के घाट उतारा, कुछ इस तरह था।

अशोक महान (मृत्यु 232 ई.पू.) के बाद सबसे बड़ा साम्राज्य औरंगजेब (मृत्यु 1680) का था जो 1658 ई. में अपने बाप का तख्ता उलट कर सिंहासन पर बैठा। इस बीच में पानीपत में घमासान की जंग हुई, मगर उथल-पुथल समाप्त न हुई। हालांकि औरंगजेब ने अपने भाइयों के साथ दुश्मनों का-सा सुलूक किया, यानी एक के बाद दूसरे को मौत के घाट उतारा, अगर वो ये न करता तो भाई उसके साथ यही करते। दरअस्ल, अकबर (जन्म 1542, मृत्यु 1605) की चौकस आंख बंद होते ही साम्राज्य के बिखराव के आसार शुरू हो गये जो लगातार शाही मौतों के बाद 1757 में प्लासी के युद्ध और 1799 में श्रीरंगापट्टम के युद्ध के बाद प्रखर हुए। उधर योरोप में नेपोलियन (मृत्यु 1852) का तूती रुक-रुक कर बोलने लगा था। (यहां उन्हें दो सन् और याद आ गये चुनांचे उन्हें भी आग में झोंक दिया) यह नहीं भूलना चाहिये कि फीरोज तुगलक (मृत्यु 1388) ई.) और बलबन (मृत्यु 1287) भी साम्राज्य को स्थिरता नहीं दे सके थे। यहां हमें यह भी नहीं भूलना चाहिये कि 1757 से 1857 तक...।

सन् को परीक्षक को ढेर कर देने के उपकरण के तौर पर प्रयोग करने और इतिहास का सही मूल्यांकन करने से संबंधित मास्टर फाखिर हुसैन की नसीहत उन्होंने पल्ले में बांध ली। उन्हें अपनी सही जन्मतिथि मालूम नहीं थी; अतः उसके खाने में `नामालूम` लिख दिया करते थे। लेकिन जिस दिन मास्टर फाखिर हुसैन ने कचोका दिया कि बेटे! हमारे यहां नामालूम तो केवल वल्दियत हुआ करती है तब से अपने अनुमानित जन्म-वर्ष 1908 के बाद A. D. भी लिखने लगे ताकि भ्रम न रहे और कोई कूढ़मग्ज B. C. न समझ बैठे।

जिस जमाने का यह जिक्र है, उनकी याददाश्त खराब हो चली थी। कोई बात या जवाब दिमाग पर जोर डालने के बावजूद याद न आये तो `इस समय मन एकाग्र नहीं है` इस तरह कहते कि हम अपनी नालायकी पर लज्जित होते कि कैसे गलत समय पर सवाल कर बैठे। साहब! अगले वक्तों के शिक्षकों की शान ही कुछ और थी।

परीक्षा संबंधी चालाकियों पर मास्टर फाखिर हुसैन का एक पाइंट और याद आया। फर्माते थे कि जहां मुश्किल शब्द प्रयोग कर सकते हो वहां आसान शब्द न लिखो। तुम विद्यार्थी हो। सादगी तो केवल विद्वानों को शोभा देती है।

मुल्ला अब्दुल मन्नान और नेपालियन : इसी तरह के एक शुभ चिंतक ने एक जमाने में टिप दिया था कि अगर तीन Essays और तीन ऐतिहासिक युद्ध रट लो तो अंग्रेजी और इतिहास में फेल होना असंभव है, बशर्ते कि परीक्षक ज्ञान-गुण-अग्राही और मूर्ख न हो। ये वो जमाना था, जब वो हर मशवरे पर शब्द-शब्द अमल करते थे चुनांचे हर बार एक भिन्न ढंग से फेल होते और परीक्षक की नालायकी पर रह-रह कर अफसोस करते। वाटरलू का परिणामकारी संग्राम, जिसमें उनके हीरो नेपोलियन की चूर-चूर कर देने वाली पराजय हुई, उन तीन युद्धों में, जो उन्होंने युद्ध के नक्शे समेत रट लिए, उनका फैवरेट था। दोस्तों को अपने फेल होने की सूचना भी इन्हीं ऐतिहासिक शब्दों में देते थे जिसमें विद्यार्थी की लज्जित विनम्रता की जगह जनरली घमंड पाया जाता था।

I have met my waterloo

बाद में अपने जीवन की अन्य असफलताओं का ऐलान भी इन्हीं ऐतिहासिक शब्दों में करने लगे थे, मगर साहब! नेपोलियन की और उनकी असफलताओं में जमीन-आसमान का अंतर था। नेपोलियन तो एक ही पराजय में ढेर हो गया था, मगर उनके पराजय के ऐलान में दुबारा पराजित होने का फौलादी संकल्प पाया जाता था।

ताला नहीं खुलता : जब परीक्षक को जाल में फांसने के तमाम हथकंडे और शार्टकट पूरे हो गये तो परीक्षा में कुल चार हफ्ते शेष रह गये थे। शार्टकट दरअस्ल उस रास्ते को कहते हैं जो बुद्धिमान मगर सुस्त लोग कम-से-कम दूरी को अधिक-से-अधिक समय में तय करने के लिए ढूंढ़ते हैं। साहब! दूरी को मीटर से नहीं, समय से नापना चाहिये। खैर अब मुल्ला आसी सचमुच पढ़ाई में जुट गये। सुब्ह सात-आठ पूरियों, पाव भर कड़ाही से उतरती जलेबियों और रात भर तारों की छांव में भीगे दस बादामों की ठंडाई का नाश्ता करने के बाद वो खुद को कमरे में बंद करके बाहर से ताला डलवा देते कि खुद भी अगर चाहें तो बाहर न निकल सकें। शाम के वक्त ताला खुलता था। दो ढाई हफ्ते यही चलता रहा, मगर परीक्षा नहीं दी। कहने लगे, दिमाग का ताला नहीं खुलता।

और साहब! ताला खुलता भी कैसे? परीक्षा के कुछ दिन पहले यह ढंग बना लिया कि शाम होते ही साइकिल ले कर निकल जाते और पौ-फटे लौटते। परचे आउट करने की मुहिम में लगे हुए थे। जिन-जिन प्रोफेसरों के बारे में उन्हें जरा भी शक हुआ कि उन्होंने परचा बनाया होगा, उनके चपरासियों, रसोइयों, मेहतरों यहां तक कि उनके दूध पीते बच्चों को आयाओं समेत cultivate कर रहे थे। जैसे ही कहीं से हिंट मिलता या गैस पेपर हाथ लगता, उसे रातों-रात घर-घर बांट रहे थे।

जब वो अधिकारी लोगों, यानी शहर के तमाम नालायक छात्रों तक पहुंच जाता तो किसी दूसरे परचे को आउट करने की मुहिम पर साइकिल और मुंह उठाये निकल जाते। एक रात देखा कि एक प्रिटिंग प्रेस के बाहर जो कागज की कतरनें, प्रूफ की रद्दी और कूड़ा करकट पड़ा था, उसे उन पर में आस्था रखने वाले खास नालायक से दो बोरियों में भरवा कर बारीक मुआयने के लिए अपने घर ले आये। उन्हें किसी ने बहुत खुफिया हिंट दिया था कि एक परचा इसी प्रेस में छपा है।

उनके जासूस शहर के अलग-अलग हिस्सों में काम कर रहे थे। उनके कथनानुसार आगरा, मेरठ, बरेली, राजपूताना और सेंट्रल इंडिया के शहरों में, जिनका आगरा यूनिवर्सिटी से संबंध था, उनके गुप्तचरों ने जासूसी का जाल बिछा रक्खा था। (जिससे किसी परीक्षक का सम्मानित ढंग से बच निकलना असंभव था) ये सब वो थे जो कई साल से अलग-अलग विषयों में फेल हो रहे थे। हर जासूस उसी विषय के परचे में स्पेशलाइज किये हुए था जिसमें वो पिछले साल लुढ़का था। Leaakage और गुप्त सूचनाओं के सोते सूखने लगे तो उन्होंने हिम्मत नहीं हारी, अपनी अंतरात्मा की आवाज और अंतर्ज्ञान से इस कमी को पूरा किया।

पहला परचा सैट करने वाले परीक्षक के घर के बाहर थड़े पर गरदन और पैर लटकाये दो घंटे तक परचे की बू लेते रहे। तीन प्रश्न इसी हालत में सूझे। घर आ कर इनमें तीन प्रश्नों की वृद्धि इस तरह की कि दस प्रश्नों की कागज की गोलियां बनायीं और उसी कुंवारी लड़की के, जिसका जिक्र पहले कर चुका हूं, पांच साला भाई से कहा कि कोई-सी तीन उठा लो। सोमवार की सुब्ह पहला परचा था। इतवार की रात को सुब्ह चार बजे तक दस सवालों पर आधारित अपना आउट किया हुआ परचा हर उस छात्र के घर पहुंचाया, जो पिछले सालों में लगातार फेल होता रहा था या जिसमें उन्हें आइंदा फेल होने की जरा भी योग्यता दिखाई दी।

इस परमार्थ से सुब्ह साढ़े तीन बजे निवृत्त हुए। घर आ कर ठंडे पानी से नहाये। बाहर निकल कर भोर के तारे की तरफ टकटकी बांधे देर तक देखा किये, एक हिंदू पड़ौसी से जो कुएं की मन पर लुटिया से स्नान कर रहा था और हर लुटिया के बाद जितनी अधिक सर्दी लगती उतने ही जोर से `हरि ओम` `हरि ओम` पुकार रहा था, बाहर से ताला लगाने को कहा। फिर अंदर आकर सो गये, किस लिए कि दिमाग का ताला नहीं खुला था।

मुल्ला आसी की सिद्धि और चमत्कार : जितनी मेहनत और साधना, परोपकार के लिए परचे आउट करने में की, उसकी 1/100 भी अपनी पढ़ाई में कर लेते तो फर्स्ट डिवीजन में पास हो जाते। बहरहाल अफसोस इसका नहीं कि उन्होंने ऐसे वाहियात काम में समय नष्ट किया, रोना इस बात का है कि परीक्षा के पहले परचे में आठ में से पांच सवाल ऐसे थे जो इनके आउट किये हुए परचे में मौजूद थे। ऐसा लगता था कि परीक्षक ने उनका परचा सामने रख कर परचा सैट किया है। ये भी सुनने में आया कि परीक्षक के खिलाफ इन्क्वायरी हो रही है। मुल्ला आसी ने तो यहां तक कहा कि परीक्षक ने वो थड़ा ही तुड़वा दिया जिस पर बैठे-बैठे उन्हें अंतर्ज्ञान (बोध) हुआ था, एक अर्से तक वो जगह सूफियों में चर्चा का विषय रही, खुदा जाने।

अब क्या था, सारे शहर में उनकी धूम मच गयी। दूसरे दिन उनके घर के सामने परीक्षा में बैठने वाले छात्रों के ठठ लग गये, इसके बाद परीक्षा में चार दिन का नागा था। इस बीच में पास और दूर के छात्रों ने... कोई बस, कोई ट्रेन, कोई पैदल... झुंड के झुंड आ कर उनके घर के सामने पड़ाव डाल दिया। यू.पी. के नालायक लड़कों का ऐसा विराट सम्मेलन आसमान ने न कभी इससे पहले, न उसके बाद देखा। ये भी सुनने में आया कि पुलिस ने केस अपने हाथ में ले लिया है; भीड़ में सी.आई.डी. के आदमी बापों को भेस बनाये फिर रहे हैं। मुल्ला आसी का बयान था कि दो बुरके वाली लड़कियां भी आई थीं, उनमें से लंबी वाली लड़की के बारे में शकील अहमद ने, जो क्लास का सबसे छोटा और चिकना लड़का था, ये गवाही दी कि उसने मेरे कूल्हे पे चुटकी ली और उसकी नकाब के पीछे मुझे ताव दी हुई मूंछ नजर आई, खुदा जाने।

हालांकि मुल्ला आसी अब खुद इम्तहान में नहीं बैठ रहे थे लेकिन औरों की खातिर दिन-रात एक किये हुए थे। कहते थे अगर खुद इम्तहान में बैठ जाऊं तो सारी सिद्धि समाप्त हो जायेगी। छात्रों में ये अफवाह आग की तरह फैल गयी कि जब से बोध हुआ है, मुल्ला आसी दुनिया से किनारा करके सूफी हो गये हैं और लगातार चमत्कार घटित हो रहे हैं। उनसे पूछा गया तो उन्हें जवाब दिया, मैं इस अफवाह का खंडन नहीं कर सकता।

वो कमरे में ताला डलवा कर दिन-भर छटी इंद्रिय की मदद से परचा बनाते। रात को ठीक बारह बजे और फिर ढाई बजे अपने मामू मरहूम सज्जाद अहमद वकील का पुराना काला गाउन पहने सिद्धि स्थान से बाहर तशरीफ लाते और परचा आउट करते। तीन दिन तक यही नक्शा रहा। सिद्धि, विद्धि के बारे में मैं कुछ नहीं कह सकता, मुझे तो उनके चेहरे पर तपस्या करने वाले साधुओं की गंभीर शांति नजर आई। आंखें एक चौथाई से जियादा नहीं खोलते थे। गोश्त, लहसुन और झूठ छोड़ दिया था। सुब्ह तड़के ऐसे ठंडे पानी से स्नान करते कि चीख को रोकने के लिए पूरा जोर लगाना पड़ता। निगाहों की पवित्रता का ये आलम कि औरत तो औरत, मुर्गी या बकरी भी सामने आ जाये तो ब्रह्मचारियों की तरह शरमा कर नजरें नीची कर लेते। विपरीत लिंग से इतना एहतियात और परहेज कि कई ऐसे शब्दों को भी पुल्लिंग बोलने लगे जो अंधे को भी नजर आते हैं कि स्त्रीलिंग हैं। गरज कि परचे आउट करने के लिए अपनी सारी दैहिक, दैविक और भौतिक ताकतें दांव पर लगा दीं।

पहले परचे को छोड़कर, बाकी परचों में उनका बताया हुआ एक सवाल भी नहीं आया। वो मुंह दिखाने के काबिल न रहे। उनके पक्ष में बस यही कहा जा सकता है कि उन्होंने अच्छे इरादे से ईश्वर की सृष्टि की रेड़ मारी। इस साल कानपुर और इसके आस-पास पचास साठ मील के दायरे में जितने भी लड़के फेल हुए उन सबका यही कहना था कि मुल्ला आसी के आउट किये हुए परचों के कारण लुढ़के हैं। हद ये कि आदी फेल हो जाने वाले लड़के, जो हर साल किस्मत और परीक्षक को गालियां दिया करते थे, वो भी मुल्ला आसी की जान के पीछे पड़ गये। नौबत गाली-गलौज पर आने लगी तो वो चुपके से अपने ननिहाल अमरोहा सटक गये। एक लड़के के मामा ने तो मुल्ला आसी के मामा को सरे-बाजार मारा-पीटा। एक-डेढ़ महीने तक उनके खानदान का कोई बुजुर्ग घर से बाहर नहीं निकल सका।

तो साहब ये थे हमारे मुल्ला आसी अब्दुल मन्नान। चंद सनकों को छोड़ दें तो जवानी उनकी भी वैसी गुजरी, जैसी उस जमाने में आम छात्रों की गुजरती थी, आपने उस दिन मिर्जा अब्दुल वुदूद बेग का एक चिरांदा सा जुमला सुनाया, किस-किस बवाल, बल्कि आफत से जुड़ी होती थी जवानी उस जमाने में।

साल-भर ऐश, इम्तिहान से पहले चिल्ला (चालीस दिन की साधना) मुंहासे, मुशायरों में हूटिंग, आगा हश्र काश्मीरी के ड्रामे, रिनाल्ड और मौलाना अब्दुल हलीम शरर के इस्लामी नॉविल, सोने से पहले आधा-सेर औटता दूध, बिना-नागा दंड-बैठक, जुमे के जुमे नहाना, रातों की गपशप, रेलवे स्टेशन पर लेडीज कंपार्टमेंट के सामने (बत्तख की-सी अकड़ी चाल में चहलकदमी) अंग्रेज के खिलाफ नारे और उसी की नौकरी की तमन्ना।

मुल्ला आसी ने सारी जिंदगी इसी तरह गुजार दी। सेहरा बंधा, न शहनाई बजी, न छुआरे बंटे, खुद ही छुहारा हो गये। मैंने बहुत कुरेदा, पुट्ठे पर हाथ नहीं रखने देते। गढ़े-गढ़ाये विकट वाक्य लुढ़काने लगे, जो उनके अपने नहीं मालूम होते `बस तमाम उम्र ऐसी अफरातफरी रही कि इस सुख-चैन के बारे में सोचने की फुर्सत ही न मिली, मुझे तो औरतों के बगैर जिंदगी में कोई कमी महसूस न हुई अलबत्ता उनका कोई अधिकार छिना हो तो मुझे जानकारी नहीं, अल्लाह मुआफ करे वगैरा-वगैरा।` अब भी इसी कमरे में रहते हैं जिसमें पैदा हुए। मेरा तो सोच कर ही दम घुटने लगा कि कोई शख्स, अपनी सारी जिंदगी, सत्तर-पिचहत्तर बरस एक ही मुहल्ले, एक ही मकान, एक ही कमरे में कैसे बिता सकता है। कराची में तो इतने साल आदमी कब्र में भी नहीं रह सकता, जहां कब्र खोदने वालों ने देखा, अबके शबे-बरात, ईद, बकरीद पर भी कोई फातिहा पढ़ने नहीं आया, वहीं हड्डियां और पिंजर निकाल कर फेंक दिये और ताजा मुर्दे के लिए जगह बना ली।

साहब वैसे तो दुनिया में एक-से-एक Crack Pot (सनकी) पड़ा है, लेकिन मुल्ला आसी का सवा लाख में एक वाला मामला है। इनके एक परिचित का कहना है कि आखिरी `वाटर लू` के बाद खिसक गये हैं। नमाज इस तरह पढ़ते हैं जैसे बहुत से मुसलमान शराब पीते हैं यानी चोरी छिपे। एक साहब बोले - `मुद्दत हुए इस्लाम को छोड़े।` इस पर दूसरे साहब बोले कि - `मुसलमान थे कब जो छोड़ते` हैदर मेंहदी ने बताया कि एक दिन मैंने पूछा - `मुल्ला क्या ये सच है कि तुम बुद्धिस्ट हो गये हो?` हंसे, कहने लगे `जब मैंने पचासवें साल में कदम रखा तो खयाल आया, जिंदगी का कोई भरोसा नहीं, क्यों न अपनी आस्था का करेक्शन कर लूं।`

एक दिन बहुत अच्छे मूड में थे, मैंने घेरा, पूछा कि `मौलाना बुद्धिज्म में तुम्हें इसके अलावा और क्या खूबी नजर आई कि महात्मा बुद्ध अपनी बीबी यशोधरा को सोता छोड़ कर रातों-रात सटक गये?` मुस्कुराये, कहने लगे, `मेरी यशोधरा तो मैं खुद हूं, वो भाग-भरी तो, अब अगले जन्म में जागेगी,` एक रहस्य से परिचित ने तो यहां तक कहा,

मुल्ला आसी ने वसीयत की है कि मेरी लाश तिब्बत ले जाई जाये, हालांकि तिब्बत वालों ने उनको कभी कोई नुकसान नहीं पहुंचाया। प्रोफेसर बिलगिरामी, जो एक स्थानीय कॉलेज में अंग्रेजी पढ़ाते हैं, इस अफवाह का सख्ती से खंडन करते हैं। वो कहते हैं कि मुल्ला आसी ने वसीयत लिखी है कि मेरी लाश को बगैर नहलाये जला दिया जाये। गरज कि जितने मुंह, उतने इल्जाम, उतनी लानतें। लेकिन इतना तो मैंने भी देखा कि कोने में उनकी मां की नमाज की चौकी पर नमाज की चटायी उल्टी बिछी थी यानी चटायी के डिजाइन का मुंह पश्चिम की जगह पूरब की तरफ था।

सुना है इस पर आसन मार के ध्यान और तपस्या करते हैं, तूंबी भी पड़ी देखी, जिसके बारे में एक दोस्त ने कहा - अगर उन्होंने कभी संजीदगी से कोई होल-टाइम पेशा अपनाया तो इसी तूंबी में घर-घर भीख मांगेंगे। मेज पर जेन बुद्धिज्म पर पांच छह किताबें पड़ी थीं। मैंने यूं ही पन्ने पल्टे, अल्लाह जाने उन्हें किसने अंडर लाइन कराया है। कमरे में सिर्फ एक डैकोरेशन पीस है, ये एक इंसानी खोपड़ी है जिसके बारे में मशहूर है कि गौतमबुद्ध की है निर्वाण से पहले की।

सलीके से तह की हुई एक गेरुवा चादर पर गज भर लंबा चिमटा रखा था, मुझे तो बजाने वाला, अपने आलम लाहौर वाला चिमटा लगा। पास ही लकड़ी की साधुओं वाली खड़ावें पड़ी थीं। वही जिनके पंजे पर शतरंज का ऊंट बना होता है। नमाज की चौकी पर एक मिट्टी का पियाला, इकतारा, बासी-तुलसी और बुद्ध की मूर्ति रखी थी। संक्षिप्त कथा ये कि कमरे में बुद्धिज्म के उपकरण धूल में अंटे इधर-उधर पड़े थे। मुझे तो ऐसा लगा कि उनका मकसद सिर्फ नुमाइश है, गोया दूसरों का मुंह चिढ़ाने के लिए अपनी नाक काट ली।

खुल जा सिम-सिम : आप जरा गैस कीजिये वो क्या करते हैं, मैं आपको दो मिनट देता हूं। (आधे मिनट बाद ही) जनाब! वो ट्यूशन करते हैं। गरीब लड़कों को मैट्रिक की तैयारी करवाते हैं, रात को बारह-एक बजे लौटते हैं। पांच-छह मील चल कर जाना तो कोई बात ही नहीं, कहते हैं। `सवारी से मिजाज मोटा होता है सिवाय गधे की सवारी के। इसीलिए इजराईल के पैगंबरों ने गधे की सवारी की है।` मगर सुना है पढ़ाने का पैसा एक नहीं लेते। कहते हैं - `पूरब की हजारों साल पुरानी रीत है कि पानी, उपदेश और ज्ञान का पैसा नहीं लिया जाता, पैसा ले लो तो अंग नहीं लगता और अंततः पैसा भी नहीं बचता। आज तक ऐसा नहीं हुआ कि पैसा देकर बदले में प्राप्त किये हुए ज्ञान से कोई आत्मिक परिवर्तन आया हो। सच्चा परिवर्तन केवल नजर से आता है और नजर का कोई मोल नहीं।

अल्लाह जाने गुजर-बसर कैसे होती है? ईश्वरीय कृपा तो हो नहीं सकती, चूंकि बुद्धिस्ट ईश्वर और उसकी कृपा को मानते नहीं, भीख को प्रधानता देते हैं। दर्शन का एक पूरा किला खड़ा कर लिया है मुल्ला आसी ने। हम जैसों के पल्ले तो खाक नहीं पड़ता। अब इसे पागलपन कहिये, झक कहिये, बस है तो है। कौन कह सकता था कि पढ़ाई से भागने वाला लड़का, पढ़ाने में अपना निर्वाण तलाश करेगा। याद नहीं आपका कथन है कि मेरा, कि पाकिस्तान में जो लड़के पढ़ाई में फिसड्डी होते हैं वो फौज में चले जाते हैं और जो फौज के लिए Medically unfit होते हैं, वो कालिजों में प्रोफेसर बन जाते हैं। साहब, कुदरत जिससे जो चाहे काम ले, आप भी तो एक जमाने में लेक्चरर बनने की तमन्ना रखते थे। खुदा ने आप पर बड़ा अहसान किया कि इच्छा पूरा न होने दी। वैसे आपको मालूम ही है, मैंने भी कई बरस टीचरी की है, दिल की बात पूछिये तो जीवन का सुनहरा काल वही था।`

लेकिन खूब बात है; सभी कहते हैं कि पढ़ाते बहुत अच्छा हैं। अच्छा शिक्षक होने के लिए शिक्षित होने की शर्त नहीं है। कुछ समय तब गवर्नमेंट स्कूल में भी पढ़ाया। लेकिन जब एजुकेशन डिपार्टमेंट ने ये पख लगाई कि तीन साल

के अंदर B.T.C. पास करो वरना डिमोट कर दिये जाओगे, तो ये कह कर इस्तीफा दे दिया कि, `मैं बेसब्रा आदमी हूं, तीन साल इस घटना के इंतजार में नहीं गुजार सकता। मैं हमेशा बी.टी. पास टीचरों से पढ़ा और फेल हुआ।` इसके बाद कहीं नौकरी नहीं की। अलबत्ता अंधों के स्कूल में मुफ्त पढ़ाने जाते हैं। लहजे में मिठास और धीरज बला का है, हमेशा से था। शब्दों से बात समझ में आती है, लहजे से दिल में उतर जाती है। जादू शब्दों में नहीं लहजे में होता है। अलिफ लैला के खजानों का दरवाजा हर ऐरे-गैरे के, `खुला जा सिम सिम` कहने से नहीं खुलता, वो इलाहदीन का लहजा मांगता है। दिलों के ताले की ताली भी शब्द में नहीं, लहजे में होती है। अपनी बात दुहरानी पड़े या दूसरा उलझने लगे तो उनका लहजा और भी रेशम हो जाता है। लगता है फालूदा गले से उतर रहा है। हर अच्छे शिक्षक के अंदर एक बच्चा बैठा होता है जो हाथ उठा-उठा कर, सर हिला-हिला कर बताता जाता है, कि बात समझ में आई कि नहीं। अच्छे शिक्षक का पढ़ाना बस उस बच्चे से वार्तालाप है जो उम्र भर चलता रहता है। उन्होंने उस बच्चे को बच्चा ही रहने दिया।

वो कमरा बात करता था : मुल्ला आसी से उसी कमरे में घमासान की मुलाकातें रहीं, जहां पैंतीस बरस पहले उन्हें खुदा-हाफिज कह कर पाकिस्तान आया था। उस जमाने में सभी पाकिस्तान खिंचे चले आ रहे थे... जमीन-जायदाद, भरे-बतूले घर..., लगे-लगाये रोजगार और अपने यारों-प्यारों को छोड़ कर। उसी कमरे में मुझे गले लगा कर विदा करते हुए कहने लगे, `जाओ, सिधारो मेरी जान, तुम्हें खुदा के सुपुर्द किया।` आज भी उन्हें इतना ही आश्चर्य होता है कि भला ठीक-ठाक होशो-हवास वाला कोई शख्स कानपुर कैसे छोड़ सकता है। कमरे में वही पंखा, उसी डगमग-डगमग कड़े में लटका, उसी तरह चर्रख-चूं करता रहता है।

मुझे तो जब बात करनी होती थी तो पंखा ऑफ कर देता था। ये पंखा चलते ही आंधी-सी आ जाती है और किताबों, दीवारों और दरी पर जमी हुई धूल कमरे में उड़ने लगती है, जिससे मच्छरों का दम घुटने लगता है। वो पंखा गर्मी से नहीं मच्छरों से बचने के लिए चलाते हैं, मगर कम बहुत ही कम। इसलिए नहीं कि बिजली की बचत होती है, बल्कि चलाने से पंखा घिसता है। इसकी लाइफ कम होती है। माशाअल्लाह! चालीस-पैंतालीस बरस का तो होगा, इन हिसाबों सौ तक तो घसीट ले जायेंगे।

कई साधुओं और जोगियों का मानना है कि इंसान के भाग्य में भगवान ने गिनती के सांस लिखे हैं, चुनांचे अधिकतर समय सांस रोके बैठे रहते हैं ताकि जिंदगी दम घुटने से लंबी हो जाये। मजबूरी और तकलीफ में सांस इसलिए ले लेते हैं कि इसे रोक सकें। बस पंखे की उम्र भी इसी तरह लंबी की जा रही है।

उनके कमरे में गोया एक दुनिया की सैर हो गयी, संसार-दर्शन का कमरा कहिये, हर चीज वैसी की वैसी है बल्कि वहीं की वहीं है। कसम से मुझे तो ऐसा लगा कि मकड़ी के जाले भी वही हैं, जो छोड़ कर आया था। केवल एक परिवर्तन देखा, दाढ़ी फिर मुंडवा दी है। पूछा तो गोल कर गये। कहने लगे, `दाढ़ी उस समय तक ही बरदाश्त है जब तक काली हो।` इस पर इनआम साहब आंख मारते हुए कहने लगे - `महात्मा जी भी तो मुंडवाते थे।` कमरे का नक्शा वही है, जो सन 47 में था। अलबत्ता दीवारों पर चीकट चढ़ गयी है, सिर्फ वो हिस्से साफ नजर आये जिनका प्लास्टर हाल में झड़ा है। बायीं दीवार पर पलंग से दो फिट ऊपर, जहां पैंतालीस साल पहले मैंने पेन्सिल से पिकनिक का हिसाब लिखा था, उनकी ऊपर की चार लाइनें अभी तक ज्यों-की-त्यों हैं। साहब रुपये में 192 पाई होती थीं और एक पाई आजकल के रुपये के बराबर थी। हैरत इस पर हुई कि दीवार पर भी हिसाब करने से पहले मैंने 786 लिखा था।

बकौल आपके मिर्जा अब्दुल वुदूद वेग के, उस जमाने में मुसलमान लड़के हिसाब में फेल होने को अपने मुसलमान होने की दलील समझते थे, हिसाब, किताब, व्यापार और हर वो काम जिसमें फायदे की जरा सी भी संभावना हो, बनियों, बक्कालों और यहूदियों का काम माना जाता था मगर मुझे चक्रवर्ती अर्थमेटिक कंठस्थ थी। पौना, सवाया और ढाई का पहाड़ा मुझे अब तक याद है। इनका फायदा-वायदा तो समझ में खाक नहीं आया। दरअस्ल ये उनकी उच्छृंखलता को मारने, बल्कि खुद उन्हीं को उच्छृंखलता समेत मारने का एक बहाना था। मुसलमान पर याद आया कि यह जो पांच वक्त टक्करें मारने का गट्टा आप देख रहे हैं, ये पच्चीस छब्बीस बरस की उम्र में पड़ चुका था। मियां तजम्मुल हुसैन की दोस्ती और नियाज फत्हपुरी के लेख भी नमाज न छुड़वा सके, आपको विश्वास नहीं होगा दो-तिहाई बाल भी उसी उम्र में सफेद हो गये थे।

खैर तो ये कह रहा था शीशम की मेज के ऊपर वाली दीवार पर मैट्रिक की फेयरवैल पार्टियों के ग्रुप फोटो लगे हैं, लगातार पांच सालों के। खुदा-खुदा करके पांचवीं साल उनका बेड़ा उस वक्त पार लगा, जब उनका एक क्लासफेलो B.A. करके उन्हें अंग्रेजी पढ़ाने लगा।, पांचों में वो हैडमास्टर के पीछे कुर्सी की पीठ मजबूती से पकड़े खड़े हैं। मशहूर था कि वो इस कारण पास नहीं होना चाहते कि पास हो गये तो मॉनीटरी खत्म हो जायेगी, कॉलेज में मास्टर का क्या काम।

एक फोटो सीपिया रंग का है। मैं तो इसमें अपना हुलिया देख कर भौंचक्का रह गया, या अल्लाह ऐसे होते थे हम जवानी में। कैसे उदास होते थे लड़के उस दिन, अंतिम सांस तक दोस्ती निभाने का वादा, दुखी मानवता की सेवा और एक-दूसरे को सारी उम्र हर तीसरे दिन खत लिखने की कैसी-कैसी कसमें। मेज पर अभी तक वही हरी बनात मढ़ी हुई है। रौशनाई के धब्बों से 9/10 नीली हो गयी है। टूट के जी चाहा कि बाकी 1/10 पर भी दवात उडेल दूं ताकि ये रंग किसी तरह खत्म तो हो। चपरासियों की वर्दी भी इसी बनात की बनती थी। सर्दी कड़ाके की पड़ने लगती तो कभी-कभी स्कूल का चपरासी बशीर डांट कर हमें घर वापस भेज देता कि मियां! कोट, लंगोट से काम नहीं चलेगा, कमरी, मिरजई (रुई की बास्कट) डाट के आओ। मगर खुद घर से एक पतली मिरजई पहन कर आता जो इतनी पुरानी हो गयी थी कि पैटर्न के चारखाने के हर खाने में रुई का अलग गूमड़ा बन गया था। यूनिफार्म की अचकन घर पहन कर नहीं जाता था। मैंने उस पर कोई सिलवट या दाग नहीं देखा। छुट्टी का घंटा इस तरह बजाता कि घड़ियाल खिलखिला उठता।

बड़े काम और छोटा आदमी : मछली बाजार की मस्जिद शहीद होने पर मौलाना शिबली की `हम कुश्तगाने-मारका-ए-कानपुर हैं` वाली अद्भुत नज्म अभी तक उसी कील पर लटक रही है, जो ठोंकने में दुहरी हो गयी थी। साहब, जिस शख्स ने कील ठोकते वक्त हथौड़ा कील के बजाय अपने अंगूठे पर कभी भी नहीं मारा मुझे उसकी वल्दियत में शक है। ऐसे चौकस, चालाक आदमी से होशियार रहना चाहिये। इस मस्जिद के बारे में ख्वाजा हसन निजामी ने लिखा था कि ये `वो मस्जिद है जिसके सामने हमारे बुजुर्गों की लाशें तड़प-तड़प कर गिरीं और उनकी सफेद दाढ़ियां खून से लाल हो गयीं।

नज्म के फ्रेम का शीशा बीच में ऐसा तड़खा है कि मकड़ी का जाला-सा बन गया है। मैंने कोई पचास साल बाद ये पूरी नज्म और `बोलीं अम्मा मुहम्मद अली की, जान बेटा खिलाफत पे दे दो` वाली नज्म पढ़ी। क्या निवेदन करूं। दिल पर वो असर न हुआ। उस काल के कई जनांदोलन, मसलन, रेशमी-रूमाल वाला आंदोलन, खिलाफत, बलकान का युद्ध (लुत्फ मरने का अगर चाहे तो चल बलकान चल) स्त्रियों की शिक्षा और साइंसी शिक्षा का विरोध

(जिसमें अकबर इलाहाबादी आगे-आगे थे) शारदा एक्ट के विरोध में मुसलमानों का मौलाना मुहम्मद अली के नेतृत्व में आंदोलन... ये और बहुत ऐसे ही काम, जिनके लिए कभी जान की बाजी लगा देने का जी चाहता था, अब अजीब लगते हैं।

खिलाफत मूवमेंट ही को लीजिये। उसका समर्थन तो गांधीजी ने भी किया था। इससे अधिक जोशीले, देशव्यापी, व्यवस्थित, उल्टे और बेतुके आंदोलन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है, मगर वो बड़े लोग थे। आज काम तो बड़े हो रहे हैं, मगर आदमी छोटे हो गये हैं। वो अजीब भावनात्मक काल था। मुझे याद है बद्री नारायण ने एक बार महमूद गजनवी को लुटेरा मुल्लड़ कह दिया तो जवाब में अब्दुल मुकीत खां ने शिवाजी को Mountain Rat कहा। इस पर बात बढ़ी और बद्री नारायण ने मुगल बादशाहों का नाम ले लेकर बुरा-भला कहना शुरू कर दिया। औरंगजेब की बेटी पर तो बहुत ही गंदा आरोप लगाया। जवाब में अब्दुल मुकीत खां ने पृथ्वीराज चौहान, महाराणा प्रताप, मिर्जा सवाई मान सिंह को तूम के रख दिया। लेकिन जब महाराजा रणजीत सिंह पर हाथ डाला तो ब्रदीनारायण तिलमिला उठा, हालांकि वो सिख नहीं था, गौड़ ब्राह्मण था। दोनों वहीं गुत्थमगुत्था हो गये। मुकीत खां का अंगूठा और ब्रदीनारायण की नाक का बांसा टूट गया, दोनों एक ही लौंडे पर आशिक थे।

चिड़िया की दुसराहट : दीवारों पर वही पलस्तर में उभरी हुई नसें, वही उपदेशात्मक पोस्टर और चारपायी भी वही, जिसके सिरहाने वाले पाये पर अब्दुल मुकीत खां ने चाकू से उस लौंडे का नाम खोदा था और उसी से उंगली में चीरा लगा कर खून अक्षरों में भरा था। आप भी दिल में कहते होंगे कि अजीब आदमी है, इसकी कहानी में तवायफ खुदा-खुदा करके विदा होती है तो लौंडा दर्राता चला आता है। साहब, क्या करूं? इन पापी आंखों ने जो देखा, वही तो बयान करूंगा।

आप मीर की समग्र रचनावली उठाकर देख लीजिये, उनकी आत्मकथा पढ़ लीजिये, मुसहफी के दीवान देखिये, आपको जगह-जगह इसकी तरफ खुल्लमखुल्ला इशारे मिलेंगे। साहब! औरतों के बारे में तो बात करने की जुगत बी.ए. में आ कर लगती थी। अब उस लौंडे का नाम क्या बताऊं? कांग्रेस की टिकिट पर मिनिस्टर हो गया था, करप्शन में निकाला गया। एक डिप्टी सेक्रेट्री की बीबी से शादी कर ली जो डिसमिस होने के तीन महीने बाद एक सिख बिजनेसमैन के साथ भाग गयी। उस जमाने के शारीरिक आनंद के अभाव और घोर-घुटन का आप बिल्कुल अंदाजा नहीं लगा सकते। इसलिए कि आप उस समय तक बालिग नहीं हुए थे। मजाज ने झूठ नहीं कहा था -

मौत भी इसलिए गवारा है

मौत आता नहीं है, आती है

साहब! विश्वास कीजिये, उस जमाने का हाल ये था कि औरत का एक्सरे भी दिख जाता तो लड़के उसी पर दिलो-जान से फिदा हो जाते।

रौशनदान में अब शीशे की जगह गत्ता लगा हुआ है। उसके सूराख में से एक चिड़िया बड़े मजे से आ-जा रही थी। नीचे झिरी में घोंसला बना रक्खा है। उसके बच्चे चूं-चूं करते रहते हैं। एक दिन मुल्ला आसी कहने लगे कि बच्चे जब बड़े हो कर घोंसला छोड़ देंगे तो हमारा घर बहुत सुनसान हो जायेगा। धूल में दरी की लाइनें मिट गयी हैं।

मियां तजम्मुल के सिग्रेट से चालीस, पैंतालीस बरस पहले सूराख हो गया था, वो अब बढ़ कर इतना बड़ा हो गया है कि उसमें से तरबूज निकल जाये, सूराख के हाशिये पर फूसड़ों की झालर-सी बन गयी है। उसके पीछे से वही रेलवे वेटिंग-रूम और डाक-बंगलों वाला कत्थई रंग का सीमेंट का फर्श काट खाने को दौड़ता है। मियां तजम्मुल हुसैन की उम्र उस वक्त कुछ नहीं तो तीस बरस होगी। तीन बच्चों के बाप बन चुके थे, मगर बड़े हाजी साहब (उनके पिता) का रोब इतना था कि सिग्रेट की तलब होती तो किसी दोस्त के यहां जा कर पी आते थे। हाजी साहब सिग्रेट की गिनती आवारगी में करते थे, खुद हुक्का पीते थे। बाइस्कोप की गिनती बदमाशी में करते थे चुनांचे मियां तजम्मुल हुसैन को तन्हा सिनेमा देखने नहीं जाने देते थे। खुद साथ जाते थे।

छिपकली की कटी हुई दुम : छत बिल्कुल खस्ता, दीमक की खाई हुई कड़ियां, पंखे का कड़ा घिसते-घिसते चूड़ी बराबर रह गया है। मैं ज्योतिषी तो हूं नहीं, ये कहना मुश्किल है कि इन तीनों में पहले कौन गिरेगा। मिलने आने वाले को ऐन पंखे के नीचे बिठाते हैं। उस गरीब की आंखें हर समय पंखे पर ही जमी रहती हैं। एयरगन से मैंने जहां छिपकली मारी थी, और हां, छिपकली पर याद आई, आपके उस दोस्त की, जिसकी चिट्ठी हॉस्टल के लड़कों ने चुरा कर पढ़ ली थी। उसकी बीबी ने क्या लिखा था? हिंदी में थी शायद, जगत नारायण श्रीवास्तव नाम था, नयी-नयी शादी हुई थी। लिखा था `राम कसम, तुम्हारे बिना रातों को ऐसे तड़पती हूं, जैसे छिपकली की कटी हुई दुम।`

वाह! इस उपमा के आगे बिना पानी की मछली की उपमा पानी भरती है मगर आप इसे नास्टेल्जिया के मारे लोगों के लिए सिंबल के तौर पर इस्तेमाल करते हैं। ये जियादती है। ये तो मैं आपको बता चुका हूं कि मुल्ला आसी की कमाई का कोई साधन नहीं है, न कभी था मगर ठाली भी नहीं रहे। बेराजगार हमेशा रहे, मगर बेकार कभी नहीं। शायद सन 50-51 की बात है, उनकी मां उनकी नौकरी लगने तथा बुद्धिज्म से छुटकारे की मिन्नत दूसरी बार मांगने अजमेर-शरीफ गयीं। वहीं किसी ने कहा, अम्मां! तुम हजरत दाता गंजबख्श के मजार पर जाओ। वहां खुद ख्वाजा अजमेरी ने चिल्ला खींचा था। सो वो छह महीने बाद मिन्नत मांगने लाहौर चली गयीं। मजार पर चढ़ाने के लिए जो कामदार रेशमी चादर वो साथ ले गयीं थीं, उसमें न जाने कैसे शाम को आग लग गयी। लोगों ने कहा कि वजीफा उल्टा पड़ गया। कृपा-दृष्टि न होनी हो तो भेंट स्वीकार नहीं होती। वो रात उन्होंने रोते गुजारी। सुब्ह को नमाज पढ़ते हुए सिजदे की हालत में परलोक सिधार गयीं। दमे और दिल की बीमारी थी। लाहौर में ही मियानी साहब कब्रिस्तान में दफ्न हैं।

मां की मौत के बाद उनके घर में चूल्हा नहीं जला। उन्होंने मकान का बाकी हिस्सा किराये पर उठा दिया। किरायेदार ने पंद्रह साल से वो भी देना बंद कर दिया है। सुना है अब उल्टा इनको कमरे से निकालने के लिए कानूनी कारवाई करने वाला है।

चपरासी की नौकरी का स्वर्णकाल : बशीर चपरासी से मिलने गया। बिल्कुल बूढ़ा फूस हो गया है, मगर बंदूक की नाल की तरह सीधा, जरा जोश में आ जाये तो आवाज में वही कड़का। कहने लगा मियां! बेगैरत हूं, अब तो इसलिए जिंदा हूं कि अपने छोटों को, अपनी गोद में खिलाये हुओं को कंधा दूं। हमारा भी एक जमाना था। अब तो पसीना और सपने आने भी बंद हो गये। छटे छमाहे कभी सपने में खुद को घंटा बजाते देख लेता हूं तो तबियत दिन-भर चोंचाल रहती है। अल्लाह का शुक्र है अभी हाथ-पैर चलते हैं। मास्टर समी `उल` हक मुझसे उम्र में पूरे 12 बरस छोटे हैं, तिस पर ये हाल कि याददाश्त बिल्कुल खराब, पेट उससे जियादा खराब। लोटा हाथ में लिए खड़े

हैं और यह याद नहीं आ रहा कि पाखाने जा रहे हैं या होकर आ रहे हैं। अगर आ रहे हैं तो पेट में गड़गड़ाहट क्यों हो रही है? और जा रहे हैं तो लोटा खाली क्यों हैं?

मुझे हर लड़के का हुलिया और हरकतें याद हैं। मियां! आपकी गिनती ठीक-ठाक शक्ल वालों में होती थी। हालांकि सर मुंडाते थे। मुल्ला आसी औरतों की तरह बीच की मांग निकालता था। आपका दोस्त आसिम गले में चांदी का तावीज पहनता था। जिस दिन उसका मैट्रिक का पर्चा था, उसी दिन सुब्ह उसके वालिद की मौत हुई। जब तक वो पर्चा करता रहा, मैं खड़ा अलहम्द और आयतुल-कुर्सी पढ़ता रहा। दो बार आधा-आधा गिलास दूध पिलाया और जिस साल कोयटा में भूकंप आया, उसी साल आपके दोस्त गजनफर ने इंजन के सामने आ कर आत्महत्या की थी। अपने बाप का इकलौता बेटा था। पर मेरे तो सैकड़ों बेटे हैं। कौन भड़वा कहता है - बशीर बेऔलादा है।

शराफत से गाली देने वाले : फिर कहने लगा ये भी मालिक की कृपा है कि सही वक्त पर रिटायर हो गया। नहीं तो कैसी दुर्गत होती। अल्लाह का शुक्र है चाक चौबंद हूं। बुढ़ापे में बीमारी लानत है। फालतू तंदुरुस्ती को आदमी काय पे खर्च करे। मियां! हट्टा-कट्टा बुड्ढा न घर का न घाट का। उसे तो घाट की हेर फेरी में ही मजा आवे है। चुनांचे पिछले साल टिलकता हुआ स्कूल जा निकला। देखता-का-देखता रह गया। चपरासी साहब बिना चपरास, बिना अचकन, बिना पगड़ी-टोपी के कुदकड़े मारते फिर रहे थे। मियां! मैं तो आज तक पाखाने भी बिना टोपी के नहीं गया, और न कभी बगैर लंगोट के नहाया।

एक दिन हमीदुद्दीन चपरासी ने अपनी अचकन रफूगर को रफू करने के लिए दी और सिर्फ कुरता पहने ड्यूटी करने लगा। हैड मास्टर साहब बोले कि आज तुम बच्चों के सामने काय को नंगी तलवार से फिर रहे हो? हमारे जमाने में चपरासी का बड़ा रौब हुआ करता था। हैड मास्साब सलाम करने में हमेशा पहल करते। आपने तो देखा ही है, मुझे आज तक किसी टीचर ने बशीर या तुम कह कर नहीं पुकारा और मैंने भी किसी छोटे को तुम नहीं कहा।

एक बुरी जबान वाले हैडकांस्टेबल ने मुझे एक बार भरे बाजार में `अबे परे हट` कह दिया। मैं उस टेम अपनी सरकारी यूनिफार्म में था। मैंने उसे दोनों कान पकड़ के हवा में उठा लिया। ढाई मन की लाश थी। मैंने जिंदगी में बड़े-से-बड़े तीसमारखां का घड़ियाल बजा दिया। आजकल के तो चपरासी शक्ल-सूरत से चिड़ीमार लगे हैं। हमारे जमाने के रख-रखाव, अदब-आदाब कुछ और ही थे। शरीफ लोगों की जबान पर तू और तेरी नहीं आता था। गाली भी देते तो आप और आपकी कहते थे, मियां! आपके दादा बड़े गुस्सैल थे पर बड़ी तहजीब से गाली देते थे। संबोधित के स्तर के अनुसार भोंदू, भटियारा, भड़भूजा, भांड। कोई बहुत ही बेशर्म हुआ तो भाड़ू, भड़वा कह दिया। एक दिन उर्दू टीचर कहने लगा, वो बड़े भारी विद्वान हैं। गाली नहीं बकते, अलंकार पहनाते हैं। कमाल के टीचर थे। उनकी बातें दिल में ऐसे उतरती थीं जैसे बावली में सीढ़ियां। किस कारण कि मुझ जैसे कम पढ़े-लिखे का आदर करना जानते थे। मियां! आजकल के घमंडी मास्टर अपने-आपको सबसे बड़ा समझते हैं। नया ज्ञान इन्हें यूं चुभे है जैसे नया जूता। पर सारा समंदर डकोस के और सारी सीपियां निगल के एक भी मोती नहीं उगल सकते।

आखिरी घंटा : ये कह के बशीर चचा देर तक पोपले मुंह से हंसता रहा। अब तो मसूढ़े भी घिस चले मगर आंख में अभी तक वही ट्विंकल, फिर टूटे मूढ़े पर अकड़ कर बैठ गया। शेखी ने, थोड़ी देर के लिए ही सही गर्दन, हाथ और आवाज का कांपना दूर कर दिया। कहने लगा, मियां! यकीन जानो, घंटा सुन के मुझे तो हौल आने लगा। अब हर घसियारा-डोम दिहाड़ी घंटा बजाने लगा है। अब तो सत्यानासी ऐसे घंटा बजावे हैं, जैसे दारू पी के होली का ढोल पीट रहे हों। ऐसे में बच्चे क्या खाक पढ़ेंगे। पांचवां घंटा तो मैंने जैसे-तैसे सुना, फिर फौरन से पहले भाग लिया।

किस वास्ते कि छटा घंटा सुनना बर्दाश्त से बाहर था। बूढ़ा खून एक बार खौल जाये तो फिर बड़ी मुश्किल से जा कर ठंडा होवे है।

मुझे पंद्रह साल की नौकरी और जूतियां सीधी करने के बाद घंटा बजाने के अधिकार मिले थे। उस जमाने में घंटा बजाने वाला सम्मानित और अधिकार वाला होता था। एक दिन हैडमास्टर साहब के घर से खबर आई कि घरवाली के यहां बाल-बच्चा लगभग हुआ चाहता है, हड़बड़ी में वो सालाना इम्तहान के परचे मेज पर खुले छोड़ गये। उस रात मैं घर नहीं गया। रात भर परचों पर सरकारी वर्दी पहने सांप बन कर बैठा रहा। इसी तरह एक बार की बात है - भूगोल के मास्टर को मुझसे और मुझे उनसे अकारण दुश्मनी हो गयी। मियां अनुभव की बात बताता हूं। अकारण दुश्मनी और बदसूरत औरत से प्यार, वास्तव में दुश्मनी और प्यार की सबसे निखालिस और खतरनाक किस्म हैं। किस वास्ते कि ये शुरू ही वहां से होती है जहां अक्ल खत्म हो जावे है।

मतलब ये कि मेरी मत तो दुश्मनी में मारी गयी थी मगर उसकी अक्ल का दिया एक बदसूरत औरत ने बुझाया, जो मेरे ही मुहल्ले में रहती थी। मुहब्बत अंधी होती है, चुनांचे औरत का सुंदर होना जुरूरी नहीं। बस मर्द का अंधा होना काफी होता है। ये कह कर बशीर चचा पेट पकड़ कर पोपले मुंह से हंसा। आंखों से भी हंसा। फिर कहने लगा हमारी जवानी में काली-कलूटी औरत को काली नहीं कहते थे, सांवली कहते थे। काली से अफीम और शक्ति की देवी अभिप्रेत होती थी। तो मैं कहने यह चला था कि जब भूगोल का मास्टर नवीं-दसवीं का घंटा लेता तो मैं घंटा दस मिनट देर से बजाने लगा। वो तीसरे ही दिन चीं बोल गया। दूसरे टीचर भी त्राहि-त्राहि करने लगे। मुझे स्टाफ रूम में कुर्सी पे बिठाल के बोले, `बशीर मियां अब गुस्सा थूक भी दो, घुन के साथ हमें काय को पीस रहे हो।`

मैंने हमेशा अपने मर्जी और अटकल से घंटा बजाया। बंदा कभी घड़ी का गुलाम नहीं रहा। मेरे अंदर की टिक-टिक ने मुझे कभी धोखा नहीं दिया। अपनी मर्जी का मालिक था। मजाल है कोई मेरे काम में टांग अड़ाये। अपने कानपुर के मौलाना हसरत मोहानी की मौत हुई तो कसम खुदा की, किसी से पूछे-पाछे बगैर मैंने छुट्टी का घंटा बजा के स्कूल बंद करवा दिया। गुलाम रसूल एक डरपोक क्लर्क था। बोला कि बशीर! तेरी खैर नहीं। डायेरक्टर ऑफ एजुकेशन तुझसे जवाब-तलब करेगा। मैं बोला, सेवक का जवाब ये होगा कि महामहिम निश्चिंत रहें, जब आप स्वर्गवासी होंगे तब भी बिना पूछे छुट्टी का घंटा बजा कर स्कूल बंद कर दूंगा।

पर जब वल्लभ भाई पटेल के मरने की सूचना मिली तो हैड मास्साब ने कहा बशीर! छुट्टी का घंटा बजा दो। मैंने दो बार सुनी-अनसुनी कर दी। तीसरी बार उन्होंने फिर कहा तो उधर को मुंह फेर के लुंज-लुंजे हाथ से बजा दिया। किसी ने सुना किसी ने नहीं सुना। सन सैंतालीस के बाद तो केवल हाते की दीवार की परछाईं देख कर घंटा बजाने लगा था। पास-पड़ौस वाले घंटे से अपनी घड़ियां मिलाते थे। रिटायर हुए अब तो पंद्रह बरस होने को आये पर अब भी पहले और आखिरी घंटे के समय सीधे हाथ में चुल-सी उठती है। बुरी तरह फड़कने लगता है।

कोई सोच नहीं सकता नौकरी का आखिरी दिन आदमी पे कितना भारी होवे है। मेरा आखिरी दिन था और मैं आखिरी घंटा बजाने जा रहा था कि रस्ते में एकाएकी जी भर आया। वहीं बैठ गया। मजीद चपरासी को मूंगरी थमते हुए बोला, `बेटा मुझमें इसकी ताकत नहीं, अपना चार्ज यहीं संभाल ले। कूच-नगाड़ा तू ही बजा।` फिर हेड मास्साब से मिलने गया तो वो बोले कि बशीर मियां, मास्टर लोग तुम्हें विदाई भेंट के रूप में एक अच्छी-सी घड़ी देना चाहते हैं। मैंने कहा, जनाबे-अली, मैं घड़ी ले के क्या कंरूगा? मुझे कौन सी टाइमकीपरी करनी है। जब घंटा ही घड़ी देखे बिना बजाता रहा तो अब अंतिम समय में कौन-सा काम है, जो घड़ी देख के करूंगा। अलबत्ता कुछ देना

ही है तो ये चपरास (वर्दी) दे दीजिये। चालीस साल पहनी है। कहना पड़ेगा कि हैड मास्साब का दिल बड़ा था। त्योरी पे बल डाले बिना बोले, `ले जाओ` वो सामने खूंटी पर टंगी है। तीन चार महीने में एक बार इसके पीतल को नींबू से झमाझम चमका लेता हूं। अब हाथों में पहली-सी ताकत नहीं रही। चपरास के बिना कंधा बिल्कुल खाली-खाली उलार-सा लगे है। कभी-कभी पालिश के बाद गले में डाल लेता हूं तो आप ही मेरा कूबड़ निकल जाता है। घड़ी भर के लिए पहले की तरियों चलत-फिरत आ जावे है।

मियां! 1955 की बात है। जबरदस्ती स्कूल बंद करवाने पे तुले सैकड़ों हड़ताली गुंडों ने धावा बोल दिया। हाथापाई-मारामारी पे उतारू थे। मासूम बच्चे रुआंसे, टीचर हरियान, हैड मास्साब परेशान, मुझसे न देखा गया। मैंने ललकारा कि किसी माई के लाल की ताकत नहीं कि मेरे घंटा बजाये बिना स्कूल बंद करा दे। मनहूसो! मेरे सामने से हट जाओ, नईं तो अभी तुम सब का घड़ियाल बजा दूंगा। हैड मास्साब ने पुलिस को फोन किया। थानेदार ने कहा, आपकी आवाज साफ सुनाई नहीं दे रही। मैंने गुस्से में आन के रिसीवर एक गज डोरी समेत जड़ से उखाड़ लिया। फिर मैं एक हाथ में कागज काटने का नंगी तलवार का-सा चाकू और दूसरे में रिसीवर लठ की तरह यूं हवा में दायें-बायें, शायें-शायें घुमाता, फुल सरकारी यूनिफार्म डाटे, बंकारता-डकारता आगे बढ़ा तो जनाबे-वाला! काई-सी छंट गयी। सरों पे मौत मंडरा रई थी। कोई यहां गिरा, कोई वहां गिरा, जो नहीं गिरा उसे मैंने जा लिया।

उस वक्त बशीर चाचा की आंख में वही ट्विंकल थी जो सारी उम्र शरीर बच्चों की संगत में रहने से पैदा हो गयी है। बच्चों ही की तरह जागते में सपने देखने की आदत पड़ गयी है।

पांयती बैठने वाला आदमी : उसने घंटा बजाने की कला की कई ऐसी बारीकियों की तरफ ध्यान आकर्षित किया, जिनकी तरफ कभी ध्यान नहीं गया था। जैसे यही कि पहले घंटे में वो मूंगरी खींच कर घड़ियाल के ठीक दिल में मारता था। एक अटलपन और आदेशात्मक संक्षेप के साथ। खेल के घंटे का ऐलान तेज सरगम में किनारे की झन-झन से करता। सोमवार के घंटों का ठनाका सनीचर की ठड्डे मारती ठनठन से बिल्कुल अलग होता था। कहने लगा मियां, नयी पीढ़ी के च्मवदे को सुब्ह, दोपहर और तीन पहर के मिजाज का फर्क मालूम नहीं। उसने खुल कर तो दावा नहीं किया, मगर उसकी बातें सुनकर मुझे सचमुच महसूस होने लगा कि वो सुब्ह का पहला घंटा अपने हिसाबों भैरवी में ही बजाता होगा।

जितनी देर मैं वहां बैठा वो हिर-फिर के अपने काम का बखान करता रहा। वो चपरासी न होता, कुछ और होता तो भी अपना काम इतना जी-लगा कर ही नहीं बल्कि जी-तोड़ कर करता। जब आदमी अपने काम पर गर्व करना छोड़ दे तो बहुत जल्दी शिथिल और निकम्मा हो जाता है। फिर वो अपने काम को भी सचमुच जलील और घटिया बना देता है। बशीर चाचा कहने लगा कि मेरे रिटायरमेंट से कुछ महीने पहले हैड-मास्साब ने सिफारिश की कि पुराना नमकख्वार है, इसकी तन्ख्वाह खास तौर से बढ़ा दी जाये। इस पर महकमे से उल्टा हुक्म आया कि इसकी पेंशन कर दी जाये। ये तो वही कहावत हुई कि मियां नाक काटने को फिरें, बीबी कहे नथ गढ़ा दो। रिटायरमेंट का कारण ये बताया कि एक चपड़कनात इंस्पेक्टर ने मेरे बारे में अपनी रिपोर्ट में लिखा कि ये चपरासी बहुत बूढ़ा हो गया है। कमर झुक गयी हैं और लंगड़ाने भी लगा है। मियां! खुदा की शान देखो कि छः महीने बाद इसी कुबड़े और लूले लंगड़े बूढ़े ने उसे कंधा देकर आखिरी मंजिल तक पहुंचाया। रहे नाम अल्लाह का।

फिर कहने लगा, हमारे जमाने में पलंग, चारपायी पर ही चौपाल जमती थी। बुजुर्गों की नसीहत थी कि चारपायी पर कभी सिरहाने की तरफ मत बैठो ताकि कोई तुमसे बड़ा आ जाये तो जगह न छोड़नी पड़े। सो सारी जिंदगी

पांयती बैठे गुजारी। मियां, अब तो नैया किनारे आन लगी। गरीब पैदा हुआ, गरीब ही मंरूगा। पर मौला का करम है किसी का दबैल नहीं। मैंने अपनी चपरास को हमेशा जेवर समझा और यूनिफार्म को खिलअत (शाही बख्शिश की पोशाक) जान कर पहना।`

उसने ये भी कहा कि हर साल लड़कों की एक नयी खेप आई, पर एक लड़का ऐसा नहीं कि जिसे इसने नसीहत न की हो। अपनी सुनहरे चपरासी-काल में नौ हैड-मास्टरों और तेरह इंस्पेक्टरों को भुगता दिया। सब अपनी-अपनी बोलियां बोल कर उड़नछू हो गये। फकीर ने बड़े-बड़ों का घड़ियाल बजा दिया। यह कहते हुए उसकी हिलती हुई गर्दन अकड़ गयी और उसने सीना तान लिया। अपनी खांसी रोकते हुए बोला, `हैड मास्साब ने कई बार कहा कि मैं तुमको प्रोमोट करके सब चपरासियों, भिश्ती, मेहतरों वगैरह मुलाजिमों के ऊपर अफसर बनाना चाहता हूं। पर मैंने कह दिया कि जिंदगी में बड़े-बड़े अफसर टांग के नीचे से निकाल दिये। अफसरी, घमंड का ताज है। आपका गुलाम इसे जूती की नोक पे रखता है।` कहानियां गढ़ते-गढ़ते बशीर चाचा उन्हें सच भी समझने लगा है। बुढ़ापे में कपोल कल्पनायें सच मालूम देती हैं।

अब भी हमारे आगे यारो जवान क्या है : मैंने उसका दिल खुश करने के लिए कहा, `चचा तुम तो बिल्कुल वैसे के वैसे ठांठे रखे हो, क्या खाते हो?` ये सुनते ही लाठी फेंक, सचमुच सीना तान के, बल्कि पसलियां तान के खड़ा हो गया। कहना लगा, `सुब्ह निहार-मुंह चार गिलास पानी पीता हूं। एक फकीर का टोटका है। कुछ दिन हुए मुहल्ले वाले मेरे कने झुंड बना के आये। आपस में खुसर-पुसर करने लगे। मेरे सामने बात करने का हिसाब नहीं पड़ रहा था। मैंने कहा, बरखुरदारो! कुछ मुंह से फूटो, अर्ज और गरज में काहे की शर्म। कहने लगा, चचा, तुम्हारे औलाद नहीं है, दूसरी शादी कर लो। अभी तुम्हारा कुछ भी तो नहीं बिगड़ा। जिस कुंवारी की तरफ भी नजरों से इशारा कर दो, कच्चे धागे में बंधी चली आयेगी। हम खुद रिश्ता ले कर जायेंगे। मैं बोला, पंचायत का फैसला सर-आंखों पर। पर `जवान जोखों` का काम है। सोच कर जवाब दूंगा। किस वास्ते कि मेरी एक बीबी मर चुकी है। ये भी मर गयी तो सह नहीं सकूंगा। जरा दिल्लगी देखो। उनमें का एक बकबक करने वाला लौंडा बोला कि चचा, ऐसा ही है तो किसी पक्की उम्र की सख्त-जान लुगाई से निकाह कर लो। बिलकीस दो बार रांड हो चुकी है। मैंने कहा, हुश्त! क्या खूब! `घर के पीरों का, तेल का मलीदा।` साहब! मलीदे के जुमले को अब कौन समझेगा। यूं कहिये कि मुर्दे का शिकार करने के लिए घुड़सवार होने की जरूरत नहीं होती।

मैंने छेड़ा, `चचा! अब बुढ़ापे में नयी खयालों की बीबी से निकाह करना, उसे काबू में रखना बड़ा मुश्किल काम है।` बोला, `मियां, आपने वो पुरानी कहावत नहीं सुनी कि हजार लाठी टूटी हो मगर घर-भर के बरतन-बासन तोड़ने को बहुत है।` ये कह के लाठी पे सर टेक के इतनी जोर से हंसा कि दमे का दौरा पड़ गया। दस मिनट तक खूं-खूं, खुस-खुस करता रहा। मुझे तो हौल आने लगा कि सांस आयेगा भी कि नहीं।

गौतम बुद्ध बतौर पेपर वेट : एक दिन मुल्ला आसी से तय हुआ कि इतवार को लखनऊ चलेंगे और वो हसीन शहर देखेंगे जिस पर अवध की शाम समाप्त हुई। लखनऊ के आशिक और शब्दों में मोती पिरोने वाले मौलाना अब्दुल हलीम शरर ने शालीनता के शहर का ये अध्याय डूबते हुए सूरज की लाली से लिखा है। चालीस बरस बाद अकेले देखने का किसमें हौसला था। लोगों ने डरा दिया था कि जिंदगी और जिंदादिली का वो संगम जिस पर सारी रौनकें और रंगीनियां खत्म थीं, हजरतगंज - अब हसरतगंज दिखलाई देता है साहब! लखनऊ हॉन्टिड (भुतहा) शहर हो न हो, अपना दिमाग तो हॉन्टिड हई है। मुझे तो एक साहब ने ये कह के भी दहला दिया कि तुम्हें चारबाग रेलवे

स्टेशन का नाम अब सिर्फ हिंदी में लिखा नजर आयेगा। अलबत्ता कब्रों के पत्थर अब भी निहायत खूबसूरत उर्दू में लिख जाते हैं। ऐसी खूबसूरत लिखाई और ऐसे मोती पिरोने वाले लेखक तुम्हें पाकिस्तान में ढूंढे से ही मिलेंगे। मैं मेहमान था। चुपका हो रहा। दो दिन पहले मैंने एक दिल्ली वाले से सीधे सुभाव कहीं ये कह दिया कि दिल्ली की निहारी और गोले के कबाब दिल्ली के मुकाबले कराची में बेहतर होते हैं। अरे साहब! वो तो सर हो गये। मैंने कान पकड़े।

आसी तय समय पर नहीं आये। पहले तो गुस्सा आया फिर चिंता होने लगी। उनके कमरे पर गया। दरी पर पुराने पीले कागजात, फाइलें, तीस बरस के सैकड़ों बिल और रसीदें फैलाये, उनके बीचों-बीच पंजों के बल बैठे थे। मेंढक की तरह फुदक कर वांछित कागज तक पहुंचते, जिस कागज का बाद में गौर से मुआयना करना हो उस पर बुद्ध की मूर्ति रख देते थे। तीन बुद्ध थे उनके पास। आंखें मूंदे हौले-हौले मुस्कुराते हुए बुद्ध। बीबी को सोता छोड़ कर घर से जाते हुए जवान बुद्ध। महीनों की लगातार भूख से हड्डियों का पिंजर बुद्ध। इन तीनों बुद्धों को वो इस समय बतौर पेपरवेट इस्तेमाल कर रहे थे। मैं तेज-तेज पैदल चल कर आया था। पसीने में शराबोर मलमल का कुर्ता प्याज की झिल्ली की तरह चिपक गया। कमरे में घुसते ही मैंने पंखा ऑन किया तो स्विच के शॉक से पजड़ खा कर फर्श पर गिरा। खैर साहब, इसे ऑन करना था कि कमरे में आंधी आ गयी और सैकड़ों पतंगें उड़ने लगीं। यहां तक कि हम एक-दूसरे को नजर आने बंद हो गये। उनका तीस साला फाइलिंग सिस्टम उड़ान भर रहा था।

उन्होंने लपक कर लकड़ी की खड़ावें पहनीं और पंखा बंद किया। चालीस-पचास साल पुराना पीतल का स्विच शॉक मारता है। ऑन और ऑफ करने से पहले खड़ाऊं न पहनो तो मृत्यु घटित होने की संभावना रहती है। फिर उन्होंने दौड़-दौड़ कर अपने दफ्तर के बल्कि जिगर के टुकड़े इस तरह जमा किये जिस तरह लौंडे पतंग लूटते हैं। कहने लगे, भाई! माफ करना, आज लखनऊ साथ न जा सकूंगा। एक आकस्मिक उलझेड़े में फंस गया हूं।

मुर्गा बनने की खासियत : साहब! वो उलझेड़ा ये था कि नगर पालिका ने पानी का जो बिल उन्हें कल भेजा था, उसमें उनके पिता का नाम एजाज हुसैन के बजाय एजाज अली लिखा था। इससे पहले उन्होंने लिखाई की ये गलती नोट नहीं की थी। अब वो बीते तीस साल के सारे बिल चैक कर रहे थे कि इस गलती की शुरुआत कब हुई। किसी और विभाग के बिल या सरकारी लिखापढ़ी में ये वल्दियत है कि नहीं। अगर है तो क्यों है? और नहीं है तो क्यों नहीं है?

खोज-बीन के क्षेत्र का एक विस्तार ये भी निकला कि जल विभाग को वल्दियत से क्या सरोकार। इसी का एक उपप्रश्न ये भी निकला कि और विभागों के बिल में संबंधित बाप की निशानदेही होती है कि नहीं। मैंने कहा कि मौलाना! बिल पैक कीजिये और खाक डालिए। क्या फर्क पड़ता है। बोले, फर्क की भी एक ही कही, अगर बाप के नाम से फर्क नहीं पड़ता तो दुनिया की किसी भी चीज से नहीं पड़ेगा।

पांचवीं क्लास में मैंने शाहजहां के बाप का नाम हुमायूं बता दिया तो मास्टर फाखिर हुसैन ने मुर्गा बना दिया। वो समझे, मजाक कर रहा हूं। यह गलती न करता तो और किसी बात पर मुर्गा बना देते। अपनी पढ़ाई का काल तो इसी पोज में गुजरा। बेंच पर आना तो उस समय होता था जब मास्टर कहता कि अब बेंच पर खड़े हो जाओ। अब भी कभी पढ़ाई के काल के सपने देखता हूं तो या तो खुद को मुर्गा बना देखता हूं या वो अखबार पढ़ता हुआ देखता हूं, जिसमें मेरा रोल नंबर नहीं होता था। मिस्टर द्वारिका दास चतुर्वेदी, डायरेक्टर ऑफ एजुकेशंस हाल में योरोप और अमरीका का दौरा करके आये हैं। सुना है, उन्होंने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि दुनिया के किसी और मुल्क ने

मुर्गा बनाने का पोज डिस्कवर ही नहीं किया है। मैंने तंग आकर तुर्की-टोपी ओढ़नी छोड़ दी थी। मुर्गा बनता तो उसका फुंदना आंखों से एक इंच की दूरी पर पूरे समय पेंडुलम की तरह झूलता रहता था - दायें-बायें! पीरियड के आखिर में टांगें बुरी तरह कांपने लगतीं तो फुंदना आगे पीछे झूलने लगता। इसमें तुर्की की तौहीन का पहलू भी निकलता था जिसे मैं बर्दाश्त न कर पाया। वो दिन है और आज का दिन, मैंने किसी-भी किस्म की टोपी नहीं ओढ़ी।

मैंने वाक्य चिपकाया, महात्मा बुद्ध भी तो नंगे सिर रहते थे। वाक्य को इग्नोर करते हुए कहा, आपने कभी ध्यान दिया, जब से लड़कों का मुर्गा बनाना बंद हुआ है शिक्षा और शालीनता का स्तर गिर गया है। वैसे तो मैं अपने छात्रों की हर नालायकी बर्दाश्त कर लेता हूं लेकिन अशुद्ध उच्चारण पर आज भी खट-से मुर्गा बना देता हूं। जिस्म से चिपकी हुई जींस पहनने की अनुमति नहीं देता। इसलिए कि इससे फारसी शब्दों के उच्चारण, पेशाब करने और मुर्गा बनने में दिक्कत आती है मगर आजकल के लौंडों की टांगें पांच मिनट में लड़खड़ाने लगती हैं।

मैं अपने जमाने के ऐसे लौंडों को जानता हूं जो बीस-बीस बेंत खाने पर भी `सी` नहीं करते थे। एक तो एस.पी. होकर रिटायर हुआ। दूसरा देहात सुधार विभाग में डायरेक्टर हो गया था। अब वैसे शरारती और तगड़े लड़के कहां? दरअस्ल तब करैक्टर बहुत मजबूत होता था। बस यूं समझो, जैसे रसायन बनाने में एक आंच की कसर रही जाती है? इसी तरह आजकल की शिक्षा में एक बेंत की कसर रह जाती है।

एक कटोरा चांदी का : उस दिन सख्त गर्मी थी। कोई चौथाई शताब्दी के बाद नारियल के डोंगे से पानी निकाल कर उसी कटोरे से पिया। अंदर सूरे-यासीन (कुरआन की आयत) खुदी हुई है, ठोस चांदी का है। आपने कटोरे सी आंख का मुहावरा सुना है? साहब मैंने देखी हैं। शाम को जब हम फुटबाल खेल कर लौटते तो इसके पतले किनारे को होठों के बीच में लेते ही लगता था कि ठंडक रग-रग में उतर रही है। इसी कटोरे में शहद घोल कर मुल्ला आसी को पैदा होते ही मां के दूध से पहले चटाया गया। इसी कटोरे से अंतिम समय में उनके दादा और पिता के मुंह में आबे-जमजम चुवाया गया था। अब भी आये दिन लोग मांग कर ले जाते हैं और बीमार को पानी पिलाते हैं। मैंने पीने को तो पानी पी लिया मगर अजीब-सा लगा। खुदे हुए अक्षरों में काला सियाह मैल भरा हुआ था।

साहब, सच्ची बात ये कि पानी आज भी उतना ही ठंडा है, कटोरा भी वही। पीने वाला भी वही मगर वो पहली-सी प्यास कहां से लायें।

यूं तो घर में एक मुरादाबादी काम का गिलास भी है। उन्हीं का हमउम्र होगा। पहली बार उनसे मिलने गया तो एक शिष्य को दौड़ाया। वो कहीं से एक पुड़िया में शक्कर मांग कर लाया। उन्होंने इसी गिलास में उल्टी पेंसिल से घोल कर शरबत पिलाया। मैं तो शक्कर के शरबत का स्वाद भी भूल चुका था। हमारे बचपन में अक्सर इसी से मेहमान की खातिर होती थी। सोडे और जिंजर की बोतल तो केवल बदहज्मी और हिंदू मुस्लिम दंगों में इस्तेमाल की जाती थीं।

शेर (शाह) लोहे के जाल में है : देखिये मैं कहां आ निकला। बात बिलों से शुरू हुई थी। जब उन्होंने अपना बिखरा हुआ दफ्तर समेट लिया तो मैंने फिर पंखा ऑन करना चाहा, मगर उन्होंने रोक दिया। कहने लगे, माफ करना, शेरशाह बीमार है, पंखे से बुखार और तेज हो जायेगा। मैंने चारों तरफ नजर दौड़ायी। इस नाम का बल्कि किसी भी नाम का, कोई बीमार नजर नहीं आया। और आता भी कैसे, शेरशाह दरअस्ल उस बीमार कबूतर का नाम था, जो

कोने में एक जालीदार नेमतखाने में बंद था। ऐसे नेमतखाने, उस जमाने में रेफ्रिजरेटर की जगह इस्तेमाल होते थे। लंबाई चौड़ाई भी लगभग वही। लकड़ी के दो तीन मंजिला फ्रेम पर चारों तरफ लोहे की महीन जाली मढ़ी रहती थी, जिसका प्रत्यक्ष उद्देश्य हवा पहुंचाना, लेकिन वास्तविक उद्देश्य मक्खियों, बिल्लियों, चूहों और बच्चों को खाने से दूर रखना था। उसके पायों के नीचे पानी से भरी चार पियालियां रखी होती थीं, जिसमें उन चटोरी चींटियों की लाशें तैरती रहती थीं जो जान पर खेल कर, यह खंदक पार करके वर्जित खाद्य-सामग्री तक पहुंचना चाहती थीं। ये नेमतखाने डीप फ्रिज और रेफ्रिजरेटर से इस लिहाज से बेहतर थे कि इन में रखा हुआ बेस्वाद खाना नौ-दस घंटे बाद ही सड़ जाता था। उसे रोज निकाल कर हफ्तों नहीं खिलाया जाता था। ऐसे नेमतखाने उस समय में हर खाते-पीते घराने में होते थे। निचले कम आमदनी वाले तबके में छींका इस्तेमाल होता था। जबकि गरीबों के यहां रोटी की स्टोरेज के लिए आज भी सबसे सुरक्षित जगह पेट ही होती है।

उल्लेखित नेमतखाना 1953 से मुल्ला आसी के बीमार कबूतरों का इंटेंसिव केयर यूनिट है। उस दिन लखनऊ जाने का एक कारण ये भी था कि वो बीमार कबूतर को अकेला छोड़ कर सैर-सपाटे के लिए जाना नहीं चाहते थे। एक कबूतरी नूरजहां अचानक मर गयी तो दस बारह दिन तक घर से नहीं निकले, क्योंकि उसके बच्चे बहुत ही छोटे और गाउदी थे, उन्हें सेते रहे। द्रोपदी नाम की एक अनारा (लाल आंखों वाली) कबूतरी की चोंच टूट गयी, उसे महीनों अपने हाथ से चुग्गा खिलाया। उन्होंने हर कबूतर का एक नाम रख छोड़ा है। इस वक्त एक लक्का कबूतर, रंजीत सिंह नाम का, दरवाजे के सामने सीना और दुम फुलाये, दूसरे संप्रदाय की कबूतरियों के आसपास इस तरह चक्कर लगा रहा था कि अगर वो इंसान होता तो सांप्रदायिक दंगों में कभी का मारा जा चुका होता। `न कभी जनाजा उठता न कहीं शुमार होता।`

कबूतरों की छतरी : कबूतरबाजी इनका पुराना शौक है। इनके वालिद को भी था। मेरे वालिद भी पालते थे। कबूतर की श्रेष्ठता के तो आपके मिर्जा अब्दुल वदूद बेग भी कायल हैं। सच्चे शौक और हॉबी की पहचान ये है कि बिल्कुल फजूल और निरर्थक हो। जानवर को इंसान किसी न किसी फायदे और स्वार्थ के तहत पालता है। उदाहरण के लिए कुत्ता वो दुखियारे पालते हैं, जो मुसाहिब और दरबारी अफोर्ड नहीं कर सकते। कई लोग कुत्ता इस भ्रम में पाल लेते हैं कि उसमें छोटे भाई की खूबियां होंगी। बकरी इस विचार से पालते हैं कि उसकी मेंगनी दूध में मिला कर जवाब में उर्दू आलोचकों को पिलायेंगे। हाथी अधिकतर वो अमीर लोग पालते थे, जिन्हें बादशाह कुपित हो कर सजा के तौर पर हाथी मय-हौदा-चांदी के बख्श देता था कि जाओ! अब इसे सारी उम्र खिलाते, ठुंसाते रहो। तोते को अरमानों से इस लिए पालते हैं कि बड़ा होकर अपनी बोली भूल जायेगा और सारी उम्र हमारा सिखाया हुआ बोल दुहराता रहेगा। मौलवी मुर्गे की अजान सिर्फ मुर्गी के लालच में बरदाश्त करते हैं और 1963 में आपने बंदर केवल इस लिए पाला था कि उसका नाम डार्विन रख सकें।

लेकिन साहब! कबूतर को केवल इसलिए पाला जाता है कि वो कबूतर है और बस, लेकिन मुल्ला आसी के एक पड़ौसी सैदुल्ला खां आशुफ्ता ने कसम खा-कर कहा कि एक दिन कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। वो सुब्ह छह बजे गर्म कश्मीरी चाय की केतली लेकर उनके यहां गये तो देखा कि कमरा ठंडा बर्फ हो रहा है और वो गरमायी के लिए हाथों में एक-एक कबूतर दबाये बोधिसत्व की मूर्ति के सामने ध्यान में डूबे हुए हैं। गुलू-ओ-गीबत, बर गरदने-रावी। (झूठ हो तो पाप, बताने वालों की गरदन पर)

एक दिन साथ में कबूतरों का जिक्र छिड़ गया तो कहने लगे, मैंने सुना है, वैसे विश्वास नहीं होता कि कराची में कबूतरों की एक भी छतरी नहीं। यारो! तुमने कैसा शहर बनाया है? जिस आसमान पर कबूतर, उषा की लाली, पतंग और सितारे न हों तो ऐसे आसमान की तरफ नजर उठा के देखने को जी नहीं चाहता। भाई अबरार हुसैन दिसंबर 1973 में कराची में थे। दो महीने रहे होंगे। आसमान हमेशा बादलों से घिरा रहा, केवल एक दिन दूरबीन की मदद से एक तारा नजर आया। वो पुच्छल तारा था। कह रहे थे कि कराची में लोग हम लखनऊ वालों की तरह पतंग, तीतर, मुर्गे और मेढ़े नहीं लड़ाते, खुद लड़ लेते हैं मगर सच तो ये है कि इस मुहल्ले में भी अब न कोई पतंग उड़ाता है न कबूतर। ले दे कि यही एक छतरी रह गयी है। लखनऊ का हाल इससे भी बुरा है और एक वो जमाना था कि तुम्हारे जाने के बाद, दिसंबर 1947 में अलीमुद्दीन ने, भाई! वही अपना शेखचिल्ली लड्डन - पाकिस्तान जाने के लिए बोरिया-बिस्तर बांध लिया था, मगर ऐन वक्त पर इरादा छोड़ दिया, किस लिए कि मास्टर अब्दुल शकूर बी.ए.बी.टी. ने उसे डरा दिया कि तुम ट्रेन में कबूतरों की छतरी साथ नहीं ले जा सकते और चोरी-छुपे ले भी गये तो वाहिगा बार्डर पर पाकिस्तान कस्टम वाले न जाने क्या समझ कर तुमको धर लें। भाई बिशारत! तुम तो पाकिस्तान जा कर परदेसी हुए। हम तो अपने शहर में बैठे-बैठे ही अजनबी हो गये। ये वो शहर थोड़ा ही है। वो शहर तो किस्सा कहानी हो गया। आकार बदल चुका है। अब इस मुहल्ले में 95 फीसद घरों में वैजिटेरियन रहते हैं। उनकी बिल्लियां गोश्त को तरस गयी हैं। चुनांचे सारे दिन मेरी छतरी के चारों तरफ मंडराती रहती हैं।

भई तुम्हें तो याद होगा, कोपर एलन एंड कंपनी का बड़ा साहब। क्या नाम था उसका? सर आर्थर अंस वूथ? उसकी मेम जब विलायत से सियामी बिल्ली लाई तो सर आर्थर ने कानपुर शहर के सारे बिल्लों को खस्सी करा दिया ताकि बिल्ली कुंवारी और पवित्र रहे। दो बंगले छोड़ कर अजमल बैरिस्टर रहते थे, कहने वाले तो यहां तक कहते थे कि एक रात उनके कुत्ते को भी पकड़ कर एहतियातन खस्सी करवा दिया। सन इकतालीस का किस्सा है - क्विट इंडिया आंदोलन से जरा पहले।

हम दोनों देर तक हंसते रहे। वो अब भी हंसते हैं तो बच्चों की तरह हंसे चले जाते हैं। फिर आंखें पोंछ कर एकाएक गंभीर हो गये। कहने लगे, अब मुझमें इतना दम नहीं रहा कि छत पर आवाज लगा कर सबको काबुकों में बंद करूं। सधे-सधाये कबूतर तो दिया-जले खुद आ-आ कर काबुक में दुबक जाते हैं, बकिया को शार्गिद घेर घार के बंद कर देते हैं। वही दाना-चुग्गा डालते हैं। शरीफों (उच्च वर्ग) के जितने शौक हैं, सब पर उतार आ गया है। शहर में ज्वार तक नहीं मिलती। पचास मील दूर एक गांव से मंगाता हूं। पटवारी मेरा शिष्य रह चुका है। आजकल के किसी ग्रेजुएट को पकड़ कर पूछ देखो, ज्वार, बाजरे और कंगनी का फर्क बात दे तो उसी के पेशाब से अपनी भवें मुंडवा दूं। निनानवे प्रतिशत ने जिंदगी में जौ नहीं देखे होंगे। अमां! क्या कराची का भी यही हाल है?

काला कबूतर और कुंवारी की बिल्ली : उनके सिड़ीपन की एक घटना हो तो सुनाऊं। मैट्रिक के समय ही (जब वो अपनी बाईसवीं सालगिरह मना चुके थे) उन्होंने यह ढंग चुन लिया था कि परीक्षाफल अखबार में नहीं देखते थे। चुनांचे अखबार लेना और पढ़ना और पढ़ने वालों से मिलना छोड़ देते थे। संभव है, इसका कारण उपेक्षा हो, डर भी हो सकता है। मिर्जा का विचार है कि अपनी सालाना नालायकी को `कोल्ड-प्रिंट` में फेस नहीं कर सकते थे। बहरहाल, परीक्षाफल आने से एक हफ्ता पहले अपने एक जिगरी दोस्त इमदाद हुसैन छौदी को अपना एक काला गिरहबाज और एक सफेद लोटन कबूतर दे आते। इमदाद हुसैन को ये इंस्ट्रक्शन थे कि जैसे ही अखबार में मेरे पास होने की खबर पढ़ो, फौरन सफेद लोटन कबूतर छोड़ देना और फेल हो जाऊं तो काला। फिर दिन भर खिड़की से आधा धड़ निकाल कर कभी आसमान और कभी छतरी को देखते कि कबूतर खबर लाया कि नहीं। हर साल

मनहूस काले कबूतर को हलाल करके मरजीना (कुंवारी की बिल्ली का नाम) को खिला देते। ये बादशाहों वाली रीत उन्होंने बी.ए., तक बनाये रखी कि पुराने जमाने में बादशाह भी बुरी खबर लाने वाले एलची का सर धड़ से अलग करवा देते थे।

रिजल्ट वाले हफ्ते में घर में रोज कई बार रोना-पीटना मचता था। इसलिए कि उनकी मां और बहनें जैसे ही कोई काला कबूतर देखतीं, रोना पीटना शुरू कर देतीं। यूं तो छतरी पर दिन में कई बार सफेद कबूतर भी आते थे, मगर वो उनका कोई नोटिस नहीं लेती थीं। उन्हें भरोसा था कि गलती से आन बैठे हैं। आखिर में तीन-चार साल बाद रुला-रुला कर वो सफेद लोटन कबूतर आता जिसका इंतजार रहता था तो इस खुशी में अपने तमाम कबूतरों को, जिनकी तादाद सत्तर अस्सी के लगभग होगी, ज्वार की बजाय गेहूं खिलाते और सबको एक साथ उड़ाते।

दूसरे दिन उस कबूतर के पांव में चांदी की मुन्नी-सी पैंजनी (कबूतर की झांझन) डाल देते और उसकी काबुक में दस ताफ्ता (सफेद चमकीले रंग का कबूतर) पठोर कबूतरियां बढ़ा देते। कबूतरखाना तो हम रवानी में लिख गये, वर्ना हालत तो ये थी, जब उन्होंने बी.ए. पास किया तो मैट्रिक, इंटरमीडियेट और बी.ए. तीनों को मिला कर तीस अदद कबूतरियों की बढ़ोतरी के बाद उनका सारा घर इस सुसम्वाद लाने वाले कबूतर के निजी हरम में बदल चुका था। घर वालों की हैसियत उन कबूतरों के सेवक और बीट उठाने वालों से अधिक नहीं रही थी।

वो एक फौज जो इस तरह फौज से कम है

जिस दिन वो शेरशाह नाम के कबूतर की बीमारी के कारण मेरे साथ लखनऊ न जा सके, मैंने कुछ झुंझलाते हुए उनसे कहा, `खुदा के बंदे! दुनिया कहां से कहां पहुंच गयी है, अब इस कबूतरबाजी पे खाक डालो।` बोले, `तुम्हारे वालिद भी तो बड़े पाये के कबूतरबाज थे। मैं तो उनके सामने बिल्कुल अनाड़ी हूं। अब लोग इसे घटिया शौक समझने लगे हैं वर्ना ये केवल शरीफों का शौक हुआ करता था। मैंने कहीं पढ़ा था कि बहादुरशाह जफर की सवारी निकलती थी तो दो सौ कबूतरों की टुकड़ी ऊपर हवा में सवारी के साथ उड़ती जाती और बादशाह पर छांव किये रहती। जब वाजिद अलीशाह मटियाबुर्ज में बंदी बनाये गये तो उस गयी-गुजरी हालत में भी उनके पास चौबीस हजार से अधिक कबूतर थे, जिनकी देख-रेख पर सैकड़ों कबूतरबाज तैनात थे।`

मैंने निवेदन किया, `इसके बावजूद लोगों की समझ में नहीं आता, साम्राज्य समाप्त क्यों हुआ। तलवारों की छांव में पलने वाले सरों पर जब कबूतर मंडराने लगें तो सवारी मटियाबुर्ज और रंगून जा कर दम लेती है। बहादुरशाह जफर ने कबूतरखाने पर जितना पैसा और ध्यान दिया उसका दसवां हिस्सा भी तोपखाने पर देते तो फौज बल्कि कबूतरफौज की यह दुर्गत न बनती कि डट कर लड़ना तो दूर, उसके पास हथियार डालने के लिए भी हथियार न निकले।`

`वो एक फौज जो इस तरह फौज से कम है।`

बिगड़ गये, `तो आपके विचार में मुगल साम्राज्य का पतन कबूतरों के कारण हुआ। यह बात तो यदुनाथ सरकार तक ने नहीं कही। मिस्टर चतुर्वेदी कह रहे थे कि ब्रिटेन में पिचहत्तर लाख कुत्ते हैं। फ्रांस में सवा तीन करोड़

पैट्स हैं। सरकारी गणना के अनुसार ब्रिटेन में हर तीसरा बच्चा बिना मां-बाप की शादी के होता है। इसके अलावा वहां पिछले दस साल में पच्चीस लाख गर्भपात कराये गये। आखिर उनका पतन क्यों नहीं होता?`

चड़या

मुल्ला आसी के खट्मिट्ठे मिजाज का अनुमान एक घटना से लगायें, जो एक साहब ने मुझे सुनायी। उनके पड़ौसी ने कई बार शिकायत की, `आपके किरायेदार ने एक नयी खिड़की निकाल ली है जो मेरे दालान में खुलती है, औरतों की बेपर्दगी होती है।` उन्होंने कई दिन नोटिस नहीं लिया तो एक दिन धमकी दी, `आपने खिड़की न चुनवायी तो ठीक न होगा। नालिश कर दूंगा। अगर घर के सामने कुर्की का ढोल न बजवाया तो मेरा नाम नहीं। सारा बुद्धिज्म धरा रह जायेगा।`

ये बेचारे खुद किरायेदार के सताये हुए थे, क्या कर सकते थे। अलबत्ता, पर्दे के नुक्सान बयान कर दिये जिससे वो और बिगड़ गया। दो-तीन दिन बाद उसने एक नवंबर को कानूनी नोटिस दिया कि अगर एक महीने के अंदर-अंदर आपने खिड़की बंद न करवायी तो आपके खिलाफ मुकद्दमा दायर कर दिया जायेगा। उन्होंने नोटिस पढ़ कर फाड़ दिया। उसका समय तीस नवंबर को समाप्त होता था। पहली दिसंबर को सुब्ह पांच बजे उन्होंने इस पड़ौसी के दरवाजे पर दस्तक दी। वो हड़बड़ा कर आंखें मलता हुआ नंगे पैर बाहर आया तो कहने लगे, `हुजूर! गुस्ताखी माफ, मैंने कच्ची नींद से जगा दिया। मैं सिर्फ ये याद कराने आया हूं कि आज आपको मेरे खिलाफ मुकद्दमा दायर करना है। आदाब!`

हम कराची वालों की नजर में `चड़या` (खिसके हुए) तो वो सदा के थे, मगर अब सुधार और बर्दाश्त की सीमा से पार निकल गये हैं। आठवीं क्लास से लेकर बी.ए., तक कोर्स की तमाम किताबें, जो इन्होंने पढ़ी थीं, बल्कि यूं कहना चाहिये कि नहीं पढ़ी थीं, एक अलमारी में सजा रखी हैं। परीक्षा के परचों की एक अलग फाइल है। इनके अन्नप्राशन पर जिस चांदी की पियाली में केसर घोला गया और खत्ने के समय जरदोजी के काम की जो टोपी इन्हें पहनायी गयी और इसी तरह की दूसरी, प्रसाद का दर्जा रखने वाली वस्तुऐं दूसरी अलमारी में सुरक्षित हैं। वो तो गनीमत है कि पैदाइश के समय अपना काम आप न कर सकने में सकारण असमर्थ थे वरना अपना नाल भी दूसरी यादगार चीजों की तरह सिंगवा कर रख लेते। इस बात का विस्तृत विवरण देने चलें तो पन्ने कम पड़ जायेंगे। संक्षेप में यूं समझें कि आमतौर पर इतिहासकारों या रिसर्च करने वालों को बड़े आदमियों के जीवन के बारे में बारीक विवरण खोद-खोद कर निकालने में जो मेहनत करनी पड़ती है, उन्होंने वो अपनी तमात वाहियात चीजें उनकी हथेली पर रख कर आसान कर दी हैं। मैंने ऐसा आदमी नहीं देखा। मेरा विचार था कि अपनी कोई चीज नहीं फेंक सकते, अपनी आस्था के अलावा अपने कूड़े को भी एंटीक बना देते हैं। कमरा क्या है - यादों का मलबा है, जिसे बेलचे से खोदें तो अंतिम परत के नीचे से स्वयं बरामद होंगे।

छोटी बीबी के नाम

इसी तरह बीते तीस चालीस सालों में इन्हें जितनी चिट्ठियां दोस्तों, रिश्तेदारों ने लिखी हैं। वो सब की सब खड़े सूओं में दिनांक, सप्ताह, महीना, बरस के क्रम में पिरोयी हुई सुरक्षित हैं। अधिकांश पोस्टकार्ड हैं। उस जमाने में

पिचानवे प्रतिशत चिट्ठियां पोस्टकार्ड पर लिखी जाती थीं। एक कोना जरा-सा काट दिया जाये तो यह एलार्म होता था कि किसी के मरने खबर आई है। अनपढ़ घरानों की औरतें नामालूम मुरदे के झूठे गुणों को बयान करके रोना-पीटना शुरू कर देती थीं। इसी कालक्रम में कोई पड़ौसी पोस्टकार्ड पढ़ देता तो बैन में मृतक के नाम की बढ़ोतरी और गुणों में कमी कर दी जाती थी। पोस्टकार्ड पर एक तरफ तीस-तीस लाइनें तो मैंने स्वयं लिखी देखी हैं, जिन्हें शायद घड़ी ठीक करने वालों की एक आंख वाली खुर्दबीन लगा कर ही लिखा और इसी तरह पढ़ा जा सकता था।

मैं एक चमड़े के व्यापारी शेख अता मुहम्मद को जानता था, जो माल बुक कराने कलकत्ता जाता तो अपनी नयी और सुंदर छोटी बीबी को (जिसे मुहल्ले वाले प्यार में सिर्फ छोटी कहते थे) खर्च बचाने के लिए पोस्टकार्ड पर चिट्ठी लिखता, लेकिन निजी बातों के प्रकरण में बिल्कुल बचत नहीं करता था। दूसरों की चिट्ठी पढ़ने का लपका उस जमाने में बहुत आम था। पोस्टमैन हमें यानी मुझे, मियां तजम्मुल हुसैन और मुल्ला आसी को पोस्टकार्ड पढ़वा देता था। हम उसे हिरन के कोफ्ते खिलाते थे। साहब! जबान का चटखारा बुरी बला है।

मैं जब इटावा के स्कूल में तैनात हो कर गया तो उसने मेरी चिट्ठी जो मैंने शादी के कुछ दिनों बाद आपकी भाभी को लिखी थी, मुल्ला आसी और मियां तजम्मुल हुसैन को पढ़वा दी। चिट्ठी का विवरण हैजे की तरह सारे शहर में फैल गया। मैंने कई सुलगते हुए वाक्य और बेकरार पैरे चमड़े के व्यापारी के पोस्टकार्डों से उड़ाये थे। हालांकि वो कच्चा चमड़ा बेचता था और निबंध लेखन उसके व्यावसायिक गुणों और पतिपन में सम्मिलित नहीं था लेकिन चौधरी मुहम्मद अली रुदौलवी ने बीबी के नाम सर्वोत्तम चिट्ठी की जो प्रशंसा की है उस कसौटी पर शेख अता मुहम्मद की चिट्ठी खरी उतरती थी यानी ऐसी हो कि दोनों किसी को दिखा न सकें। किसी दुष्ट ने शेख अता मुहम्मद को भी मेरी चिट्ठी की जानकारी दे दी। कहने लगा अगर कोई मेरी बिल्कुल अंतरंग भावनाओं को अपनी बीबी तक पहुंचाना चाहता है तो मेरा सौभाग्य है। धीरे-धीरे आपकी भाभी तक जब इस चोरी की खबर पहुंची तो उन्हें महीनों मेरे ओरीजनल वाक्यों से भी कच्चे चमड़े की बू आती रही। अजीब घपला था। वो और छोटी एक दूसरे को अपनी सौतन समझने लगे जो हम दोनों मर्दों के लिए डूब मरने की बात थी।

दिसंबर की छुट्टियों में जब मैं कानपुर गया तो इस हरमजदगी पर पोस्टमैन को आड़े हाथों लिया और धमकी दी कि अभी पोस्टमास्टर को रिपोर्ट करके तुझे डिसमिस करा दूंगा। मैंने चीख कर कहा, `बेईमान! अब तुझे वो दोनों हिरन के कोफ्ते खिला रहे हैं।` कहने लगा, `कसम कुरआन की, जब से आप गये हैं, हिरन के कोफ्ते खाये हों तो सुअर खाया हो।` मैं जूता लेकर पीछे दौड़ा तो बदमाश कुबूला कि नीलगाय के खाये थे।

ब्लैक बॉक्स

हां, तो मैं क्या कह रहा था? सूओं में पिरोयी चिट्ठियों के बारे में बता रहा था। हर सूए पर पांच पांच साल के काल खंड को सूली दी है। लकड़ी के गोल पेंदे में ठुके हुए यह सूए उस समय में फाइलिंग कैबिनेट के स्थानापन्न के रूप में प्रयोग होते थे। काले पेंदे का एक सूआ स्वर्गवासियों के लिए सुरक्षित है। कहने लगे जब किसी के देहांत का समाचार मिलता है तो उसकी तमाम चिट्ठियां अलग सूओं से निकाल कर इसी काले पेंदे वाले सूए में लगा देता हूं और ये ब्लैक बॉक्स बहुत ही अहम और निजी कागजों के लिए रख छोड़ा है। मैंने वसीयत की है कि मरने के फौरन बाद जला दिया जाये। मेरा मतलब है कागजात को।

पलंग के नीचे रखे जिस काले संदूक की तरफ उन्होंने इशारा किया था, वो दरअस्ल एक कैश बॉक्स था। उनके पिता के दिवाले और उसके परिणाम में उनकी मौत के बाद बस यही जमा-जथा उन्हें विरसे में मिली। अब भी अक्सर बताते हैं कि इसमें एक लाख नकदी की जगह है। लोगों का विचार है कि इस बक्स में उनकी वसीयत है जिसमें स्पष्ट हिदायत है कि उनके शव का क्या किया जाये। मतलब यह कि मुसलमानों की तरह दफ्न किया जाये या पारसियों की तरह लाश चील कव्वों को खिला दी जाये या बौद्ध परंपरा के अनुसार ठिकाने लगाई जाये। जहां आस्थाओं का इतना घालमेल हो वहां यह स्पष्टीकरण आवश्यक है। गालिब को उसकी, `गलियों में मेरी लाश को खींचे फिरो कि मैं` वाली इच्छा के विपरीत उसके सुन्नी शिष्य सुन्नी तरीके से गाड़ आये जबकि उस गरीब का संप्रदाय शिया था। साहब! इस बात पर याद आया गालिब ने कैसी जालिम बात कही है,

`हैफ काफिर मुर्दनो-आदख मुसलमां जीस्तन`

यानी हे ईश्वर! मुझे काफिरों की तरह से मरने और मुसलमानों की तरह जीने से बचा। सब कुछ छह शब्दों की एक लाइन में सुमो दिया।

उनके एक निकट के दोस्त सय्यद हमीदुद्दीन का बयान है कि वसीयत में यह लिखा है कि मैं मुसलमान था, मुसलमान ही मरा, बाकी सब ढोंग था, जो मुसलमानों को चिढ़ाने के लिए रचना पड़ा यानी उनका कुफ्र अस्ल में मक्कारी थी। ये भी सुनने में आया कि उन्होंने ये भी हिदायत की है कि मेरी वसीयत उसी दिन खोली जाये जब मौलाना अबुल कलाम आजाद की किताब के अनछपे हिस्से बैंक के सेफ डिपाजिट लॉकर से निकाले जायें। इस पर एक दिलजले ने ये नीम चढ़ाया कि वसीयत में मुल्ला आसी ने मौलाना आजाद के बारे में अपनी गाली-भरी राय लिख दी है, जिसका प्रकटन वो अपने जीवन में पब्लिक से पंगे और पिटने के डर से नहीं कर सकते थे। मगर सोचिये तो सही मुल्ला आसी ने कौन-सी तोप चलाई होगी? बुरे-से-बुरा अनुमान यही हो सकता है कि सच बोला होगा। लेकिन साहब! वो सच्चाई क्या, जिसके एलान की जीते जी जुर्रत न हुई हो।

हर लम्हे की अपनी सच्चाई, अपनी सूली और अपना ताज होता है। इस सच्चाई का एलान इसी और इसी लम्हे जुरूरी होता है। सो, जो चुप रहा, उसने इस लम्हे से और अपने-आप से कैसी दगा की। बकौल मिर्जा अब्दुल वुदूद बेग के, सारे जीवन आवश्यकता के कारण समझौते करने और हंसी खुशी गुजारने के बाद कब्र में पहुंच कर, कफन फाड़ कर सच बोलने और मुंह चिढ़ाने की कोशिश करना मर्दों ही को नहीं, मुर्दों को भी शोभा नहीं देता।

प्रेम पत्र और गौतम बुद्ध के दांत

शहर में ये भी मशहूर है कि बॉक्स में उस शरणार्थी लड़की की चिट्ठियां और फोटो हैं जिसे वो ट्यूशन पढ़ाते थे। पता नहीं। ये बुद्धिज्म से पहले की बात है। मैं तो उस जमाने में कराची आ चुका था। सब उसकी टोह में हैं, मगर बक्से पे पीतल का सेर-भर का ताला पड़ा है, जिसकी चाबी वो अपने कमरबंद में बांधे फिरते हैं। लोगों की जबान किसने पकड़ी है। किसी ने कहा, लड़की ने ब्लेड से कलाई की नसें काट कर आत्महत्या की। किसी ने इसका एक अकथनीय कारण बताया। ये भी सुनने में आया कि लड़की को एक दूसरा ट्यूटर भी पढ़ाता था। कहने वाले तो कहते हैं श्मशान तक अर्थी से जीता-जीता खून टपकता गया। उसी रात उसका बाप नींद की तीस चालीस गोलियां खा कर ऐसा सोया कि फिर सुब्ह उसकी अर्थी ही उठी। लेकिन देखा जाये तो न लड़की मरी न उसका बाप, मौत तो

उस विधवा और छह बच्चों की हुई जो उसने छोड़े। तीन-चार दिन बाद किसी ने गली के मोड़ पर मुल्ला आसी के पेट में छुरा घोंप दिया। आंतें कट कर बाहर निकल पड़ीं। चार महीने गुमनामी की मौत और बदनामी की जिंदगी के बीच झूलते हुए अस्पताल में पड़े रहे। सुना है जिस दिन डिस्चार्ज हुए, उसी दिन से जोग ले लिया। मगर साहब! जोगी तो वो जन्म-जन्म के थे। एक कहावत है कि जोगी का लड़का खेलेगा तो सांप से। सो, ये नागिन न भी होती तो किसी और सांप से खुद को डंसवा लेते।

अल्लाह जाने! मजाक में कहा या सच ही हो, इनआमुल्लाह बरमलाई कहने लगे कि ब्लैक बॉक्स में मुल्ला आसी के चार टूटे हुए दांत सुरक्षित हैं, जो अपने श्रद्धालुओं और भविष्य की नस्लों के लिए बतौर Relic छोड़ कर मरना चाहते हैं। आखिर महात्मा बुद्ध के भी तो कम से कम सौ दांत विभिन्न पवित्र स्थानों पर दर्शनार्थियों के लिए भारी पहरे में रखे हुए हैं।

कमरे में केवल एक चीज नयी देखी। पत्रिका `इरफान` का नया अंक। अल्लाह जाने किसी ने डाक से भेजा या कोई शरारतन छोड़ गया। जहां-तहां से पढ़ा। साहब! परंपरा का इस पत्रिका पर अंत है। पचास साल पहले और आज के `इरफान` में जरा जो अंतर आया हो। वही क्रम, वही छपायी और गैटअप, जो पचास बरस पहले थे, अल्लाह के करम से आज भी है। विषय और समस्यायें भी वही हैं जो सर सय्यद और शिबली के जमाने में थी। मुझे तो जपाखाना और कातिब भी वही मालूम देता है। काश ये अंक सत्तर अस्सी साल पहले छपा होता तो बिल्कुल `आप टू डेट` मालूम देता। मौलाना शिबली नोमानी और डिप्टी नजीर अहमद एल.एल.डी. इसे देख के कैसे खुश होते।

सांभर का सींग

कमरे में सांभर का सर अभी तक वहीं टंगा है। इस अजायबघर बल्कि पिरामिड में सिर्फ यही लाइफ लाइक दिखाई देता है, लगता है अभी दीवार से छलांग लगा कर जंगल की राह लेगा। उसके नीचे उनके दादा की सीपिया रंग की तस्वीर है। साहब, उस जमाने में सभी के दादाओं का हुलिया एक जैसा होता थ। भरवां दाढ़ी, पग्गड़ बांधे, फूलदार अचकन पहने, एक हाथ में फूल और दूसरे में तलवार पकड़े खड़े हैं। 1857 के बाद बल्कि इससे बहुत पहले भद्र लोग तलवार को वाकिंग स्टिक के तौर पर और शायर बतौर प्रतीक यानी अप्राप्य मिलन की कामना के आरोप में खुद को माशूक के हाथों कत्ल करवाने के लिए इस्तेमाल करने लगे थे। उपमहाद्वीप में यह शालीनता और शर्म का काल था। प्रयाणगीत के डफ डफली बन चुके थे और युद्ध के नगाड़ों की जगह तबले ने ली थी। साम्राज्य की महानता के सुबूत में सिर्फ खंडहर पेश किये जाते थे।

यह सांभर सत्तर अस्सी साल का तो होगा। दादा ने नेपाल की तराई में गिराया था। लोगों की सेवा के लिए एक सींग आधा काट कर रख लिया है। घिस कर लगाने से गुर्दे के दर्द में आराम आ जाता है। दूर-दूर से लोग मांग कर ले जाते हैं। एक बेईमान मरीज ने एक इंच काट कर लौटाया। उसके दोनों गुरदों में दर्द रहता था। मुल्ला आसी अब सींग को अपनी निजी निगरानी में कुरंड की सिली पर घिसवाते हैं। हिंदोस्तान में अभी तक ये जाहिलों के टोटके खूब चलते हैं। वो इसके लेप की तारीफें करने लगे तो मैंने चुटकी ली `मगर मुल्ला गुर्दा तो बहुत अंदर होता है।` बोले हां, तुम्हारे वालिद ने भी पाकिस्तान जाने से पहले तीन-चार बार लेप लगाया था। एक सींग काट कर अपने साथ ले जाना चाहते थे। मैंने मना कर दिया। मैंने कहा, `किब्ला! बारहसिंहों के देस में इस घिसे-घिसाये सींग से काम नहीं चलने का।`

नटराज और मुरदा तीतर

मुल्ला आसी ने एक और यादगार फोटो दिखाया जिसमें मियां तजम्मुल हुसैन नटराज का सा विजयी पोज बनाये खड़े हैं, यानी नीलगाय के सर पर अपना पैर और 12 बोर का कुंदा रखे, खड़े मुस्कुरा रहे हैं, और मैं गले में जस्ते की नमदा-चढ़ी छागल, दोनों हाथों में एक-एक मेलर्ड मुरगाबी (नीलसर) और अपना मुंह लटकाये खड़ा हूं। मियां तजम्मुल हुसैन का दावा था कि थूथनी से दुम की नोक तक नीलगाय की लंबाई वही है जो बड़े से बड़े आदमखोर बंगाल टायगर की होती है। नीलगाय का शिकार हिंदुस्तान में बहुत दिन तक प्रतिबंधित रहा, अब खुल गया है। जब वो फस्लों की फस्लें साफ करने लगे तो नीलगाय को घोड़ा कह कर मारने की इजाजत मिल गयी है। जैसे इंग्लैंड में कालों और सांवलों को ब्लैक नहीं कहते एथनिक्स कह कर ठिकाने लगाते हैं।

ये फोटो चौधरी गुलजार मुहम्मद फोटोग्राफर ने मिनट कैमरे से मियां तजम्मुल हुसैन के घर के अहाते में खींचा था। फोटो खिंचवाने में इतनी देर सांस रोकनी पड़ती थी कि सूरत कुछ से कुछ हो जाती थी। चुनांचे सिर्फ मुर्दा नीलगाय का फोटो अस्ल के मुताबिक था। गुलजार मुहम्मद अक्सर शिकार में साथ लग लेता था। शिकार से मुझे कोई दिलचस्पी नहीं रही। मेरा मतलब शिकार करने से है, खाने से नहीं। बस! मियां तजम्मुल हुसैन हर समय अपनी अर्दली में रखते थे। खुदा न ख्वास्ता कभी नर्क में भेजे गये तो मुझे यकीन है, अकेले हरगिज नहीं जायेंगे। एलची के तौर पर पी.आर. के लिए पहले मुझे भेज देंगे। शहर से सात-आठ मील पर शिकार-ही-शिकार था। आम तौर पर तांगे में जाते थे।

घोड़ा अपने ही वज्न, अपनी ही शक्ल और अपने ही रंग की नीलगाय को ढो कर लाता था। शिकार के तमाम कर्तव्य और व्यवस्था इस दुखियारे के जिम्मे थी, सिवाय बंदूक चलाने के। उदाहरण के लिए, न सिर्फ ठंसाठस भरा हुआ टिफिन-कैरियर उठाये फिरना, बल्कि अपने घर से सुब्ह चार बजे ताजा तरतराते परांठे और कबाब बनवा कर ठंसाठस भर-कर लाना और सब को ठुंसाना। दिसंबर के कड़कड़ाते जाड़े में तालाब में उतर कर छर्रा खाई हुई मुर्गाबी का पीछा करना। हिरन पर निशाना चूक जाये, जो कि आमतौर पर होता रहता था, तो मियां तजम्मुल हुसैन को कसमें खा-खा कर यकीन दिलाना कि गोली बराबर लगी है, हिरन बुरी तरह लंगड़ाता हुआ गया है। जरा ठंडा होगा तो बेशर्म वहीं पछाड़ खा कर ढेर हो जायेगा। तीतर हलाल होने से पहले दम तोड़ दे तो उसके गले पर पहले हलाल हुए तीतर का खून लगाना भी मेरे दायित्वों में सम्मिलित था। इसलिए कि अगर छुरी फेरने से पहले मर जाये तो हफ्तों मुझे बुरा-भला कहते थे। लिहाजा छर्रा या गोली लगने के बाद मैं जख्मी जानवर की उम्र बढ़ने की प्रार्थना करता था ताकि उसे जिंदा हालत में हलाल कर सकूं।

मुर्दा तीतर और मुर्गाबियां वो सर आर्थर के बंगले पर भिजवा देते थे। भिजवा क्या देते थे, मुझी को साइकिल पर लाद कर ले जाना पड़ता था। पीछे वो कैरियर पर शिकार को खुद अपनी गोद में ले कर बैठते थे कि साइकिल पर बोझ न पड़े। उनका अपना वज्न (खाली पेट) 230 पौंड था। इसके बावजूद मैं बहुत तेज साइकिल चलाता था, वर्ना शिकार की बू पर लपकते कुत्ते फौरन आ लेते। मियां तजम्मुल कहते थे - बंदूक मेरी, कारतूस मेरे, निशाना मेरा, शिकार मेरा, छुरी मेरी, साइकिल मेरी। हद ये कि साइकिल में हवा भी मैंने ही भरी, अब अगर इसे चलाऊं भी मैं ही तो आप क्या करेंगे?

वफा भी हुस्न ही करता तो आप क्या करते?

मुलाहिजा फर्माया आपने। बस! क्या अर्ज करूं! इस यारी में कैसी-कैसी मिट्टी पलीद हुई है। ये तो कैसे कहूं कि मियां तजम्मुल हुसैन ने सारी उम्र मेरे कंधे पर रख कर बंदूक चलाई है। अरे साहब कंधा खाली था ही कहां कि बंदूक रखते। कंधे पर तो वो खुद मय-बंदूक सवार रहते थे। खुदा की कसम! सारी उम्र उनके नाज नखरे ही नहीं Literally खुद उन्हें भी उठाया है।

ऊंट की मस्ती की सजा भी मुझको मिली

ये तो शायद मैं पहले भी बता चुका हूं कि बड़े हाजी साहब, यानी तजम्मुल के वालिद तांगा और मोटर कार रखने को घमंड और काहिली की निशानी समझते थे। साइकिल और ऊंट की सवारी पर अलबत्ता ऐतराज नहीं करते थे। इसलिए कि वो इनकी गिनती इंद्रिय-दमन के साधनों में करते थे। अक्सर फर्माते कि, `मैं पच्चीस साल का हो गया, उस वक्त तक मैंने हीजड़ों के नाच के अलावा कोई नाच नहीं देखा था, वो भी तजम्मुल (अपने बेटे) की पैदाइश पर, छब्बीसवें साल में चोरी-छिपे एक शादी में मुजरा देख लिया तो वालिद साहब ने हंगामा खड़ा कर दिया` मुझे बेदख्ल करने की धमकी दी, हालांकि विरसे में मुझे सिवाय उनके कर्जों के, और कुछ मिलने वाला नहीं था। कहने लगे कि `लौंडा बदचलन हो गया है। चेंवट बिरादरी में मैं पहला बाप हूं जिसकी नाक बेटे के हाथों कटी। चुनांचे बतौर सजा मुझे उधार कपास खरीदने चेंवट से झंग एक मस्ती में आये हुए ऊंट पर भेजा, जिसके माथे से बदबूदार मद रिस रहा था।` चलता कम, बिलबिलाता जियादा था। डूबते सूरज की रौशनी में सरगोधे के पेड़ों के झुंड और हद दिखाई देने लगी तो एकाएक बिदक गया। उसे एक ऊंटनी नजर आ गयी। उसका पीछा करने में सरगोधा पार करके मुझे अपने कूबड़ पर हाथ-हाथ भर उछालता पांच मील आगे निकल गया। मुझे तो एक मील बाद ही ऊंटनी दिखाई देनी बंद हो गयी, इसलिए कि मैं ऊंट नहीं था मगर वो मादा की गंध पर लपका जा रहा था। मैं एक मस्त भूकंप पर सवार था। अंत में ऊंट इंतहाई जोश की हालत में एक दलदल में मुझ समेत घुस गया और तेजी से धंसने लगा। मैं न ऊपर बैठा रह सकता था, न नीचे कूद सकता था। गांव वाले रस्से, सीढ़ी और कब्र खोदने वाले को ले कर आये तो जान बची।

हौदा गज भर चौड़ा था। एक हफ्ते तक मेरी टांगें एक दुखती गुलैल की तरह चिरी-की-चिरी रह गयीं। इस तरह चलने लगा जैसे खतरनाक खूनी-कैदी डंडा-बेड़ी पहन कर चलते हैं या लड़के खत्नों के बाद। मेहतर से कह कर कदमचे एक-एक गज की दूरी पर रखवाये। ऊंट की मस्ती की सजा भी मुझी को मिली। किब्ला का विचार था कि बेटे की चाल देख कर ऊंट भी सुधर गया होगा।

अलीगढ़ कट पाजामा, अरहर की दाल

हाजी साहब किबला ने कानपुर में एक हिंदू सेठ के यहां 1907 में 4 रुपये महीना की नौकरी से शुरुआत की। इंतहाई ईमानदार, दबंग, लंबे और डील-डौल के मजबूत आदमी थे। सेठ ने सोचा होगा उगाही में आसानी रहेगी। दूसरे विश्व युद्ध के बाद हाजी साहब करोड़पति हो गये। मगर रखरखाव में जरा जो बदलाव आया हो। मतलब ये कि खुद को यातना देने तक पहुंची हुई कंजूसी। विनम्रता, बातचीत और ढंग से यही लगता था कि अब भी 4 ही रुपये

मिलते हैं। गाढ़ी मलमल का कुरता और टखने से ऊंची चारखाने की लुंगी बांधते थे। शलवार सिर्फ किसी फौजदारी मुकदमे की पैरवी के लिए अदालत में जाने और जनाजे में सम्मिलित होने के अवसर पर पहनते थे। गॉगल्स लगाने वाले, पतलून और चूड़ीदार पाजामा पहनने वाले को कभी उधार माल नहीं देते थे।

कुछ नहीं तो चालीस पैंतालीस बरस तो यू.पी. में जुरूर रहे होंगे, मगर लगी हुई फिरनी, निहारी और अरहर की दाल दुबारा नहीं खाई। न कभी दुपल्ली टोपी और पाजामा पहना। अलबत्ता 1938 में ऑप्रेशन हुआ तो नर्सों ने बेहोशी की हालत में पाजामा पहना दिया जो उन्होंने होश में आते ही उतार फेंका। बकौल शायर-

बेहोश ही अच्छा था, नाहक मुझे होश आया

अक्सर फर्माते कि अगर चिमटे को किसी शरई तकाजे (धार्मिक निर्देश) के तहत या फुकनी के फुसलावे में कुछ पहनना पड़े तो इसके लिए अलीगढ़ कट पाजामे से अधिक उपयुक्त कोई पहनावा नहीं।

नीलगाय और परी जैसे चेहरे वाली नसीम

मैंने मुल्ला आसी को छेड़ा, `अब भी शिकार पर जाते हो?` कहने लगे `अब न फुरसत, न शौक, न गवारा। हिरन अब सिर्फ चिड़ियाघर में दिखाई पड़ते हैं। मैं तो अब मुर्गाबी के परों का तकिया तक इस्तेमाल नहीं करता।` फिर उन्होंने अलगनी पर से एक लीर-लीर बनियान उतारा। कुछ देर रगड़ा तो बातचीत के दूसरे ैनइरमबज के नीचे से एक शीशा और शीशे के नीचे से फोटो बरामद हुआ। ये फोटो चौधरी गुलजार मुहम्मद ने जंगल में शिकार के दौरान खींचा था। इसमें ये दुखियारा और एक चमार काले हिरन को डंडा-डोली करके तांगे तक ले जा रहे हैं। गनीमत है इसमें वो चील कव्वे नजर नहीं आ रहे जो हम तीनों के सरों पर मंडरा रहे थे। क्या बताऊं साहब! हमारे यार ने हमसे क्या-क्या बेगार ली है। मगर सब कुछ गवारा था।

फरिश्तों को कुएं झंकवा दिये इस इश्क जालिम ने

बड़ा खूबसूरत और कड़ियल हिरन था वो। उसकी बड़ी-बड़ी आंखें बहुत उदास थीं। मुझे याद है, उसे हलाल करते समय मैंने मुंह फेर लिया था। अच्छे शिकारी आमतौर पर काला नहीं मारते। सारी डार बेआसरा, बेसिरी हो जाती है। आपने वो कहावत तो सुनी होगी `काला हिरन न मारो सत्तर हो जायेंगी रांड` चौधरी गुलजार मुहम्मद पिंडी भटियां का रहने वाला, पंद्रह बीस साल से कानपुर में आबाद और नाशाद था। अपने स्टूडियो में ताजमहल और कुतुबमीनार के फोटो, जो उसने खुद खींचे थे, बेचता था। अपने मकान की दीवारों को पिंडी भटियां के दृश्यों से सजा रक्खा था। इसमें उसका फूस के छप्पर वाला घर भी शमिल था, जिस पर तुरई की बेल चढ़ी थी। दरवाजे के सामने एक झिलंगे पर एक बुढ्ढन टाइप के बुजुर्ग हुक्का पी रहे थे। पास ही एक खूंटे से गुब्बारा थनों वाली बकरी बंधी थी। हर दृश्य लैला की तरह था जिसे सिर्फ मजनूं की आंख से देखना चाहिये।

वो देगची को देचगी और तमगा को तगमा कहता तो हम सब उस पर हंसते थे। लंबा-चौड़ा आदमी था। बड़ी से बड़ी हड्डी तोड़ने के लिए भी बुगदा केवल एक बार मारता था। चार-मन वज्नी नीलगाय की खाल आधे घंटे में उतार तिक्का बोटी कर के रख देता था। कबाब लाजवाब बनाता था। हर समय बंबई के सपने देखता रहता था। खाल उतारते समय अक्सर कहता कि कानपुर में नीलगाय के अलावा और क्या धरा है? देख लेना एक दिन मिनर्वा

मूवीटोन में कैमरामैन बनूंगा। माधुरी और महताब के क्लोज-अप ले कर भेजूंगा। फिर खुद ही नृत्य करके सैक्सी पोज बनाता और खुद ही काले कपड़े के बजाय अपने सिर पर खून में लिथड़ा हुआ झाड़न डाल कर फर्जी कैमरे से खुद का क्लोज-अप लेता हुआ इमैजिन करता। एक बार इसी तरह परी-चेहरा नसीम का क्लोज अप लेते-लेते उसकी छुरी बहक कर नीलगाय की खाल में घुस गयी। मियां तजम्मुल चीखे, `परी चेहरा गयी भाड़ में। ये तीसरा चरका है। तेरा ध्यान किधर है। खाल दागदार हुई जा रही है` कानपुर में एक लाजवाब Tascidermist था। शेर का सर अलबत्ता बंगलौर भेजना पड़ता था। रईसों के फर्श पर शेर की और मिडिल क्लास घरानों में हिरन की खाल बिछी होती थी। गरीबों के घरों में औरतें गोबर की लिपाई के कच्चे फर्श पर पक्के रंगों से कालीन के से डिजाइन बना लेती थीं।

किस्सा एक मृगछाला का

मुल्ला आसी के कमरे में दरी पर अभी तक निसार अहमद खां की मारी हुई हिरनी की खाल बिछी है। खां साहब के चेहरे, स्वभाव और लहजे में खुशवंत थी। आस्था में हमेशा से वहाबी प्रसिद्ध थे, खुदा जाने। शिकार के लती। मुझ पर बहुत मेहरबान थे। मियां तजम्मुल कहते थे, तुम्हें पसंद करने का कारण तुम्हारा मुंडा हुआ सर और टखने से ऊंचा पाजामा है। गर्राब जहां लगा था, उसका छेद खाल पर ज्यों का त्यों मौजूद है। उसके पेट से पूरे दिनों का बच्चा निकला। किसी ने मांस नहीं खाया। खुद निसार अहमद दो रातें नहीं सोये। इतना असर तो उनके दिल पर उस समय भी नहीं हुआ था जब तीतर के शिकार में उनके फायर के छर्रों से झाड़ियों के पीछे बैठे हुए किसान की दोनों आंखें जाती रही थीं। दो सौ रुपयों में मामला रफा-दफा हुआ।

हिरनी वाली घटना के तीन महीने के अंदर-अंदर उनका इकलौता बेटा जो बी.ए. में पढ़ रहा था, जख्मी मुर्गाबी को पकड़ने की कोशिश में तालाब में डूब कर मर गया। कहने वालों ने कहा ग्याभन, गर्भवती का श्राप लग गया। जनाजा दालान में ला कर रखा गया तो जनाने में कोहराम मच गया, फिर एक भिंची-भिंची चीख कि सुनने वाले की जती फट जाये। निसार अहमद खां ने भर्रायी हुई आवाज में कहा, `बीबी! सब्र, सब्र, सब्र` ऊंची आवाज में रोने से अल्लाह के रुसूल ने मना किया है। वो बीबी खामोश हो गयी, पर खिड़की के जंगले से सर टकरा-टकरा के लहूलुहान कर लिया। मांग खून से भर गयी। लाश कब्र में उतारने के बाद जब लोग कब्र पर मिट्टी डाल रहे थे तो बाप दोनों हाथ से अपने सफेद सर पर मुट्ठी भर-भर के मिट्टी डालने लगा। लोगों ने बढ़ कर हाथ पकड़े।

मुश्किल से छह महीने बीते होंगे कि बीबी को सब्र के लिए समझाने वाला कफन ओढ़ के मिट्टी में जा सोया। वसीयत के मुताबिक कब्र बेटे के पहलू में बनायी गयी है। उनकी पांयती बीबी की कब्र है। बड़ी मुश्किल से कब्र मिली। शहर तो फिर भी पहचाना जाता हैं कब्रिस्तान तो बिल्कुल बदल गया है। पहले हर कब्र को सारा शहर पहचानता था कि मरने वाले से जन्म-जन्म का नाता था। साहिब! कब्रिस्तान भी सीख लेने की जगह है। कभी जाने का मौका मिलता है तो हर कब्र को देख कर ध्यान आता है कि जिस दिन इसमें लाश उतरी होगी, कैसा कुहराम मचा होगा। रोने वाले कैसे बिलख-बिलख कर, तड़प-तड़प कर रोये होंगे। फिर यही रोने वाले दूसरों को रुला-रुला कर यहीं बारी-बारी मिट्टी का पैवंद होते चले गये। साहब! यही सब कुछ होना है तो फिर कैसा शोक किसका दुख, काहे का रोना।

बात दरअस्ल मृगछाला से निकली थी। एक बार मैंने लापरवाही से होल्डर झटक दिया था। रौशनाई के छींटे अभी तक खाल पर मौजूद हैं। मैंने देखा कि आसी खाल पर पांव नहीं रखते। सारे कमरे में यही सबसे कीमती चीज है। आपने भी किसी बिजनेस एक्जीक्यूटिव का जिक्र किया था, जिसके इटालियन मार्बल के फ्लोर पर हर साइज के ईरानी कालीन बिछे हैं। कमरे के एक सिरे से दूसरे सिरे तक जाना हो तो वो इन पर कदम नहीं रखते। इनसे बच-बच कर नंगी राहदरियों पर इस तरह कदम रखते आड़े-तिरछे जाते हैं जैसे वो खुद सांप-सीढ़ी की गोट हों। अरे साहब! मैं भी एक बिजनेसमैन को जानता हूं। उनके घर पर कालीनों के लिए फर्श पर जगह न रही तो दीवारों पर लटका दिये। कालीन हटा-हटा कर मुझे दिखाते रहे कि इनके नीचे निहायत कीमती रंगीन मारबल है।

मैं भी किन यादों की भूल-भुलैया में आ निकला। वो मनहूस बंदूक निसार अहमद खां ने मुल्ला आसी को बख्श दी कि उनके बेटे के जिगरी दोस्त थे। दंगों के समय पुलिस ने सारे मुहल्ले के हथियार जमा कराये तो ये बंदूक भी मालखाने पहुंच गयी, फिर उसकी शक्ल देखनी भी नसीब नहीं हुई। केवल मुहर लगी रसीद हाथ में रह गयी। दौड़-धूप तो बहुत की, एक वकील भी किया। मगर थानेदार ने कहला भेजा कि, `डी.आई.जी. को पसंद आ गयी है। जियादा ऊधम मचाओगे तो बंदूक तो मिल जायेगी मगर पुलिस तुम्हारे यहां से शराब खेंचने वाली भट्टी बरामद करवा लेगी। तुम्हारे सारे रिश्तेदार पाकिस्तान जा चुके हैं। तुम्हारा मकान भी इवेक्वेट प्रोपर्टी घोषित किया जा सकता है, सोच लो।

चुनांचे उन्होंने सोचा और चुप हो रहे। अल्लाह, अल्लाह, एक समय था शहर कोतवाल उनके बाबा से मिलने तीसरे-चौथे आता था। परडी की बड़ी नायाब बंदूक थी। आजकल छह लाख कीमत बतायी जाती है, मगर साहब मुझसे पूछिये तो छह लाख की बंदूक से नरभक्षी शेर, नरभक्षी राजा या खुद से कुछ कम मारना, इतनी कीमती बंदूक का अपमान है। मुल्ला आसी अभी तक जब्त की हुई बंदूक की मुहर लगी रसीद और लाइसेंस दिखाते हुए कहते हैं कि आधा मील दूर से उसका गर्राब उचटता हुआ भी लग जाये तो काला (ब्लैक बक) पानी न मांगे।

स्वाभाविक मृत्यु

पुराने दोस्त जब मुद्दतों के बाद मिलते हैं तो कभी-कभी बातों में अचानक एक तकलीफदे मौन का अंतराल आ जाता है। कहने को इतना होता है कि कुछ भी तो नहीं कहा जाता। हजार यादें, हजार बातें उमड़ कर आती हैं और कुहनी मार-मार कर, कंधे पकड़-पकड़ कर एक-दूसरे को आगे बढ़ने से रोकती हैं। पहले मैं, पहले मैं। तो साहब! मैं एक ऐसे ही अंतराल में उनकी बदहाली और कंगाली पर दिल-ही-दिल में तरस खा रहा था और सोच रहा था कि अगर वो हमारे साथ पाकिस्तान आ गये होते तो सारे दलिद्दर दूर हो जाते। अचानक उन्होंने मौन तोड़ा। कहने लगे, तुम वापिस क्यों नहीं आ जाते। तुम्हारे हार्ट अटैक की जिस दिन खबर आई तो यहां रोनी पड़ गयी। तुम्हें ये राजरोग, रईसों की बीमारी कैसे लगी। सुना है, मैडिकल साइंस को अभी तक इसका कारण पता नहीं चला। मगर मुझे विश्वास है कि एक-न-एक दिन ऐसा माइक्रोस्कोप जुरूर बना लिया जायेगा जो इस बीमारी के कीटाणु करैंसी नोटों में ट्रेस कर लेगा। खुदा के बंदे! तुम काहे को पाकिस्तान चले गये।

यहां किस चीज की कमी है। देखो! वहां तुम्हें हार्ट अटैक हुआ। मियां तजम्मुल हुसैन को हुआ, मुनीर अहमद का बाईपास हुआ, जहीर सिद्दीकी के पेसमेकर लगा, मंजूर आलम के दिल में छेद निकला मगर मुझे विश्वास है पाकिस्तान में ही हुआ होगा, यहां से तो साबुत-सलामत गये थे। खालिद अली लंदन में एन्जियोग्राफी के दौरान

मेज पर ही अल्लाह को प्यारे हो गये। और! तो और दुबले सींक-छुआरा भय्या एहतशाम भी लाहौर में हार्ट-अटैक में गये। सिब्तैन और इंस्पेक्टर मलिक गुलाम रुसूल लंगड़याल को हार्ट-अटैक हुआ। मौलाना माहिर-उल-कादरी को हुआ। यूं कहो, किसको नहीं हुआ। भाई मेरे, यहां मानसिक शांति है, त्याग है, सब अल्लाह-भरोसे है। यहां किसी को हार्ट-अटैक नहीं होता, हिंदुओं में अलबत्ता केसेज होते रहते हैं।

यानी सारा जोर किस पर हुआ? इस पर कि कानपुर में हर आदमी स्वाभाविक मौत मरता है। हार्ट-अटैक से बेमौत नहीं मरता। अरे साहब! मेरे हार्ट-अटैक को तो उन्होंने खूंटी बना लिया और जिस पर जान-पहचान के गड़े मुर्दे उखाड़-उखाड़ कर टांगते चले गये। मुझे तो सब नाम याद भी नहीं रहे। दूसरे हार्ट अटैक के बाद मैंने दूसरों की राय से असहमत होना छोड़ दिया है। अब अपनी राय हमेशा गलत समझता हूं। सब खुश रहते हैं, लिहाजा चुपका बैठा सुनता रहा और वो उन सौभाग्यवान मृतकों का नाम गिनवाते रहे जो हार्ट अटैक में नहीं मरे, किसी और बीमारी में मरे।

`अपने मौलवी मोहतशिम टी.बी. में मरे। खान बहादुर अजमतुल्लाह खां के पोते सीनियर क्लर्क हमीदुल्ला का गले के कैंसर में देहांत हुआ। शहनाज के मियां, आबिद हुसैन वकील, हिंदू-मुस्लिम दंगे में मारे गये। कायमगंज वाले अब्दुल वहाब खां पूरे पच्चीस दिन टाइफाइड से जकड़े रहे। हकीम की कोई दवा काम न आई। पूरे होशो-हवास के साथ दम छोड़ा। मरने से दो मिनट पहले हकीम का पूरा नाम ले कर गाली दी। मुंशी फैज मुहम्मद हैजे में एक दिन में चटपट हो गये। हाफिज फखरुद्दीन फालिज में गये, मगर अल्लाह के करम से हार्ट अटैक किसी को नहीं हुआ। कोई भी अस्वाभाविक मौत नहीं मरा। पाकिस्तान में मेरी जान-पहचान का कोई शख्स ऐसा नहीं जिसके दिल का बाईपास नहीं हुआ। यही हाल रहा तो वो दिन दूर नहीं जब खाते-पीते घरानों में खत्ने और बाईपास एक साथ होंगे।

फिर वो आवागमन और निर्वाण की फिलासफी पर लैक्चर देने लगे। बीच लैक्चर में उन्हें एक और उदाहरण याद आ गया। अपनी ही बात काटते हुए और महात्मा बुद्ध को बोधिवृक्ष के नीचे अकेला ऊंघता छोड़ कर कहने लगे, `हद ये है कि ख्वाजा फहीमुद्दीन का भी हार्ट फेल नहीं हुआ। बीबी के मरने के बाद दोनों बेटियां ही सब कुछ थीं। उन्हीं में मगन थे। एक दिन अचानक पेशाब बंद हो गया। डाक्टर ने कहा प्रोस्टेट बढ़ गया है। फौरन एमरजेन्सी में आप्रेशन करवाना पड़ा, जो बिगड़ गया। तीन चार महीने में लोटपोट के ठीक हो गये।

लेकिन बड़ी बेटी ने बिना खबर दिये अचानक एक हिंदू वकील और छोटी ने एक सिख ठेकेदार से शादी कर ली तो जानो कमर टूट गयी। पुरानी चाल और पुराने खयाल के आदमी हैं। अटवाटी-खटवाटी लेकर पड़ गये और उस वक्त तक पड़े रहे, जब तक उस क्रिस्चियन नर्स से शादी न कर ली जिसने प्रोस्टेट के आप्रेशन के दौरान उनका गू-मूत किया था। वो कट्टो तो जैसे उनके इशारे के इंतजार में बैठी थी। इन्हीं की तरफ से हिचर-मिचर थी।

बाप के सेहरे के फूल खिलने की खबर सुनी तो दोनों भागी हुई बेटियों ने कहला भेजा हम ऐसे बाप का मुंह देखें तो बुरे जानवर (सुअर) का मुंह देखें। वो चीखते ही रह गये कि कमबख्तो! मैंने कम-से-कम ये काम शरीयत के हिसाब से तो किया है। मियां! ये सब कुछ हुआ, मगर हार्ट अटैक ख्वाजा फहीमुद्दीन को भी नहीं हुआ। तुम्हारे हार्ट अटैक की खबर सुनी तो देर तक अफसोस करते रहे। कहने लगे, यहां क्यों नहीं आ जाते? साहब! मुझसे न रहा गया। मैंने कहा, प्रोस्टेट बढ़ गया तो मैं भी आ जाऊंगा।

पिंडोले का पियाला : लड़कपन में खाने के मामले में बड़े नफासत पसंद थे। दोप्याजा गोश्त, लहसुन की चटनी, सिरी पाये, कलेजी, गुर्दे, खीरी और मग्जे से उन्हें बड़ी घिन आती थी। दस्तरख्वान पर कोई ऐसी डिश हो तो भूखे उठ जाते थे। इस विजिट में एक जगह मेरे सम्मान में दावत हुई तो भुना हुआ मग्ज भी था। साहब! लहसुन का छींटा दे दे कर भूना जाये तो सारी बसांद निकल जाती है बशर्ते कि गर्म-मसाला जरा बोलता हुआ और मिर्चें भी चहका मारती हों। मुझे ये देख कर आश्चर्य हुआ कि उन्होंने खाया भी और बुरा भी न माने। मैंने पूछा, हजरत, ये कैसी बदपरहेजी? बोले, जो सामने आ गया, जो कुछ हम पर उतरा, खा लिया। हम इन्कार करने, मुंह बनाने वाले कौन।

फिर कहने लगे, `भाई! तुमने वो भिक्षु वाला किस्सा नहीं सुना, भिक्षु से सात बरस भीख मंगवायी जाती थी ताकि घमंड का फन ऐड़ियों तले बिल्कुल कुचल जाये। इसके बगैर आदमी कुछ पा नहीं सकता। भिक्षा-पात्र को महात्मा बुद्ध ने सम्राट का मुकुट कहा है। भिक्षु को कोई अगर एक समय से अधिक का खाना देना भी चाहे तो भी वो स्वीकार नहीं कर सकता और जो कुछ भी उसके पात्र में डाल दिया जाये उसे बिना ना-नुकर के खाना उसका कर्तव्य है। पाली के पुराने ग्रंथों में आया है कि पिंडोले नाम के एक भिक्षु के पात्र में एक कोढ़ी ने रोटी का टुकड़ा डाला। डालते समय उसका कोढ़ से गला हुआ अंगूठा भी झड़ कर पात्र में गिर गया। पिंडोले को दोनों का स्वाद एक सा लगा, यानी कुछ नहीं।

साहब! वो तो ये किस्सा सुना कर सर झुकाये खाना खाते रहे, मगर मेरा ये हाल कि मग्ज तो एक तरफ रहा, मेज पर रखा सारा खाना जहर हो गया। साहब! अब उनका दिमाग भी पिंडोले का पात्र हो गया है।

मुल्ला भिक्षु

लड़की की आत्महत्या वाली घटना 1953 की बतायी जाती है। सुना है, उस दिन के बाद अपने में सिमट आये और पढ़ाने का मेहताना लेना छोड़ दिया। तीस साल हो गये, किसी ने कुछ खिला दिया तो खा लिया वरना तकिया पेट पर रखा और घुटने सिकोड़, दोनों हाथ जोड़, उन्हें दायें गाल के नीचे रख कर सो जाते हैं। क्या कहते हैं इसको? जी, Foetal Posture! उर्दू में इसे कोख-आसन या जन्म-आसन (गर्भासन) कह लीजिये मगर मैं आपकी इस फ्रायड वाली बात से बिल्कुल सहमत नहीं। आप खुद भी तो इस तरह कुंडली मार कर सोते हैं मगर इसका कारण तपस्या नहीं अल्सर है।

मुल्ला आसी भिक्षु कहते हैं कि महात्मा बुद्ध भी दाहिने पांव पर बायां पांव और सर के नीचे हाथ रख कर दाहिनी करवट सोते थे। इसे सिंह शय्या कहते हैं। भोग विलासी यानी अय्याश बायीं करवट सोते हैं। इसे कामभोगी शय्या कहते हैं। ये मुझे इन्हीं से पता चला कि बदचलन आदमी केवल सोने के आसन से भी पकड़ा जा सकता है। बहरहाल, अब हाल ये है कि जो किसी ने पहना दिया, पहन लिया, जो मिल गया, खा लिया। जिससे मिला जैसा मिला, जब मिला। जहां थक गये वहीं रात हो गयी। जहां पड़ रहे, वहीं रैन बसेरा। तन तकिया, मन विश्राम। चार-चार दिन घर नहीं आते, मगर क्या अंतर पड़ता है।

जैसे कंथा घर रहे वैसे रहे बिदेस

खुदा भला करे उनके चेलों का। वही-देख रेख करते हैं। ऐसे चाहने वाले, सेवा करने वाले शिष्य नहीं देखे।

एक दिन मुल्ला हाथ का पियाला-सा बना कर कहने लगे। बस मुट्ठी भर दानों के लिए बंजारा कैसा घबराया, कैसा बौलाया फिरता है। हर व्यक्ति पर अगर ये खुल जाये कि जीवन जीना कितना आसान है तो ये सारा कारखाना ठप्प हो जाये, ये सारा पाखंड, ये सारा आडंबर पल-भर में खंडित हो जाये। हर आदमी का शैतान उसके अंदर होता है और इच्छा इस शैतान का दूसरा नाम है। आदमी अपनी इच्छाओं को जितना बढ़ाता और हुशकारता जायेगा, उसका मन उतना ही कठोर और उसका जीवन उतना ही कठिन होता जायेगा। डायनासौर का बदन जब इतना बड़ा हो गया और खाने की इच्छा इतनी विकट हो गयी कि जिंदा रहने के लिए उसे लगातार चौबीस घंटे चरना पड़ता था तो उसकी प्रजाति ही नष्ट हो गयी। खाना केवल इतनी मात्रा में ही उचित है कि शरीर और प्राण का संबंध बना रहे। बदन दुबला होगा तो आत्मनियंत्रण होना सहज है। मैंने आज तक कोई पतला मौलवी नहीं देखा। भरे-पेट इबादत और खाली-पेट अय्याशी नहीं हो सकती।

ये कहते हुए वो मेज पर से अपने अनुवाद किये हुए बोध मंत्रों की हस्तलिखित प्रति उठा लाये और इसकी प्रस्तावना से श्लोक पढ़ने वाली शैली में लहक-लहक कर भूमिका सुनाने लगे।

बोधिसत्व ने भगवान सचक से कहा ऐ अगी वेसन! जब मैं दांतों पर दांत जमा कर और जीभ को तालु से लगा कर अपने मन-मस्तिष्क को नियंत्रण में करने की कोशिश करता था तो मेरी बगलों से पसीना छूटने लगता था। जिस तरह कोई बलवान आदमी किसी कमजोर आदमी का सर या कंधा पकड़ कर दबाता है, ठीक उसी तरह मैं अपने दिल और दिमाग को दबाता था, ऐ अगी वेसन! इसके बाद मैंने सांस रोक कर तपस्या की। इस समय मेरे कानों से सांस निकलने की आवाजें आने लगीं। लोहार की धौंकनी जैसी ये आवाजें बहुत तेज थीं। फिर ऐ अगी वेसन! मैं सांस रोक कर और कानों को हाथों से दबा कर तपस्या करने लगा। ऐसा करने से मुझे यों लगा जैसे कोई तलवार की तेज नोक से मेरे माथे को छलनी कर रहा है, फिर भी ऐ अगी वेसन! मैंने अपनी तपस्या जारी रखी।

ऐ अगी वेसन! तपस्या और उपवास से मेरा शरीर दिन प्रतिदिन कमजोर पड़ता गया। बांस की गांठों की तरह मेरे शरीर का जोड़-जोड़ साफ दिखाई देता था। मेरा कूल्हा सूख कर ऊंट के पांव की तरह हो गया। मेरी रीढ़ की हड्डी सूत की तकलियों की माला की तरह दिखाई देती थी। जिस तरह गिरे हुए मकान की बल्लियां ऊपर नीचे हो जाती हैं मेरी पसलियों की भी वही दशा हो गयी। मेरी आंखें किसी गहरे कुएं में सितारों की परछाईं की तरह अंदर को धंस गयीं। जैसे कच्चा-कड़वा कद्दू काट कर धूप में डाल देने से सूख जाता है वैसे ही मेरे सर की चमड़ी सूख गयी। जब पेट पर हाथ फेरता था तो मेरे हाथ में रीढ़ की हड्डी आ जाती थी और जब पीठ पर हाथ फेरता तो हाथ पेट की चमड़ी तक पहुंच जाता था। इस तरह मेरी पीठ और पेट बराबर हो गये। शरीर पर हाथ फेरता तो बाल झड़ने लगते थे।`

ये पढ़ने के बाद जरा-सी ढील दी, आंखें मूंद लीं। मैं समझा ध्यान-ज्ञान की गोद में चले गये हैं। जरा देर बाद आंखें बस इतनी खोलीं कि पलक से पलक जुदा हो जाये। जब वो ध्यान की सातवीं सीढ़ी पर झूम रहे थे, हाथ का चुल्लू बना कर कहने लगे, `एक प्यास वो होती है जो घूंट-दो-घूंट पानी से बुझ जाती है, एक वो होती है कि जितना पानी पियो, प्यास उतनी ही भड़कती है। हर घूंट के बाद जबान में कांटे पड़ते चले जाते हैं। आदमी आदमी पर निर्भर है। किसी को काया मोह, किसी को धन-धरती की प्यास लगती है। किसी को ज्ञान और प्रसिद्धि की, किसी को खुदा के बंदों पर खुदायी की और किसी को औरत की प्यास है, जो बेहताशा लगी चली जाती है पर सबसे जियादा बेचैन

करने वाली वो झूठी प्यास है जो इंसान अपने ऊपर ओढ़ लेता है। ये प्यास नदियों, बादलों और ग्लेशियरों को निगल जाती है और बुझती नहीं है। इंसान को दरिया-दरिया बंजर-बंजर लिए फिरती है, बुझाये नहीं बुझती। आग-आग, फिर होते-होते यह अनबुझ प्यास खुद इन्सान को ही पिघला कर पी जाती है।

कुरआन में आया है कि, `जब जालूत लश्कर ले कर चला, तो उसने कहा, एक दरिया पर अल्लाह की तरफ से तुम्हारी परीक्षा होने वाली है। जो उसका पानी पियेगा वो मेरा साथी नहीं। मेरा साथी सिर्फ वो है, जो इससे प्यास न बुझाये। हां! एक आध चुल्लू कोई पी ले तो पी ले, मगर एक छोटे गिरोह के अलावा सभी ने इसका भरपूर पानी पिया। फिर जब जालूत और उसके साथी दरिया पार करके आगे बढ़े तो उन्होंने जालूत से कह दिया कि आज हममें दुश्मन और उसके लश्करों का सामना करने की ताकत नहीं।` सो इस दरिया के किनारे सबका इम्तहान होता है। जिसने उसका पानी पी लिया उसमें बुराई का मुकाबला करने की ताकत नहीं रही। जीत उसकी, निजात उसकी जो बीच दरिया से प्यासा लौट आये।

देखा आपने, बस इसी कारण मुल्ला भिक्षु कहलाते हैं। बातचीत बालों से भी अधिक खिचड़ी और आस्था के नियम उनसे अधिक रंग-बिरंग, सूफियों की-सी बातें करते करते, अचानक साधुओं का-सा बाना धारण कर लेते हैं। शब्दों के सर से अनायास अमामा (अरबी पगड़ी) उतर जाता है और हर शब्द, हर अक्षर की जटायें निकल आती हैं। आबे-जमजम से वजू करके भभूत रमा लेते हैं। अभी कुछ है, अभी कुछ। आपको ऐसा महसूस होगा कि भटक कर कहां-से-कहां जा निकले।

कश्का खेंचा, दैर में बैठा, कब का तर्क इस्लाम किया

और कभी ऐसा महसूस करा देंगे जैसे गौतम बुद्ध ने वृक्ष तले अपनी समाधि छोड़ कर नमाज की टोपी पहन ली है। मगर कभी एक बिंदु पर टिकते नहीं हैं। टिड्डे की तरह एक से दूसरे, दूसरे से तीसरे पर फुदकते रहते हैं। मैंने एक दिन छेड़ा। मौलाना, कुछ आलिमों के विचार में इस्लाम छोड़ने वाले मुरतद की सजा कत्ल है। इशारा समझ गये, मुस्कुरा दिये। कहने लगे, जिसने पहले ही खुदकुशी कर ली हो उसे सूली पे लटकाने से फायदा -

तमाम चेहरे हैं मेरे चेहरे

तमाम आंखें हैं मेरी आंखें

अपने तमाम प्यार और गर्मजोशी के बावजूद भी वो मुझे अच्छे-खासे बेतअल्लुक लगे। एक तरह की सूफियों वाली तटस्थता और निस्पृहता-सी आ गयी है, रिश्तों में भी। एक दिन कहने लगे, कोई वस्तु हो या व्यक्ति उससे नाता जोड़ना ही दुख का मूल कारण है। फिर इंसान की सांस छोटी और उड़ान ओछी हो जाती है। इंसान जी कड़ा करके हर चीज से नाता तोड़ ले तो दुख और सुख के अंतहीन चक्कर से बाहर निकल जाता है। फिर वो सुखी रहता है न दुखी।

मेरी वापसी में दो दिन रह गये तो मैंने छेड़ा, `मौलाना यहां बहुत रह लिए, जोरू न जाता, कानपुर से नाता। अब मेरे साथ पाकिस्तान चलो। सब यार-दोस्त, सारे संगी-साथी वहीं हैं।`

`पुरखों के हाड़-हड़वार (हड्डियां) तो यहीं हैं।`

`तुम कौन से इन पर फातिहा पढ़ते हो या जुमेरात की जुमेरात फूलों की चादर चढ़ाते हो, जो छूटने का दुख हो।`

इतने में एक चितकबरी बिल्ली अपना बच्चा मुंह में दबाये उनके कमरे में दाखिल हुई। नेमतखाने में बंद कबूतर सहम-कर कोने में दुबक गये। बिल्ली के पीछे पड़ौसी की बच्ची मैना का पिंजरा हाथ में लटकाये और अपनी गुड़िया दूसरी बगल में दबाये आई और कहने लगी कि सुब्ह से इन दोनों ने कुछ नहीं खाया। बोलते भी नहीं, दवा दे दीजिये। उन्होंने बीमार गुड़िया की नब्ज देखी और मैना से उसी के लहजे में बोलने लगे तो मैना उन्हीं के लहजे में बोलने लगे लगी। उन्होंने एक डिब्बे में से लेमन ड्रॉप निकाल कर बच्ची को दी। उसने उसे चूसा तो गुड़िया को आराम आ गया। वो मुस्कुरा दिये फिर बहस का सिरा वहीं से उठाया जहां से बिल्ली, बच्ची और मैना के अचानक आने से टूट गया था। मुझसे कहने लगे, `यहां मैं सबके दुख दर्द में साझी हूं, वहां मेरी जुरूरत किसको होगी? वहां मुझ-सा गरीब कौन होगा, यहां मुझसे भी गरीब हैं।`

खुदा के बंदे! एक बार चल कर तो देखो, पाकिस्तान का तुम्हारे दिमाग में कुछअजीब-सा नक्शा है। वहां भी दुखी बसते हैं। हमारी खातिर ही चलो, एक हफ्ते के लिए ही सही।

`कौन पूछेगा मुझको मेले में?`

तो फिर यूं समझो कि जहां सभी ताज पहने बैठे हों वहां नंगे सिर आदमी, धरती पे बैठा आदमी सबसे उजागर होता है।

खुदा जाने सचमुच कायल हुए या केवल जिच हो गये, कहने लगे, `बिरादर, मैं तो तुम्हें दाना डाल रहा था। अब तुम कहते हो कि हमारी छतरी पे आन बैठो। खैर, चला तो चलूं, मगर खुदा जाने इन कबूतरों का क्या होगा?`

`ये खुदा की नीयत पर नहीं, बिल्ली की नीयत पर है, मगर सुनो तुम खुदा के कब से कायल हो गये?`

`मैंने तो मुहावरा कहा था। सामने जो जामुन का पेड़ देख रहे हो, ये मेरे दादा ने लगाया था। जिस समय पौ फटती है और इस खिड़की से सुब्ह का सितारा नजर आना बंद हो जाता है या जब दोनों वक्त मिलते हैं और शाम का झुटपुटा-सा होने लगता है तो इस पर अनगिनत चिड़ियां जी-जान से चहचहाती हैं कि दिल को कुछ होने-सा लगता है। इस जामुन की देखभाल कौन करेगा?`

`अव्वल तो इस बूढ़े जामुन को तुम्हारी और बुद्धिज्म की जुरूरत नहीं, गोबर की खाद की जुरूरत है; दूसरे, तुम्हें भ्रम हो रहा है। महात्मा बुद्ध को निर्वाण जामुन के नीचे नहीं, पीपल-तले प्राप्त हुआ था। और अगर तुम पशु, पक्षी और पेड़ की सेवा के बगैर जिंदा नहीं रह सकते तो कराची के कमजोर गधों और लाहौर की अपर-मॉल की जामनों की रखवाली करके शौक पूरा कर लेना।`

`मैं आऊंगा, लाहौर एक दिन जरूर आऊंगा। मगर फिर कभी और,`

`अभी मेरे साथ चलने में क्या परेशानी है?`

`इन बच्चों का क्या होगा?`

`होगा क्या? बड़े हो जायेंगे, तुम्हें कोई मिस नहीं करेगा। आखिर को तुम मर गये, तब क्या होगा?`

`तो क्या हुआ। ये बच्चे - इन बच्चों के बच्चे तो जिंदा रहेंगे। सीनों में उजाला भर रहा हूं। मर गया तो उनके मुंह से बोलूंगा। इनकी अवतार आंखों से देखूंगा।`

बिशारत की जबानी कहानी यहीं खत्म होती है।

नेपथ्य कथा

लो वो भी हार्ट अटैक में गये : 3 दिसंबर, 1985 को सूरज उगने से जरा पहले, जब उन्हीं के शब्दों में, जामुन पर चिड़ियां इस तरह चहचहा रही थीं, जैसे जी जान से गुजर जायेंगी, मुल्ला अब्दुल मन्नान आसी का हृदयगति रुक जाने से देहांत हो गया। मुहल्ले की मस्जिद के इमाम ने कहला भेजा, इस्लामद्रोही के जनाजे की नमाज जायज नहीं। जिसके अस्तित्व के ही मियां कायल न थे उससे बख्शिश की दुआ का क्या मतलब। बड़ी देर तक जनाजा जामुन तले रखा रहा। अंत में उनके एक प्रिय शिष्य ने नमाज पढ़ाई, सैकड़ों लोग सम्मिलित हुए। दफ्न से पहले उनके ब्लैक-बॉक्स का ताला मुहल्ले वालों के सामने खोला गया। इसमें स्कूल की कापी के एक पन्ने पर पेंसिल से लिखी हुई तहरीर मिली। लिखा था, `मरने के बाद मेरी जायदाद (जिसका विस्तृत विवरण और हाल आप पिछले पृष्ठों में पढ़ चुके हैं) नीलाम करके कबूतरों का ट्रस्ट बना दिया जाये और ध्यान रखा जाये कोई गोश्त खाने वाला ट्रस्टी न बनाया जाये।' ये भी लिखा था - `मुझे कानपुर में न दफ्न किया जाये, लाहौर में मां के कदमों में लिटा दिया जाये।`

>>पीछे>> >>आगे>>

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

उपन्यास

खोया पानी

मुश्ताक़ अहमद यूसुफ़ी

अनुवाद - तुफ़ैल चतुर्वेदी

अनुक्रम

कार, काबुली वाला और अलादीन बेचिराग

पीछे

आगे

इकबाल ने उन कवियों, कलाकारों और कहानीकारों पर बड़ा तरस खाया है जिनके मन-मस्तिष्क पर औरत सवार है। मगर हमारे मित्र और प्रशंसित बिशारत फारूकी उन बदनसीबों में से थे, जिनकी बेदाग जवानी उस शायर की शायरी की तरह थी जिसके बारे में किसी ने कहा था कि उसका कलाम गलतियों और मजे दोनों से खाली है। बिशारत की ट्रेजडी कवियों, कलाकारों और कहानीकारों से कहीं अधिक घोर गंभीर थी। इसलिए कि दुखिया के मन-मस्तिष्क पर औरत को छोड़ के हमेशा कोई-न-कोई सवार रहा। उम्र के उस दौर में जिसे अकारण ही जवानी-दीवानी से परिभाषित किया जाता है, उनकी सोच पर क्रमानुसार मुल्ला, बुजुर्ग, मास्टर फाखिर हुसैन, परीक्षक, मौलवी मुजफ्फर, दाग देहलवी, सहगल और ससुर सवार रहे। खुदा-खुदा करके वो इसी क्रम में उन पर से उतरे तो घोड़ा सवार हो गया। जिसका किस्सा हम 'स्कूल मास्टर का ख्वाब में' बता चुके हैं। वो मनहूस-कदम उनके सपनों, शांति और घरेलू बजट पर झाड़ू फेर गया। रोज-रोज के चालान, जुर्माने और रिश्वत से वो इतने तंग आ चुके थे कि अक्सर कहते कि अगर मुझे च्वायस दी जाये कि तुम घोड़ा बनना पसंद करोगे या उसका मालिक या कोचवान तो मैं बिना किसी हिचकिचाहट के वो इंस्पेक्टर बनना पसंद करूंगा जो इन तीनों का चालान करता है।

संगीन गलती करने के पश्चात hindsight करने वालों की भांति वो उस जमाने में च्वायस की बात बहुत करते थे, मगर च्वायस है कहां? महात्मा बुद्ध ने तो दो टूक बात कह दी कि अगर च्वायस दी जाती तो वो पैदा होने से ही इंकार कर देते। परंतु हम पूरे विश्वास से कह सकते हैं कि घोड़े को च्वायस दी जाये तो वो अगले जन्म में भी घोड़ा ही बनना पसंद करेगा, महात्मा बुद्ध बनना नहीं, क्योंकि वो घोड़ियों के साथ ऐसा व्यवहार नहीं कर सकता जैसे गौतम बुद्ध ने यशोधरा के साथ किया अर्थात उन्हें बेखबर सोता छोड़ कर जंगल को निकल जाये या किसी जॉकी के साथ भाग जाये। घोड़ा कभी अपने घोड़ेपन से शर्मिंदा नहीं हो सकता। न कभी उस गरीब को आसमान वाले से शिकवा होगा, न अपने सवार से कोई शिकायत, न हर दम किसी और की तलाश में रहने वाली मादाओं की बेवफाई से गिला। यह तो आदमी ही है जो हर दम अपने आदमीपन से लज्जित और परेशान रहता है और इस चिंता में खोया रहता है कि

'डुबोया मुझको होने ने, न होता मैं तो क्या होता'

घोड़ा-तांगा रखने और उसे ठिकाने लगाने के बाद बिशारत में दो विपरीत परिवर्तन दिखाई दिये। पहला तो यह कि घोड़े और उसके दूर-निकट के सारे संबंधियों से हमेशा के लिए नफरत हो गयी। अकेले एक लंगड़े घोड़े ने उन्हें जितना नुकसान पहुंचाया, उतना सारे हाथियों ने मिल कर पोरस को नहीं पहुंचाया होगा। दूसरा परिवर्तन यह आया कि अब वो सवारी के बिना नहीं रह सकते थे। आदमी को एक बार सवारी की आदत पड़ जाये तो फिर अपनी टांगों से उनका स्वाभाविक काम लेने में अपमान के अतिरिक्त कमजोरी भी महसूस होने लगती है। उनका लकड़ी का कारोबार अब काफी फैल गया था जिसे वो कभी अपनी दौड़-धूप का फल और कभी अपने पिता जी की जूतियों के कारण बताते थे। जबकि स्वयं आदरणीय इसे भागवान घोड़े के कदमों की बरकत मानते थे। बहरहाल, ध्यान देने योग्य बात यह थी कि उनकी तरक्की का साधन और कारण कभी पैरों और जूतियों से ऊपर नहीं गया। किसी ने बल्कि स्वयं उन्होंने भी बुद्धिमानी और कुशलता को इसका क्रेडिट नहीं दिया। लकड़ी की बिक्री बढ़ी तो कार्यालयों के चक्कर भी बढ़े। उतनी ही सवारी की आवश्यकता भी बढ़ी। उस जमाने में कंपनियों में रिश्वत नहीं चलती थी इसलिए काम निकालने में कहीं अधिक तिरस्कृत और अपमानित होना पड़ता था। हमारे यहां ईमानदार अफसर के साथ मुसीबत यह है कि जब तक अकारण सख्ती, नुक्ताचीनी, अड़ियल, सड़ियलपन और सबको अपनी ईमानदारी से दुःखी न कर दे वो अपनी नौकरी को पक्का और अपने-आप को सुरिक्षत नहीं समझता।

बेईमान अफसर से बिजनेसमैन आसानी से निपट लेता है। ईमानदार अफसर से उसे घबराहट होती है। सूरते-हाल यह थी कि कंपनी से लकड़ी और खोखों का आर्डर लेने के लिए पांच चक्कर लगायें तो बिल की वसूली के लिए दस चक्कर लगाने पड़ते थे। जब से कंपनियां लीचड़ हुईं उन्होंने दस फेरों का किराया और मेहनत भी लागत में जोड़ के कीमतें बढ़ा दीं। उधर कंपनियों ने उनकी नयी कीमतों को लुट्टस करार दे कर दस प्रतिशत कटौती शुरू कर दी। बात वहीं की वहीं रही। अंतर केवल इतना पड़ा कि दोनों पार्टियां एक दूसरे को लालची, काइयां और चोर समझ कर लेन-देन करने लगीं और यह चौकस और कामयाब बिजनेस का बुनियादी उसूल है।

अब सवारी के बिना गुजारा नहीं हो सकता था, लेकिन यह समझ में नहीं आ रहा था कि वो हो कौन-सी। उस समय टैक्सी केवल खास मौकों पर उपयोग की जाती थी। उदाहरण के तौर पर हार्ट-अटैक के मरीज को अस्पताल ले जाने, अपहरण करने, डाका डालने और पुलिस वालों को लिफ्ट देने के लिए, किसी को अस्पताल ले जाते थे तो केवल यह मालूम करने के लिए ले जाते थे कि जिंदा है या मर गया, क्योंकि बड़े अस्पताल में उन्हीं मरीजों को दाखिला मिलता था जो पहले उसी अस्पताल के किसी डाक्टर के प्राइवेट क्लीनिक में Preparatory इलाज करवा के अपनी हालत इतनी खराब कर लें कि उसी डाक्टर के माध्यम से अस्पताल में आखिरी मंजिल आसान करने के लिए दाखिला मिल सके। वैसे तो मरने के लिए कोई भी जगह अनुचित नहीं, परंतु प्राइवेट अस्पताल और क्लीनिक में मरने का सब से बड़ा फायदा यह है कि मरने वाले की जायदाद, जमा-जत्था और बैंक-बैलेंस के बंटवारे पर मृतक के संबंधियों में खून-खराबा नहीं होता, क्योंकि वो सब डाक्टरों के हिस्से में आ जाता है। अफसोस! शाहजहां के समय प्राइवेट अस्पताल न थे। वो उनमें दाखिल हो जाता तो आगरा किले में इतने लंबे अर्से तक कैद रहने और ऐड़ियां रगड़-रगड़ कर जीने से साफ बच जाता और उसके चारों बेटे तख्तनशीनी की जंग में एक-दूसरे के सर काटने के जतन में सारे हिंदुस्तान में आंख-मिचौली खेलते न फिरते, क्योंकि फसाद की जड़ यानी राज्य और खजाना तो बिल अदा करने में अत्यंत शांतिपूर्ण ढंग से जायज वारिसों यानी डाक्टरों के पास चला जाता। बल्कि सत्ता परिवर्तन के लिए पुरानी एशियाई परंपरा यानी बादशाह के मरने की भी आवश्यकता न

रहती। इसलिए कि जीते-जी तो हर शासक इंतकाले-इक्तिदार (सत्ता-परिवर्तन) को अपना जाती इंतकाल (निजी मृत्यु) समझता है।

बिलों की वसूली के सिलसिले में वो कई बार साइकिल रिक्शा में भी गये, लेकिन हर बार तबियत भारी हुई। पैडल रिक्शा चलाने वालों को अपने से दुगनी सवारी ढोनी पड़ती थी, जबकि खुद सवारी को इससे भी जियादा भारी बोझ उठाना पड़ता था कि वो अपने जमीर से बोझों मरती थी। हमारे विचार में आदमी को आदमी ढोने की इजाजत सिर्फ दो सूरतों में मिलनी चाहिये, प्रथम तो उस समय जब दोनों में से एक मर चुका हो, दूसरे इस सूरत में जब दोनों में से एक उर्दू आलोचक हो, जिस पर मुर्दे ढोना फर्ज ही नहीं रोजी का साधन और शोहरत का कारण भी हो।

आत्महत्या , गरीबों की पहुंच से बाहर

एकाध बार खयाल आया कि बसों में धक्के खाने और स्ट्रिपटीज करवाने से तो बेहतर है कि आदमी मोटरसाइकिल खरीद ले। मोटरसाइकिल रिक्शा का सवाल ही पैदा नहीं होता था इसलिए कि तीन पहियों पर आत्महत्या का यह सरल और शर्तिया तरीका अभी ईजाद नहीं हुआ था। उस जमाने में आम आदमी को आत्महत्या के लिए तरह-तरह की मुसीबतें और खखेड़ उठानी पड़ती थीं। घरों का यह नक्शा था कि एक-एक कमरे में दस-दस आदमी इस तरह ठुंसे होते कि एक-दूसरे की आंतों की आवाज तक सुन सकते थे। ऐसे में इतना एकांत कहां नसीब, कि आदमी फांसी का फंदा कड़े में बांध कर अकेला शांति से लटक सके। इसके अतिरिक्त कमरे में सिर्फ एक ही कड़ा होता था, जिसमें पहले ही एक पंखा लटका होता था। गर्म कमरे के वासी इसकी जगह किसी और को लटकने की अनुमति नहीं दे सकते थे। रहे पिस्तौल और बंदूक, तो उनके लिए लाइसेंस की शर्त थी जो सिर्फ अमीरों, वडेरों और अफसरों को मिलते थे, सो आत्महत्या करने वाले रेल की पटरी पर दिन-दिन भर लेटे रहते क्योंकि ट्रेन बीस-बीस घंटे लेट होती थी। आखिर गरीब मौत से मायूस हो कर कपड़े झाड़ कर उठ खड़े होते।

मोटरसाइकिल में बिशारत को सबसे बड़ी खामी यह नजर आई कि मोटरसाइकिल वाला सड़क के किसी भी हिस्से पर मोटरसाइकिल चलाये, महसूस यही होगा गलत जगह चला रहा है। ट्रैफिक की दुर्घटनाओं पर रिसर्च करने के बाद हम भी इसी नतीजे पर पहुंचे हैं कि हमारे यहां, पैदल चलने और मोटर साइकिल चलाने वाले का सामान्य स्थान ट्रक और मिनी बस के नीचे है। दूसरी मुसीबत यह कि हमने आज तक कोई ऐसा व्यक्ति नहीं देखा जो पांच साल से मोटरसाइकिल चला रहा हो और किसी दुर्घटना में हड्डी-पसली न तुड़वा चुका हो। मगर ठहरिये, खूब याद आया, एक व्यक्ति बेशक ऐसा मिला जो सात साल से किसी दुर्घटना का शिकार हुए बिना मोटर साइकिल चला रहा था। लेकिन वो सिर्फ मौत के कुएं में (well of death) में चलाता था। तीसरी समस्या उन्हें यह नजर आई कि मेनहोल बनाते समय म्यूनिसिपल कॉरपोरेशन दो बातों का लिहाज अवश्य रखती है, पहली तो यह कि वो हमेशा खुले रहें ताकि ढकना देख कर चोरों और उचक्कों को यह जिज्ञासा न हो कि न जाने भीतर क्या है। दूसरी, मुंह इतना चौड़ा हो कि मोटरसाइकिल चलाने वाला उसमें अंदर तक बिना किसी रुकावट के चला जाये। आसानी के साथ, तेज रफ्तारी के साथ, पीछे बैठी हुई सवारी के साथ।

गधा बीती

संभवतः आपके मन में यह प्रश्न उठे कि जब हर सवारी के गुणों-अवगुणों पर बाकायदा गौर और आप से मशवरा किया गया तो गधा और गधागाड़ी को क्यों छोड़ दिया। एक कारण तो वही है जो सहसा आपके दिमाग में आया, दूसरा ये कि जब से हमने गधे पर चेस्टरटन की जबरदस्त कविता पढ़ी, हमने इस जानवर पर हंसना और इसे तुच्छ समझना छोड़ दिया। ग्यारह वर्ष लंदन में रहने के बाद हम पर स्पष्ट हो गया कि पश्चिम में गधे और उल्लू को गाली नहीं समझा जाता। विशेष रूप से उल्लू तो उच्च चिंतन तथा बुद्धिमानी का प्रतीक है। सर्वप्रथम तो यहां कोई ऐसा नहीं मिलेगा जिसे सही अर्थों में उल्लू कह दिया जाये तो वो अपने जामे बल्कि अपने परों में फूला नहीं समायेगा। लंदन के चिड़िया-घर में उल्लू के कुछ नहीं तो पंद्रह पिंजरे जुरूर होंगे। हर बड़े पश्चिमी देश का प्रतिनिधि उल्लू मौजूद है। हर पिंजरा इतना बड़ा, जितना अपने यहां शेर का होता है और हर उल्लू इतना बड़ा जितना अपने यहां का गधा। अपने यहां का उल्लू तो उनके सामने बिल्कुल ही उल्लू लगता है। इंग्लैंड में चश्मे बनाने वालों की सबसे बड़ी कंपनी Donald Aitcheson का प्रतीक चिह्न उल्लू है जो उनके साइन बोर्ड, लेटर हेड और बिलों पर बना होता है। इसी प्रकार अमरीका के एक बड़े स्टाक ब्रोकर का लोगो उल्लू है। यह महज सुनी सुनायी बात नहीं हमने खुद डोनाल्ड ऐचिसन की ऐनक लगा कर उसी स्टाक ब्रोकर की सलाह तथा भविष्यवाणी के अनुसार कंपनी शेयर्ज और बांड्ज के तीन-चार 'फारवर्ड' सौदे किये, जिनके बाद हमारी सूरत दोनों के प्रतीक चिह्न से मिलने लगी।

पूर्व राष्ट्रपति कार्टर की डेमोक्रेटिक पार्टी का निशान गधा था, बल्कि हमेशा से रहा है। पार्टी के झंडे पर भी यही बना होता है। इसी झंडे के नीचे पूरा अमरीका राष्ट्र ईरान के विरुद्ध सीसा पिलाई दीवार की भांति खड़ा रहा। हमारा मतलब है - एकदम संवेदनहीन, जड़। पश्चिम को गधे में कोई हास्यास्पद बात नजर नहीं आती। फ्रांसीसी चिंतक और निबंध लेखक मोंतेन तो इस जानवर के गुणों को इतना प्रशंसक था कि एक जगह लिखता है कि 'धरती पर गधे से अधिक विश्वसनीय, दृढ़-निश्चयी, गंभीर, संसार को तुच्छ समझने वाला और अपने ही ध्यान और धुन में मग्न रहने वाला अन्य कोई प्राणी नहीं मिलेगा।' हम एशियाई दरअस्ल गधे को इसलिए जलील समझते हैं कि इसमें कुछ मानवीय गुण पाये जाते हैं। मिसाल के तौर पर यह अपनी सहार और साहस से बढ़कर बोझ उठाता है और जितना जियादा पिटता तथा भूखों मरता है, उतना ही अपने मालिक का आज्ञाकारी और शुक्रगुजार होता है।

बेकार न रह

सवारियों के गुणों-अवगुणों पर इस बहस का उद्देश्य केवल यह दिखाना था कि बिशारत ने जाहिर यह किया कि वो खूब सोच-विचार के बाद इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि कार खरीदना कारोबारी जुरूरत से अधिक तर्कसंगत तकाजा है और अगर कार न खरीदी तो कारोबार ठप होगा सो होगा, तर्क का खून हो जायेगा और अरस्तू की आत्मा स्वर्ग में या जहां कहीं भी हैं, तड़प उठेगी। जबकि वास्तविकता इसके विपरीत थी, उन्हें जिंदगी में किसी चीज की कमी शिद्दत से महसूस होने लगी थी जो दरअस्ल कार नहीं, स्टेटस-सिंबल था। जब कोई व्यक्ति दूसरों को आश्वस्त करने के लिए जोर-शोर से फलसफा और तर्क बघारने लगे तो समझ जाइये कि अंदर से वो बेचारा खुद भी ढुलमुल है और किसी ऐसे भावुक नामाकूल निर्णय का बौद्धिक, तार्किक कारण ढूंढ़ रहा है, जो वो बहुत पहले ले चुका है। हेनरी सप्तम ने शादी रचाने के लिए पोप से संबंध तोड़ कर एक नये मजहब की शरुआत कर दी। यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि इंग्लैंड के मजहब यानी चर्च आफ इंग्लैंड की बुनियाद एक तलाक पर रखी गयी थी। मिर्जा कहते हैं कि आज के युग में नये धर्म की ईजाद का इससे अधिक उचित कारण और हो भी नहीं सकता।

विधवा मेम की मुस्कुराहट की कीमत

बिशारत काफी अर्से से सेकेंड हैंड कार की तलाश में मारे-मारे फिर रहे थे कि एक दिन खबर मिली कि एक ब्रिटिश कंपनी के अंग्रेज अफसर की 6 सिलिंडर की बहुत बड़ी कार बिकाऊ है। अफसर का दो महीने पहले अचानक निधन हो गया था और अब उसकी जवान विधवा उसे औने-पौने ठिकाने लगाना चाहती थी। बिशारत ने विधवा को एक नजर देखते ही फैसला कर लिया कि वो उसकी कार को जिसे उन्होंने अभी तक दूर से भी नहीं देखा था, खरीद लेंगे। वो इस कंपनी को तीन साल से चीड़ के पैकिंग केस और लकड़ी सप्लाई कर रहे थे, कंपनी के पारसी चीफ एकाउटेंट ने कहा कि आप यह कार 3483 रुपये 10 आने 11 पाई में ले जाइये। हो सकता है पाठकों को यह रकम और आखिरी आने पाई तक की बारीकी अजीब लगे, मगर बिशारत को अजीब नहीं लगी, इसलिए कि यह वो रकम थी, जो कंपनी एक अर्से से इस बहाने से दबाये बैठी थी कि उन्होंने खराब खोखे सप्लाई किये। जिसके कारण चिन्योट और सियालकोट में बाढ़ के दौरान कंपनी के सारे माल की लुगदी बन गयी। बिशारत कहते थे कि मैंने बारह-बारह आने में चीड़ के खोखे सप्लाई किये थे, पनडुब्बी या नूह की नाव नहीं। कंपनी के खिसियाने अफसर Act of God का आरोप मुझ परेशान पर लगा रहे हैं।

खूबसूरत मेम ने जिसके विधवा होने से वो अप्रसन्न न थे, परंतु जिसे विधवा कहते हुए उनका कलेजा मुंह को आता था, यह शर्त और लगा दी कि तीन महीने बाद जब वो पानी के जहाज से लंदन जायेगी तो उसके सामान की पैकिंग के लिए मुफ्त क्रेट, कीलें और तुरखान साथ में सप्लाई करने होंगे। इस शर्त को उन्होंने न केवल स्वीकार किया बल्कि अपनी ओर से यह और बढ़ा दिया कि मैं रोज आपके बंगले पर आ कर आपकी और अपनी निगरानी में स्वयं पैकिंग कराऊंगा। बिशारत ने चीफ एकाउंटेंट से कहा कि कार बहुत पुरानी है, 2500 में मुझे दे दो। उसने जवाब दिया ठीक है, आप अपने खराब खोखों का बिल घटा कर 2500 कर दें। बिशारत ने मेम से गुहार लगाई कि कीमत बहुत जियादा है, कह सुन के कुछ कम करा दो। उसकी सहानुभूति प्राप्त करने के लिए यह वाक्य और जोड़ दिया कि 'गरीब आदमी हूं सात-आठ बच्चे हैं। उनके अतिरिक्त तेरह भाई बहन मुझसे छोटे हैं।'

यह सुनते ही मेम के चेहरे पर आश्चर्य, सहानुभूति और प्रशंसा का मिला-जुला भाव आया, कहने लगी

"Oh! my dear! I see what you mean. Your parents too were poor but passionate"

इस पर उन्हें बहुत क्रोध आया। उत्तर में कहना चाहते थे कि तुम मेरे बाप तक क्यों जाती हो? लेकिन इस वाक्य की अंग्रेजी नहीं बनी और जो अनुवाद उनकी जबान पर आते-आते रह गया, उस पर खुद उन्हें हंसी आ गयी। उन्होंने उसी समय मन-ही-मन निर्णय किया कि अब कभी अपने बच्चों और भाई बहनों की संख्या बढ़ा चढ़ा कर नहीं बतायेंगे, राशन कार्ड बनवाते समय की बात अलग है। इतने में मेम बोली कि 'इन दामों यह कार महंगी नहीं। इससे अधिक तो मेरे पति के सागवान के ताबूत की लागत आई थी' इस पर सेल्जमैनशिप के जोश में बिशारत के मुंह से निकल गया कि 'मैडम आप आइंदा यह चीज हम से आधे दामों में ले लीजियेगा' मेम मुस्कुरा दी और सौदा पक्का हो गया। यानी 3483 रुपये, दस आने और ग्यारह पाई में कार उनकी हो गयी।

इस घटना का उन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि किसी ग्राहक के नाम का बिल बनाते तो यह लिहाज जुरूर रखते कि कम से कम कीमत पर माल बेचें ताकि कम से कम रकम डूबे और अगर कोई उनका बिल दिये बिना मर जाये

और उसकी सुंदर विधवा से रकम के बदले कोई चीज लेनी पड़े तो कम से कम दामों में हाथ लग जाये।

मैं खुद आई नहीं लाई गयी हूं

बिशारत इस गुमान में थे कि उन्होंने सस्ते दामों कार खरीदी है जबकि हकीकत यह थी कि उन्होंने अपने खोखे घाटे से बेचे थे, लेकिन खुशफहमी और धोखे से दिल खुश हो जाये तो क्या हर्ज है। मिर्जा इसी बात को अपने बुकराती अंदाज में इस प्रकार कहते हैं कि हमने बावन गज गहरे ऐसे अंधे कुएं भी देखे हैं जो समझते हैं कि वो खुद को औंधा दें यानी सर के बल उल्टे खड़े हो जायें तो बावन गज की मीनार बन जायेंगे। बहरहाल, बिशारत ने Beige रंग की कार खरीद ली। वो अत्यंत विनम्र स्वभाव वाले व्यक्ति हैं, इसलिए दोस्तों से यह तो नहीं कहा कि हम भी कार वाले हो गये। अल्बत्ता अब एक-एक से कहते फिर रहे हैं कि आपने 'बेइज रंग' देखा है। हर व्यक्ति न में गर्दन हिलाता। फर्माते 'साहब, अंग्रेज ने अजीब रंग ईजाद किया है। उर्दू में तो इसका कोई नाम भी नहीं। नमूना पेश करूंगा।'

कार खरीदते ही वो बेहद सोशल हो गये और ऐसे लोगों के घर भी बेइज रंग का नमूना दिखाने के लिए ले जाने लगे जिनसे वो ईद बकरईद पर भी मिलने को तैयार न थे, जो मित्र यह अजूबा देखने उनके घर आते, उन्हें मिठाई खाये बिना नहीं जाने देते थे। इसी मुबारक, सलामत में एक महीना बीत गया। एक दिन एक दोस्त के यहां कार की मुंह दिखाई करवाने जा रहे थे कि वो आधे रास्ते में हचकोले खाने लगी फिर उस पर काली खांसी का दौरा पड़ा। दम घुटने की वज्ह से धड़कन कभी हल्की-हल्की सुनायी देती, कभी एकदम गायब, सोचा शायद बहाना किये पड़ी है। अचानक संभाला लिया, हेड लाइट में एक पल के लिए रोशनी आई, हार्न ने कुछ बोलना चाहा मगर कमजोरी आड़े आई। कुछ क्षणों के उपरांत धकड़-पकड़ धक-धक धूं करके जहां खड़ी थी वहीं अंजर-पंजर बिखेर के ढेर हो गयी। radiator के एक सिरे से भाप और दूसरे से तलल-तलल पानी निकलने लगा। गधा गाड़ी से खिंचवा के घर लाये मिस्त्री को घर बुला कर दिखाया उसने बोनट खोलते ही तीन बार दायें हाथ से अपना माथा पीटा। बिशारत ने पूछा खैर तो है? बोला बहुत देर कर दी, इसमें तो कुछ रहा नहीं, सब पुर्जे जवाब दे चुके हैं। आपको मुझे छः महीने पहले बुलाना चाहिये था। बिशारत ने जवाब दिया कि बुलाता कहां से, खरीदे हुए कुल एक महीना हुआ है। बोला तो फिर खरीदते समय पूछा होता। आदमी सुराही भी खरीदता है तो पहले टन-टन बजा कर देख लेता है यह तो कार है आप जियादा खर्च नहीं करना चाहते तो मैं फिलहाल काम चलाऊ मरम्मत कर देता हूं। बुजुर्ग कह गये हैं कि आंखों, गोड़ों में पानी उतर आये तो माजून और चंपी मालिश कारगर नहीं होती फिर तो लाठी बैसाखी चाहिये या जवान जोरू। बिशारत को उसकी यह बेतकल्लुफी बहुत बुरी लगी, मगर गर्जमंद सिर्फ आइने को मुंह चिढ़ा सकता है।

इसके बाद कार लगातार खराब रहने लगी। कोई पुर्जा ठीक नहीं लगता था सिर्फ rear view mirror यानी पीछे आने वाला ट्रेफिक दिखाने वाला आईना सही काम कर रहा था। कई बार कार की रफ्तार गधा-गाड़ी से भी अधिक सुस्त हो जाती जिसकी वज्ह यह थी कि वो इसी में बांध, खींच कर लाई जाती थी।

मैं खुद आई नहीं, लाई गयी हूं

कार स्टार्ट करने से पहले वो गधा-गाड़ी का किराया और बांधने के लिए रस्सी इत्यादि अवश्य रख लेते थे। इस मशीनी जनाजे को गलियों में खींचने की प्रक्रिया, जिसे वो tow करना कहते थे, इस हद तक दोहराया गया कि घर में किसी नेफे में कमरबंद और चारपायी में अदवान न रही। चारपायी पर सोने वाले रात भर करवट-करवट झूला झूलने लगे। नौबत यहां तक पहुंची कि एक दिन बनारस खां चौकीदार की बकरी की जंजीर खोल लाये, मिर्जा कहते ही रह गये कि जो जंजीर बालिश्त भर की बकरी को काबू में न रख सकी, तीन बार 'हरी' हो चुकी है, वो तुम्हारी कार को क्या खाक बांध के रखेगी।

हरफन (मस्त) मौला: अलादीन बेचिराग

ड्राइवर की समस्या अपने-आप इस प्रकार हल हो गयी कि मिर्जा वहीदुज्जमां बेग उर्फ खलीफा ने, जो कुछ अर्सा पहले उनका तांगा चला चुका था, स्वयं को इस सेवा पर नियुक्त कर लिया। तन्ख्वाह अलबत्ता दुगनी मांगी, कारण यह बताया कि पहले आधी तन्ख्वाह पर इसलिए काम करता था कि घोड़े का दाना-चारा खुद बाजार से लाता था। पहले-पहल कार देखी तो बहुत खुश हुआ। इसलिए कि इसकी लंबाई घोड़े से तीन हाथ जियादा थी। दूसरे इस पर सुब्ह-शाम खरेरा करने का झंझट नहीं था। पुश्तैनी पेशा हज्जामी था, लेकिन वो हरफनमौला नहीं हरफन-मस्त-मौला था। दुनिया का कोई काम ऐसा नहीं था जो उसने न किया हो और बिगाड़ा न हो। कहता था कि जिस जमाने में वो बर्मा फ्रंट पर जापनियों को पराजित कर रहा था तो उनके सर कुचलने से जो समय बचता, जो कि बहुत कम बचता था, उसमें फौजी ड्राइविंग किया करता था। उसकी सवारियों ने कभी उसकी ड्राइविंग पर नाक भौंह नहीं चढ़ाई। बड़े-से-बड़ा एक्सीडेंट भी हुआ तो कभी किसी सवारी की मृत्यु नहीं हुई, जिसकी वज्ह यह थी कि वो गोरों की मुर्दागाड़ी चलाता था। जो शेखी भरी कहानियां वो सुनाता था उनसे जाहिर होता था कि रेजिमेंट के मरने वालों को उनकी कब्र तक पहुंचाने का और जो फिलहाल नहीं मरे थे, उनकी हजामत का कर्तव्य उसने अपनी जान पर खेल-खेल कर अंजाम दिया। इस बहादुरी के बदले में एक कांसे का मेडल मिला था जो 1947 के हंगामों में एक सरदार जी ने किरपाण दिखा कर छीन लिया।

ऐसे अभिमान-भरे गुब्बारों में सूई चुभोना बिल्कुल जुरूरी नहीं, हां! इतनी पुष्टि हम भी कर सकते हैं कि जब से उसने सुना कि बिशारत कार खरीदने वाले हैं, उसने गुल बादशाह खान ट्रक ड्राइवर से कार चलाना सीख लिया। लेकिन यह ऐसा ही था जैसे कोई व्यक्ति लुहार की शागिर्दी करके सुनार का काम शुरू कर दे। ड्राइविंग टेस्ट उस जमाने में एक एंग्लो-इंडियन सार्जेंट लिया करता था। जिसके सारे परिवार के बाल वो पांच-छः साल से काट रहा था। खलीफा का कहना था कि सार्जेंट ने कोर्ट के पास वाले मैदान में मेरा टेस्ट लिया। टेस्ट क्या था सिर्फ रस्मी खानापूरी कहिये। बोला ^^Well! Caliph! कार से इंग्लिश का figure of 8 बना कर दिखाओ। खाली उस ऐरिया में जहां हम यह लाल झंडी लिए खरा है। इस लाइन को क्रास नईं करना। 8 एक दम रिवर्स में बनाना मांगटा।' यह सुनते ही मैं भौचक्का रह गया। रिवर्स मैंने सीखा ही नहीं था। गुल बादशाह खान से मैंने एक बार कहा था कि उस्ताद मुझे रिवर्स में भी चलाना सिखा दो तो वो कहने लगा 'यह मेरे उस्ताद ने नहीं सिखाया, न कभी इसकी जुरूरत पड़ी। मेरा उस्ताद चिनार गुल खान बोलता था कि शेर, हवाई जहाज, गोली, ट्रक और पठान रिवर्स गियर में चल ही नहीं सकते।'

'मैंने अपने दिल में कहा कि चुकंदर की दुम! मैं अंग्रेजी का 8 अंक बना सकता तो तेरे जैसे भालू की हजामत काये को करता, गवर्नर की चंपी-मालिश करता। क्या बताऊं इस गुनहगार ने कैसे-कैसे पापड़ बेले हैं...

'तो जनाबे-आली! सार्जेंट ने अपने बूट से जमीन पर 8 बना कर दिखाया। मैं बेफिजूल डर गया था। अब पता लगा कि साईसी में जिसे अटेरन कहते हैं, उसे अंग्रेजी में 'फिगर आफ 8' कहते हैं। जंगली घोड़े को साधने और उसकी सारी मस्ती निकालने के लिए उसे तेजी से दो घड़ी फिरत चक्कर देने को अटेरन कहते हैं। तो ड्राइविंग टेस्ट का यह मकसद है। पर मैं कुछ नहीं बोला, बस जल तू जलाल तू कह के रिवर्स में 8 के बजाय कसे हुए कमरबंद की सी गिरह बनाने लगा कि एकाएक पीछे से सार्जेंट के चीखने चिल्लाने की आवाजें आयीं। 'स्टाप! स्टाप! यू इंडियन!' वो अपनी जान बचाने के लिए कार के बंपर पे लाल झंडी समेत चढ़ गया था। कमरबंद की गिरह में लिपटते-लिपटते यानी कार के नीचे आते-आते बचा। मैंने कहा, 'सर दोबारा टेस्ट के लिए आ जाऊं?' मगर उसने दोबारा टेस्ट लेना मुनासिब न समझा। दूसरे दिन आपके गुलाम को लाइसेंस मिल गया।

'आपकी जूतियों के सदके हर कला में निपुण हूं। मुझे क्या नहीं आता। जर्राही (शल्य चिकित्सा) भी की है। एक आपरेशन बिगड़ गया तो कान पकड़े। हुआ यूं कि मेरा दोस्त अल्लन अपने मामूं की बेटी पर दिलो-जान से फिदा था पर वो किसी तरह शादी पर तैयार नहीं होती थी। न जाने क्यों अल्लन को यह वहम हो गया कि उसकी बायीं टांग पर जो मस्सा है, उसकी वज्ह से शादी नहीं हो रही। मैंने वो मस्सा काट दिया जो नासूर बन गया। वो लंगड़ा हो गया। वो दिन है और आज का दिन, मैंने सर्जरी नहीं की। वो लड़की आखिरकार मेरी बीबी बनी। मेरी दायीं टांग पे मस्सा है।'

माहौल पर लाहौल और मार्कोनी की कब्र पर ...

कार अनेक अंदरूनी तथा बाहरी गुप्त-प्रकट रोगों से पीड़ित थी। एक पुर्जे की मरम्मत करवाते तो दूसरा जवाब दे देता। जितना पेट्रोल जलता, उतना ही मोबिल-ऑइल और इन दोनों से दुगना उनका अपना खून जलता। आज क्लच-प्लेट जल गयी तो कल डाइनेमो बैठ गया और परसों गियर-बाक्स बदलवा कर लाये तो ऐसा महसूस हुआ जैसे कोई सीट के नीचे कुदाल चला रहा है। खलीफा ने रोग का निदान किया साहब! अब यूनिवर्सल अड़ी कर रहा है, फिर ब्रेक गड़बड़ करने लगे। मिस्त्री ने कहा, माडल बहुत पुराना है, पुर्जे बनने बंद हो गये। आप कहते हैं तो मरम्मत कर दूंगा, मगर मरम्मत के बाद ब्रेक या तो हमेशा लगा रहेगा या खुला रहेगा। सोच कर दोनों में से चूज कर लीजिये। दो सप्ताह पश्चात खलीफा ने सूचना दी कि कार के Shock Observers समाप्त हो गये। वो Shock Absorbers को Shock Observers कहता था और सच तो यह है कि अब वो शॉक रोकने के योग्य नहीं रहे थे। अनुभवी बड़े-बूढ़ों की भांति हो गये थे जो किसी अंधेरे कोने या सीढ़ियों के नीचे वाली तिकोनी में पड़े-पड़े सिर्फ सिर्फ सिर्फ Observe कर सकते हैं, जो नालायक दिखायें सो लाचार देखना। यह मंजिल आत्मज्ञान की है, जब इंसान अपनी आंख से बेहूदा-से-बेहूदा हरकत और करतूत देख कर न दुःखी हो, न क्रोध में आये और न माहौल पर लाहौल पढ़े (लानत भेजे) तो इसके दो कारण हो सकते हैं। पहले हम दूसरा कारण बतायेंगे - वो यह कि वह बुजुर्ग अनुभवी, पारखी, गंभीर और क्षमाशील हो गया है और पहला कारण यह कि हरकत उसकी अपनी ही है।

एक दिन ग्यारह बजे रात को कहीं से वापसी में कब्रिस्तान के सामने से गुजर रहे थे कि अचानक हार्न की आवाज में कंपन पैदा हुआ, घुंघरू-सा बोलने लगा, स्वयं उनकी आंखों के सामने अंधेरा छा गया कि हेड लाइट की रोशनी

जा चुकी थी। खलीफा ने कहा, 'जनाबे-आली! बैटरी जवाब दे रही है' उन्हें आश्चर्य हुआ, क्योंकि वो रोज अपनी लकड़ी की दुकान पर पहुंचते ही बैटरी को कार से निकाल कर आरा मशीन में जोड़ देते थे ताकि आठ घंटे तक चार्ज होती रहे। शाम को घर पहुंचते ही उसे निकालकर अपने रेडियो से जोड़ देते जो सिर्फ कार बैटरी से चलता था। फिर रात को बारह-एक बजे जब रेडियो प्रोग्राम समाप्त हो जाते तो उसे रेडियो से अलग करके वापस कार में लगा देते। इस तरह बैटरी आठ-आठ घंटे की-तीन शिफ्टों में तीन अलग-अलग चीजों से जुड़ी रहती थी। जवाब न देती तो क्या करती, बिल्कुल कन्फ्यूज हो जाती थी। हमने खुद देखा कि उनके रेडियो से तय कार्यक्रम की बजाय अक्सर आरा मशीन की आवाजें प्रसारित होती रहती थीं जिन्हें वो पक्का राग समझ कर एक अर्से तक सर धुना किये। इसी प्रकार कार के इंजन से मोटर की खराबी की रेडियाई आवाजें आने लगी थीं। अजीब घपला था, रात को पिछले पहर के सन्नाटे में जब अचानक अजीब-अजीब आवाजें आने लगतीं तो घर वाले यह नहीं बता सकते थे कि वो रेडियो की हैं या कार की, या आरा मशीन में कव्वाल फंस गया है। उन बेचारों की मजबूरी क्षमा-योग्य थी, इसलिए कि इन आवाजों का स्रोत दरअस्ल वो गला था जिससे बिशारत खर्राटे ले रहे होते थे। एक और मुसीबत यह कि जब तक रेडियो स्टेशन बंद न हो जाता, तीन चार पड़ोसी उनकी छाती पर सवार कार्यक्रम सुनते रहते। बिशारत इस दुःखदायी अविष्कार से सख्त नफरत करने लगे थे। संभवतः ऐसी ही परिस्थितियों और ऐसे ही ब्लैक मूड में अंग्रेजी कवि फिलिप लोर्केन ने कहा था कि मार्कोनी की कब्र पर पब्लिक टॉयलट बना देना चाहिये।

सौदावी (वात-संबंधी विकार) और सूबाई (प्रांतीय) स्वभाव के चार पहिये

कुछ रोज से जब गर्मी ने तेजी पकड़ी तो चारों पहियों का स्वभाव सौदावी और सूबाई हो गया। मतलब यह कि चारों पहिये चार अलग दिशाओं में जाना चाहते और स्टेयरिंग व्हील पहियों की इच्छानुसार घूमने लगता था। खलीफा से पूछा 'अब यह क्या हो रहा है?' उसने बताया 'हुजूर! इसे वॉबलिंग (wobbling) कहते हैं।' उन्होंने इत्मीनान का लंबा सांस लिया, रोग का नाम मालूम हो जाये तो तकलीफ तो दूर नहीं होती, उलझन दूर हो जाती है। जरा बाद यह सोच कर मुस्कुरा दिये कि कार यह चाल चले तो woobling राजहंस चले तो waddling, नागिन चले तो wriggling और नारी चले तो wiggling

यह किनारा चला कि नाव चली

वाह क्या बात ध्यान में आई

इस बार वो खुद भी वर्कशाप गये। मिस्त्री ने कहा 'जंग से साइलेंसर भी झड़ने वाला है' उसने सलाह दी कि 'अगले महीने जब नया हार्न फिट करायें तो साइलेंसर भी बदलवा लें, इस समय तो यह अच्छा-खासा हार्न का काम दे रहा है,' बिशारत ने झुंझला कर पूछा 'इसका कोई पुर्जा काम भी कर रहा है या नहीं?' मिस्त्री पहले तो सोच में पड़ गया, फिर जवाब दिया कि mileometer दुगनी रफ्तार से काम कर रहा है! दरअस्ल अब कार की कार्यक्षमता बल्कि कार्य-अक्षमता Murphy's law (Any thing that can go wrong will go wrong) के ठीक अनुसार हो गयी थी। इस सूरत में सरकार तो चल सकती है, कार नहीं चल सकती।

ऊंट तराना

लगातार मरम्मत के बावजूद ब्रेक दुरुस्त न हुए, लेकिन अब इनकी कमी महसूस नहीं होती थी, इसलिए कि इनके इस्तेमाल की नौबत नहीं आती थी, जिस जगह ब्रेक लगाना हो कार उससे एक मील पहले ही रुक जाती थी। बिशारत ने तो जब से ड्राइविंग सीखनी शुरू की, वो बिजली के खंबों से ब्रेक का काम ले रहे थे। खंबों के इस्तेमाल पर इनका कई कुत्तों से झगड़ा भी हुआ, मगर अब कुछ कुत्तों ने चमकती व्हील कैप से खंबे का काम लेना शुरू कर दिया था। वो अपने-आप को गर्दन मोड़-मोड़ कर व्हील-कैप में देखते भी जाते थे। हाल ही में बिशारत ने यह भी नोटिस किया कि कार कुछ अधिक ही संवेदनशील हो गयी है, सड़क क्रास करने वाले की गाली से भी रुकने लगी है। अगर गाली अंग्रेजी में हो वो आहिस्ता-आहिस्ता खुश खिरामी (अच्छी रफ्तार) से सुबुक खिरामी (तेजी की रफ्तार) और मस्त खिरामी (मजे की रफ्तार) फिर आहिस्ता खिरामी (हल्की रफ्तार) और अंत में मखिरामी (ना चलना) की मंजिलों से गुजर कर अब निरी नमकहरामी पर उतर आती थी। उसकी चाल अब उन अड़ियल ऊंटों से मिलने लगी जिसका चित्रण किपलिंग ने ऊंटों के Marching Song में किया है, जिसकी तान इस पर टूटती हैः

Can't! Don't! Shan't! won't!

निःसंदेह यह तान इस योग्य है कि तीसरी दुनिया के देश जो किसी प्रकार आगे नहीं बढ़ना चाहते, इसे अपना राष्ट्र-गान बना लें।

'स्टूपिड काउ' से संवाद

ढाई-तीन महीने तक बिशारत का सारा समय, मेहनत, कमाई, दुआयें और गालियां नकारा कार पर खर्च होती रहीं। अभी बलबन का घाव पूरी तरह नहीं भरा था कि यह 'फोपा' हो गया। बेकौल उस्ताद कमर जलालवी

अभी खा के ठोकर संभलने न पाये

कि फिर खाई ठोकर संभलते-संभलते

कार अब अपनी मर्जी की मालिक हो गयी थी, जहां चलना चाहिये, वहां ढिठाई से खड़ी हो जाती और जहां रुकना होता वहां ख्वामखा चलती रहती। मतलब यह कि चौराहे और सिपाही के ग्रीन सिग्नल पर खड़ी हो जाती परंतु बंपर के सामने कोई राहगीर आ जाये तो उसे नजरअंदाज करती हुई आगे बढ़ जाती। जिस सड़क पर निकल जाती, उसका सारा ट्रैफिक उसके चलने और रुकने के हिसाब से चलता-रुकता था।

थक हार कर बिशारत उसी मेम के पास गये और खुशामद की कि खुदा के लिए पांच सौ कम में भी यह कार वापस ले लो। वो किसी प्रकार न मानी। उन्होंने अपनी फर्जी दरिद्रता और उसने अपने वैधव्य का वास्ता दिया। इंसाफ की उम्मीद न रही तो रहम की अपील में जोर पैदा करने के लिए दोनों अपने-आपको एक-दूसरे से अधिक बेचारा और बेसहारा साबित करने लगे। दोनों परेशान थे, दोनों दुखी और मुसीबत के मारे थे, लेकिन दोनों एक-दूसरे के लिए पत्थर का दिल रखते थे। बिशारत ने अपनी आवाज में बनावटी दर्द और जल्दी-जल्दी पलकें पटपटा कर आंखों में आंसू लाने चाहे, मगर उल्टा हंसी आने लगी। मजबूरी में दो-तीन बेहद दर्दनाक, परंतु एकदम फर्जी दृश्य (अपने मकान और दुकान की कुर्की और नीलामी का दृश्य, ट्रैफिक की दुर्घटना में अपनी असमय मृत्यु और इसकी

खबर मिलते ही बेगम का झट से सफेद मोटी मलमल का दुपट्टा ओढ़ कर छन-छन चूड़ियों तोड़ना और रो-रो कर अपनी आंखें सुजा लेना) आंखों में भर कर रोने का प्रयास किया, लेकिन न दिल पिघला, न आंख से आंसू टपका। जीवन में पहली बार उन्हें अपने सुन्नी होने पर क्रोध आया। सहसा उन्हें अपने इन्कम-टैक्स के नोटिस का खयाल आ गया और उनकी घिग्घी बंध गयी। उन्होंने गिड़गिड़ाते हुए कहा कि 'मैं आप से सच कहता हूं, अगर यह कार कुछ दिन और मेरे पास रह गयी तो मैं पागल हो जाऊंगा या बेमौत मर जाऊंगा'।

यह सुनते ही मेम पिघल गयी, आंखों में दुबारा आंसू भर के बोली, 'आपके बच्चों का क्या बनेगा जिनकी ठीक संख्या के बारे में भी आपको शक है कि सात हैं या आठ। सच तो यह है कि मेरे पति की हार्ट अटैक से मौत भी इसी मनहूस कार के कारण हुई और उन्होंने इसी के स्टेयरिंग व्हील पर दम तोड़ा।'

उनके मुंह से बरबस निकला कि इससे तो बेहतर था मैं घोड़े के साथ ही गुजारा कर लेता। इस पर वो चौंकी और बड़ी बेसब्री से पूछने लगी।

"Your mean! a real horse?"

"Yes of course! why?"

'मेरे पहले पति की मृत्यु घोड़े से गिरने से हुई थी। वो भला-चंगा पोलो खेल रहा था कि घोड़े का हार्ट फेल हो गया। घोड़ा उस पर आ गिरा। वो मुझे बड़े प्यार से Stupid cow कहता था।' उसकी एंग्लो सेक्सन ब्लू ग्रे आंखों में सचमुच के आंसू तैर रहे थे।

वैसे बिशारत बड़े नर्म दिल के हैं। जवान औरत की आंखों में इस तरह आंसू देख कर उनके दिल में उसके आंसुओं को रेशमी रूमाल से पोंछने और उसकी विधवा की स्थिति तुरंत समाप्त करने की तीव्र इच्छा जागी

'कि बने हैं दोस्त नासेह'

इंसान का कोई काम बिगड़ जाये तो नाकामी से इतनी उलझन नहीं होती जितनी उन बिनमांगे मशवरों और नसीहतों से होती है, जिन्हें हर वो शख्स देता है जिसने कभी इस काम को हाथ तक नहीं लगाया। किसी ज्ञानी ने कैसे पते की बात कही है कि कामयाबी का सबसे बड़ा फायदा यह है कि आपको कोई मशवरा देने का साहस नहीं कर सकता। हम अपने छोटे मुंह से न बड़ी बात कह सकते हैं, न छोटी, इसलिए यह नहीं बता सकते कि हम कामयाब हैं या नाकाम, लेकिन इतना अता-पता बताये देते हैं कि अगर हमारे स्क्रू और ढिबरियां लगी होतीं तो हमारे सारे मित्र, परिचित, शुभचिंतक, सब काम-धंधे छोड़-छोड़, अपने-अपने पेचकस और पाने ले कर हम पर पिल पड़ते। एक अपने चौकोर पाने से हमारी गोल ढिबरी खोलने का प्रयास करता, दूसरा तेल देने के सूराख में हथौड़े से स्क्रू ठोक देता, तीसरा दिन-रात की मेहनत से हमारे तमाम स्क्रू और 'टाइट' कर देता। आखिर में सब मिल कर हमारे सारे स्क्रू और ढिबरियां खोल कर फेंक देते, महज यह देखने के लिए कि हम इनके बिना भी सिर्फ दोस्तों की इच्छा-शक्ति से चल-फिर और चर-चुग सकते हैं या नहीं। हमारी और उनकी सारी उम्र इस खुड़पेच में समाप्त हो जाती। कुछ ऐसा ही हाल मियां बिशारत का कार के हर ब्रेकडाउन के बाद होता था। उन्हें बड़ी संख्या में ऐसी नसीहतें सुननी पड़तीं जिनमें कार की खराबियों के बजाय उनकी अपनी खामियों की ओर ऐसे इशारे होते, जिन्हें समझने के लिए बुद्धिमान होना आवश्यक नहीं। उधर पैदल चलने वाले बिशारत को देख-देख कर शुक्र करते कि हम कितने भाग्यशाली हैं कि कार नहीं रखते।

नसीहत करने वालों में सिर्फ हाजी अब्दुर्रहमान अली मुहम्मद बांटू वाले ने काम की बात कही। उसने नसीहत की कि कभी किसी बुजुर्ग के मजार, इन्कम टैक्स के दफ्तर या डाक्टर के प्राइवेट क्लीनिक में जाना हो तो कार एक मील दूर खड़ी कर दो। एक सप्ताह पहले से पान खाने के बाद दांत साफ करना बंद कर दो। मुंह के दोनों ओर रेखाओं में पीक के ब्रेकेट लगे रहने दो और चार दिन के पहने हुए कपड़े और इतनी ही मुद्दत का बढ़ा हुआ शेव लेकर उनके सामने जाओ। अगर फैक्ट्री के मालिक हो तो रेहड़ी वाले का-सा हुलिया बना लो 'नईं तो साला लोग एक दम चमड़ी उतार लेंगा और कोरे बदन पे नमक-मिर्ची लगा हवा बंदर को भेज देंगा। ऐ भाई! हम तुमारे को बोलता है, कभी इन्कम-टैक्स अफसर, पुलिस, जवान जोरू और पीर फकीर के पास जाओ तो सोल्जर की माफिक खाली हाथ हिलाते, डबल मार्च करते नईं जाओ, हमेशा कोई डाली, कुछ माल-पानी, कुछ नजर-नजराना ले के जाओ। नईं तो साला लोग खड़े-खड़े खाल खिंचवा के उसमें अखबार की रद्दी भरवा देंगा। सब्ज (सौ रुपये का नोट) देख के जिसकी आंख में टू हंडेरेड केंडल पावर का चमकारा नईं आये तो समझो, साला सोलह आने कलर ब्लाइंड है या औलिया अल्लाह बनेला है, नईं तो फिर होये न होये बैंक का गवर्नर है जो नोटों पर दसखत करता है।'

नीम की निंदा में संवाद

कभी ऐसा भी होता कि कार की बुराइयों पर से पर्दा उठाते-उठाते खलीफा अपनी कर्म-कुंडली खोल के बैठ जाता और अपनी करतूतों को करिश्मों की तरह बयान करने लगता। यह तो कोई स्वभाव समझने वाला ही बता सकता था कि हकीकत कह रहा है या अतृप्त इच्छाओं के मैदान में खयाली घोड़े दौड़ा रहा है। एक दिन फकीर मुहम्मद रसोइये से कहने लगा, 'आज तो सईद मंजिल के सामने हमारी घोड़ी (कार) बिल्कुल बावली हो गयी। हर पुर्जा अपना-अपना राग अलापने लगा। पहले तो इंजन गरम हुआ, फिर radiator जिसके लीक को मैंने साबुन की लुगदी से बंद कर रखा था, फट गया। फिर पिछला टायर लीक करने लगा। मैंने हवा भरने के लिए कार की ही उम्र का पंप निकाला तो मालूम है क्या हुआ! पता चला कि पंप से हवा लीक कर रही है। फैन बेल्ट भी गर्मी से टूट गयी। अंग्रेज की सवारी में रहने से इसका मिजाज सौदावी (वात रोग संबंधी) हो गया है हकीम फहीमुद्दीन आगरे वाले कहा करते थे कि स्त्री सौदावी स्वभाव की हो तो पुरुष आतिशी (अग्नि संबंधी) मिजाज का चाहिये ही चाहिये। यार! आतिशी मिजाज पे याद आया, अब्दुल रज्जाक छैला को, अबे! वही छैला, नाज सिनेमा का गेट कीपर, उसी को गुप्त रोग हो गया है। साला अपने अंजाम को पहुंचा। कहता है, अंग्रेजी फिल्में देखने, गुड़ की गजक खाने और नूरजहां के गानों से खून गर्मी खा गया है। पुराने जमाने में हमारे यहां यह नियम था, पता नहीं तेरी तरफ था कि नहीं, कि तमाशबीनी के चक्कर में किसी को ऐसा रोग हो जाये तो उसे टखनों से एक बालिश्त ऊंचा तहमद बंधवा के नीम की टहनी हाथ में थमा देते थे। जवानी में मैंने अच्छे-अच्छे शरीफ लोगों को मुहल्ले में हरी झंडी लिए फिरते देखा है। मशहूर था कि नीम की टहनी से छूत की बीमारी नहीं लगती, पर मेरे विचार से तो केवल ढिंढोरा पीटने के लिए यह ढोंग रचाते थे। खून और तबियत साफ करने के लिए मरीज को ऐसा कड़वा चिरायता पिलाया जाता था कि हल्क से एक घूंट उतरते ही पुतलियां ऊपर चढ़ जातीं। अगले वक्तों में इलाज में सजा छुपी होती थी। मौलवी याकूबअली नक्शबादी कहा करते थे कि इसीलिए देसी (यूनानी) इलाज को हिकमत कहते हैं!

'यार उन दिनों साले नीम ने भी जान आफत में कर रखी थी। गरीबों को यह रईसों का रोग लग जाये या मामूली फोड़े फुंसियां निकल आयें तो गांव कस्बे के हकीम शुरू से आखिर दम-तलक नीम ही से इलाज करते थे। सारी दवायें नीम से ही बनती थीं। नीम के साबुन से नहलवाते, नीम की निंबौली और जल का लेप बताते। नीम का

मरहम लगाते, नीम की सींकों और सूखे पत्तों की धूनी देते। जवान खून जियादा गर्मी दिखाये तो नीम के बौर और कोंपलों का रस पिलाते। नीम के गोंद की दवा चटाते। निंबोली का पाउडर जहर-मार कराते। हर खाने से पहले नीम की दातुन करवाते ताकि हर खाने में उसी का मजा आये। खून साफ करने के बहाने जोंकों को आये दिन सेरों खून पिलवा देते, यहां तक कि अगला एक-दम चुसा आम हो जाता और हरमजदगी तो दूर नमाज भी पढ़ता तो घुटने चट चट चटखने लगते। नासूर को नीम के गरम पानी से धारते ताकि रोग के कीटाणु मर जायें और रोगी कीटाणुओं से पहले ही हकीम को प्यारा हो जाये तो घड़े में नीम के पत्ते उबाल, शव को नहला के जनाजा नीम के नीचे रख देते। फिर ताजा कब्र पे तीन डोल पानी छिड़क के सिरहाने नीम की टहनी गाड़ देते। दफ्ना के घर आते तो मरने वाले की विधवा की सोने की लौंग उतरवा कर उसी नीम की सींक नाक में पहना दी जाती, जिसमें झूला डाल के वो कभी सावन में झूला करती थी। फिर उसे सफेद दुपट्टा उढ़ाते और एक हाथ में सरौता और दूसरे में कव्वे उड़ाने के लिए नीम की झंडी थमा कर नीम की छांव तले बिठा देते।

खलीफा की पापबीती

खलीफा की मुसीबत यह थी कि एक बार शुरू हो जाये तो रुकने का नाम नहीं लेता था। बूढ़ा हो चला था, परंतु उसकी डींगों से ऐसा लगता था कि बुढ़ापे ने फैंटेसी को भी सच बना दिया था कि बस सब मान लेते थे और यह कोई अनोखी बात नहीं थी। एक पुरानी कहावत है कि बुढ़ापे में मनुष्य की यौन-शक्ति जबान में आ जाया करती है। उसकी शेखी-भरी दास्तान सच्ची हो या न हो, दास्तान कहने का अंदाज सच्चा और खरा था। उससे सीधे-सादे सुनने वाले ऐसी सम्मोहित होते थे कि खयाल ही न आता कि सच बोल रहा है या झूठ, बस जी चाहता यूं ही बोले चला जाये। खलीफा की कहानी उसी की जबानी जारी है। हमने केवल नयी सुर्खी लगा दी है।

'और यार फकीरा! गुलबिया नटनी तो जानो आग-भरी छछूंदर थी। उचटती-सी भी नजर पड़ जाये तो झट नीम की टहनी हाथ में थमा देती थी। यार! झूठ नहीं बोलूंगा, कयामत के दिन अल्लाह मियां के अलावा अब्बा जी को भी मुंह दिखाना है। अब तुम से क्या पर्दा मैं कोई पीर-पयंबर तो हूं नहीं। गोश-पोश का इंसान हूं और जैसा कि मौलवी हशमतुल्लाह कहते हैं, इंसान गलतियों का पुतला है। तो यार! हुआ यूं कि नीम की टहनी मुझे भी लहरानी पड़ी। मीठा बरस भी नहीं लगा था। सत्रहवां चल रहा था कि कांड हो गया। पर यकीन जानो तमीजन एक नंबर की शरीफ औरत थी। ऐसी-वैसी नहीं, ब्याही-त्याही थी। पड़ोस में रहती थी। सच तो यह है कि मैंने जवानी और पड़ोसी के घर में एक साथ ही कदम रखा। उम्र में मुझसे बीस नहीं तो पंद्रह बरस जुरूर बड़ी होगी पर बदन जैसे कसी-कसायी ढोलक। हवा भी छू जाये तो बजने लगे। मैं उसके मकान की छत पर पतंग उड़ाने जाया करता था। वो मुझे आते-जाते कभी गजक तो कभी अपने हाथ का हलवा खिलाती। जाड़े के दिन थे, उसका आदमी उससे बीस नहीं तो पंद्रह बरस तो जुरूर ही बड़ा था, औलाद का तावीज लेने फरीदाबाद गया हुआ था। खी...खी...खी...खी..., मैं चार पतंगें कटवा के चर्खी बगल में दबाये छत पे से उतारा तो देखा वो छिदरे बानों की चारपायी की आड़ करके नहा रही है। आंखों में अब तलक बान की जालियों के पीछे का नजारा बसा हुआ है। मुझे आते देख कर एक दम अलिफ नंगी खड़ी हो गयी। यार! तुझे क्या बताऊं मेरी रग-रग में फुलझड़ियां छूटने लगीं। घड़ी भर में उलट के रख दिया, गजक की तासीर गर्म होती है।

मेरी बीमारी का भांडा फूटा तो अब्बा, अल्लाह उनको करवट-करवट जन्नत बख्शे, आपे से बाहर हो गये। जूता तान कर खड़े हो गये, कहने लगे 'तू मेरी औलाद नहीं! मेरे सामने से हट जा, नहीं तो अभी गर्दन उड़ा दूंगा।' हालांकि तलवार तो दूर, घर में भोंटी (कुंद) छुरी तलक न थी, जिससे नकटे की नाक भी कट सके। फिर मैं उनसे कद में डेढ़ बालिश्त बड़ा था, पर उनका इतना रुआब था कि मैं अपने रंगीन तहमद में थर-थर कांप रहा था। मां मेरे और उनके बीच ढाल बन के खड़ी हो गयी और उनका हाथ पकड़ लिया। मुझे एक-एक बात याद है। बीच बचाव कराने में चूड़ियां टूटने से मां की कलाई से खून टपकने लगा। दिन-रात मेहनत-मजदूरी करती थी। जहां तक मेरी छुटपन की याद्दाश्त काम करती है, मैंने उसके चेहरे पर हमेशा झुर्रियां ही देखीं, आंसू उसकी झुर्रियों से रेख-रेख बह रहे थे। मुझे आज भी ऐसा लगता है जैसे मां के आंसू मेरे गालों पे बह रहे हैं। वो कहने लगीं 'अल्लाह कसम! मेरे लाल पे दुश्मनों ने झूठा इल्जाम लगाया है' मैंने अब्बाजी से बहुत कहा कि 'पुराने बाजरे की खिचड़ी और पाल के आम खाने से गर्मी चढ़ गयी है। सुनिये तो सही, काले घोड़े की नंगी पीठ पे बैठने से मुझे यह रोग लगा है। तुखमरैयां (एक पौधे के बीज, गर्मियों में फालूदे में डाल कर पीते हैं) से गर्मी निकल जायेगी।' पर वो भला मानने वाले थे! कहने लगे, 'अबे तुखमरैयां के बच्चे! मैंने गुड़िया नहीं खेली हैं। तूने नाइयों की इज्जत खाक में मिला दी, बुजुर्गों की नाक कटवा दी।' मां के अलावा किसी ने मेरी बात पर भरोसा नहीं किया। छोटे भाई रोज मुझसे झगड़ने लगे, इसलिए कि मां ने उनके और अब्बा के आम और घी में तरतराती बाजरे की खिचड़ी बंद कर दी थी। यार फकीरा! कभी-कभी सोचता हूं कि अल्लाह मियां को अपने बंदों से इतनी भी मुहब्बत हुई जितनी मेरी अनपढ़ मां को मुझसे थी तो अपना बेड़ा पार जानो। हश्र के दिन सारे गुनाह माफ कर दिये जायेंगे और मौलवियों की खिचड़ी और आम बंद हो जायेंगे! इंशाअल्लाह!

'खैर और तो जो कुछ हुआ सो हुआ, पर मेरे फरिश्तों को भी पता नहीं था कि तमीजन पर मेरे चचा जान किसी जमाने में मेहरबान रह चुके हैं। जवानी कसम! जरा भी शक गुजरता तो मैं अपना दिल मार के बैठ रहता। बुजुर्गों की शान में गुस्ताखी न करता। यार! जवानी में यह हालियत थी कि नब्ज पे उंगली रखो तो हथौड़े की तरह चोट लगती थीं। शक्ल भी मेरी अच्छी थी। ताकत का यह हाल कि किसी लड़की की कलाई पकड़ लूं तो उसका छुड़ाने को जी न चाहे। खैर! वो दिन हवा हुए। मैं कह रहा था कि इलाज रोग से कहीं अधिक जानलेवा था। बाद को गर्मी छांटने के लिए मुझे दिन में तीन बार यह बड़े-बड़े पियाले ठंडाई, धनिये के अर्क और कतीरा गोंद के पिलाये जाते। दोनों समय फीकी रोटी, हरे धनिये की बिना नमक मिर्च की चटनी के साथ खिलाई जाती। अब्बा को इस घटना से बहुत दुःख पहुंचा। शक्की तो थे ही, कभी खबर आती कि शहर में किसी जगह नाजायज बच्चा पड़ा मिला है तो अब्बा मुझी को आग-भभूका नजरों से देखते। उन्हें मुहल्ले में कोई लड़की तेज-तेज कदमों से जाती नजर आ जाये तो समझते कि हो न हो मैं पीछा कर रहा हूं। उनकी सेहत तेजी से गिरने लगी। दुश्मनों ने मशहूर कर दिया कि तमीजन ने एक ही रात में दाढ़ी सफेद कर दी। खुद उनका भी यही खयाल था। उन्होंने मुझे शर्मिंदा करने के लिए रेलवाई गार्ड की झंडी से भी जियादा लहूलुहान रंग का तहमद बंधवा दिया और टहनी के बजाय नीम का पूरा गुद्दा - मेरे कद से भी बड़ा - मुझे थमा दिया। मैंने संक्रात के दिन उससे आठ पतंगें लूटीं। लड़कपन बादशाही का जमाना होता है। उस जमाने में कोई हजरत सुलैमान का तख्त, हुदहुद, (पक्षी जिसके सर पे ताज होता है) महारानी साब के साथ भी दे देता तो वो खुशी नहीं होती जो एक पतंग लूटने से होती थी। यार! किसी दिन तले मखाने तो खिला दे। मुद्दतें हुई मजा तक याद नहीं रहा। मां बड़े मजे के बनाती थी। फकीरा मैंने अपनी मां को बड़ा दुःख दिया' अपनी मां को याद करके खलीफा की आंखों में एकाएक आंसू आ गये।

बुजुर्गों का कत्ले -आम

खलीफा अपने वर्तमान पद और कर्तव्यों के लिहाज से कुछ भी हो, उसका दिल अभी तक घोड़े में अटका हुआ था। एक दिन वो दुकान के मैनेजर मौलाना करामत हुसैन से कहने लगा कि 'मौलाना हम तो इतना जानते हैं कि जिस बच्चे के चपत और जिस सवारी के चाबुक न मार सको वो कयामत के दिन तलक काबू में नहीं आने की। नादिरशाह बादशाह तो इसीलिए हाथी के हौदे से कूद पड़ा और झूंझल में आ के कत्ले-आम करने लगा। हमारे सारे बुजुर्ग कत्ले-आम में गाजर मूली की तरह कट गये। गोद के बच्चों तक को बल्लम से छेद के एक तरफ को फेंक दिया। एक मर्द जिंदा नहीं छोड़ा' मौलाना ने नाक की नोक पर रखी हुई ऐनक के ऊपर से देखते हुए पूछा 'खलीफा पिछले पांच सौ साल में कोई लड़ाई ऐसी नहीं हुई जिसमें तुम अपने बुजुर्गों को चुन-चुन कर न मरवा चुके हो। जब कत्ले-आम में तुम्हारा बीज ही मारा गया, जब तुम्हारे सारे बुजुर्ग एक-एक करके कत्ल कर दिये गये तो अगली पीढ़ी पैदा कैसे हुई?' बोला, 'आप जैसे अल्लाह वाले लोगों की दुआओं से!'

बुजुर्गों में सर्वाधिक गर्व अपने दादा पर करता था। जिसके सारे जीवन का इकलौता कारनामा ये लगता था कि पिचासी वर्ष की उम्र में भी सूई में धागा पिरो लेता था। खलीफा इस कारनामे से इतना संतुष्ट बल्कि प्रभावित था कि यह तक नहीं बताता था कि सूई पिरोने के बाद दादा उससे करता क्या था।

कार की काया पलट

एक दिन राब्सन रोड के तिराहे के पास कार का ब्रेक डाउन हुआ। उसी समय उसमें गधागाड़ी जोत कर लारेंस रोड ले गये। इस बार मिस्त्री को भी रहम आ गया। कहने लगा, 'आप शरीफ आदमी हैं, कब तक बर्बाद होते रहेंगे। ओछी पूंजी व्यापारी को और मनहूस सवारी मालिक को खा जाती है। कार के नीचे आ कर आदमी मरते तो हमने भी सुने थे लेकिन यह डायन तो अंदर बैठे आदमी को खा गयी! मेरा कहना मानें, इसकी बॉडी कटवा कर ट्रक की बॉडी फिट करवा लें। लकड़ी लाने ले जाने के काम आयेगी। मेरे साले ने बॉडी बनाने का कारखाना नया-नया खोला है। आधे दामों में आपका काम हो जायेगा। दो सौ रुपये में इंजन की reboring मैं कर दूंगा, औरों से पौने सात सौ लेता हूं। काया-पलट के बाद आप पहचान नहीं सकेंगे।

यह उसने कुछ गलत नहीं कहा था। नयी बॉडी फिट होने के बाद कोई पहचान नहीं सकता था कि यह है क्या? आरोपियों को अदालत ले जाने वाली हवालाती वैगन? कुत्ते पकड़ने वाली गाड़ी? बूचड़खाने से थलथलाती रासें लाने वाला खूनी ट्रक? इस शक्ल की या इससे दूर परे की समानता रखती हुई कोई चीज उन्होंने आज तक नहीं देखी थी। मिस्त्री ने विश्वास दिलाया कि आप इसे दो-तीन महीने सुब्ह-शाम लगातार देखते रहेंगे तो इतनी बुरी नहीं लगेगी। इस पर मिर्जा बोले कि तुम भी कमाल करते हो यह कोई बीबी थोड़ी है! पुरानी कार यानी नये ट्रक के पीछे ताजा पेंट किया गया निर्देश 'चल रे छकड़े तेनू रब दी आस' पर उन्होंने उसी समय पुचारा फिरवा दिया। दूसरे फिकरे पर भी उन्हें आपत्ति थी। इसमें जगत यार यानी 'पप्पू यार' को चेतावनी दी गयी थी कि तंग न करे। चौधरी करमदीन पेंटर ने समझौते के अंदाज में कहा कि जनाबे-आली अगर आपको यह नाम पसंद नहीं तो बेशक अपनी तरफ का कोई मनपसंद नाम लिखवा लीजिये। इसी प्रकार उन्होंने इस शेर पर भी सफेदा फिरवा दिया :

मुद्दई लाख बुरा चाहे तो क्या होता है

वही होता है जो मंजूरे-खुदा होता है

इस सुधार के बाद भी जो कुछ बाकी रह गया वो खुदा को मंजूर हो तो हो, उन्हें हरगिज मंजूर नहीं था परंतु भोंडी बॉडी से अलग, रिबोरिंग के बाद जब वो चली तो सारी कुढ़न दूर हो गयी। अब वो स्टार्ट होने और चलने में ऐसी अनावश्यक फुर्ती और नुमाइशी चुस्त दिखाने लगी जैसे रिटायर्ड लोग नौकरी में एक्सटेंशन से पहले या कुछ बुड्ढे दूसरी शादी के बाद दिखाते हैं। बाथरूम में भी जॉगिंग करते हुए जाते हैं। जीने पर दो-दो सीढ़ियां फलांगते चढ़ते हैं। पहले दिन सुब्ह नौ बजे से शाम के छः बजे तक इस ट्रक-नुमा कार या कार-नुमा ट्रक से लकड़ी की डिलीवरी होती रही। कार की दिन-भर की आमदनी यानी 45 रुपये (जो आज के 450 रुपये के बराबर थे) को पहले उन्होंने 30 दिन और बाद में 12 महीने से गुणा किया तो हासिल 16200 रुपये निकला। दिल ने कहा 'जब कार की कुल कीमत 3483 रुपल्ली है! पगले! इसे गुजर प्राप्ति नहीं, जीवन प्राप्ति कहो! वो बड़ी देर तक पछताया किये कि कैसी मूर्खता थी, इससे बहुत पहले कार को ट्रक में क्यों न परिवर्तित करवा लिया। मगर हर मूर्खता का एक समय निश्चित है। अचानक 'वही होता है जो मंजूरे-खुदा होता है' उनके जह्न में आया और वो अनायास मुस्कुरा दिये।

मेरा भी तो है !

तीन-चार सप्ताह गाड़ी किसी तरह चली, हालांकि किराये का वो आनंददायक औसत न रहा। नौ-दस बार वर्कशाप भेजनी पड़ी। मिस्त्री ने पूरे एक महीने की गारंटी दी थी। अल्बत्ता गधा-गाड़ी वाला रोज सुब्ह पता करने आता कि आज कहां और किस समय आऊं, फिर एक दिन ऐसा हुआ कि बिशारत ने उस पर दो ग्राहकों की खरीदी हुई सात हजार रुपये की लकड़ी लदवा कर खलीफा को दस बजे डिलीवरी के लिए रवाना कर दिया। कोई दो बजे होंगे कि वो हांपता-कांपता आया। बार-बार अंगोछे से आंखें पोंछ कर नाक से सुड़-सुड़ कर रहा था। कहने लगा 'सरकार! मैं लुट गया, बर्बाद हो गया, अल्लाह मुझे उठा ले' बिशारत समझ गये कि इसकी सदा रोगी बीबी की मौत हो गयी है। उसे समझाने लगे कि खुदा की मर्जी में किस का दख्ल है, सब्र से काम लो, वही होता है जो..। लेकिन जब उसने कहा कि 'कूक करूं तो जग हंसे, चुपके लागे घाव, सरकार मेरा दिल खून के आंसू रो रहा है,' तो बिशारत की चिंता कुछ कम हुई कि जो व्यक्ति अत्यंत दुःख के अवसर पर भी शेर और मुहावरे के साथ रोये वो आपकी सहानुभूति नहीं अपने भाषा-ज्ञान की दाद चाहता है। जब खलीफा अंगोछा मुंह पर डाल कर जोर-जोर से बखान करके रोने लगा तो अचानक उन्हें खयाल आया कि नुकसान इस हरामखोर का नहीं मेरा हुआ है! कहने लगे 'अबे! कुछ तो बोल इस बार मेरा क्या नुकसान हुआ है?' बनावटी सिसकियों के बीच बोला 'मेरा भी तो है!' फिर सारी कहानी बतायी - गाड़ी बहुत 'ओवर लोड' थी, फर्स्ट गियर में भी बार-बार दम तोड़ रही थी। सड़क के मोड़ तक तो जैसे-तैसे वो लौंडों के धक्कों और नारों के जोर से ले गया, लेकिन चौराहे पर स्प्रिंग जवाब देने लगे। उसने बोझ हल्का करने के लिए आधी लकड़ी उतार कर मस्जिद की सीढ़ियों के पास बड़ी अच्छी तरह लगा दी और बाकी माल की डिलीवरी देने दूसरी जगह चला गया। वहां प्लाट पर कोई नहीं था। डिलीवरी दिये बिना वापस मस्जिद आया तो लकड़ी गायब! 'सरकार! मैं दिन-दहाड़े लुट गया! बरबाद हो गया'

अगले वक्तों के हैं ये लोग, इन्हें कुछ न कहो

अब उन्हें स्वयं अपनी मूर्खता पर भी अफसोस होने लगा कि साढ़े तीन हजार की खटारा कार में दुगनी मालियत यानी साढ़े सात हजार का माल भेजना कहां की बुद्धिमानी है। काश! चोर लकड़ी के बजाय कार ले जाता, जान

छूटती। उन्हें यकीन था कि खलीफा आदत से बाज नहीं आया होगा। भरी गाड़ी खड़ी करके कहीं हजामत बनाने, खत्ना करने या किसी जजमान से शादी-ब्याह की बधाई वसूल करने चला गया होगा। कई बार ऐसी हरकत कर चुका था। पहाड़ का टलना संभव है, आदत का बदलना संभव नहीं वाली कहावत अचानक उन्हें याद आई और यह भी याद आया कि यह कहावत अपने हवाले से उन्होंने पहली बार मास्टर फाखिर हुसैन से सुनी थी। क्लास में शरारत करने पर मास्टर फाखिर हुसैन ने उनको 'बूजना' (बंदर) करार देने के बाद इस कहावत की सलीब पर उल्टा लटका दिया था, बूजना कहने का जब उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा तो मास्टर साहब ने उनसे बूजना का अर्थ पूछा, फिर बारी-बारी सब लड़कों से पूछा। किसी को मालूम नहीं था, इसलिए सारी क्लास को बेंच पर खड़ा करके कहने लगे 'नालायकों! मेरा नाम डुबाओगे... बूजना बंदर को कहते हैं समझे?' हाय! कैसे जमाने और कैसे उस्ताद थे। अर्थहीन बात के भी शाब्दिक अर्थ बताते थे। क्रोध में भी शिक्षा के तकाजों का लिहाज रखते थे, केवल गाली ही नहीं देते थे, उसका इमला और मतलब भी बताते थे।

कुसूर अपना निकल आया

वो सीधे पुलिस स्टेशन रपट लिखवाने गये। अफसर इंचार्ज ने कहा, यह थाना नहीं लगता। आप जहां रहते हैं उसके संबंधित थाने में एफ.आई.आर. दर्ज कराइये। वहां पहुंचे तो जवाब मिला कि जनाबे-आली! जुर्म की रपट आपकी रिहाइश वाले थाने में बेशक दर्ज की जा सकती है अगर जुर्म आपने किया हो। आप रपट, वारदात वाली जगह से संबंधित थाने में लिखवाइये। वहां पहुंचे तो कहा गया कि वारदात वाली जगह दो थानों के संगम पर स्थित है, मस्जिद की इमारत बेशक हमारे थाने में है, परंतु इसकी सीढ़ियों की तलहटी के इलाके, साथ वाले थाने में लगते हैं। साथ वाले थाने पहुंचे तो वहां किसी को न पाया। बस एक व्यक्ति था, जिसके माथे से खून बह रहा था, दायें हाथ में कंपाउंड फ्रेक्चर था और बायीं आंख सूज कर बंद हो चुकी थी। वो कहने लगा कि मैं दफा 324 की रपट लिखवाने आया हूं। दो घंटे से इंतजार कर रहा हूं, अंधेर है। सिविल अस्पताल वाले कहते हैं कि जब तक थाने वाले एफ.आई.आर. दर्ज करके पर्चा न काट दें हम इलाज नहीं कर सकते। विजयी अंदाज में वो छीना हुआ हथियार यानी शाम चढ़ी लाठी पकड़े हुये था, जिससे उसका सर फाड़ा गया था। उसके साथ उसका चचा था, जो किसी दीवानी वकील का मुंशी था। वो भतीजे को दिलासा दे रहा था कि मुजरिम ने लाठी और कानून अपने हाथ में लेकर कानून और तुम्हारे सर को एक ही वार से तोड़ा है। उस हरामजादे को हथकड़ी न पहना दूं तो मैं अपने बाप की औलाद नहीं। उसने तो खैर संगीन जुर्म किया है, मैंने तो कइयों को बिना जुर्म के जेल की हवा खिलवा दी है! उसने बिशारत को कानूनी सलाह दी कि आपको दरअस्ल उस थाने से संपर्क करना चाहिये जिसकी सीमा में चोर का रिहाइशी मकान आता है। बिशारत उससे उलझने लगे। बहस के दौरान पता लगा कि इस वक्त S.H.O. की लड़की की सगाई की रस्म हो रही है। अधिकतर स्टाफ वहीं तैनात है। एक डेढ़-घंटे बाद आयेंगे। असिस्टेंट सबइंस्पेक्टर दोपहर से सड़क पर सुरक्षा डयूटी और स्कूल की लड़कियों को इकट्ठा करके सड़क पर दोनों ओर खड़ा करने में लगा है, इसलिए कि प्रधानमंत्री एक कार्यालय से दूसरे कार्यालय जा रहा है। हेड कांस्टेबल तफ्तीश पर निकला हुआ है।

कोई दो घंटे के बाद एस.एच.ओ. का एक वकील की कार में आगमन हुआ। वकील का ब्रीफकेस, जिस पर खाकी जीन का गिलाफ चढ़ा था, एक मुल्जिमनुमा मुअक्किल उठाये हुआ था। वकील के हाथ में सगाई की मिठाई के डिब्बे थे, जो उसने स्टाफ को बांट दिये। एक डिब्बा बिशारत को भी दिया। एस.एच.ओ. ने बिशारत से सरसरी

रूदाद सुन कर कहा, आप जरा बाहर प्रतीक्षा कीजिये। अस्ल रिपोर्टकर्ता ड्राइवर है, उससे पूछ-ताछ करनी है। घंटे भर तक उससे न जाने क्या उल्टी-सीधी तफ्तीश करता रहा। खलीफा बाहर निकला तो उसका केवल मुंह ही लटका हुआ नहीं था, खुद भी सारे-का-सारा लटका हुआ दिखाई दे रहा था। इसके बाद एस.एच.ओ. ने बिशारत को अंदर बुलाया तो उसके तेवर बिल्कुल बदले हुए थे। कुर्सी पर बैठने को भी नहीं कहा, सवालों की भरमार कर दी। थोड़ी देर के लिए तो बिशारत ने सोचा कि शायद उसे धोखा हुआ है और वो उन्हें चोर समझ बैठा है। लेकिन जब उसने कुछ ऐसे चुभते हुए प्रश्न किये जो सिर्फ इन्कम-टैक्स अफसर को करने चाहिये तो उनका अपना धोखा दूर हो गया। मिसाल के तौर पर जब आपने चुरा ली जाने वाली इमारती लकड़ी बेची तो रोकड़ बही में दर्ज किया या ऊपर-ऊपर कैश डकार गये? ड्राइवर को जो तन्ख्वाह देते हैं तो रसीद उतनी ही रकम की लेते हैं या जियादा की? गोदाम से लकड़ी बिना डिलीवरी आर्डर के कैसे निकलती है! आप स्वयं बिना Learner's Licence के ट्रक कैसे चलाते हैं? लकड़ी के तख्ते जब ट्रक में ले जाने के लिए रखे गये तो क्या नियम उंतीस सौ कुछ के नियमानुसार पीछे सुर्ख झंडी लगाई थी? और हां! याद आया कि मेरा मकान नींव तक आ गया है, कितने फुट लकड़ी की जुरूरत होगी? हिसाब लगा कर बताइये 'सौ गज का वेस्ट ओपन कार्नर प्लाट है। आपके यहां जो रेडियो है उसका लाइसेंस आपने बनवाया? क्या यह सही है कि आपकी फर्म में आपके पिछत्तर वर्षीय अब्बा और दूध पीता बेटा भी पार्टनर हैं? लकड़ी जब ली मार्केट से नाजियाबाद ले जानी थी तो रणछोड़ लाइन की परिक्रमा की जुरूरत क्यों पड़ी? क्या यह सही है कि आप पांचों वक्त नमाज पढ़ते हैं और हार्मोनियम बजाते हैं। जवाब में बिशारत ने कहा नमाज मैं पढ़ता हूं हार्मोनियम अब्बा बजाते हैं। इस जवाब पर एस.एच.ओ. ने देर तक हथकड़ी बजायी और पहली बार मुस्कराते हुए बोला, 'हूं! सुनना मुंशी जी? यानी गुनाह का बखान गुनाह से अधिक मजेदार है? लकड़ी खुले-तौर पर ठीक मस्जिद के दरवाजे पर रखी तो क्या इससे नमाजियों का इम्तहान लेना मकसद था? ड्राइवर से आपका सारा टब्बर हजामत बनवाता है, कोरमा पकवाता है। उसने आपके जूनियर पार्टनर के खत्ने भी किये। मेरा मतलब आपके छोटे साहबजादे से है। आपने उससे घोड़ा तांगा भी चलवाया, यही आपके घोड़े और अब्बा जी का क्रमानुसार खरेरा और मालिश करता था। यह लेबर लाज की खुली अवहेलना है। क्या यह सही है कि कुछ समय पहले एक आरा चलाने वाले की आंख में छिपटी उचट कर पड़ने से रोशनी जाती रही और आपने उसे घर भेज दिया? कोई मुआवजा नहीं दिया और आपने दुगनी कीमत पर लकड़ी कैसे बेची? अंधेर है। मुझे अपने मकान के लिए आधे दाम मिल रही है! खुले भाव!'

फौजदारी से छेड़खानी

जब बिशारत हर सवाल का गैर तसल्लीबख्श जवाब दे चुके तो एस.एच.ओ. ने कहा, 'मैं इसी समय मुआयना करूंगा। कल इतवार है, थाने नहीं आऊंगा। सवारी है?' बिशारत ने कहा, 'हां!' और उसे गाड़ी तक ले आये, 'मगर यह है क्या!' एस.एच.ओ. ने आश्चर्य से पूछा। 'इसी में लकड़ी गयी थी।'

'मगर यह है क्या'

उसने चोरी से बच जाने वाले उन तख्तों को छू-छू कर देखा, जो उसमें चुने हुए थे। फिर गाड़ी के गिर्द चक्कर लगा कर उनकी लंबाई का अनुमान लगाया। इसके बाद वो एक दम बिफर गया। कैसी वारदात वाली जगह और कैसा मुआयना, उल्टे धर लिए गये। एस.एच.ओ. बकता-झकता वापस थाने में ले गया। जैसे ही वो अपने कुढब प्रश्न से

उन्हें चारों-खाने चित करता, वैसे ही उसका खुशामदी असिस्टेंट उन्हें अपने सींगों पर उठा कर दोबारा जमीन पर पटक देता। एक सवाल हो तो... पैसिंजर कार को किसकी अनुमति से ट्रक में परिवर्तित किया गया। जिस गली से इसका गुजरना बताया जाता है, वो तो वन वे है! इसकी इंश्योरेंस पॉलिसी तो कभी की Lapse हो चुकी। व्हील टैक्स एक साल से नहीं भरा गया। आपके ड्राइवर ने अभी स्वयं इकबाले-जुर्म किया है कि ब्रेक न होने के कारण गाड़ी गियर के द्वारा रोकता है। इसी वज्ह से कुछ रोज पहले गार्डन ईस्ट की झुग्गियों के सामने एक मुर्गी कार के नीचे आ गयी, जिसका हरजाना खलीफा के पास नहीं था। झुग्गी वालों ने रात भर कार impound किये रखी और मुर्गी के बदले खलीफा को पकड़ लिया, हालांकि वो चीखता रहा कि दोष कार का नहीं, मुर्गी खुद उड़ कर इसके नीचे आई थी। दिन निकलने के बाद खलीफा ने हर्जाने के तौर पर मुर्गी मालिक और उसके डेढ़-दो दर्जन बेटों, भतीजों, दामादों और दूर-निकट के पड़ोसियों की हजामत बनायी, तब कहीं जा कर मुक्ति मिली। एक पड़ोसी तो अपने पांच वर्षीय नंग-धड़ंग बेटे को गोटे की टोपी पहना कर ले आया कि जरा इसके खत्ने कर दो। इस मुशक्कत से फारिग हो कर वो डेढ़-दो बजे आपके पास पहुंचा तो इसका बदला आपने यह दिया कि उस पर आरोप लगाया कि तुम कार के टूल-बक्स में कैची-उस्तरा रखे हजामतें बनाते फिरते हो और एक दिन की तन्ख्वाह काटने की धमकी दी। खैर, यह एक अलग तफ्तीश योग्य-समस्या है, परंतु यह बताइये कि आपकी कार चिमनी की तरह धुआं क्यों देती है। सड़क पर हर कहीं खड़ी हो जाती है। मुंशी जी! अमां सुन रहे हैं मुंशी जी? आम रास्ते पर रुकावट पैदा करने की कै महीने की है? महज? या बामुशक्कत? और जनाबे-वाला! अगर यह सही है कि यह ट्रक है तो शाम को इसमें आपका पूरा खानदान कचरधान क्यों रंगा फिरता है? और मुंशी जी जरा इनको ओवर लोडिंग की दफा तो पढ़कर सुना दीजिये।

संक्षेप में यह कि दंड संहिता और फौजदारी अधिनियम की कोई दफा ऐसी नहीं बची जिसे तोड़ कर वो उस समय रंगे हाथों न पकड़े गये हों। उनका प्रत्येक कर्म किसी न किसी दफा की लपेट में आ रहा था और उन्हें ऐसा महसूस हुआ जैसे उनका समस्त जीवन कानून से छेड़खानी में गुजरा है। पहले तो उन्हें इस पर आश्चर्य हुआ कि एस.एच.ओ. को उनके तमाम कानून के उल्लंघनों का पता कैसे चला, फिर वो बार-बार खलीफा को कच्चा चबा जाने वाली नजरों से देखने लगे। जैसे ही आंखें चार होतीं, खलीफा झट से हाथ जोड़ लेता।

इतने में एस.एच.ओ. ने आंख से कुछ इशारा किया और एक कांस्टेबल ने आगे बढ़ कर खलीफा के हथकड़ी डाल दी। हेड कांस्टेबल बिशारत के कंधे पर हाथ रख कर उन्हें दूसरे कमरे में ले गया। 'पहले आपके खिलाफ पर्चा कटेगा। चूंकि Vehicle खुद नाजायज है, इसीलिए मुंशी जी! सुपुर्दनामा तैयार कीजिये। शिकायत दर्ज कराने वाले से स्वयं बहुत से अपराध हुए हैं, इसलिए...'

बिशारत को चक्कर आने लगे।

कुछ हाल हवालात का

थाने के हवालात या जेल में, आदमी चार घंटे भी गुजार ले, तो जिंदगी और हजरत इंसान के बारे में इतना कुछ सीख लेगा कि यूनिवर्सिटी में चालीस बरस रह कर भी नहीं सीख सकता। बिशारत पर चौदह तबक (सात आकाश-लोक, सात पृथ्वी-लोक) से भी बढ़ कर कुछ रौशन हो गया और वो दहल गये। सबसे अधिक आश्चर्य उन्हें उस भाषा पर हुआ जो थानों में लिखी और बोली जाती है। रिपोर्ट करने वालों की हद तक तो बात समझ में आती है

परंतु मुंशी जी एक व्यक्ति को (जिस पर एक नाबालिग लड़की के साथ जर्बदस्ती निकाह पढ़वाने का आरोप था) बलपूर्वक निकाह करने वाला कह रहे थे। स्टाफ की आपस की बातचीत से उन्हें अंदाजा हुआ कि इस थाने ने इंसानों को दो हिस्सों में बांट रखा है, एक वो जो सजायाफ्ता हैं, दूसरे वो जो नहीं हैं, मगर होने चाहिये। देश में बड़ी संख्या गैर-सजायाफ्ता लोगों की है और यही सारे झगड़े की जड़ है। बातचीत में जिस किसी का भी जिक्र आया, वो कुछ न कुछ 'याफ्ता' (पाने वाला) या 'शुदा' (हुआ) अवश्य था। 'मिजाज पुर्सी' वाले कमरे में जो व्यक्ति थोड़ी-थोड़ी देर में चीखें मार रहा था, वो सजायाफ्ता और मुचलके-शुदा था। सरेआम आलिंगन चुंबन के आरोप में जिन दो महिलाओं को गिरफ्तार किया गया था, उनमें से एक को एक ए.एस.आई. शादी-शुदा और दूसरी को महज-शुदा यानी गयी-गुजरी बता रहा था। हेडकांस्टेबल जो स्वयं इनआमयाफ्ता था, किसी मरने वाले का अंतिम समय दिया गया बयान पढ़ कर सुना रहा था। एक पर्चे में किसी गुंडे के बेकाबू चाल-चलन का विवरण दर्ज था, एक जगह आतिशजदा मकान के अलावा एक निवासी के बर्बादशुदा सामान और तबाहशुदा शुहरत का भी जिक्र था।

इस थाने में हथियार की सिर्फ दो किस्में थी। धारदार और गैर-धारदार। जिस हथियार से सरकारी गवाह के कूल्हों पर नील पड़े और सर पर गूमड़ उभरा, उसके बारे में रोजनामचे में लिखा था कि डाक्टरी मुआयने में जाहिर होता है कि गवाह को बीच बाजार में गैर-धारदार आले से मारा गया। इस हथियार से मुराद जूता था! रात के दस बजे 'मिजाज पुर्सी' वाले कमरे में एक व्यक्ति से जूते के द्वारा सच बुलवाया जा रहा था। पता चला कि जूते खा कर ना किये गये जुर्म को स्वीकार करने वालों को सुल्तानी गवाह कहते हैं। वो व्यक्ति बड़ी देर से जोर-जोर से चीखे जा रहा था, जिससे मालूम होता था कि अभी तक जूते खाने को झूठ बोलने से अधिक महत्व दे रहा है। जूते के इस Extra Curricular इस्तेमाल को पंजाबी में छतरोल कहते हैं। थाने में लोगों का आना-जाना कुछ कम हुआ तो तीन कांस्टेबल सुब्ह दर्ज किये गये एक बलात्कार के मामले के चश्मदीद गवाह को आठवीं बार लेकर बैठ गये जो उस समय इस घटना को इस तरह बयान कर रहा था जैसे बच्चे अपने पिता के मित्रों को इतरा-इतरा कर नर्सरी राइम सुनाते हैं। हर बार वो इस वारदात में नयी-नयी बातों से अपनी अपराधिक अतृप्त इच्छाओं का रंग भरता चला जाता।

'यूं न था मैंने फकत चाहा था यूं हो जाये'

तीनों कांस्टेबल सर जोड़े इसे अच्छे शेर की तरह सुन रहे थे और बीच-बीच में आरोपी को हसरत-भरी दाद और दाद भरी गालियां देते जाते। सुब्ह जब बंद कमरे में बयान लिए जा रहे थे तो सब-के-सब, यहां तक कि हवालात में बंद आरोपियों के भी कान दीवार से लगे थे।

नौ बजे किसी शाम के अखबार का क्राइम रिपोर्टर आया, जिसके अखबार का सर्कुलेशन किसी तरह बढ़ के नहीं दे रहा था। ए.एस.आई. से कहने लगा 'उस्ताद! दो सप्ताह से खाली हाथ जा रहा हूं। यह थाना है या लावारिसों का कब्रिस्तान। तुम्हारे इलाके के सभी गुंडों ने या तो तौबा कर ली है या पुलिस में भर्ती हो गये हैं। यही हाल रहा तो हम दोनों के घरों में चूहे कलाबाजियां खायेंगे।' उसने जवाब दिया, 'जाने-मन! बैठो तो सही, आज एक के गले में घंटी बांध दी है। ऐसा स्कूप बरसों में नसीब होता है। बगल वाले कमरे में चश्मदीद गवाह दसवीं बार पाठ सुना रहा है। तुम भी जा के सुन लो और यार! चार दिन से तूने मेरे तबादले के खिलाफ एक भी लेटर टू दि एडिटर नहीं छपवाया। हमीं जब न होंगे तो तुझे कौन हथेली पे बिठायेगा? ओये बशीरे! दो चाय सुलेमानी। फटाफट, लबालब। मलाई ऐसी दबादब डलवाइयो कि चाय में पेन्सिल खड़ी हो जाये और भाई फीरोजदीन! उस इन्कलाबिये को

चुपका करो। शाम ही से साले के दर्दें उठने लगीं 'इब्तिदाये-इश्क है रोता है' चीखते-डकराते गला बैठ गया है। जनाब! मर्द के रोने से अधिक जलील चीज दुनिया में नहीं। साला स्वयं को हुसैन-नासिर से कम नहीं समझता। मैंने पांच बजे उसे आइस कोल्ड बीयर के चार मग पिला दिये। बहुत खुश हुआ। तीसरे मग के बाद मुझे! जी हां मुझे! 'सुतूने-दार पे रखते चलो सरों के चिराग' का मतलब समझाने लगा! चौथा पी चुका तो मैंने टायलेट जाने की मनाही कर दी। इसलिए तीन बार खड़े-खड़े पतलून में ही चिराग जला चुका है जनाब! हम तो हुक्म के गुलाम हैं अभी तो बड़े मेहमानखाने में इसकी आरती उतरेगी। वो सब कुछ कुबूल करा लेते हैं। इस साले की ट्रेजडी यह है कि इसके पास कुबूल करने को कुछ है ही नहीं, इसलिए जियादा पिटेगा।

वारदात में शामिल

ताजा वारदात की सूचना पा कर रिपोर्टर की बांछें खिल गयी। इस खुशी में उसने एक सिग्रेट और दो मीठे पानों का आर्डर दिया। जेब से पिपरमेंट और नोट बुक निकाली। लंबे समय बाद एक चटपटी खबर हाथ लगी थी। उसने फैसला किया कि वो इस केस का प्लाट अपने कहानीकार मित्र सुल्तान को दे देगा जो रोज रीयल लाइफ ड्रामे का तकाजा करता है। बलात्कार के इस केस का विवरण सुनने से पहले ही दिमाग में सुर्खियां सनसनाने लगीं। अब की बार हैडिंग में ही कागज पे कलेजा निकाल के रख दूंगा। उसने दिल में निश्चय किया 'सत्तर वर्षीय बूढ़े ने सात वर्षीय लड़की से मुंह काला किया' यह हैडिंग जमाने की खातिर पिछले साल उसे लड़की की उम्र से दस साल निकाल कर बूढ़े की उम्र में जोड़ने पड़े थे ताकि उसी अनुपात से जुर्म की संगीनी और पाठक की रुचि बढ़ जाये। मिर्जा अब्दुल वुदूद बेग कहते हैं कि यह कैसी बदनसीबी है कि सीधे-सादे और सपाट शब्द rape के जितने विकल्प हमारे यहां प्रचलित हैं, उनमें एक भी ऐसा नहीं जिसमें स्वतः आनंद न आता हो। कोई सुर्खी, कोई-सा वाक्य उठा कर देख लीजिये, यौनानंद के रस में डूबा नजर आयेगा। 'सत्तर वर्षीय बूढ़ा रात के अंधेरे में मुंह काला करते हुए रंगे हाथों पकड़ा गया।' 'पैंसठ साला बूढ़ा रात भर कमसिन युवती की इज्जत से खेलता रहा।' जैसे कि अस्ल एतराज पैंसठ बरस पर है जिसमें अपराधी का कोई दोष नहीं (दरअस्ल इस सुर्खी में नैतिकता, आश्चर्य, कुरेद और जलन समानुपात में मिले हुए हैं, अर्थात नैतिकता सिर्फ नाम की) 'चारों आरोपियों ने नवयुवती को अपनी हवस का निशाना बनाया। हैवान बार-बार पिस्तौल दिखा कर आबरू पर डाका डालता रहा, पुलिस के आने तक धमकियों का सिलसिला बराबर जारी रहा।' यह हैडिंग और वाक्य हमने अखबारों में से हू-ब-हू नक्ल किये हैं, कुछ टर्म्ज और पूरे-के-पूरे वाक्य ऐसे हैं जिन्हें हम नक्ल नहीं कर सकते, जिनसे लगता है कि बयान करने वाला Voyeur मन के साथ वारदात में शामिल होना चाहता है। नतीजा यह कि पढ़ने वाले की कानूनी हमदर्दियां युवती के साथ, परंतु दिल आरोपी के साथ होता है।

'समझो वहीं हमें भी दिल हो जहां हमारा'

कोयले की इस खान से और नमूने बरामद करना आवश्यक नहीं है कि हाथ काले करने के लिए यही काफी है। संक्षेप में इतना बता दें कि जरा खुरचिये तो आपको यौन अपराध से संबंधित कोई वाक्य आनंद से खाली नहीं मिलेगा। हर शब्द सिसकी और हर वाक्य चुस्की लेता दिखाई देगा।

कुत्ता क्यों काटता है ?

काफी देर तक तो बिशारत को विश्वास नहीं आया कि सब कुछ सच हो सकता है। परंतु जब रात के नौ बज गये तो मामला सचमुच गंभीर नजर आने लगा। ए.एस.आई. ने कहा 'आज की रात, कल का दिन और रात आपको हवालात में गुजारने पड़ेंगे। कल इतवार पड़ गया। परसों से पहले आपकी जमानत नहीं हो सकती' उन्होंने पूछा 'किस बात की जमानत?' उन्हें फोन भी नहीं करने दिया। उधर हवालात की कोठरी में जिसके जंगले से पेशाब की खरांद भक-भक आ रही थी, खलीफा थोड़ी-थोड़ी देर बाद हथकड़ी वाला हाथ आसमान की ओर उठाता और ही ही ही ही करके इस तरह रोता कि लगता हंस रहा है। बिशारत का गुस्सा अब एक अपंग और गूंगे का गुस्सा था। इतने में थाने के मुंशी जी इशा (रात) की नमाज से फारिग होकर उनके पास आये। सूख कर बिल्कुल टिड्डा हो गये थे, मगर ऐनक के पीछे आंखों में बला की चमक थी। स्वर में ममता और मिठास घुली हुई थी। एक बोतल लेमोनेड की अपने हाथ से गिलास में उड़ेल कर पिलाई। इसके बाद दोनों ने एक-दूसरे को अपनी डिबिया से पान निकाल कर खिलाया।

मुंशी जी बड़ी विनम्रता से कहने लगे कि हमारे सरकार (एस.एच.ओ.) बड़े भले आदमी हैं - शरीफों के साथ शरीफ और बदमाशों के हक में हलाकू। यह मेरी गारंटी है कि आपका चोरी हुआ माल तीन दिन में बरामद करा दिया जायेगा। सरकार अंतड़ियों में से खींच कर निकाल लाते हैं। इलाके के हिस्ट्री शीटर उनके नाम से थर-थर कांपते हैं। वो रेडियोग्राम, जेवरात और साड़ियां जो उस कमरे में आपने देखीं, आज सुब्ह ही बरामद की गयी हैं। कहने का मकसद यह है कि हूजूर की गाड़ी में जो लकड़ी पड़ी है, वो सरकार के प्लाट पर डलवा दीजिये, आपकी इसी मालियत की चोरीशुदा लकड़ी सरकार तीन दिन में बरामद करवा देंगे यानी आपकी जेब से तो कुछ नहीं गया। मैंने इसकी उनसे बात नहीं की, हो सकता है सुन कर खफा हो जायें। बस यूं ही आपकी राय ले रहा हूं। सरकार की साहबजादी का रिश्ता खुदा-खुदा करके तय हुआ है बिटिया तीस बरस की हो गयी है। बड़ी नेक और सुशील है। आंख में मामूली-सा टेढ़ापन है, लड़के वाले दहेज में फर्नीचर, रेडियोग्राम और वैस्ट ओपन प्लाट में बंगला मांगते हैं। खिड़की-दरवाजे उम्दा लकड़ी के हों अगर चूक जायें तो फिर यह सब कुछ भोगना-भुगतना पड़ता है वरना हमारे सरकार इस किस्म के आदमी नहीं। आज कल बहुत परेशान और चिड़चिड़े हो रहे हैं। यह तो सब देखते हैं कि बावला कुत्ता हरेक को काटता फिरता है यह कोई नहीं देखता कि वो अपनी मर्जी से बावला थोड़े ही हुआ है। आपने उनकी बातों से खुद स्वभाव का अनुमान लगा लिया होगा। तीन बरस पहले तक शेर कहते थे। शाम को थाने में शायरों की ऐसी भीड़ होती थी कि कभी-कभी तो हवालात में कुर्सियां डलवानी पड़ती थीं। एक शाम बल्कि रात का जिक्र है - घमासान का मुशायरा हो रहा था। सरकार तरन्नुम से ताजा गजल पढ़ रहे थे। सारा स्टाफ दाद देने में जुटा हुआ था। मकते (गजल का आखिरी शेर) पर पहुंचे तो संतरी जरदार खां ने थ्री नाट थ्री राइफल चला दी। उपस्थितगण समझे, शायद कबाइली तरीके से दाद दे रहा है, परंतु जब वो शोर मचाने लगा तो पता चला कि गजल के दौरान जब मुशायरा अपने शबाब पर पहुंचा तो डकैती केस में शामिल एक आरोपी जो हवालात का जंगला बजा-बजा के दाद दे रहा था, भाग गया। शायरों ने उसका पीछा किया। मगर उसे तो क्या पकड़ के लाते, खुद भी नहीं लौटे। खुदा जाने, कांस्टेबलों ने पकड़ने में काहिली बरती या उसने पकड़ाई नहीं दी, मगर, सरकार ने हिम्मत नहीं हारी। रातों-रात उसी नाम के एक छंटे हुए बदमाश को पकड़ के हवालात में बंद कर दिया। कागजों में फरार आरोपी के पिता का नाम बदल दिया लेकिन उसके बाद शेर नहीं कहा। तीन बरस से सरकार की तरक्की और शेर की आमद बंद है। अदम साहब से यारी है पिछले बरस अपने मासूम बच्चों के हल्क पे छुरी फेर कर ऊपर के अफसरों को डेढ़ लाख की भेंट चढ़ायी तो 'लाइन हाजिरी से छुटकारा मिला और इस थाने में तैनाती मिली। अब

सरकार कोई वली-औलिया तो हैं नहीं कि सलाम फेर कर नमाज की चटायी का कोना उलट कर देखें तो डेढ़ लाख के नोट आसमान से धरे मिलें। दूध तो आखिर थनों से ही निकालना पड़ता है, भैंस न मिले तो कभी-कभी चुहिया ही को पकड़ के दुहना पड़ता है।

बिशारत को अस्ल नुकसान से अधिक इस अपमान भरी मिसाल पर क्रोध आया। बकरी भी कह देता तो चल जाता (वैसे छोटी है जात बकरी की) लेकिन सूरते-हाल कुछ-कुछ समझ में आने लगी। उन्होंने कहा मैं अपनी रपट वापस लेता हूं। ए.एस.आई. ने उत्तर दिया कि दिन दहाड़े चोरी ऐसा अपराध है कि जिस पर राजीनामा नहीं हो सकता यानी पुलिस का हस्तक्षेप आवश्यक हो जाता है। रपट वापस लेने वाले आप कौन होते हैं? अगर आपने वापस लेने पर जोर दिया तो झूठी रपट कराने पर आपका यहीं 'आन दि स्पाट' चालान कर दूंगा। इज्जत के लाले पड़ जायेंगे। आपका वकील बहुत योग्य हुआ तो तीन महीने की होगी। एस.एच.ओ. साहब सोमवार को निर्णय लेंगे कि आप किस-किस दफा के तहत शामिल पाये गये हैं।

उन्हें ऐसा लगा जैसे उनका प्रत्येक कर्म, उनका सारा जीवन पुलिस-हस्तक्षेप के योग्य रहा है और यह सरासर पुलिस की गफलत का नतीजा था कि वो अब तक जिंदगी इज्जत आबरू से बसर कर रहे थे।

उन्होंने तैश में आकर धमकी दी कि मुझे फिजूल में कैद किया गया है, यह गैर कानूनी हिरासत है। मैं हाईकोर्ट में Habeas Corpus Petition पेश करूंगा। ए.एस.आई. बोला, 'आप पिटीशन क्या पेश करेंगे। हम खुद आपको हथेली पर धर के अदालत में पेश कर देंगे। धड़ल्ले से दस दिन का जिस्मानी रिमांड लेंगे, देखते जाइये।'

आपबीती लिखने की खातिर जेल जाने वाले

ए.एस.आई. यह धमकी दे कर चला गया। कुछ मिनट बाद उसका बॉस एस.एच.ओ. भी अपना डंडा बगल में दबाये अहम-ओहम-आहम, खांसता-खंखारता अपने घर चला गया। ठीक उसी समय मिठाई वाला वकील न जाने कहां से दोबारा आन टपका। रात के ग्यारह बजे भी उसने काला कोट और सफेद पतलून पहन रखी थी। वकीलों का विशेष कलफदार सफेद कालर भी लगाये हुए था। कहने लगा, 'भाई! बेशक मेरा इस मुकदमे से कोई संबंध नहीं, महज इंसानी हमदर्दी की बिना पर कह रहा हूं कि आप अनेक अपराधों में फंसाये जा सकते हैं। खुदा न करे अभी दफा 164 फौजदारी अधिनियम के तहत आपके ड्राइवर का इकबाले-जुर्म कलमबंद हो जाये तो लेने-के-देने पड़ जायेंगे। आप सूरत से बाल-बच्चेदार आदमी मालूम होते हैं - लीडर तो हैं नहीं जो राजनैतिक कैरियर बनाने और आत्मकथा लिखने के लालच में जेल जायेंगे। विभाजन से पहले बात और थी। लीडर बागियाना तकरीर करके जेल जाते तो सारा देश इंतजार में रहता कि दो-तीन बरस बाद छूटेंगे तो कोई व्याख्यान, कोई आपबीती, कोई रचना पूरी करके निकलेंगे। बहरहाल वो समय और था आजकल वाला हाल नहीं था कि भाषण देने से पहले ही धर लिए गये और छूटे तो जेल के दरवाजे पर कोई फूलमाला पहनाने वाला तक नहीं। विश्वास कीजिये, मैं यह सजेस्ट नहीं कर रहा कि आप मुझे वकील कर लें, हालांकि मैं आपको मना भी नहीं कर सकता। महज आपके भले की खातिर कह रहा हूं, मुझे प्रेक्टिस करते पच्चीस बरस एक महीना बीता, मैंने आज तक कोई कानूनी गुत्थी ऐसी नहीं देखा जिसे नावां रुपया न सुलझा सके। सारे सिम-सिम इसी से खुलते हैं। आगे जैसी आपकी मर्जी अल्बत्ता इतना फूड फार थॉट रात बिताने के लिए छोड़े जाता हूं कि इस समय रात के साढ़े ग्यारह बज रहे हैं, आपने इन आठ घंटों में पुलिस का क्या बिगाड़ लिया जो आगे आठ घंटों में पुलिस का बिगाड़ लेंगे। कल इतवार है, आप इसी तरह

हवालात में उकड़ूं बैठे अपने संवैधानिक अधिकारों और फौजदारी अधिनियम के हवाले देते रहेंगे। अदालत अधिक-से-अधिक यही तो तीर मार लेगी कि आपको सोमवार के दिन रिहा कर देगी, सो हम तो सोमवार से पहले ही आपको इस चूहेदान से बाहर देखना चाहते हैं। आप हिरासत में हैं। अच्छा बहुत रात हो गयी। मैं चलता हूं मुंशी जी को मेरे घर का फोन नंबर मालूम है।'

वकील के जाने बाद हेड कांस्टेबल एक चटाई, एल्यूमीनियम का लोटा और खजूर का हाथ का पंखा ले आया और खुली वाली हवालात की ओर इशारा करके बिशारत से कहने लगा, 'दिन भर बैठे-बैठे आपकी कमर तख्ता हो गयी होगी। अब आप यह बिछा कर वहां लेट जाइये, मुझे जंगले में ताला लगाना है। मच्छर बहुत हैं, यह कंबल ओढ़ लीजियेगा। अधिक गर्मी लगे तो यह पंखा है। बाथरूम की आवश्यकता हो तो बेशक वहीं... बारह बजे के बाद हवालात का ताला नहीं खोला जा सकता' उसने बत्तियां बुझानी शुरू कर दी।

मगर कारूरा (पेशाब) कुछ और कहता है

बत्तियां बुझने लगीं तो खलीफा जोर-जोर से 'सरकार! सरकार!' करके रोने लगा। हवालात की दीवारों पर खटमलों की कतारें रेंगने लगीं और चेहरे के चारों ओर खून के प्यासे मच्छरों का दायरा घूमने लगा। इस मोड़ पर मुंशी जी अचानक फिर प्रकट हुए और मलबारी होटल से मंगवाया हुआ कीमा जिसमें पड़ी हुई हरी मिर्चों और हरे धनिये की अलग से खुशबू आ रही थी और तंदूर से उतरी नान बिशारत के सामने रखी। गरम नान से भूख को बावला कर देने वाली वो लपट आ रही थी जो हजारों वर्ष पूर्व मनुष्य को आग की खोज करने के बाद गेहूं से आई होगी। इसे खाने से इनकार करने के लिए बिशारत ने कुछ कहना चाहा तो कह न सके कि भूख से बुरा हाल था और सारा मुंह लार से भर गया था। हाथ के एक लिजलिजे से इशारे से इनकार किया और नाक दूसरी ओर फेर कर बैठ गये। इस पर मुंशी जी बोले, 'कसम खुदा की! मैं भी नहीं खाऊंगा। इसका अजाब (ईश्वरीय दंड) आपकी गर्दन पर। तीन बजे एक 'बन' चाय में डुबो के खाया था बस! डाक्टर आंतों की टी.बी. बताता है, परंतु हकीम साहब को दिखाया तो वो कहने लगे कि ये बीमारी जियादा खाना खाने से होती है। लो और सुनो! मैंने कहा, हकीम साहब मेरा यह शरीर, कद-काठी तो देखिये। बोले, मगर कारूरा कुछ और कहता है।'

एकाएक मुंशी जी ने बात का रुख मोड़ा। बिशारत के घुटने छू कर कहने लगे, 'मैं आपके पैरों की खाक हूं, पर दुनिया देखी है। आप इज्जतदार आदमी हैं, परंतु मामले की नजाकत को नहीं समझ रहे कि कारूरा क्या कह रहा है। मैं आपके ससुर का मुहल्लेदार रह चुका हूं। देखिये! मान-सम्मान माल से बढ़ कर नहीं होता, लकड़ी दे दिला के रफा-दफा कीजिये। कुछ दो-तीन हजार की दूसरी लाट मिल जायेगी, फिर झगड़ा किस बात का! सरकार शेर के मुंह से शिकार ही नहीं छीनते, उसके दांत भी उखाड़ लाते हैं। इलाके में कहीं कोई वारदात हो, सरकार को मानों पूर्वाभास हो जाता है कि किस का काम है। किसी-किसी को तो महज अनुमान पर ही धर लेते हैं जैसा कि माफ कीजिये! हुजूर के साथ हुआ। पिछले साल इन्हीं दिनों की बात है सरकार ने एक व्यक्ति को गाली-गलौज से आम रास्ते पर रुकावट पैदा करने पर गिरफ्तार किया। देखने में तो यह जरा-सी बात थी, मगर कारूरा कुछ और कह रहा था। सब को आश्चर्य हुआ, परंतु दो घंटे बाद सरकार ने उसके घर से व्हाइट हार्स व्हिस्की की तीन सौ बोतलें, दो घोड़ा बोस्की के थान, चोरी के गहने, दर्जनों रेडियोग्राम और दुनिया-भर का चोरी का माल बरामद कर लिया। घर में हर चीज चोरी की थी। बाप के अलावा एक चीज भी अपनी नहीं निकली, जिसने कहा कि मैं इस नालायक का त्याग करता हूं। परंतु हमारे सरकार दिल के बहुत अच्छे हैं। पिछले वर्ष इसी जमाने में मेरी बेटी की शादी हुई,

सारा खर्च सरकार ने स्वयं उठाया, इन्हीं में से एक रेडियोग्राम भी दहेज में दिया। मैं इसकी गारंटी देता हूं कि चोरी हुई लकड़ी और ट्रक की रजिस्ट्रेशन बुक आपको तीन दिन के अंदर-अंदर दुकान पर ही डिलीवर हो जायेगी। मेरी मान जाइये, वैसे भी बेटी की शादी के लिए रिश्वत लेने और देने का शुमार नेग-न्योते में करना चाहिये। आप समझ रहे हैं?

रोटी मेरी काठ दी , लावण मेरी भुक्ख

अब प्याज से सब छिल्के एक-एक करके उतर चुके थे, बस आंखों में हल्की-हल्की जलन बाकी रह गयी थी। अपमान का अस्ल कारण समझ में आ जाये तो झुंझलाहट जाती रहती है, फिर इंसान को चुप लग जाती है। मुंशी जी अब उन्हें अपने ही आदमी लगने लगे।

'मुंशी जी! यहां सभी?'

'हुजूर! सभी।'

'वकील साहब भी?'

'मुंशी जी! फिर आप...?'

'हुजूर! मेरे सात बच्चे हैं। बड़ा बेटा इंटर में है। पत्नी को भी टी.बी. बतायी है। दिन में दो-तीन बार खून डालती है। इलाज में अच्छा खाना भी शामिल है। तन्ख्वाह इस साल की तरक्की मिला कर अट्ठाइस रुपये पांच आने बनती है।'

बिशारत ने ट्रक में लदी हुई लकड़ी एस.एच.ओ. को भेंट करने की स्वीकृति दे दी। आधी रात इधर, आधी रात उधर, बारह बजे खलीफा की हथकड़ी खुली तो वहीं यानी मोरी के मुहाने के बीच सिजदे में चला गया। शुक्राने के सजदे से अभी पूरी तरह नहीं उठा था कि हाथ फैला कर हेड कांस्टेबल से बीड़ी मांग ली। इधर बिशारत को भी कमरे से बाहर निकलने की अनुमति मिली। मुंशी जी ने मुबारकबाद दी। अपनी पीतल की डिबिया से निकाल कर दुबारा पान की कतरन यह कह कर पेश की कि यह गिलोरियां आपकी भाभी ने खास तौर पर बनायी थीं। हेड कांस्टेबल ने बिशारत को अलग ले जाकर मुबारकबाद देते हुए कहा 'खुशी का मौका है, मुंशी जी को पच्चीस रुपये दे दीजिये। गरीब, बाल-बच्चेदार, ईमानदार आदमी है और जनाबे-आली! अब हम सब का मुंह मीठा कराइये। ऐसे खुशी के मौके बार-बार थोड़े ही आते हैं। आप बेशक घर फोन कर लें। घर वाले परेशान होंगे कि सरकार अब तक क्यों नहीं लौटे। एक्सीडेंट तो नहीं हो गया। ढुंड़ैया मच रही होगी। अस्पतालों के केजुअल्टी वार्ड में हर मुर्दे की चादर हटा-हटा के देख रहे होंगे और निराश लौट रहे होंगे।' बिशारत ने सौ रुपये जेब से निकाल कर मिठाई के लिए दिये। थोड़ी देर बाद एस.एच.ओ. के कमरे से वही वकील साहब मिठाई के वैसे ही चार डिब्बों का मीनार गोद में उठाये और ठुड्डी के ठोंगे से उसे संतुलित करते हुए प्रकट हुए। उन्होंने भी बड़ी गर्मजोशी से मुबारकबाद दी और उनकी समझदारी को सराहा। तीन डिब्बे स्टाफ को बांटे और चौथा बिशारत की ओर बढ़ाते हुए बोले, यह हमारी तरफ से भाभी साहिबा और बच्चों को दे दीजियेगा। डिब्बा हवाले करने के बाद उन्होंने अपना कलफदार कालर उतार दिया और काला कोट उतार कर हाथ पर लटका लिया।

भिखारी कौन ?

वकील साहब ने सलाह दी कि लगे-हाथों लकड़ी एस.एच.ओ. साहब के प्लाट पर डालते जाइये। नेक काम में देर नहीं करनी चाहिये। गाड़ी में एक कांस्टेबल राइफल संभाले खलीफा के पहलू में बैठ गया। खलीफा ने इस बार 'पिदर सोख्ता' कह कर एक ही गाली से गाड़ी स्टार्ट कर दी। कोई बहुत पढ़ा-लिखा या प्रतिष्ठित आदमी पास बैठा हो तो वो गाड़ी को फारसी में गाली देता था। गाली देते समय उसके चेहरे पर ऐसा भाव आता कि गाली का अर्थ चित्रित होकर सामने आ जाता था। थाने वालों ने एक गैस की लालटेन साथ कर दी ताकि अंधेरे में प्लाट पर माल उतरवाने में आसानी रहे। गाड़ी के पिछले हिस्से में लकड़ी के तख्तों पर लालटेन हाथ में लिए बिशारत बैठ गये। झटकों से मेंटल झड़ जाने के डर से उन्होंने लालटेन हाथ में उठा रखी थी। खलीफा ऐसा बन रहा था जैसे गाड़ी हमेशा ही आहिस्ता चलाता है। कांस्टेबल ने झुंझलाते हुए उसे दो बार डांटा 'अबे ट्रक चला रहा है या अपनी बीबी के जनाजे का जुलूस निकाल रहा है!' बिशारत की आंखें नींद से बंद हो चली थीं, मगर शहर की सड़कें जाग रही थीं। सिनेमा का अंतिम शो अभी समाप्त हुआ ही था। पैलेस सिनेमा के पास बिजली के खंबे के नीचे एक जवान अर्धनग्न पागल स्त्री अपने बच्चे को दूध पिला रही थी, बच्चे की आंखें दुखने आई हुई थीं और सूजन और चीपड़ों से बिल्कुल बंद हो चुकी थीं। नंगी जतियों पर बच्चे ने दूध डाल दिया था जिस पर मक्खियों ने छावनी छा रखी थी। हर गुजरने वाला उन हिस्सों को जो मक्खियों से बच रहे थे न केवल गौर से देखता बल्कि मुड़-मुड़ के ऐसी नजरों से घूरता चला जाता कि यह फैसला करना कठिन था कि दरअस्ल भिखारी कौन है? पास ही एल्युमीनियम के बिना धुले पियाले में मुंह डाले एक कुत्ता उसे जबान से चाट-चाट कर साफ कर रहा था। उससे जरा दूर एक सात-आठ साल का लड़का अभी तक मोतिया के गजरे बेच रहा था। उन्होंने तरस खा कर एक गजरा खरीद लिया और कांस्टेबल को दे दिया। उसने उसे राइफल की नाल पर लपेट लिया। बिशारत सर झुकाये, विचारों में खोये प्लाट पर पहुंचे तो एक बजा होगा। उन्होंने लालटेन गाड़ी के बोनट पर रख दी और उसकी रोशनी में वो लकड़ी, जो चोरों से बच गयी थी, अपने हाथों से थानेदार के प्लाट पर डाल आये।

तोते की भविष्यवाणी

ढाई बजे रात को जब वो घर पहुंचे तो निर्णय ले चुके थे कि इस ऑटोमेटिक छकड़े को औने-पौने ठिकाने लगा देंगे। घर, घोड़े, घरवाली, सवारी और अंगूठी के पत्थर के सिलसिले में वो शुभ और अशुभ के कायल थे, उन्हें याद आया कि 1953 में मोटर साइकिल-रिक्शा की दुर्घटना में घायल होने के पश्चात जब वो नगर-पालिका के सामने बैठने वाले एक ज्योतिषी के पास गये तो उसने अपने सधाये हुए तोते से एक लिफाफा निकलवा कर भविष्यवाणी की थी कि तुम्हारे भाग्य में एक पत्नी और तीन हज हैं। संख्या क्रम इसके विपरीत होता तो क्या ही अच्छा होता, उन्होंने दिल में कहा। वैसे भी हज जीवन में एक ही बार अनिवार्य है। पुण्य लूटने के मामले में वो लालची बिल्कुल नहीं थे। ज्योतिषी ने कुंडली बना कर और हाथ की लकीरें मैग्निफाइंग ग्लास से देख कर कहा कि दो, तीन और चार पहियों वाली गाड़ियां तुम्हारे लिए अशुभ रहेंगी। यह बात वो कुंडली और मैग्निफाइंग ग्लास के बिना सिर्फ उनके हाथ और गर्दन पर बंधी हुई पट्टियां देख कर भी कह सकता था। बहरहाल, अब वो इस नतीजे पर पहुंचे कि जब तक एक या पांच पहिये की गाड़ी का आविष्कार न हो, उन्हें अपनी टांगों पर ही गुजारा करना पड़ेगा। ऐसा

लगता था कि इस गाड़ी को खरीदने का उद्देश्य लकड़ी को चोरों और एस.एच.ओ. तक सुरक्षा-पूर्वक पहुंचाना था जो खुदा के करम से बिना देरी और रुकावट के पूरा हो चुका था।

बंगाल टाइगर गया , बब्बर शेर आ गया

सुब्ह जब उन्होंने खलीफा को सूचित किया कि अब वो उसकी सेवाओं से लाभान्वित होने योग्य नहीं रहे तो वो बहुत रोया गाया। पहले तो कहा मैं गाड़ी को अकेला छोड़ कर कैसे जाऊं? फिर कहने लगा, कहां जाऊं? बाद में उसने मालिक और नौकर के अटूट रिश्ते और नमक खाने के नतीजों पर भाषण दिया। जिसका सार यह था कि उसे अपनी गलती का अहसास है और जो भारी नुकसान उनको पहुंचा है, उसकी भरपाई वो इस तरह करना चाहेगा कि साल भर में उनकी हजामत की जो रकम बनती है, उसमें से वो लकड़ी की रकम काट लें। इस पर वो चीखे, 'खलीफे! तू समझता है कि मैं साढ़े-तीन हजार सालाना की हजामत बनवाता हूं?' खलीफा ने दोबारा अपनी गलती को खुले दिल से स्वीकार किया और साथ ही गाड़ी को मोबाइल हेयर कटिंग सैलून बनाने का मूर्खतापूर्ण प्रस्ताव पेश किया, जो उतने ही अपमान के साथ रद्द कर दिया गया। तंग आ कर उसने यहां तक कहा कि वो तमाम उम्र - यानी गाड़ी की या उसकी अपनी स्वाभाविक उम्र तक, जो भी पहले दगा दे जाये, बिल्कुल मुफ्त ड्राइवरी करने के लिए तैयार है, अर्थात जो नुकसान पहले तन्ख्वाह लेकर पहुंचाता था वो अब बिना तन्ख्वाह लिए पहुंचायेगा। गर्ज कि खलीफा देर तक इसी प्रकार के प्रस्तावों से उनके जख्मों पर फिटकरी छिड़कता रहा।

वो किसी तरह न माने तो खलीफा ने हथियार डाल दिये, मगर उस्तरा उठा लिया। मतलब यह कि अंतिम इच्छा यह प्रकट की कि इस संबंध-विच्छेद के बावजूद, उसे कम-से-कम हजामत के लिए तो आने की इजाजत दी जाये जो बिशारत ने सिर्फ इस शर्त पर दी कि अगर मैं आइंदा कोई सवारी, किसी भी प्रकार की सवारी रखूं तो हरामखोर उसे तुम नहीं चलाओगे।

कुछ दिन बाद खलीफा यह खबर देने आया कि साहब जी! यूं ही मेरे दिल में उचंग हुई कि जरा थानेदार साहब बहादुर के प्लाट की ओर होता चलूं। मैं तो देख के भौंचक्का रह गया। क्या देखता हूं कि अपनी रिश्वत में दी हुई लकड़ी के पास अपनी चोरी-शुदा लकड़ी पड़ी है! हमारा माल एक शेर दूसरे शेर के मुंह में से निकाल कर डकार गया। हमें क्या अंतर पड़ता है कि धारीदार शेर (Bengal Tiger) चला गया और बब्बर शेर आ गया। मेरा यकीन नहीं तो खुद जा के देख लीजिये।

खलीफा हंसने लगा उसे अपनी ही बात पर बेमौका, बेअख्तियार और लगातार हंसने की बुरी आदत थी। सांस टूट जाता तो जरा दम लेके फिर से हंसना शुरू कर देता। वो हंसी अलापता था। दम लेने के अंतराल में आंख मारता जाता। सामने का एक दांत टूटा हुआ था। इस समय वो अपनी हंसी को रोकने की कोशिश कर रहा था और बिल्कुल क्लाउन मालूम हो रहा था।

यह ट्रक बिकाऊ है

गाड़ी एक महीने तक बेकार खड़ी रही। किसी ने झूठों भी दाम न लगाये। उपहास और अपमान के पहलू से बचने की खातिर हमने उसे गाड़ी कहा है। बिशारत बेहद भावुक हो गये थे। कोई इसे कार कहता तो उन्हें लगता कि व्यंग्य कर रहा है और ट्रक कहता तो उसमें अपमान का पहलू नजर आता। वो स्वयं Vehicle कहने लगे थे। वो मायूस हो गये थे कि अचानक एक-एक दिन के गैप से इकट्ठी तीन 'ऑफर्ज' आ गयीं। पड़ोस में सीमेंट डिपो के मालिक ने उस तिरपाल के, जो कभी गाड़ी पर चढ़ा रहता था, तेरह रुपये लगाये, जबकि एक गधा गाड़ी वाले ने बारह रुपये के बदले चारों पहिये निकाल कर ले जाने की ऑफर दी। उन्होंने उस जाहिल को बुरी तरह लताड़ा कि यह भी एक ही रही। तेरा खयाल है कि यह गाड़ी पहियों के बिना भी चल सकती है! उसने जवाब दिया, 'साईं! यह पहियों के होते हुए कौन-सी चल रही है!' रकम के लिहाज से तीसरी ऑफर सब से अच्छी थी। यह एक ऐसे व्यक्ति ने दी जो हुलिए के लिहाज से स्मगलर लगता था। उसने गाड़ी की नंबर प्लेट के दो सौ रुपये लगाये।

इन अपमानजनक आफर्ज के बाद बिशारत ने गाड़ी पर तिरपाल चढ़ा दिया और तौबा की कि आइंदा कभी कार नहीं खरीदेंगे। आगे चल कर आर्थिक स्थिति और तबीयत का चुलबुलापन वापस लौटा तो इस तौबा में इतना संशोधन कर लिया कि आगे किसी स्वर्गवासी गोरे की गाड़ी नहीं खरीदेंगे, चाहे उसकी विधवा मेम कितनी ही खूबसूरत क्यों न हो। मिर्जा ने सलाह दी कि अगर तुम्हारी किसी से दुश्मनी है तो गाड़ी उसे उपहार में दे दो। बिशारत ने कहा 'पेश है' कुछ रोज बाद उन्होंने तिरपाल उतार दिया और एक गत्ते पर 'बिक्री के लिए' लिख कर गाड़ी पर टांग दिया। दो-तीन दिन में गाड़ी और गत्ते पर गर्द और आरा मशीन से उड़ते हुए बुरादे की मोटी परतें चढ़ गयीं। मौलाना करामत हुसैन ने जो अब फर्म के मैनेजर कहलाते थे, विंड स्क्रीन की गर्द पर उंगली से Vehicle और 'यह ट्रक बिकाऊ है' लिख दिया, जो दूर से नजर आता था। रोज दोपहर की नमाज को जाते तो वजू के बाद अक्षरों पर गीली उंगली फेर कर उन्हें रोशन कर देते। नमाज के बाद मस्जिद से आ कर गाड़ी पर फूंक मारते। कहते थे कि ऐसा जलाली वजीफा पढ़ रहा हूं कि जिस चीज पर भी फूंक मार दी जाये वो या तो चालीस दिन के अंदर-अंदर बिक जायेगी, वरना वजीफा पढ़ने वाला खुद अंधा हो जायेगा। दिन में तीन-चार बार अपनी आंखों के सामने हाथ की कभी दो, कभी तीन या चार उंगलियां दायें-बायें घुमाते, यह देखने के लिए कि रोशनी जाती तो नहीं रही। वजीफे के बाद मस्जिद से दुकान तक रास्ते भर जलाली फूंक को अपने मुंह में बड़ी एहतियात से कैद रखते कि 'लीक' हो कर गलती से किसी और चीज पर न पड़ जाये।

>>पीछे>> >>आगे>>

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

उपन्यास

खोया पानी

मुश्ताक़ अहमद यूसुफ़ी

अनुवाद - तुफ़ैल चतुर्वेदी

अनुक्रम हाजी औरंगजेब खान इमारती लकड़ी के सौदागर और आढ़ती पीछे

पतला शोरबा और सूजी का हलवा

अभी मौलाना करामत हुसैन के वजीफे को चालीस दिन भी नहीं हुए थे कि बिशारत एक और समस्या में उलझ गये जो कुछ इस तरह थी कि हाजी औरंगजेब खान, इमारती लकड़ी के सौदागर और आढ़ती - पेशावर वाले उनसे रकम वसूल करने आ धमके। उन्होंने कोई एक साल पहले बढ़िया किस्म की लकड़ी पंजाब के एक आढ़ती की मार्फत बिशारत को सप्लाई की थी, यह दागदार निकली। जब यह साल भर तक नहीं बिकी तो बिशारत ने घाटे से सात हजार में बेच दी। यह वही लकड़ी थी जिसकी चोरी, दोबारा-प्राप्ति और खराबी का हाल हम पिछले पृष्ठों में बयान कर चुके हैं। बिशारत का कहना था कि मैंने यह लकड़ी सात हजार में घाटे से बेची। खान साहब कहते थे कि आपकी आधी लकड़ी तो चोर ले गये आधी पुलिस वाले ने हथिया ली। आप इसे बेचना कहते हैं, इसके लिए तो पश्तो में बहुत बुरा लफ्ज है।

बिशारत के अनुमानानुसार लकड़ी की मालियत किसी प्रकार सात हजार से अधिक नहीं थी, उधर हाजी औरंगजेब खां उसूली तौर पर एक पाई भी छोड़ने के लिए तैयार न थे। जिसका मतलब यह था कि बिशारत बाकी रकम, यानी 2573.9.3 रुपये अपनी जेब से भरें (यह रकम आज के दो लाख रुपये के बराबर थी। खान साहब कहते थे कि आपने माल बेचने में शैतानी जल्दी दिखाई। जल्दी का काम शैतान का, सेठ! यह लकड़ी थी, बालिग लड़की तो नहीं, जिसकी जल्द-से-जल्द विदाई पुण्य कार्य हो।

एक मुद्दत से इस रकम के बारे में पत्र-व्यवहार चल रहा था। एक दिन खान साहब के दिल में न जाने क्या आई कि कानूनी नोटिस की रजिस्ट्री करायी। पेशावर जनरल पोस्ट ऑफिस से सीधे घर आये। सामान बांधा और नोटिस से पहले खुद पहुंच गये। नोटिस उनके आने के तीन दिन बाद उनकी उपस्थिति में इस प्रकार प्राप्त हुआ कि रजिस्ट्री स्वयं उन्होंने डाकिये के हाथ से छीन कर खोली, नोटिस निकाल कर फाड़ दिया और लिफाफा बिशारत को थमा दिया। ठहरे भी उन्हीं के घर पर। उस जमाने में नियम था कि आढ़ती या थोक व्यापारी आये तो उसे घर पर ही ठहराया जाता था। यूं भी बिशारत की खान साहब से खूब बनती थी। बिशारत खान साहब की मुहब्बत और आवभगत पर जान छिड़कते थे और खान साहब उनकी लच्छेदार बातों पर फिदा थे।

दिन भर एक-दूसरे के साथ झांय-झांय करने के बाद शाम को खान साहब बिशारत के साथ उनके घर चले जाते। यहां उनकी इस तरह खातिर होती जैसे दिन में कुछ हुआ ही नहीं। घर वाले उनकी आवभगत करते-करते तंग आ चुके थे। इसके बावजूद खान साहब को शिकायत थी कि यहां पतले शोरबे का सालन खा-खा कर मेरी नजर कमजोर हो गयी है। थोड़ा लंगड़ा के चलने लगे थे, कहते थे, घुटनों में शोरबा उतर आया है। रात के खाने के बाद सूजी का हलवा जुरूर मांगते, कहते थे हलवा न खाऊं तो बुजुर्गों की आत्मायें सपने में आ-आ कर डांटती हैं। प्रायः उन पूरी रानों को याद करके आहें भरते जो उनके दस्तरख्वान की शोभा हुआ करती थीं। उनका पेट ऊंची नस्ल के बकरों, मेढ़ों का कब्रिस्तान था, जिसके वो मुजाविर (झाड़ू देने वाला) थे। बिशारत ने दोपहर को उनके लिए फ्रंटियर होटल से रान और चिपली कबाब मंगवाने शुरू किये। मिर्जा ने कई बार कहा कि इससे तो बेहतर है कि 2573.9.3 रुपये देकर अपना पिंड छुड़ाओ, यह फिर भी सस्ता पड़ेगा। मगर बिशारत कहते थे कि सवाल रुपये का नहीं उसूल का है, खान साहब भी इसे अपने स्वाभिमान और उसूल की समस्या बनाए हुए थे।

पीर-फकीर जिस एकाग्रता से ध्यान और साधना करते हैं, खान साहब इससे अधिक एकाग्रता और तन्मयता भोजन में दिखाते थे। अक्सर कहते थे कि नमाज, नींद, खाने और गाली देने के बीच कोई दख्ल दे तो उसे गोली मार दूंगा। किसी अजनबी या दुश्मन या अविश्वसनीय मित्र से मिलने जाते तो गले में 38 बोर का रिवाल्वर डाल लेते। मशहूर था कि हज के समय काबे की परिक्रमा के दौरान भी रिवाल्वर अहराम (उस समय पहने जाने वाली चादर) में छुपा रखा था। खुदा ही बेहतर जानता है, हमें तो पता नहीं। दस सेर सूजी बतौर उपहार साथ लाये थे, उसी का हलवा बनवा-बनवा कर खा रहे थे। बिशारत रोज सूजी की बोरी देखते और दहल जाते, इसलिए कि अभी तो इसके समाप्त होने में बहुत देर थी। खान साहब कहते थे कि अगली बार मर्दान शुगर मिल्ज से ताजा गुड़ की बोरी लाऊंगा, सफेद चीनी खाने से खून पतला पड़ जाता है। एक दिन बिशारत ने घबरा के बातों-बातों में टोह लेनी चाही। पूछा, 'खान साहब! गुड़ से क्या-क्या बनता है?' सूजी के हलवे का गोला हल्क में फिसलाते हुए बोले, 'भाभी से पूछ लेना। इस वक्त दिमाग हाजिर नहीं। बात यह है कि घाटे, झगड़े और गुड़ से - और रोजे से भी हमारे दिमाग को एकदम गर्मी चढ़ जाता है। हम रमजान में सिर्फ हाथापाई करता है, क्योंकि रोजे में गाली देना मना है।'

टांगे और पाये

खान साहब अपने दस्तरख्वान और आवभगत का क्या कहना। बिशारत को पेशावर में उनके यहां मेहमान रहने का मौका मिला था। हर खाने पर बकरी या दुंबे की पूरी रान सामने रख देते। नाश्ते और चाय पर अलबत्ता मुर्गी की टांग से गुजारा करते। उनके दस्तरख्वान पर रान और टांग के सिवा किसी और हिस्से का गोश्त नहीं देखा न कभी सब्जी या मछली देखी। इसका कारण यही समझ में आता था कि बैंगन और मछली के टांगें नहीं होतीं। यह कहना तो मुश्किल है कि पेरिस के Folies bugere और Lido की कोरस गर्ल्ज का legs show देख कर खान साहब पश्तो में क्या फर्माते, लेकिन इतना हम विश्वास से कह सकते हैं कि उन्हें ऐसी टांगों से कोई दिलचस्पी नहीं थी, जिन्हें रोस्ट करके वो खा और खिला न सकें।

टांग का गोश्त रुचिकर होने के बावजूद खान साहब को बोंग की नहारी और शिरी पायों से सख्त चिढ़ थी। एक बार कहने लगे, मुझसे तो जानवरों के गंदे, गोबर में बसे हुए खुरों का शोरबा नहीं खाया जाता। हमारे फ्रंटियर में तो कोई बुड्ढा किसी कच्ची उम्र की कुंवारी से शादी कर ले तो हकीम और पड़ौसी उसे ऐसा ही गर्म पदार्थ खिलाते हैं।

इससे वो आंतों की बीमारी का शिकार हो कर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। सुना है विलायत में तो खुरों से सालन के बजाय सरेश बनाते हैं। आप भी कमाल करते हैं! बकरी के पाये, भेड़ के पाये, दुंबे के पाये, भैंस के पाये, मेरे विचार में तो चारपायी के पाये आप महज इसलिए छोड़ देते हैं कि वो साफ होते हैं।

पिछली शताब्दी का स्टैच्यू

खान साहब सुंदर और भारी भरकम आदमी थे, उनकी बेकार बात में भी वज्न महसूस होता था। कद लगभग साढ़े छः फुट, जिसे टोपी और पगड़ी से साढ़े सात फुट बना रखा था। मगर आठ फुट के लगते थे और यही समझ कर बात करते थे। स्वास्थ्य और काठी इतनी अच्छी कि उम्र कुछ भी हो सकती थी। शरीर का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि हत्थेवाली कुर्सी पर जैसे तैसे ठुंस कर बैठ तो जाते, लेकिन जब उठते तो कुर्सी भी साथ उठती। सुनहरी मूंछें और हल्की-भूरी आंखें, बायें गाल पर घाव का निशान, जो अगर न होता तो चेहरा अधूरा दिखाई देता। तर्जनी दूसरे पोर से कटी हुई, किसी को चेतावनी देनी हो या आसमान को किसी समस्या में गवाह बनाना हो (जिसकी आवश्यकता दिन में कई बार पड़ती थी) तो ये अधकटी उंगली उठा कर बात करते। उनकी कटी उंगली भी हमारी पूरी उंगली से बड़ी थी। पास और दूर की नजर काफी कमजोर थी, परंतु जहां तक संभव हो ऐनक लगाने से बचते थे। सिर्फ चेक पर दस्तखत करने और गाली देने के बाद, जिसे गाली दी उसके चेहरे के इंप्रेशन देखने के लिए पास की ऐनक लगा लेते और उतारने से पहले जल्दी-जल्दी दूर की चीजें देखने की कोशिश करते। यह मालूमात उनकी दिन-भर की आवश्यकताओं के लिए काफी होती थी। आंखों में शरारत चमकती थी। खुल कर हंसते तो चेहरा अनारदाना हो जाता, चेहरे पर हंसी समाप्त होने के बाद उसकी अंदरुनी लहरों से पेट देर तक हिचकोले खाता रहता। जरी की टोपी पर पगड़ी का हाथ-भर ऊंचा कलफदार तुर्रा घायल अंगूठे की तरह सदा खड़ा ही रहता था। गहरा ब्राउन तुर्की कोट, 'तिल्ले' की पेशावरी चप्पल जिसमें हमारे दोनों पैर आगे-पीछे आ जायें। बेतहाशा घेर की सफेद शलवार। खान साहब एक बेहद रोबीले पिछली शताब्दी के आदमी दिखाई देते थे। कसीदे (प्रशंसा में लिखी गयी कविता) और स्टैच्यू के लिए यह आवश्यक है कि कम-से-कम डेढ़ गुना हो, लाइफ साइज न हो, खान साहब अपना स्टैच्यू आप थे।

वास्कट की जेब में जो सोने की घड़ी रखते थे उसकी जंजीर दो फुट लंबी अवश्य होगी, इसलिए कि वास्कट की एक जेब से दूसरी जेब की दूरी इतनी ही थी। जितनी देर में खान साहब की शलवार में कमरबंद डलता उतनी देर में आदमी आराम से टहल कर वापस आ सकता था। नर्वस स्टिम बेहद शक्तिशाली था। मामूली तकलीफ और बेआरामी का उनको अहसास ही नहीं होता था। एक बार धोबी ने उनकी मैली शलवार के नेफे से पेन्सिल के टुकड़े बरामद किये। खूब खाते थे और खाने के दौरान बातचीत से परहेज करते और पानी नहीं पीते थे कि ख्वामखाह जगह घेरता है। दाल को हिंदुवाना बुराई और सब्जी खाने को मवेशियों का अधिकार छीनने में गिनते थे। कड़ाही गोश्त का अर्थ सिर्फ यही नहीं होता था कि वो कड़ाही का गोश्त खायेंगे, बल्कि कड़ाही भर के खायेंगे। खैरियत गुजरी कि उस जमाने में बाल्टी गोश्त का रिवाज नहीं था वरना वो यकीनी तौर पर बाल्टी को कड़ाही से बेहतर समझते। तीतर, बटेर की हड्डियों, अंगूर, माल्टे और तरबूज के बीज थूकने को जनानी हरकतों में शुमार करते थे। अपनी शारीरिक स्थिति से स्वयं परेशान थे। घूमने-फिरने और चहलकदमी के शौकीन मगर इस शर्त पर कि हर चालीस कदम चलने के पश्चात सुस्ताने और कुछ पेट में डालने के लिए थोड़ा रुकेंगे ताकि ताजादम हो कर आगे बढ़ें यानी अगले चालीस कदम। माना कि खान साहब में इतनी फुर्ती और चलत-फिरत नहीं थी कि बढ़ कर शत्रु

पर आक्रमण कर सकें, मगर लड़ाई के दौरान अगर वो उस पर सिर्फ गिर पड़ते तो वो पानी न मांगता। हाथ-पांव मारे बिना वहीं दम घुट के ढेर हो जाता। यहां उगाही के लिए आते तो कारतूसों की पेटी नहीं बांधते थे, कहते थे कि इसके बिना ही काम चल जाता है। सीने और पेट पर पेटी के निशान से एक लकीर बन गयी थी जो धड़ को दो समानांतर त्रिकोणों में आड़ा विभाजित करती थी। कहते थे जहां पहाड़ी हवायें और बंदूक की आवाज न आये वहां मर्दों को नींद नहीं आती।

उनकी कटी हुई तर्जनी का किस्सा यह है कि उनका लड़कपन था। लड़कों में लेमोनेड की गोली वाली बोतल को उंगली से खोलने का मुकाबला हो रहा था। खान साहब ने उसकी गोली पर उंगली रख कर दूसरे हाथ से पूरी ताकत से मुक्का मारा, जिससे फौरन बोतल और हड्डी टूट गयी। बोतल की गर्दन उनकी उंगली में सगाई की अंगूठी की तरह फंस कर रह गयी, दो सप्ताह बाद कटवानी पड़ी। क्लोरोफार्म सूंघने को वो मर्दों की शान के खिलाफ समझते थे, इसलिए बिना क्लोरोफार्म के आपरेशन कराया। आपरेशन से पहले कहा कि मेरे मुंह पर कस के ढाटा बांध दो। अपने विचार में कोई बहुत ही बुद्धिमानी की बात करनी हो तो बात में वज्न पैदा करने के उद्देश्य से पहले अपनी ठुड्डी पर इस तरह हाथ फेरते मानो वहां टैगोर जैसी दाढ़ी है, जो उलझी हुई है और कंघे की मुहताज है। फिर कटी हुई तर्जनी आकाश की ओर उठाते और पढ़ने की ऐनक लगा कर बोलना शुरू करते। लेकिन गंभीर और पेचीदा वाक्य के बीच कोई शोख बात या चंचल फिकरा अचानक जहन में कौंध जाता तो उसे अदा करने से पहले आंख मारते और आंख मारने से पहले ऐनक उतार लेते, ताकि देखने वालों को साफ नजर आये।

उनकी हंसी की तस्वीर खींचना बहुत मुश्किल है। यूं लगता था जैसे वो बड़े जोर से एक लंबा कहकहा लगाना चाहते हैं, मगर किसी कारणवश उसे रोकने की कोशिश कर रहे हैं। परिणामस्वरूप उनके मुंह से बड़ी देर तक ऐसी आवाजें निकलती रहतीं जैसी बैटरी खलास होने के बाद कार को बार-बार स्टार्ट करने से निकलती हैं। हंसने से पहले आम-तौर पर अपनी वास्कट के बटन खोल देते थे। कहते थे, परदेस में रोज-रोज किस से बटन टंकवाऊं।

शादी एक ही की। एक जगह लग कर काम करते रहने के कायल थे। पत्नी ने तंग आ कर कई बार उनसे कहा कि दूसरी कर लो ताकि औरों को भी तो चांस मिले।

लंगड़े काकरोच से शेख शादी तक

आप चाहें तो खान साहब को अनपढ़ कह सकते हैं, मगर जाहिल बिल्कुल नहीं। रची-बसी तबियत, बला की सूझ-बूझ और नजर रखते थे, जो तुरंत बात की तह तक पहुंच जाती थी। सही अर्थों में सभ्य थे कि उन्होंने इंसान और जिंदगी को बरता था, किताब के distorting mirror और आर्ट के सजावटी फ्रेम में नहीं देखा था। खुद जिंदगी जो कुछ दिखाती, सिखाती और पढ़ाती है वो सीधा दिल पर अंकित होता है।

'नजीर' सीखे से इल्मे-रस्मी बशर की होती है चार आंखें

पढ़े से जिसके हो लाख आंखें वो इल्म दिल की किताब में है

खान साहब बरसों चैक पर अंगूठा लगाते रहे जिस दिन उनका बैंक बैलेंस एक लाख हो गया उन्होंने उर्दू में दस्तखत करने सीख लिए। कहते थे, अंगूठा लगा-लगा कर सूदखोर बैंकों से ओवर ड्राफ्ट लेने में तो कोई हरज

नहीं, पर हलाल की कमाई की रकम सोच-समझ कर निकालनी चाहिये। दस्तखत क्या थे, लगता था कोई लंगड़ा काकरोच दवात में नहा कर कागज पर से गुजर गया है। दस्तखत के दौरान उनका हाथ ऐसी तोड़ा-मरोड़ी से गुजरता और हर छोटा-बड़ा वृत्त बनाते समय उनके खुले हुए मुंह की गोलाई इस प्रकार घटती-बढ़ती कि एक ही दस्तखत के बाद उनके हाथ और देखने वाले की आंख में ऐंठन पड़ जाती। उस जमाने में खान साहब का एकाउंट मुस्लिम कमर्शियल बैंक में था, जहां उर्दू में दस्तखत करने वालों को स्टांप पेपर पर यह अपमानजनक जमानत देनी पड़ती थी कि अगर उनके एकाउंट में जाली दस्तखतों के कारण कोई फ्राड हो जाये तो बैंक जिम्मेदार न होगा, बल्कि यदि इसके नतीजे में बैंक को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में कोई हानि पहुंची तो उसे भी वही भरेंगे। खान साहब को जब इसका मलतब पश्तो में समझाया गया तो क्रोधित हो उठे। उर्दू बोलने वाले एकाउंटेंट से कहने लगे कि ऐसी बेहूदा शर्त मानने वाले के लिए पश्तो में बहुत बुरा शब्द है। हमारा दिल बहुत खफा है। बकते-झकते बैंक के अंग्रेज मैनेजर मिस्टर ए. मेक्लीन के पास विरोध करने गये। कहने लगे कि मेरे दस्तख्त इतने खराब हैं कि कोई पढ़ा-लिखा आदमी बना ही नहीं सकता। जब मैं स्वयं अपने दस्तखत इतनी मुसीबत से करता हूं तो दूसरा कैसे बना सकता है? आपके स्टाफ में दो दर्जन आदमी तो होंगे। सब-के-सब शक्ल से चोर, उचक्के और चौसरबाज लगते हैं। अगर इनमें से कोई मेरे दस्तखत बना कर दिखा दे तो तुरंत एक हजार इनाम दूंगा, फिर गोली से उड़ा दूंगा। मिस्टर मेक्लीन ने कहा कि मैं बैंक के नियम नहीं बदल सकता। ग्रैंडलेज बैंक में भी यही नियम हैं। हमने सारे फार्म उसी से नक्ल किये हैं। नक्ल क्या, मक्खी पे मक्खी मारी है, बल्कि इस फार्म पर तो प्रिंटर की लापरवाही से नाम भी ग्रैंडलेज बैंक का ही छपा है। खान! तुम वर्नाक्युलर की बजाय अंग्रेजी में दस्तखत करना सीख लो तो इस झमेले से अपने-आप मुक्ति मिल जायेगी। उसने अपने हुक्म में प्रार्थना का रंग भरने के लिए खान साहब की चाय और पेस्ट्री से खातिर भी की। इस आदेश के पालन के लिए खान साहब दो महीने तक अंग्रेजी दस्तखतों का अभ्यास करते रहे। जब हाथ रवां और पक्का हो गया तो चिक उठा कर सीधे मिस्टर मेक्लीन के कमरे में प्रवेश किया और रू-ब-रू दस्तखत करके दिखाये। वो इस तरह कि पहले हाथ ऊंचा करके चार-पांच बार हवा में दस्तखत किये और फिर एकदम कलम कागज पर रख कर फर्राटे से दस्तखत कर दिये। उसने तुरंत एक स्लिप पर एकाउंटेंट को आदेश दिया कि उनकी इंडेम्निटी रद्द समझी जाये। मैं उनके अंग्रेजी दस्तखत की जो उन्होंने मेरी उपस्थित में इस कार्ड पर किये हैं, पुष्टि करता हूं।

हुआ सिर्फ इतना था कि खान साहब ने इन दो महीनों में उर्दू दस्तखत को दायें से बायें करने के बजाय बायें से दायें करने का अभ्यास किया और निपुणता प्राप्त कर ली। इस दौरान नुक्ते और मर्कज गायब हो गये। मिस्टर मेक्लीन के सामने उन्होंने यही दस्तखत बायें से दायें किये और सारी उम्र इसी अंग्रेजी शैली पर चलते रहे। चेक और कारोबारी कागजों पर इसी प्रकार दस्तखत करते। परंतु यदि किसी दोस्त रिश्तेदार को चिट्ठी लिखवाते या कोई हलफनामा दाखिल करते, जिसमें सच बोलना आवश्यक हो, तो आखिर में उर्दू में दस्तखत करते। मतलब यह कि कलम दायें से बायें चलता। खान साहब दस्तखत करने की कला में अब इतनी निपुणता प्राप्त कर चुके थे कि अगर जापानी में दस्तखत करने के लिए कहा जाता तो वो इसी लेटे हुए काक्रोच को मूंछें पकड़ के सर के बल खड़ा कर देते।

खान साहब को कभी बहस जल्दी निपटानी होती या विरोधी और संबोधित को महज बोझों मारना होता तो कहते, शेख सादी ने फरमाया है कि... उन्होंने अपने समस्त स्वर्णिम तथा अस्वर्णिम वचन शेख सादी के पक्ष में त्याग दिये थे। हमें विश्वास है कि शेख सादी भी यदि इन वचनों को सुन लेते तो वो स्वयं भी त्याग देते।

बात कितनी ही असंबद्ध और छोटी-सी हो, खान साहब उसके पक्ष में बड़े-से-बड़ा नुक्सान उठाने के लिए तैयार रहते थे। नजरअंदाज करने और समझौते को उन्होंने हमेशा मर्दानगी के विरुद्ध समझा। अक्सर कहते कि जो व्यक्ति खून-खराबा होने से पहले ही समझौता कर ले, उसके लिए पश्तो में बहुत बुरा शब्द है। इस समस्या के बाद बिशारत को एक बार बन्नू में उनके पुश्तैनी मकान में ठहरने का संयोग हुआ, देखा कि खान साहब किसी घमासान की बहस में जीत जाते या किसी प्रिय घटना पर बहुत खुश होते तो तुरंत बाहर जा कर घोड़े पर चढ़ जाते और अपने किसी दुश्मन के घर का चक्कर लगा कर वापस आ जाते। फिर नौकर से अपने सर पर एक लोटा ठंडे पानी का डलवाते कि अहंकार अल्लाह को पसंद नहीं।

खान साहब ने अपने हाल पर मगरमच्छ के आंसू बहाये

खान साहब दिन में दो-तीन बार बिशारत को यह धमकी जुरूर देते कि 'एक पाई भी नहीं छोड़ूंगा, चाहे मुझे एक साल तुम्हारे यहां मेहमान रहना पड़े' अक्सर यह भी कान में डालते रहते कि कबाइली शिष्टाचार में अतिथि सत्कार के तकाजे कुछ और हैं। अगर आप अतिथि से यह पूछ बैठें कि तुम कब जाओगे और इस पर वो आपका खून न कर दे तो उसकी शराफत, गैरत और वल्दियत में संदेह होगा।

सुब्ह से शाम तक दोनों बारहसिंघे आपस में सींग फंसाये फुंकार मारते। अच्छे संबंधों का वास्ता, व्यापार की रीत-रस्म, रहम की अपील और एक-दूसरे से जुल्म और धांधली से बाज रहने की वार्निंग के अतिरिक्त कोई ओछा हथियार न था जो इस झगड़े में खुल कर इस्तेमाल न किया गया हो। उदाहरण के तौर पर खान साहब अपने अनपढ़ होने की दुहाई देते। उत्तर में बिशारत स्वयं को सीख लेने वाली दृष्टि से दिखाते कि शाइर हूं, बी.ए. हूं, फारसी पढ़ी है और लकड़ी बेच रहा हूं! खान साहब अपने बिजनेस में घाटे की बात करते, तो बिशारत कहते, अरे साहब! यहां तो सिरे से बिजनेस है ही नहीं, गिरह का खा रहे हैं। बिशारत तो खैर विधवा मेम के साथ अपनी फर्जी दरिद्रता और बहुसंतान की रिहर्सल कर चुके थे। लेकिन खान साहब भी आवश्यकता पड़ने पर अपने हाल पर मगरमच्छ के आंसू बहा सकते थे। एक दिन तो उनकी अदाकारी इतनी संपूर्ण थी कि सीधी आंख से एक सचमुच का आंसू श्रीलंका के नक्शे की भांति लटक रहा था। साइज भी वही। एक बार खान साहब ने अपनी फर्जी बेचारगी का तुरुप फेंका कि मेरे हिस्से की जमीनों पर चचा ने चौथाई शताब्दी से कब्जा कर रखा है। बिशारत ने इसको इस प्रकार काटा कि अपने पेट के अल्सर पर हाथ रख कर कहा कि वो इतनी ही मुद्दत से पेट की बीमारी से पीड़ित हैं। खाना नहीं पचता, पेट में दवा और हवा तक नहीं ठहरती। खान साहब बोले, 'ओ हो। पच्चीस बरस से पेट खराब है, आप तो पोतड़ों के मरीज निकले।' वैसे इन चोंचों में आम-तौर पर बिशारत ही का पल्ला भारी रहता, लेकिन एक दिन जब खान साहब ने आधी आंसू-भरी आंख (आधी इसलिए कि दूसरी आंख मुस्करा रही थी) से यह कहा कि मेरे तो पिता का भी देहांत हो चुका है तो बिशारत को अपने आदरणीय पर बहुत गुस्सा आया कि उन्हें भी इसी समय जीना था।

शब्दों के युद्ध में विजय किसी की भी

हो, शहादत सिर्फ सच्चाई की होती है

खान साहब किसी प्रकार रकम छोड़ने के लिए तैयार न थे। बिशारत ने तंग आकर यहां तक कहा कि कौन सही है, कौन गलत, इसे भूल जाइये, यह देखिये कि आपका हमारा व्यापार, व्यवहार आगे भी रहेगा, फिर कभी कसर निकाल लीजियेगा। खुदा न करे, यह आखिरी सौदा तो है नहीं। इस पर खान साहब बोले कि खान संग मर्जान खान ने मुझे नसीहत दी थी कि दोस्त से मिलो तो ऐसे मिलो जैसे आखिरी मुलाकात है। अब के बिछड़े फिर नहीं मिलेंगे और किसी से सौदा करो तो यह समझ के करो कि आखिरी सौदा है, दोबारा यह 'दल्ला' नहीं आने का। शेख सादी कहते हैं कि बावले से बावला कुत्ता भी यह उम्मीद नहीं रख सकता कि जिसे उसने काटा है वो खुद को फिर कटवाने के लिए दोबारा-तिबारा आयेगा।

एक बार बिशारत का स्वर कुछ कटु हो गया और उन्होंने बार-बार 'खान साहब! खान साहब' कहकर ताना दिया तो कहने लगे, 'देखो सेठ। गाली-गुफ्तार करनी है तो मुझे 'खान साहब' मत कहो, 'हाजी साहब' कहके गाली दो ताकि मुझे और तुम्हें दोनों को कुछ तो शर्म आये।

बिशारत ने उनके गले में बांहें डाल कर माथा चूम लिया।

अरबपति और कराची की पांच सौगातें

डूबी हुई रकमों की वसूली के सिलसिले में कराची के फेरों ने खान साहब को बहुभाषी बना दिया था। हमारा मतलब है - उर्दू, फारसी और गुजराती के अलावा चारों क्षेत्रीय भाषाओं में रवानी से गाली दे सकते थे। गाली की हद तक अपने शिकार का सम्मान उसकी मातृ-भाषा में बढ़ाते थे। अगर कहीं तंगी या झोल महसूस करते या संबोधित जियादा ही बेशर्म होता तो अंत में उसके ताबूत में पश्तो की ऐसी कील ठोकते कि कई पुश्तों के आर-पार हो जाती। इसमें शक नहीं कि जैसी कोक शास्त्रीय गालियां हमारे यहां प्रचलित हैं, उनके सामने अंग्रेजी और अन्य भाषाओं की गालियां फूलों की छड़ियां और बच्चों की गांउ-गांउ प्रतीत होती है जिससे कच्चे दूध की गंध आती है। आर.के. नारायण के नॉवल इंग्लैंड और अमरीका के पाठकों के लिए जो विशेष आकर्षण रखते हैं उसमें उन देसी गालियों का भी योगदान है, जिनका वो अंग्रेजी में शाब्दिक अनुवाद करके संवाद में बारूदी सुरंगें बिछाता चला जाता है। हमारी गालियों में जो अनोखापन, जोर आजमाइश, भौगोलिक-चित्रण, कामेच्छा कूट-कूट कर बल्कि साबुत-संपूर्ण भरी है, उसका सही-सही अनुमान हमें 1975 में दुबई में हुआ। वहां के गल्लादारी बंधुओं की गिनती अरब-अमीरात और मध्य-पूर्व के अरब-पतियों में होती थी। बल्कि यह कहना चाहिये कि अत्यंत अमीर अरब-पतियों में होती थी, क्योंकि अरब-पति तो वहां सभी होते हैं। अब्दुल वहाब गल्लादारी और अब्दुल लतीफ गल्लादारी जो अरब हैं और जिनकी मातृ-भाषा अरबी है, बेहतर शिक्षा और बदतर प्रशिक्षण के सिलसिले में कुछ अर्सा कराची रह चुके हैं। हमारे आश्चर्य की सीमा न रही जब हमने देखा कि वो किसी से खफा होते हैं, या किसी अरब से उनका झगड़ा होता है और कोई अरब ऐसा नहीं, जिससे उनका झगड़ा न हुआ हो तो अरबी बोलते-बोलते उर्दू में गाली देने लगते हैं, जो अरबी के पवित्र प्रकरण में और भी गलीज लगती है। अब्दुल लतीफ गल्लादारी का कहना है कि कराची की पांच चीजों का कम-से-कम इस दुनिया में तो जवाब नहीं। जड़ाऊ जेवरात, कव्वाली, बिरयानी, गाली और इत्र। 1983 में जब उनके बैंक और बिजनेस का दीवाला निकला तो जेवर, कव्वाली, बिरयानी और इत्र तो दुश्मनों के हिस्से में आ गये, अब सिर्फ पांचवीं चीज पर गुजारा है और यह दौलत समाप्त होने वाली नहीं, जितनी देते हैं, लोग उसकी सात-गुनी लौटा देते हैं।

कबाब परांठे और बड़ा शत्रु -वर्ग

खान साहब छल-कपट से दूर, मिलनसार और मुहब्बत वाले आदमी थे। बहस में कितनी ही गर्मा-गर्मी हो जाये, दिल में जरा मैल नहीं रखते थे। मजाक-मजाक में दोस्तों को छेड़ने और गुस्सा दिलाने में उन्हें बड़ा मजा आता। नाश्ते में तीन तरतराते परांठे और शामी कबाब खाने और लस्सी के दो गिलास पीने के बाद दिन-भर तंद्रा की स्थिति में अधखुली आंखों से दुनिया और दुनिया वालों को देखते रहते। यह कहना गलत न होगा कि पलकों को महज आंखें ढकने के लिए इस्तेमाल करते और कठहुज्जती का जवाब जम्हाई और डकार से देते। ऐसे बेहोशी लाने वाले नाश्ते के बाद आदमी एब्स्ट्रेक्ट पेंटिंग कर सकता है, 'स्ट्रीम आफ कान्शियसनेस' वाला नॉवल लिख सकता है, सरकार की पंचवर्षीय योजना बना सकता है, परंतु दिमागी काम नहीं कर सकता। न ढंग से बहसा-बहसी कर सकता है। खान साहब को दूसरे दिन यह याद नहीं रहता था कि कल क्या कहा था, इसलिए नये सिरे से हुज्जत आरंभ करते, जैसे इससे पहले इस समस्या पर कभी बात नहीं हुई। फैज के मिसरे में 'उल्फत' के बजाय हुज्जत जड़ दें तो उनके वारदात करने के ढंग पर एकदम पूरा उतरता है।

वो जब मिले हैं तो उनसे हर बार

की है 'हुज्जत' नये सिरे से

किसी से जियादा देर खफा नहीं रह सकते थे, शाइरी से नफरत के बावजूद अक्सर यह शेर पढ़ते परंतु कुछ शब्दों को इतना खींच या सिकोड़ कर पढ़ते कि मिसरा वज्न और बह्र से खारिज (बाहर) हो कर गद्य बन जाता :

इंसान को इंसान से कीना नहीं अच्छा

जिस सीने में कीना हो वो सीना नहीं अच्छा

और इस पर फर्माते कि मुसलमान से कीना रखना उस पर जुल्म है। इससे तो बेहतर है कि उसे कत्ल कर दिया जाये। यह भी गर्व से फर्माते कि हम तो आजाद कबाइली आदमी हैं, उर्दू तो हमने डूबी हुई 'रकमों' की वसूली के लिए व्यापारियों से लड़ाई-दंगे के दौरान सीख ली। नतीजा यह कि उनका सारा शब्दकोश शांति की स्थिति में बिल्कुल निकम्मा और नाकारा हो जाता था। राणा सांगा के शरीर की भांति उनकी लड़ाका उर्दू पर भी 72 घावों के चिह्न थे। उनकी उर्दू का विश्लेषण करने से पता चलता था कि कहां-कहां के और किस-किस राज्य के आदमी ने रकम दबायी है। उनकी जुबान से गुजराती, हैदराबादी और दिल्ली की करखंदारी जुबान के ठेठ शब्द सुन कर अनुमान होता था कि उनकी बहस और झगड़े के डांडे कहां-कहां मिलते हैं।

लोक लहजा

खान साहब की बातचीत और झगड़े की भाषा पर तो खैर रुपया लेकर न देने वालों की छाप थी, लेकिन बोलते अपने ही खरे, खनकते पश्तून स्वर में थे जो कानों को भला लगता था। इसके मुकाबले में बिशारत को अपना स्वर बिल्कुल सपाट और बेनमक लगता। पश्तून उर्दू स्वर में एक नर्म-सा संकोच और तेज-ओ-ताजा महक है जो किसी

भारी-भरकम और द्विअर्थी बात को स्वीकार नहीं करती। यह कौंधता-ललकारता स्वर संदेहास्पद सरगोशियों का लहजा नहीं हो सकता, इसी तरह पंजाबी उर्दू में एक खुलापन, गर्मजोशी और घुलावट की अनुभूति होती है। उसमें मैदानी दरियाओं का पाट, धीरज और दिल-दरिया पार गमक है और सहज-सहज रास्ता बनाने के लिए अपनी लहरी कगार काट पर पूरा विश्वास। बिलूच स्वर में एक हूक-सी, एक हुमकती पहाड़ी गूंज और दिल को खींचने वाली सख्त कैफियत के अतिरिक्त एक चौकन्नापन भी है, जो कठोर पहाड़ और जलहीन रेगिस्तान अपने आजादों को बख्श देते हैं। सिंधी उर्दू-स्वर लहकता, लहराता, lyrical स्वर है। एक ललक, एक मेहराब लहर जो अपने-आपको चूम-चूम कर आगे बढ़ती है। उर्दू के क्षेत्रीय स्वरों में वो लोक-ठाठ, मिठास और रस-जस है, जिसका हमारे घिसे-पिटे टकसाली और शह्री स्वर में दूर-दूर पता नहीं मिलता, लोक-स्वर के समावेश से जो नया उर्दू स्वर उभरा है उसमें बड़ी ताजगी, लोच और समाई है।

'भरे हैं यहां चार सिम्तों से दरिया '

बहस और तकरार के मध्यांतर में खान साहब पैदल सैर को निकल जाते। कोहाट और बन्नू के दस-पंद्रह भक्त जो सारे दिन वास्कटों में पिस्तौल रखे, बाहर प्रतीक्षा में बैठे होते, उनकी अर्दली में चलते। ये उनके कमांडोज थे जो उनकी कटी हुई उंगली के आधे इशारे पर अपनी कमर से बारूद बांध कर किसी भी प्रकार का खतरा मोल लेने को तत्पर रहते थे। खान साहब ने उनके लेटने, बैठने और खातिरदारी के लिए बाहर तीन चारपाइयां और काबुली समोवार रखवा दिया था। उसमें दिन-भर चाय उबलती रहती, जिसके निकास के लिए बिशारत को टीन की नालीदार चादरों का एक अस्थायी टायलेट बनवाना पड़ा। इसमें वो यूज्ड ब्लाटिंग पेपर रखवा देते थे। लोगों ने कच्ची रोशनाई की शिकायत की तो उन्होंने पिछले दिन का अखबार रखवाना शुरू कर दिया, जो हर सरकार का तरफदार रहा था। अब यह टायलेट पेपर के तौर पर उपयोग किया जाने लगा। इसमें कम-से-कम अखबार के साथ जियादती नहीं थी। दिन भर गप्पें, चुहलें और वज्न उठाने के मुकाबले होते रहते। जवान अपने रोजगार, खेल-कूद, महंगाई, सिनेमा, खाने-पीने और निशानेबाजी की बातें करते, जबकि अधेड़ उम्र वाले जियादा चीनी की चाय और गंदे लतीफों से खुद को रीचार्ज करते रहते। दोनों की गर्मी से घड़ी-भर के लिए गुलाबी बुढ़ापे की ठिरक दूर हो जाती तो ठरक सर पे चढ़ के ऐसी दीवानी बातें करने लगती कि जवान सुन के शर्मा जाते। जिसकी मूंछ में जितने अधिक सफेद बाल होते या कमर जितनी अधिक झुकी होती, उसका लतीफा उतना ही दूर-मार और नशीला होता।

खान साहब को कभी कोई जियादा ही मजेदार किस्सा सुनाना होता तो कल्ले में गुड़ या मिश्री की डली दबा कर सी-सी-सी करते हुए चाय पीते जाते। झूमते हुए कहते, यारा जी! समरकंद और फर्गाना में इसी तरह पी जाती है।

फुर्सत का सारा समय खान साहब कराची और कराची वालों को देखने और जो कुछ देखते उस पर लानत भेजने और भिजवाने में गुजारते। कहते थे कराची में सांस लेने के लिए भी खुद कोशिश करनी पड़ती है। कबाइली इलाके की हवा हल्की और शफ्फाक (प्रदूषण रहित) होती है अपने-आप गोली की तरह अंदर दाखिल हो जाती है, खास-तौर पर जाड़े में। सुब्ह रेडियो कह रहा कि हवा में नमी का प्रतिशत 90 है, इसका मतलब तो यह हुआ कि कराची में दूध वाले हवा में सिर्फ दस प्रतिशत मिला कर दूध बना लेते हैं। आप जिन अवसरों पर नारे, शेर और वजीफे पढ़ने लगते हैं, वहां हम ठांय से गोली मार देते हैं। मैं इतने दिन से यहां हूं, शहर के एक आदमी के हाथ में बंदूक नहीं देखी। हमारे यहां तो निकाह के वक्त भी पिस्तौल साथ रखते हैं कि पता नहीं मेहर पर गोली की नौबत कब आ

जाये। किसी-किसी दुल्हन का बाप और रिश्तेदार एकदम खबीस, कंजूस, वाहियात और बेहूदा निकलता है। मैं तो एहतियात के तौर पर छोटी मशीनगन ले गया था, उससे मेरे मामू ने 1937 में खैसूरा के पास कतूरी खैल इलाके में एक पहाड़ी खोह से तीन गोरे मार गिराये थे, जिनमें एक कप्तान था। उसकी सूरत बुलडाग जैसी थी। उस सुअर के बच्चे ने फकीर ऐपी के अनगिनत मुरीद (भक्त) शहीद किये थे। मामू ने उसके कान और नाक काट कर चील कौओं को खिला दिये। दूसरे गोरे की जेब से, जो मामूली सिपाही था, उसकी झुकी हुई कमर वाली बूढ़ी मां और एक साल की बड़ी प्यारी-सी बच्ची के फोटो निकले। बच्ची के हाथ में गुड़िया थी। फोटो देख कर मेरा मामू बहुत रोया। लाश के हाथ पर से जो सोने की घड़ी उसने उतार ली थी, वो वापस बांध दी। लाश को छांव में रखकर वापस जा रहा था कि थोड़ी ही दूर चल कर कुछ खयाल आया। वो पल्टा और अपनी चादर उतार के उस पर डाल दी।

तो मैं यह कह रहा था कि मैं मामू की मशीनगन से लैस हो कर गया था। बच्चों, काजी और नाई के अलावा कोई और निहत्था नहीं था। ठीक निकाह के समय लड़की वाले पसर गये। कहने लगे कि मेहर एक लाख का होगा। इस पर मामू झगड़ा करने लगा, वो शरई (धार्मिक कानून के अनुसार) मेहर यानी पौने तीन रुपये भर चांदी पर अड़ा था, जिसका कीमत उस समय तेरह रुपये साढ़े पांच आने थी। कबीले के एक बुद्धिमान बुजुर्ग ने सुझाव पेश किया कि कुछ लड़की वाले कम करें, कुछ लड़के वाले मेहर बढ़ायें। दोनों पार्टियां औसत रकम पर समझौता कर लें। इस पर एक और बुद्धिमान बोला, सरदार! होश करो, तेरह रुपये साढ़े पांच आने और एक लाख के बीच कोई औसत रकम नहीं होती। ऐसे में औसत तलवार से निकलता है।

राड़-रौला बढ़ा तो मैंने सेहरा हटा कर जोर से कहा, मैं तो पांच लाख का मेहर बांधूंगा, इससे कम में मेरे खानदान की बेइज्जती होगी। ये सुन कर मामू सन्नाटे में आ गया। मेरे कान में कहने लगा 'क्या तू आज पोस्त पी के आया है? पांच लाख में तो कलकत्ते की गौहर जान और एक सौ एक रंडियों का नाच हो सकता है।' मैंने कहा, 'मामू! तू बीच में मत बोल! तूने जिंदगी में बायीं आंख मींच कर दायीं आंख से राइफल का निशाना बांध कर सिर्फ अपने दुश्मन को देखा है या फिर कलदार रुपयों पर क्वीन विक्टोरिया का चेहरा देखा है। तूने दुनिया नहीं देखी, न तुझे मर्दों की आन का कुछ खयाल है, अगर मुझे देना ही नहीं है तो बड़ी रकम मारूंगा। छोटी रकम मारना जलीलों और दय्यूसों का काम है।

मुझे आये इतने दिन हो गये, कराची में एक भी दंगा फसाद नहीं हुआ, क्या यहां रिश्तेदार नहीं रहते? क्या यहां सब एक दूसरे को अनाथ, लावारिस समझ के माफ कर देते हैं? परसों की बात है मैं एक दोस्त से मिलने लांडी गया था। बस-कंडक्टर ने मेरी रेजगारी नहीं लौटायी। मैंने उतरते समय गाली दी तो सुनी-अनसुनी कर गया। मैंने दिल में कहा, 'बदबख्ता! मैंने गाली दी है, नसीहत तो नहीं दी, जो यूं एक कान से सुन कर दूसरे कान से निकाल दी।'

इस लतीफे के बाद बड़ी देर तक उनके हल्क से कमजोर बैट्री वाली कार को बार-बार स्टार्ट करने की आवाजें निकलती रहीं और शरीर जेली की तरह थुलथुलाता रहा।

परंतु इसका अर्थ यह नहीं कि खान साहब को कराची बिल्कुल पसंद नहीं आया। कहते थे कराची में अगर कराची वाले नहीं हों और समुद्र डेढ़ दो सौ मील परे हट जाये तो ट्रक और घोड़े दौड़ाने के लिए शहर बुरा नहीं। कराची के कुछ हिस्से उन्हें बेहद पसंद आये। ये कच्ची बस्तियों के वो इलाके थे, जो तहसील कोहाट जैसे लगते थे और जहां एक जमाने में उनकी जवानी ने, उनके कहे अनुसार पूरी तहसील को अपनी लपेट में ले लिया था।

यार जिंदा, फजीहत बाकी

बिशारत और खान साहब के बीच हुज्जत और तकरार सिर्फ दफ्तरी समय यानी 9 से 5 के बीच होती, जो हार-जीत का फैसला हुए बिना कल तक के लिए टल जाती, ताकि ताजा-दम हो कर झगड़ सकें।

सुल्ह है इक मुहलते-सामाने-जंग

करते हैं भरने का यां खाली तुफंग

सुना है पुराने जमाने में पड़ोसनें इसी तरह लड़ती थीं, लड़ते-लड़ते गला बैठ जाता और शाम पड़ते ही वो मर्द घर लौटने लगते जिन पर गालियां पड़ती रहीं, तो दोनों मकानों की सरहद अर्थात सांझी दीवार पर एक हांडी उल्टी करके रख दी जाती थी, जिसका मतलब यह होता था कि अंधेरे के कारण अस्थायी गाली-बंदी हो गयी है। कल फिर होगी। बात यह कि जब तक दूसरे पक्ष का चेहरा दिखाई न पड़े, गाली में Third dimension पैदा नहीं होती। जिस दुकान में हर समय झगड़े और दंगल का माहौल हो और बाहर एक पक्ष के दस-पंद्रह मुस्टंडे हिमायती समोवार के गिर्द पड़ाव डालें हों, उसके ग्राहक बिदकें नहीं तो और क्या करें। बकौल हमारे पहले उस्ताद मौलवी मुहम्मद इस्माईल मेरठी के, जिनकी 'रीडर' से हमने बचाव और फरार का पहला पाठ पढ़ा -

जबकि दो मूजियों में हो खट-पट

अपने बचने की फिक्र कर झट-पट

कोई ग्राहक मारे बांधे ठहर भी जाता तो खान साहब उसके सामने अपनी डूबी हुई रकम को इस तरह याद करते कि वो क्षमतानुसार डर कर या रुआंसा हो कर भाग जाता।

बहसा-बहसी का प्रभाव खान साहब की सेहत पर अत्यंत रोचक सिद्ध हुआ। उनकी जुबान और भूख दिन-प्रतिदिन खुलती जा रही थीं। वो किसी तौर लकड़ी की कीमत कम करने को तैयार नहीं थे, इसलिए कि घर में उन्हें इतने ही की पड़ी थी। उधर बिशारत बार-बार कहते 'पहले तो लकड़ी दागी और गुद्दल थी, उस पर तेज से तेज आरी खुद्दल हो गयी। दूसरे, सीजन भी नहीं हुई थी। कई तख्तों में बल आ गया था। कोई बेदाग नहीं निकला। तीसरे, छिजत (काट-छांट या लादने उतारने से माल में आई कमी) बहुत हुई। चौथे, जगह-जगह कीड़ा लगा हुआ था।'

खान साहब ने लुक्मा दिया 'पांचवें, यह लकड़ी चोरी हो गयी। यह भी मेरा ही कुसूर है। छठे, यह कि हमने आपको लकड़ी दी थी, लड़की तो नहीं दी कि आप उसके दहेज में हजार कीड़े निकालने बैठ जायें। आप तो पान खा-खा के बिल्कुल जनानियों की तरह लड़ने लगते हैं।'

बिशारत ने 'जनानों' सुना और समझा। तड़ से जवाब दिया 'आप भी तो काबुली वाला से कम नहीं।'

'यह क्या होता है सैब?'

बिशारत ने काबुली वाला का मतलब बताया तो वो आग-बगूला हो गये। कहने लगे 'हमारे कबीले में आज तक किसी ने सूद लिया, न सूद दिया। सुअर बराबर समझते हैं, जबकि आप खुलेआम सूद देते भी हैं और खाते भी हैं।

आपके घर का तो शोरबा (सालन का रसा) भी हराम है। उसमें आधा पानी, आधी मिर्चें और आधा सूद होता है। अगर आइंदा यह शब्द मुंह से निकाला तो ठीक न होगा।'

यह कह कर उन्होंने क्रोध से मेज पर इतने जोर से मुक्का मारा कि उस पर रखे हुए कप, चम्मच, पिन और तले हुए मटर हवा में एक-एक बालिश्त ऊंचे उछले और मेज पर रखे हुए टाइम पीस का अलार्म बजने लगा। फिर उन्होंने मुंह से तो कुछ नहीं कहा, अपने टर्किश कोट की जेब से भरा हुआ रिवाल्वर निकाल कर मेज पर रख दिया। मगर थोड़ी देर बाद नाल का मुंह फेर कर अपनी ओर कर लिया।

बिशारत सहम गये। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि जहर में बुझे हुए इस तीर को जो न सिर्फ कमान से निकल चुका था बल्कि प्यारे मेहमान के सीने में उतर चुका था, अब कैसे वापस लायें। खान साहब ने उसी समय अपने एक कमांडो को हुक्म दिया कि तुरंत जाकर पेशावर का टिकट लाओ। दोपहर का खाना भी नहीं खाया। बिशारत मिन्नतें करते रहे। खान साहब बार-बार बिफर कर दफ्तर से बाहर जाते, मगर इस अंदाज से कि हर कदम पर

मुड़ के तकते थे कि अब कोई मना कर ले जाये

बिशारत ने चार बजे उनके पैर पकड़ लिए तो वो घर चलने के लिए इस शर्त पर राजी हुए कि पहले अपने हाथ से मुझे पान खिलाओ लेकिन इसके बाद खान साहब के रवैये में एक अच्छा बदलाव आ गया। बिशारत तो खैर अपने कहे पर लज्जित थे बल्कि अंग्रेजी मुहावरे के अनुसार अपने ही पानी में डूबे जा रहे थे, परंतु खान साहब भी अपनी तीव्र प्रतिक्रिया पर कुछ कम लज्जित न थे। तरह-तरह से भरपायी करने का प्रयास करते। मिसाल के तौर पर बिशारत कभी उदास या बुझे नजर आते या घमासान की बहस में अचानक मैदान छोड़ कर भाग जाते कि खान साहब डान क्योटे की तरह अकेले हवा में तलवार चलाते रह जाते, तो ऐसे अवसर पर वो एक अजीब दिलकश अदा से कहते 'हुजूरे-वाला! काबुली वाला को तलब हो रही है, पान खिलाइये' उन्होंने इससे पहले पान कभी चखा तक नहीं था। बिशारत शर्म से जमीन में गड़ जाते। कभी कुछ खिसियाने, कभी Mock-serious अंदाज से हाथ जोड़ कर खड़े हो जाते, कभी घुटने छूते और कभी यूं भी होता कि खान साहब उनके हाथ चूम कर आंखों से लगा लेते।

पलंग जेब खान

शाम को वो खुले आंगन में पलंग बिछा कर उस पर मच्छरदानी लगवाते। कुछ दिनों से कुर्सी पर बैठना छोड़ दिया था। बिशारत से कहते थे कि तुमने मेहमान की शलवार के लिए कीलों को नंगा छोड़ रखा है। अपने पलंग से कुछ फासले पर मिलने आने वालों के बैठने के लिए चार चारपाइयां मच्छरदानी के साथ बिछवाते। कहते थे अगर फ्रंटियर के बिच्छुओं के पर लग जायें तो कराची के मच्छर बन जायेंगे। सारी बहस बैठे-बैठे होती। हां, किसी को तकरीर के दौरान जोश आ जाता तो वो मच्छरदानी इस तरह हटाता जैसे दूल्हा निकाह के बाद सेहरा उलट देता है। कराची की दूर-दराज बस्तियों से उनके पठान दोस्तों, गिरांईं और भक्तों के समूह मिलने आते। उनकी आवभगत ऐसे करते, मानों यह सब अपने ही घर में हो रहा है। देर रात तक तामचीनी की नीली छींट वाली प्लेटें और हुक्के घूमते रहते। चाय के रसिया उबलती चूरा चाय में मर्दान के गुड़ के अतिरिक्त खशखश का बूरा भी डलवाते। जो भी आता खान साहब के लिए कुछ न कुछ भेंट अवश्य लाता। अखरोट, चिलगोजे, पेशावर के काले गुलाब-जामुन,

शहद के छत्ते और डेरा इस्माईल खान का सफेद तंबाकू, कराकुली और जवान असील मुर्ग जिन्हें खान साहब बड़े शौक से खाते थे। दिन भर घर में दर्जनों असील मुर्गे छूटे फिरते। सुर्ख सीमेंट के फर्श पर हरी बीट और भी खलती थी (इसे 'खिलती' पढ़ें तब भी मजा देगी।) जो मुर्ग बेवक्त या जियादा जोर से अजान देता, उसे खान साहब सबसे पहले जिबह करते। एक दिन एक नौजवान गलती से मुर्गी दे गया, सुब्ह सारे मुर्गे आपस में बड़ी खूंखारी से लड़े। यह पहला अवसर था कि मुर्गे किसी स्पष्ट और उचित उद्देश्य के लिए लड़े वरना रोज अकारण ही एक-दूसरे बल्कि तीसरे पर भी झपटते और कटते-मरते रहते। कोई उन्हें लड़ने से दूर रखने की कोशिश नहीं करता था, इसलिए कि जब वो आपस में नहीं लड़ते थे तो घर वालों को काटने लगते। इकलौती मुर्गी पर लड़ कर वो ऐसे लहूलुहान हुए कि सुब्ह अजान देने के लायक भी न रहे। दड़बे में चुपके पड़े, मुल्ला की अजान सुनते रहे।

खान साहब इतवार को सारे दिन पलंग पर आधे लेट कर कबाइली झगड़ों और बन्नू तथा कोहाट की जमीनों के फैसले करते। अब वो औरंगजेब खान की बजाय पलंगजेब खान जियादा लगते थे। हां, रात को फर्श पर सोते। कहते थे कि इससे अहंकार और कमर का दर्द दूर होता है। हमारे फ्रंटियर में जाड़े में शौकीन लोग पयाल (बारीक सूखी घास) पर सोते हैं। पयाल से जंगलों और पहाड़ों की खुशबू आती रहती है। जिस आदमी को जंगल की खुशबू आती और भाती रहे वो कभी की किसी की गुलामी स्वीकार नहीं करेगा।

एक दिन यानी इतवार को लंच के बाद नमाज अदा करते। अगर खाना बदमजा होता या मिर्चें जियादा होतीं तो मूड बिगड़ जाता। नमाज छोड़ देते। कहते कि दिल का हाल जानने वाले के सामने मुझसे तो झूठ नहीं बोला जाता। किस दिल से बारह बार 'अल्हम्दुलिल्लाह' (अल्लाह तेरा शुक्र है) कहूं? कमरे में बहस और गीबत (पीठ पीछे बुराई करना) की महफिल उसी तरह गर्म रहती और वो अकेले एक कोने में जानमाज बिछा कर नमाज के लिए खड़े हो जाते मगर कान इसी तरफ लगे रहते। नमाज के बीच भी कोई व्यक्ति आपस में ऐसी बात कह देता जो खान साहब के स्वभाव या उद्देश्य के विरुद्ध होती तो तुरंत सिजदे की हालत में हों तब भी, नमाज तोड़ कर उसे पश्तो में गाली देते और फिर से उसी तरफ कान लगा कर नमाज पढ़ने लगते।

नमाज के बाद कुर्ता उतार कर पसरा करते। अधिकतर बनियानों में बड़े-बड़े छेद हो गये थे। कहते थे क्या करूं, मेरे साइज का बनियान सिर्फ रूस से स्मगल हो कर आता है। कभी-कभार लंडी कोतल में मिल जाता है तो ऐश आ जाते हैं। कोई-कोई बनियान तो इतना खूबसूरत होता है कि कुर्ते के ऊपर पहनने को जी चाहता है। खान साहब गहरी सांस लेते या हंसी का दौरा पड़ता तो चवन्नी बराबर सूराख फैल कर पिंग-पोंग की गेंद के बराबर हो जाते। इन फैलती सुकड़ती झांकियों में से बदन घटते-बढ़ते फोड़ों की तरह उबला पड़ता था। कैसी भी गर्मी हो, कुर्ता उतारने के बाद भी कुलाह नहीं उतारते थे। कहते थे, जब तक कुलाह सर पर है, बंदा खुद को नंगा और बेहया महसूस नहीं करता। अंग्रेज इसलिए तो औरतों को देखते ही हैट उतार देते हैं।

एक रात उपस्थित-गणों की चारपायी ओवर-लोडिंग की वज्ह से दस-बारह सवारियों समेत बैठ गयी। पांच-छः मिनट तक वो मच्छरदानियों और बानों के जाल से खुद को आजाद न करा सके। उसके अंदर ही मछलियों की तरह एक-दूसरे पर छलकते, फुदकते, कुलबुलाते रहे। चारपायी का एक पाया, पट्टी और एक कोहाटी खान की कलाई टूट गयी। जैसे ही यह मालूम हुआ कि कलाई टूट गयी है उस कोहाटी खान ने शुक्र अदा किया कि खुदा ने बड़ी खैर की, घड़ी बच गयी। दूसरे दिन औरंगजेब खान ने अपने कमरे में चांदनी बिछवा दी और अपने बिस्तर को गोल करके गाव-तकिया बना लिया। यह चांदनी (चादर) उन मुशायरों के लिए आरक्षित थी जो बिशारत के यहां

हर इतवार के इतवार बड़ी पाबंदी से होते थे। खान साहब भी दो मुशायरों में शरीक हुए। शेर में जरा भी ऐंच-पेंच होता तो पास बैठने वाले से पूछते कि ये कहना क्या चाहता है? वो फुसफुसा कर मतलब बयान कर देता तो जोर से कहते, 'लाहौल विला कुव्वत।'

फटी चांदनी और इजाफत -खोर शाइर

(इजाफत का शाब्दिक अर्थ है संबंध, फारसी में दो शब्दों को मिलाने वाला चिन्ह जैसे शामे-गम इसमें 'ए' इजाफत है)

दूसरे मुशायरे के बाद खान साहब ने बड़ी हैरत से पूछा, 'क्या यहां हर बार यही होता है?' जवाब मिला, 'और क्या!' बोले, 'खुदा की कसम! इस चांदनी पर इतना झूठ बोला गया है कि इस पर नमाज जायज नहीं! ऐसे झूठे शायर की मैय्यत (शव) को तो हुक्के के पानी से नहलाना चाहिये ताकि कब्र में कम-से-कम तीन दिन तक तो पूछ-ताछ करने वाले फरिश्ते न आयें। चांदनी पर जहां-जहां शाइरों ने सिग्रेट बुझाये थे, वहां-वहां छोटे-छोटे सूराख हो गये थे, जिन्हें बाद में शेर कहने और दाद देने के दौरान उंगली डाल-डाल कर बड़ा किया गया था। चांदनी कई जगह से फट भी गयी थी। खान साहब के लिए शाइरों का इतनी बड़ी संख्या में इकट्ठा होना एक अजूबे से कम न था। कहने लगे, अगर कबाइली इलाके में किसी आदमी के घर के सामने ऐसा जमघट लगे तो इसके दो कारण होते हैं, या तो उसके चाल-चलन पर जिरगा बैठा है या उसका बाप मर गया है।

कभी कोई शेर पसंद आ जाये, हालांकि ऐसा कभी-कभार ही होता था, तो 'वई!' कह कर आनंद से आंखें बंद कर लेते और झूमने लगते। शायर वो शेर दोबारा पढ़ने लगता तो उसे हाथ के इशारे से रोक देते कि इससे उनके आनंद में बाधा पड़ती थी।

एक दिन एक नौजवान शाइर ने दूसरे से पूछा कि तुमने मेरी जमीन में गजल क्यों कही? उसने कहा, सौदा की जमीन है, तुम्हारे बाप की नहीं। उस शायर ने यह आरोप भी लगाया गया कि वो इजाफत बहुत खाता है। इस पर दोनों में बहस हो गयी। शुरू में तो खान साहब की समझ में ही न आया कि झगड़ा किस बात का है। अगर खेत, मकान का झगड़ा है तो जबानी क्यों लड़ रहे हैं। हमने जब रदीफ, काफिये और इजाफत का मतलब समझाया तो खान साहब दंग रह गये। कहने लगे 'लाहौल विला मैं तो जाहिल आदमी हूं। मैं समझा, इजाफतखोर शायद रिश्वत या सुअर खाने वाले को कहते हैं। फिर सोचा, नहीं! बाप को गाली दी है, इस पर लड़ रहे हैं। फर्जी जमीनों पर जूतम-पैजार होते हमने आज ही देखी। क्या ये अपनी औलाद के लिए यही जमीनें विरासत में छोड़ के मरेंगे कि बर्खुरदारो! हम तो चले, अब तुम इन पुश्तैनी जमीनों की चौकीदारी करना। इनमें काफियों की पनीरी लगाना और इजाफतों का मुरब्बा बना के खाना। पश्तो में इसके लिए बहुत बुरा शब्द है।'

न हुई गालिब अगर उम्र तबीई न सही

उन्हें खुशी के आलम में बार-बार गाते, गुनगुनाते भी देखा। लहराती, गटकरी लेती आवाज में तंबूरे के तार का सा खरज का एक अचल सुर भी था, जो कानों को अच्छा लगता था। अपने जमाने में राग-रंग के रसिया रह चुके थे अर्थात संगीत का इस हद तक ज्ञान था कि यह अच्छी तरह जानते थे कि खुद बेसुरा गाते हैं। अक्सर कहते कि

हमारे यहां सुशील, सज्जन व्यक्तियों में अच्छा गाने को ऐब समझा जाता है। मैं बिगाड़ के गाता हूं। शुद्ध गायकी को सिर्फ गायकों, तवायफों, मीरासियों और नाचने वाले सुंदर लड़कों के केस में क्षमायोग्य समझते थे। उन्हें अनगिनत टप्पे याद थे मगर एक पश्तो गीत उनका फेवरेट था। उसका मुखड़ा कुछ इस तरह था कि देख दिलदारा! मैंने तेरी मुहब्बत में प्रतिद्वंद्वी को नंगी तलवार से कत्ल कर डाला। कानों पे हाथ रख कर 'या कुर्बान!' अलाप के बाद जिस अंदाज से वो गाते थे, उससे तो यही टपकता था कि उन्हें जो आनंद कत्ल में प्राप्त हुआ, मिलन में उसका अंश मात्र भी न मिला। इस बोल की अदायगी वो ऐसे पहलवानी जोश और अधाधुंध ढंग से करते कि शलवार में हवा भर-भर जाती।

कहते थे कि दुश्मनी और इंतकाम के बिना मर्द का जीवन निरुद्देश्य, अप्राप्त और फिजूल हो कर रह जाता है।

एक न एक दुश्मन अवश्य होना चाहिये, इसलिए कि दुश्मन न होगा तो इंतकाम किससे लेंगे? फिर बरसों मुंह अंधेरे कसरत करने, बाल्टियों दूध पीने और तकिये के नीचे पिस्तौल रख कर सोने से क्या लाभ? सारे पुश्तैनी और कीमती हथियार बेकार हो जायेंगे। नतीजा यह कि शेर-दिल लोग सम्मान-जनक मृत्यु को प्राप्त होने की बजाय दमे और उल्टी-दस्त से मरने लगेंगे। स्वाभाविक उम्र तक तो सिर्फ कव्वे, कछुए, गिद्ध, गधे और वो जानवर पहुंचते हैं, जिनका खाना धार्मिक-नियमानुसार हराम है। खान साहब यह भी कहते थे कि जब तक आपका कोई बुजुर्ग बेदर्दी से कत्ल न हो, आप बदले के आनंद से परिचित नहीं हो सकते। सिर्फ मंगतों (भिखारियों) मुल्लाओं, जनानों, मीरासियों, बिना बाप के आदमी और शायरों को कोई कत्ल नहीं करता। अगर आपका दुश्मन आपको कत्ल योग्य नहीं समझता तो इससे अधिक अपमान की बात नहीं हो सकती। इस पर तो खून हो जाते हैं। ईमान से! ऐसे बेगैरत आदमी के लिए पश्तो में बहुत बुरा शब्द है।

घोड़ा, गुल्लैल और विनम्रता

'यूं मेरा दादा बड़े उग्र स्वभाव का था। उसने छः खून किये और छः ही हज किये। फिर कत्ल से तौबा कर ली। कहता था अब मैं बूढ़ा हो गया, अब मुझसे बार-बार हज नहीं होता। वो पिचानवे साल की उम्र में अपनी मर्जी और इच्छानुसार मरा! जब तक आखिरी दुश्मन मर नहीं गया, उसने अपने आपको मरने नहीं दिया। कहता था कि मैं किसी दुश्मन को अपने जनाजे को कंधा नहीं देने दूंगा, न ही मैं अपने पत्नी का सुहाग लुटते देख सकता हूं। दादा सचमुच बड़े डील-डौल और रोब-दाब का आदमी था। पैदल भी चलता तो यूं लगता जैसे घोड़े पर आ रहा है। वो बड़ा बुद्धिमान और समझदार व्यक्ति था। इस समय मुझे घोड़े के जिक्र पर याद आया, वो कहता था कि सबसे बेहतरीन सवारी अपनी टांगें हैं। घोड़ों की टांगों का इस्तेमाल सिर्फ दो सूरतों में जायज है। एक मैदाने-जंग में दुश्मन पर तेज-रफ्तार से हमला करने के लिए, दूसरे हमला नाकाम हो तो मैदाने-जंग से दुगनी तेज-रफ्तार से भागने के लिए। मजाक अपनी जगह, मेरा दादा कजाकिस्तानी घुड़सवारों की तरह तेज दौड़ते हुए घोड़े की जीन को छोड़ कर उसके पेट के गिर्द चक्कर लगाता हुआ दूसरी तरफ से दोबारा जीन पर बैठ जाता था। मेरे पास उसकी तलवार और जड़ाऊ छोटी कटार है। इनमें उसी फौलाद का उपयोग हुआ है, जिससे नादिर शाह की तलवार ढाली गयी थी। हमारे खानदान में सौ साल के अरसे में मैं पहला आदमी हूं जिसने कत्ल नहीं किया, कम-से-कम अब तक। मेरे ताया ने भी कत्ल नहीं किया, इसलिए कि वो जवानी में ही कत्ल कर दिया गया।'

खान साहब को घोड़े से बहुत दिलचस्पी थी। काला घोड़ा उनकी कमजोरी था। बन्नू में पांच-छः घोड़े अस्तबल में बेकार खड़े खाते थे, सब काले। किसी का उपहार में दिया हुआ एक ऊंची नस्ल का बादामी रंग का घोड़ा भी था, जिसकी दुम और रानें काली थीं लेकिन उसे सिर्फ दुम ओर रानों की हद तक पसंद की दृष्टि से देखते थे। अक्सर कहते, हमारे कबीले में जिस मर्द का निशाना चूकता हो, जिसकी वंशावली में लोग केवल कत्ल हुए हों या जिसको घोड़ा बार-बार जमीन पर पटख देता हो, उससे निकाह जायज नहीं। घोड़ा मैंने हमेशा रखा। उस जमाने में भी जब बेहद तंगी थी और मैं बिना ब्रेक की साइकिल पर आता-जाता था। बाहर एक मुश्की (काला घोड़ा) खड़ा हिनहिनाता रहता था। किसी ने पूछा इसमें कौन-सी तुक थी, खान साहब? बोले, अव्वल तो अपने गांव में घोड़े पर टंगे-टंगे फिरना अहंकार की निशानी समझी जाती थी। दूसरे, घोड़ा बूढ़ा था - अब्बा की आखिरी निशानी। मुझे मेरे दादा ने पाला। वो अभिमान और दुष्टता के एकदम विरुद्ध था। कहता था, हमेशा गर्दन झुका कर चलो, यही खरे पख्तूनों का तरीका है। मेरी उठती जवानी, गर्म खून था। एक दिन मैं सीना ताने और गर्दन को इतना अकड़ाये कि सिर्फ आसमान नजर आता था, उसके सामने से गुजरा तो उसने मुझे रोक लिया। मेरे भाई के हाथ से गुलेल छीन कर उसके दोशाखे को मेरी गुद्दी में पीछे से फंसा कर गर्दन को इतना झुकाया कि मुझे अपनी ऐड़ी नजर आने लगी। मैंने कसम खाई कि आइंदा कभी गर्दन अकड़ा के नहीं चलूंगा। फिर गुलेल गर्दन से अलग करके भाई को वापस करना चाहा तो दादा ने सख्ती से मना कर दिया। कहने लगा, इसे संभाल के रख ले, काम आयेगी। बुढ़ापे में इसे दूसरी तरफ से इस्तेमाल करना, ठोड़ी के नीचे लगा कर गर्दन खड़ी कर लेना।

अहले - खानाबदोश

खान साहब अपने किसी साथी के साथ जब कच्ची आबादियों और पठान बस्तियों का दौरा करते और रास्ते में कोई भारी पत्थर पड़ा नजर आता तो खिल उठते। वहीं रुक जाते, जवानों को इशारा करते कि इसे उठा कर दिखाओ तो जानें। अगर किसी से न उठता तो आस्तीन चढ़ा कर आगे बढ़ते और या अली! कह कर सर से ऊंचा उठा कर दिखाते। राह चलते लोग और मुहल्ले के बच्चे तमाशा देखने खड़े हो जाते, कभी कराची की खुशहाल और साफ-सुथरी बस्तियों से गुजरते तो अफसोस करते कि खान! यह कैसी झाड़ू-फिरी खाना-खराब बस्ती है कि एक पत्थर पड़ा नजर नहीं आता, जिसे कोई मर्द बच्चा उठा सके। मेरे बचपन में गांव में जगह-जगह बड़े-बड़े पत्थर और चट्टानें पड़ी होती थीं, जिन पर खड़े हो कर आप दुश्मन को गाली दे सकते थे, टेक लगा कर सुस्ता सकते थे। इन्हीं पत्थरों पर जाड़े में बड़े-बूढ़े स्लेटी रंग का कंबल इस तरह ओढ़ के बैठते थे कि सिर्फ दो आंखें दिखाई देती थीं। धूप सेंकने के बहाने वो इन आंखों से नौजवानों के चाल-चलन पर नजर रखते थे। उधर जब कुंवारी लड़कियां, जिनके सफेद बाजू उथले पानी की मछलियों की भांति किसी प्रकार पकड़ में नहीं आते, पनघट से अपने सरों पर घड़े उठाये गुजरतीं तो इन्हीं पत्थरों पर बैठे गबरू जवान अपनी नजरें उठाये बिना, सिर्फ चाल से बता देते थे कि किसका घड़ा लबालब भरा है और किसका आधा खाली और कौन घूंघट में मुस्करा रही है। कोई लड़की मोटी चादर के नीचे फंसा-फंसा कुर्ता पहन कर या दांतों पर अखरोट का ताजा दंदासा लगा कर आती, तब भी चाल में फर्क आ जाता था। जवान लड़की की ऐड़ी में भी आंखें होती हैं। वो चलती है तो उनसे पता होता है कि पीछे कौन, कैसी नजरों से देख रहा है। गांव की सरहद पर मलिक जहांगीर खान की बुर्जी के पास एक तिकोना-सा पत्थर आधा जमीन में धंसा, आधा राक्षस के पंजे की तरह बाहर निकला हुआ था। उस पर अभी तक उन गोलियों के निशान हैं जो पचास बरस पहले ईद के दिन मैंने निशानेबाजी के दौरान चलाई थीं। एक गोली का टुकड़ा पत्थर से टकरा कर

उचटता हुआ नसीर गुल की रान में घुस गया। वो कच्ची उम्र का सुंदर लड़का था। लोगों ने तरह-तरह की बातें बनायीं। उसका बाप कहने लगा कि मनहूस के बच्चे! मैं तेरी दोनों जांघों में गोली से ऐसा दर्रा खोलूंगा कि एक लिहाफ की रुई से भी मूसलाधार खून बंद नहीं होगा। गांव में कभी सन्नाटे में फायर होता तो उसकी प्रतिध्वनि को दूर-निकट के पहाड़, अपनी गरज में शामिल करके, बारी-बारी लौटाते तो जमीन देर तक कांपती रहती और दिल दहल जाते। औरतें अपने-अपने मर्द के लिए दुआयें करतीं कि खुदा खैर से लौटाये।

मुहब्बत और नफरत दोनों खान साहब 'वेट लिफ्टिग' से व्यक्त करते। मतलब यह कि बहस में हार जायें तो प्रतियोगी को उठा कर जमीन पर पटख देते और अगर मुद्दत के बिछड़े दोस्त मिल जायें या हम जैसे कद-काठी वाले भक्तगण सलाम करें तो गले मिलने के दौरान हमें इस तरह हिलाते, झंझोड़ते जैसे फलदार वृक्ष की शाख को झड़झड़ाते हैं। फिर जोशे-मुहब्बत से हमें जमीन से अधर उठा लेते, हमारे माथे को अपनी lip level तक लाते और चूम कर वहीं हवा में न्यूटन के सेब की भांति गिरने के लिए छोड़ देते।

इसी प्रकार उनके एक पसंदीदा टप्पे से, जो वो अक्सर गाते और गुनगुनाते थे, यह जाहिर होता था कि महबूब भी उन्हें सिर्फ इसलिए भाता है कि उसे दोनों हाथों में उठा कर घड़े की तरह सर पर रखा जा सकता है। उस टप्पे का अर्थ था कि जानां आ! मेरे पहलू का घड़ा बन जा कि तुझे सीने के रास्ते से सर पर चढ़ा लूं। गाने में कटी उंगली से अपने सीने पर गुदाज घड़े के सफर का ऐसा नक्शा खींचते कि -

मैंने ये जाना कि गोया ये भी मेरे सर पे है

महबूब का, वज्न के अतिरिक्त रूप-रंग में भी घड़े के सदृश होना हालांकि लाजमी शर्त नहीं, लेकिन एक्स्ट्रा क्वालिफिकेशन अवश्य प्रतीत होती थी। घड़े को अपने शर्माये हुए पहलू से जुदा करके सर पर रख लेने से शायद पवित्र निगाह और निकाह का यह पहलू दिखाना था कि सुंदर घड़े को सारा समय सर पर उठाये फिरने वाला अहले-खानाबदोश खुद कभी इसका पानी नहीं पी सकता। उस दुखिया की सारी उम्र घड़े को सर पर संतुलित करने और लौंडों की गुलेल से बचाने में ही गुजरेगी।

सचार

सच बात कहने में खान साहब उतने ही बेबस थे जितने हम आप छींक के मामले में। मुंह पर आई हुई बात और डकार को बिल्कुल नहीं रोकते थे। अगर उनकी किसी बात से दूसरा आहत या क्रोधित हो जाये तो उन्हें पूरी तरह इत्मीनान हो जाता था कि उन्होंने सच बोला है। उन्हें सच इस तरह लगता था जैसे सामान्य आदमी को हिचकी या शायरों को ताजा गजल लगती है। इतरा-इतरा कर लिखने वाले को लिखार और खुलकर खेलने वाले को खिलाड़ कहते हैं, बिल्कुल इसी तरह बात-बेबात सच बोलने वाले को सिंधी में 'सचार' कहते हैं। खान साहब का संबंध इसी कबीले से था। मिसाल के तौर पर एक बार एक साहब से उनका परिचय कराया गया। छूटते ही पूछने लगे 'ऐसी मूंछें रख कर आप क्या साबित करना चाहते हैं?' वो साहब बुरा मान गये तो कहने लगे 'माफ करना! मैं जाहिल आदमी हूं, यूं ही अपना ज्ञान बढ़ाने के लिए पूछ लिया। खलील अहमद खां 'रिंद' से पूछा 'माफ करना आपकी सेहत पैदाइशी खराब है या खुद खराब की है? क्या आप के वालिद भी नाम के आगे खान लिखते थे।' वो साहब रुहेलखंड के अक्खड़ पठान थे, सचमुच बिगड़ गये। कहने लगे, 'क्या मतलब?' वो बोले, 'हमने तो वैसे ही

पूछ लिया। क्योंकि बारासिंघा मां के पेट से सींगों के झाड़ समेत पैदा नहीं होता।' एक बार बिशारत से पूछा 'आप रेशमी कमरबंद इस्तेमाल करते हैं, खुल-खुल जाने के अतिरिक्त इसके और क्या लाभ हैं?' एक और अवसर पर तीन-चार दोस्तों की उपस्थिति में बिशारत को बड़ी सख्ती से टोका, 'यारा जी! माफ करना मैं तो जाहिल आदमी हूं। मगर यह आप दिन भर आदाब अर्ज! आदाब अर्ज! तस्लीमात अर्ज! तस्लीमात अर्ज! क्या करते रहते हैं, क्या अस्सलाम अलैकुम कहने से लोग बुरा मान जायेंगे?'

इससे पहले बिशारत ने इस पहलू पर कभी गौर ही नहीं किया था। सच तो यह है कि इधर हमारा भी खयाल नहीं गया था। बिशारत ने अपने पिता को हमेशा 'आदाब-तस्लीमात' ही कहते सुना था और इसमें उन्हें बड़ी विनम्रता और सौंदर्य प्रतीत होता था। खान साहब ने दूसरी बार भरी महफिल में टोका तो वो सोच में पड़ गये। अब जो पलट कर पीछे देखा तो नजरों के सामने एक दृश्य के बाद दूसरा दृश्य आता चला गया।

1. क्या देखते हैं कि मुगल बादशाहों ने अपने पारंपरिक राजसी वस्त्र उतार फेंके और राजपूती खिड़कीदार पगड़ियां पहन लीं। शहंशाह माथे पे तिलक लगाये फत्हपुर सीकरी के इबादतखाने बैठे फैजी से फारसी रामायण का पाठ सुन रहे हैं। थोड़ी देर बाद पंडितों और मुल्लाओं के शास्त्रार्थ में वो शोर और हंगामा हुआ कि यूं लगता था जैसे मस्त खच्चर भिड़ों के छत्ते बचा रहे हैं। सम्राट अकबर ने धर्म ईजाद कर डाला। वो अपनी हिंदू जनता को जल्दी-से-जल्दी खुश करने के उद्देश्य से भी अपने पुश्तैनी दीन से बेजारी और असंबद्धता दर्शाना चाहता था। सच्चाई यह है कि इतने बड़े साम्राज्य के बावजूद वो शरीअत (इस्लामी धार्मिक कानून) से परेशान, मुल्लाओं से निराश और अपनी प्रजा के बहुसंख्यकों से भयभीत था। आहिस्ता-आहिस्ता उसने अपनी पैगंबरी का दावा कर दिया, जिस पर उसकी महारानी जोधाबाई और मुल्ला-दो-प्याजा तक ईमान न लाये। उसने सब को खुश करने के लिए सब धर्मों का एक काकटेल बनाया जिसे सबने इसी आधार पर ठुकरा दिया।

2. फिर देखा कि काले घोड़े की नंगी पीठ पर रातों-रात मंजिलें तय करने वाले और देश-देश झंडा गाड़ने वाले मुगल सूरमा अब जमना-किनारे राजपूती तर्ज के दर्शनी झरोखे और लाल झूल और पचरंगी मस्तक वाले हाथी पर विराजे नजर आ रहे हैं। लू के थपेड़ों ने उनकी वेषभूषा बदल डाली, मलमल के हवादार अंगरखों ने जिरह बख्तर (कवच) की जगह ले ली, आहिस्ता-आहिस्ता विजयी होने वालों ने अपनी मातृभाषायें अरबी, तुर्की और फारसी छोड़ कर एक नयी भाषा उर्दू बनायी, जो आरंभ में उनके लिए भी इतनी ही विदेशी और अजनबी थी, जितनी हिंदुओं के लिए तुर्की या फारसी। मुकम्मल सैनिक-विजय के पश्चात हुक्मरानों ने अपनी अस्ल भाषा त्याग कर खुशी से एक प्रकार की सांस्कृतिक पराजय स्वीकार कर ली, ताकि हारने वाले यह न समझें कि वो अपने सिक्के के साथ अपनी मातृभाषा भी प्रचलित करना चाहते हैं। मस्जिदों और खानकाहों के दरवाजों, महराबों पर हिंदुओं के पवित्र फूल कमल की नक्काशी होने लगी। शूरवीरों की महफिलों में ताजिकिस्तानी नृत्य का जोश और समरकंद और बुखारा के नगमे फिर कभी सुनायी न दिये कि समय ने लय ही नहीं, नय (बांसुरी) और नगमा भी बदल के रख दिये। हिंद पार के फनकार, अपने साज बगलों में दबाये, मुद्दतें गुजरीं, विदा हो गये। उनके जाने पर न आसमान रोया, न हिमालय की जती फटी कि उनके कद्रदानों ने अब सितार, सारंगी और मृदंग पर हिंदुस्तानी राग-रागिनियों से दिलों को गर्माना सीख लिया था।

3. लिखने वाली उंगली जो लिखती चली जाती है, सांस्कृतिक समझौते के चित्रों का एक और पृष्ठ पलट कर दिखाती है। गोमती नदी के रूप-किनारे रास का रसिया, अवध का आखिरी ताजदार, पैरों में घुंघरू बांधे स्टेज पर

अपनी ही बनायी हुई हिंदी धुन पर नृत्य-भाव बता रहा है। एक पृष्ठ और पलटिये तो जमना-किनारे एक ही दृश्य नजर के सामने आता है। कुछ दाढ़ी वाले परहेजगार बुजुर्ग मसनद की टेक लगाये धर्म के पतन के कारणों, धर्म के पुनरुत्थान और जिहाद की जुरूरत पर अरबी और फारसी में पत्रिकायें निकाल रहे हैं, लेकिन जब सलाम करना हो तो दोहरे हो कर एक-दूसरे को आदाब, तस्लीमात, बंदगी और मुजरा बजा लाते हैं। अस्सलाम-अलैकुम कहने से बचते हैं कि यह रिवाज (जो बारह सौ वर्ष से मुसलमानों की पहचान रहा था, जैसे 'श्लूम' मूसा को मानने वालों की या 'जयराम जी की' और 'नमस्कार' हिंदुओं की पहचान रही है) अब बिल्कुल समाप्त हो चुका था। नौबत यहां तक आ पहुंची कि हजरत शाह वली उल्लाह के खानदान के लोग भी जब सलाम करते तो कहते थे अब्दुल कादिर तस्लीमात अर्ज करता है।

बिशारत अक्सर कहते हैं कि मैं यह कभी नहीं भूलूंगा कि पेशावर के एक अनपढ़ पठान के ताने ने चार पुश्तों का पाला-पोसा आदाब अर्ज छुड़वा दिया।

कराची वाले किसी चूजे को मुर्गा नहीं बनने देते

खान साहब बहस के दौरान हर बात और हर सूरत-हाल के आम-तौर पर दो कारण बताते थे, जिनमें से एक की हैसियत महज पख की होती थी। मिसाल के तौर पर बिशारत ने एक दिन शिकायत की 'कराची की सुब्ह कैसी गंदली-गंदली और थमी-थमी सी होती है जैसे कि सूरज को निकलने में आलस आता है। सुब्ह उठने को जी नहीं चाहता। बदन ऐसा दुखता है जैसे किसी बॉक्सर ने रात भर इस पर प्रैक्टिस की हो। मैं कानपुर में मुर्गे की पहली आवाज पर ऐसे उठ बैठता था जैसे किसी ने स्प्रिंग लगा दिया हो।' खान साहब अपनी कटी तर्जनी उनके घुटने की ओर उठाते हुए बोले कि 'इसके दो कारण हैं, पहला तो यह कि कराची वाले किसी चूजे को मुर्गा नहीं बनने देते, अजान देने से पहले ही उसका किस्सा तमाम कर देते हैं, दूसरा यह कि आपके स्प्रिंग को गठिया हो गया है। चालीस दिन तक मेथी दाने की भुजिया खाओ और बूढ़े घुटने पर पनघट के पौधे का लेप लगाओ। हमारा पश्तो शायर कह गया है कि पनघट का हर पौधा दवा होता है क्योंकि कुंवारियों के पल्लू उसे छूते रहते हैं। मैं तो जब भी कराची आता हूं, हैरान-परेशान रहता हूं जिससे मिलो, जिससे बोलो, कराची से कुछ-न-कुछ शिकायत जुरूर रखता है। एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं मिला जो अपने शहर पर गर्व करता हो। इसके दो कारण हैं, पहला तो यह कि यहां गर्व करने लायक कोई चीज नहीं, दूसरा यह कि...'

दूसरे कारण बताने के लिए उन्होंने अपनी तर्जनी आकाश की ओर की ही थी कि मिर्जा अब्दुल वुदूद बेग बीच में कूद पड़े। कहने लगे - साहब! दूसरा कारण यह कि शरणार्थी, पंजाबी, सिंधी, बिलोच, पठान - सब अपने रब का फज्ल तलाश करने के लिए यहां आ-आ कर आबाद हुए। कड़ी धूप पड़ रही थी, सबके सरों पर कराची ने करुणामयी मां की भांति अपनी फटी-पुरानी चादर की छत तान दी। उन पर भी जो बसर करने के लिए केवल ठिया-ठिकाना मांगते थे, फिर पसरते चले गये लेकिन सबको शिकायत, सब बेचैन, बिखरे, उदास परेशान। शरणार्थियों को ही लीजे दिल्ली, लखनऊ, बंबई, बाराबंकी, जूनागढ़ - हद यह कि उजाड़! झूंझनूं (जयपुर - लेखक की ओर संकेत) को याद करके आहें भरता है, उसे यह अहसास नहीं कि जिन्हें याद कर-करके वो खुद पर रोना तारी किये रहता है, वो छोड़ा हुआ शहर नहीं, बल्कि उसकी रूठी हुई जवानी है जो लौट कर नहीं आ सकती। अरे साहब! अस्ल रौला भूगोल का नहीं, जवानी और बीते समय का है, जो वर्तमान के अमृत में विष घोल देता है।

पंजाबी, जिन्हें सबसे पहले सर सैयद अहमद खां ने 'जिंदादिलाने-पंजाब' का खिताब दिया था, जन्नत में पहुंच कर भी 'लहोर-लहोर ए।' पुकारेंगे। उन्हें कराची जरा नहीं भाता। वो सिंध के चित्तीदार केले, चीकू और पपीते में मुल्तान के आम और मौंटगुमरी के माल्टे का मजा न पा कर सचमुच उदास हो जाते हैं। फ्रंटियर का गुल जमान खान चौकीदार शेर शाह-कॉलोनी की झुग्गी झोपड़ी में अपने वतन के जंगल, पहाड़ और दरिया मांगता है।

कोई नहीं जो उठा लाये घर में सहरा को

वो सुब्ह दिल्ली की नहारी खाता है, तीसरे पहर को सेठ की कोठी के एक ओझल कोने में अपने मकई के बेमौसम पौधे को बड़े लाड़ से पानी देता है। वो दिन-भर पश्तो अंदाज में बंबइया उर्दू बोलने के बाद शाम को ट्रांजिस्टर पर पश्तो गानों से दिल बहलाता है और रात पेशावर रेलवे स्टेशन को आंखों में भर के सड़क के किनारे झुग्गी में सो जाता है। सड़क पर रात-भर पटाखे छोड़ती मोटरसाइकिल, रिक्शा और धड़धड़ाते ट्रक गुजरते रहते हैं, पर उसे सपने में ढोल, सुरना, रबाब और घड़े पर टप्पे सुनायी देते हैं।

उधर कोयटा से आया हुआ बिलोच कराची का नीला समुद्र देखता है और बिलोचिस्तान के चटियल पहाड़ों और उन तगड़े दुंबों को याद करके रोता है, जिनके वो बड़े खस्ता कबाब बना सकता था। अब रहा पुराना सिंधी, तो वो गरीब उस जमाने को याद करके आहें भरता है जब यह चारों हजरात कराची नहीं पधारे थे।

इस विषय में अंतिम कील खान साहब ने ही ठोकी। कहने लगे, 'खां! इसके दो कारण हैं। पहला, यह शेख सादी कह गये हैं कि जिस गांव का हर वासी उठते-बैठते, सोते-जागते किसी दूसरे गांव की याद में तड़पता रहे, वो गांव चौपट होवे ही होवे। हमारे 'मुलुक' में अगर कोई औरत दूसरी शादी के बाद अपने पहले पति को इसी तरह याद करे तो दूसरा पति दोनों की नाक काट कर एक-दूसरे की हथेली पर रख देगा। मुल्ला करम अली कहता था - जो औरत अपने पहले पति को बहुत याद करे उसे अरबी में हिनाना (छिनाल) कहते हैं। ऐसी औरत के दूसरे पति के लिए पश्तो में बहुत बुरा शब्द है।

खान साहब कठिन समस्याओं और जीवन की गुत्थियों को कभी-कभी अपनी अपढ़ सूझ-बूझ से इस तरह पानी पानी कर देते थे।

कि किताब अक्ल की ताक में

जूं धरी थी तूं ही धरी रही

दोनों पक्षों का झगड़ा अब इतना तूल खींच गया था कि दोनों एक-दूसरे को अपनी दलीलें तक सुनाते हुए कभी-कभी मुस्करा देते थे। अब यह कोई मामूली कारोबारी झगड़ा नहीं रहा था। दोनों पक्ष अपने-अपने उसूलों को तर्क के पाले में मुर्गों की तरह लड़ा रहे थे। वो भी इस शर्त पर कि जिसका मुर्गा जीत जायेगा उसे जिब्ह करके दोनों मिल के खायेंगे। यह हम इसलिए कह रहे हैं कि खान साहब अक्सर फर्माते थे कि हारा हुआ मुर्गा खाने से आदमी इतना बोदा हो जाता है कि हुकूमत की हर बात ठीक लगने लगती है। कभी-कभी तो ऐसा लगता था कि खान साहब सिर्फ दिल बहलाने के लिए मामले को खींच रहे हैं वरना वो बड़े दिल के और खुले हाथ वाले आदमी थे, यारों के यार थे। बिशारत को भी यह बात अच्छी तरह मालूम थी और यह भी कि खान साहब उन्हें जी-जान से चाहते हैं, उनकी हाजिर-जवाबी से आनंदित होते हैं। दो बरस पहले भी वो बिशारत से पेशावर में कह चुके थे कि मेरा जी

चाहता है, आपको सामने बिठा कर इसी प्रकार महीनों आपकी बातें सुनता रहूं। बिशारत खुद भी खान साहब पर फिदा थे। दहकते सुर्ख अंगारा फौलाद से चिंगारियां उड़ती देखने में उन्हें बहुत मजा आता था।

एक ओर तो खान साहब के लेन-देन की यह चरम सीमा कि एक पाई छोड़ने में उनकी शान घटती थी, दूसरी ओर मुहब्बत और लिहाजदारी का यह हाल कि जहां बिशारत का पसीना गिरे, वहां उनके दुश्मन का खून बहाने के लिए तैयार। बिशारत की दुकान से एक एक्साइज इंस्पेक्टर चार बरस पहले दस हजार रुपये की लकड़ी उधार ले गया और अभी तक रकम दबाये बैठा था। तीन साल हुए प्रोनोट लिख दिया था, मगर अब कहता था कि जाओ! नहीं देते, नालिश करके देख लो। प्रोनोट की समय सीमा कब की समाप्त हो चुकी थी। बिशारत ने अपनी अन्य परेशानियों के साथ इस नुकसान का भी जिक्र किया। दूसरे दिन शाम को खान साहब अपनी पच्चीस-तीस कमांडोज की टुकड़ी लेकर उसके घर पहुंच गये। दरवाजा खटखटाया, इंस्पेक्टर ने खोला और आने का कारण पूछा तो खान साहब ने कहा कि हम वो खिड़की दरवाजे उखाड़ कर ले जाने के लिए आये हैं, जिनमें हमारे भाई बिशारत की लकड़ी का उपयोग हुआ है। यह कह कर उन्होंने एक ही झटके से दरवाजे को कब्जे, स्क्रू और हैंडल समेत उखाड़ कर इस प्रकार बगल में दबा लिया जैसे स्कूल के भगोड़े लड़के तख्ती बगल में दबाये फिरते हैं। दीवार पर से इंस्पेक्टर के स्वर्गवासी दादा का फोटो जिसके बारे में उन्हें संदेह हुआ कि इसके फ्रेम में वही लकड़ी उपयोग हुई है, कील समेत नोच कर अपने एक कमांडो को थमा दिया। इंस्पेक्टर एक ही घाघ था, मौके की नजाकत समझ गया। कहने लगा, 'खान साहब! मेरी एक अर्ज सुन लीजिये।' खान साहब बोले, 'छोड़ो भी यार! गोली मारो, अब अर्ज-वर्ज किसी और को सुनाना, होश में आओ, रकम निकालो।'

रात के बारह बजने में अभी चार-पांच मिनट बाकी थे कि खान साहब ने दस हजार के नये नोटों की दस गड्डियां ला कर बिशारत के हवाले कर दीं। इनमें से सात पर बिलैका टेक्सटाइल मिल्ज की मुहर थी, जो उस इंस्पेक्टर के रिश्वत क्षेत्र में आता था। यही नहीं उन्होंने उससे अपने पहलवान कमांडो के रिक्शों का किराया और दूध के पैसे भी एक सेर प्रति व्यक्ति के हिसाब से वसूल कर लिए।

खान साहब घर वालों में ऐसे घुल मिल गये कि अक्सर शाम को बच्चों के लिए, जो उन्हें चचा कहने लगे थे, मिठाई, कपड़े और खिलौने ले कर जाते। सबसे छोटे बच्चे को बहलाने के लिए पलंग पर चित लेट जाते और पेट को धौंकनी की तरह फुला और पिचका कर उस पर बच्चे को उछालते। पड़ोस के बच्चे उन्हें देखते ही उनके पेट के लिए मचलने लगते और मांओं के सर हो जाते। खान साहब ने अब बिशारत के साथ उनके रिश्तेदारों की शादी-ब्याह, गमी और सालगिरह के आयोजनों में भी जाना शुरू कर दिया परंतु बिशारत ने कुछ समय बाद इस सिलसिले को एकाएकी बंद कर दिया क्योंकि उन्हें कुछ बाहरी सूत्रों से पता चला कि उनके (बिशारत के) रिश्तेदारों की सारी हमदर्दी खान साहब के साथ है और एक दिन तो यह सुन कर वो भौंचक्के रह गये कि एक ऐसे शरारती रिश्तेदार ने खान साहब को अलग से आमंत्रित किया है, जिससे बिशारत के संबंध एक अर्से से खराब, बल्कि टूटे हुए थे।

बिशारत को किसी मुखबिर ने यह भी खबर दी कि खान साहब दो-तीन बार चोरी-छुपे थाने भी जा चुके हैं और एस.एच.ओ. को कराकली टोपी, एक बोरी अखरोट, अस्ली शहद और दर्रे के बने हुए बिना लाइसेंस के रिवाल्वर का तोहफा भी दे आये हैं! वो घबराये, अब यह कोई नया फड्डा है। इसके भी दो कारण हो सकते हैं, उन्होंने सोचा।

रोटी तो किसी तौर कमा खाये मछंदर

खान साहब ने अब खुद शेव करना और शलवार में कमरबंद डालना भी छोड़ दिया था। रोज खलीफा नियमित रूप से आता था। जैसा कि हम पहले बता चुके हैं, खलीफा को साईसी, कोचवानी, ड्राइवरी, खाना पकाना, बैरागीरी, हजामत, बागबानी, प्लंबिंग - यह कहिये क्या नहीं आता था। उस काम में भी निपुण था जो इन सबसे अधिक लाभदायक है - चापलूसी और खुशामद। जब सब धंधे ठप हो जाते तो खलीफा अपने बुनियादी पेशे की ओर पलटता। अपने बेटे को, जो पुरखों के पेशे से घृणित एवं लज्जित था, अक्सर नसीहत करता कि बेटा! हज्जाम कभी बेरोजगार नहीं रह सकता। हज्जाम की आवश्यकता सारी दुनिया को रहेगी, जब तक कि सारी दुनिया सिख-धर्म न अपना ले! और सिख यह कभी होने नहीं देंगे। खलीफा दिन-रात खान साहब की खिदमत में जुटा रहता। शाम को उनके दोस्तों का झुंड डेरे डालता तो लपक-झपक अंदर से कहवा और चिलम भर-भर लाता। एक बार अपने घर से चार असील मुर्गों की, जिन्होंने अजान देनी नयी-नयी सीखी थी, बिरयानी बना कर लाया। इनके बारे में उसका दावा था कि जब ये जवान पट्ठे सुब्ह-सुब्ह गर्दन फुला-फुला कर अजान देते तो सारे मुहल्ले के मुल्ला और मुर्गियां बेकरार हो के बाहर निकल पड़ते थे। एक दिन कोहाट की जमीन का एक झगड़ा तय होने की खुशी में वो दोनों पक्षों के लिए मुसल्लम भेड़ रोस्ट करके लाया। सुबूत में एक बकरे की कटी हुई दुम भी उठा लाया ताकि खान साहब को यह शक न हो कि बकरे की बजाय सस्ती भेड़ भून के भेड़ दी। खान साहब उसे देखते ही बोले इतनी छोटी रान वाले बकरे की दुम इतनी बड़ी हो ही नहीं सकती। दुम के इस पहलू पर खलीफा की नजर नहीं गयी थी। हाथ जोड़ के खड़ा हो गया। फिर खान साहब के घुटने पकड़े और झूम-झूम कर टांग दबाने लगा। उन्होंने यह कह कर छुड़ायी कि बदबख्ता! घुटना पकड़ते-पकड़ते अब मेरी रान किस लिए टटोल रहा है?

खान साहब को खलीफा के पकाये हुए खानों से जियादा उसकी लच्छेदार बातों में मजा आता था। कहते थे, जिस बात को कहने वाला और सुनने वाला दोनों ही झूठ समझें, उसका गुनाह नहीं होता। वो उसकी शेखी को बढ़ावा देते। वो हर दूसरे-तीसरे दिन उनके तलवों पर रोगन-बादाम की मालिश करता। कहता था, इससे दिमाग को तरावट पहुंचती है। एक दिन अचानक खान साहब को कुछ खयाल आ गया। कहने लगे, तेरे खयाल से मेरा दिमाग मेरे तलवों में उतर आया है? लेकिन खलीफा ठीक ही कहता था, इसलिए कि सात-आठ मिनट बाद ही खान साहब रिवाल्वर तकिये के नीचे रखे, जोर-जोर से खर्राटे लेने लगते। हर तीन-चार मिनट के बाद चौंकते और खर्राटों में नया सुर लगा कर फिर से सो जाते। एक दिन वो बड़े ऊंचे सुरों में खर्राटे ले रहे थे कि पैर दबाते-दबाते खलीफा का हाथ न जाने क्यों उनकी वास्कट की जेब पर पड़ गया। आंखें खोले बगैर कहने लगे, 'बदबख्ता! नक्दी तो मेरे कोट की जेब में है!'

दरअस्ल वो उनके मुंह लग गया था। खिदमतगार, चिलम भरने वाला, हज्जाम, दास्तानगो, खानसामां, अर्दली, गाइड, मुखबिर, सलाहकार - वो उनका सभी कुछ था। तीन-चार दिन से आपस में न जाने क्या मिस्कौट हो रही थी। रोजाना शाम को भी किसी-न-किसी बहाने बिशारत के यहां आ जाता। उनकी बेगम ने दो-तीन बार कहा कि इसका आना भेद और मनहूसियत से खाली नहीं।

आदमखोर शेर को पहचानने की आसान तरकीब

एक दिन सुब्ह उठते ही खान साहब ने अचानक यह सुझाव पेश किया कि अब तक जो रकम आपने दी है उसे घटाने के बाद जो रकम देने वाली बनती है, उसके बदले यह गाड़ी जो अर्से से बेकार खड़ी है, मुझे दे दीजिये। बिशारत ने कहा लकड़ी की अस्ल मालियत किसी तरह सात हजार से अधिक नहीं जबकि इस गाड़ी की कीमत नयी बाडी और नये पुर्जों के साथ किसी तरह नौ हजार से कम नहीं, फिर जिस अंग्रेज की सवारी में यह रहती थी उसे सर का खिताब मिलने वाला था। खान साहब ने जवाब दिया, आपकी गाड़ी बहुत-से-बहुत पांच हजार की होगी, जबकि मेरी लकड़ी नौ हजार की थी। आपने तो पेट्रोल और पंक्चर जोड़ने का सारा खर्चा, खलीफा की तन्ख्वाह और उसकी पत्नी का मेहर भी कार की कीमत में जोड़ दिया। बहुत कुछ बहसा-बहसी और घुड़-सौदेबाजी के बाद अदा की जाने वाली रकम का अंतर घट कर वही आया गया, जहां से झगड़ा शुरू हुआ था। यानी 2513.9.3। अब खान साहब इस क्लेम के बदले यह गाड़ी चाहते थे।

'खान साहब! आप बिजनेस कर रहे हैं या बार्टर, (Barter)?' बिशारत ने झुंझला कर पूछा।

'यह क्या होता है सैब?'

'वही जो आप करना चाहते हैं।'

पश्तो में इसके लिए बहुत बुरा शब्द है'

वो जब पश्तो का हवाला दे दें तो फिर किसी की हिम्मत नहीं होती थी कि अस्ल या अनुवाद की मांग करे। अक्सर कहते कि पश्तो गिड़गिड़ाने और रोने-पीटने की जुबान नहीं, नर आदमी की ललकार है। मतलब उनका यह था कि डंके की चोट पर बात करने, कछार में बेखबर सोते हुए शेर की मूंछें पकड़ कर जगाने और फिर उससे डायलाग बोलने की जुबान है। मिर्जा उस जमाने में कहते थे कि खान साहब उन लोगों में से हैं जो शेर की मूंछें उखाड़ने पर ही बस नहीं करते, बल्कि उसके मुंह में अपना सर दे कर यह रिसर्च करना चाहते हैं कि वेजिटेरियन है या आदम खोर!

'बट्टा -सट्टा'

बिशारत ने खान साहब की आसानी के लिए बार्टर को वस्तु-विनिमय कहना शुरू कर दिया, फिर इसका अर्थ समझाया। लंबी-चौड़ी व्याख्या सुन कर बोले 'यारा जी! तो फिर सीधा-सीधा बट्टा-सट्टा क्यों नहीं कहते, जिसमें हर पक्ष यही समझता है कि वो घाटे में रहा।'

और इसी भौंडे उदाहरण पर फैसला हो गया। खान साहब ने बड़ी खुशी और गर्व से एलान किया कि वो 'वस्तु विनिमय' के लिए तैयार हैं। दोनों ने एक-दूसरे को मुबारकबाद दी और इस तरह गले मिले, जिस तरह वो दुखियारे मिलते हैं जो एक-दूसरे के बहनोई भी होते हैं और साले भी।

लेकिन बिशारत दिल-ही-दिल में खुश थे कि खटारा गाड़ी सात हजार में बिक गयी। खान साहब उनसे भी जियादा खुश थे कि दलिद्दर लकड़ी के बदले नौ हजार की कार हथिया ली। दोनों पक्ष इस स्थिति को सत्य की विजय समझ रहे थे। हालांकि हम से दिल की बात पूछें तो झूठ ने झूठ को पछाड़ा था और कूड़ा-करकट का हस्तानांतरण कूड़ा-

करकट से हुआ था। खान साहब कार को चमकाते हुए कहने लगे, 'हम इसको लंडी कोतल का सैर करायेगा। अखरोट के पेड़ की छांव में खड़ा करेगा। इसमें काबुल से कराकली, कालीन और चिल्गोजे भर कर लायेगा, काबुल के उत्तर के चिल्गोजे में, ईमान से निकाह के दस छुहारों के बराबर ताकत होता है।

फैसला होते ही खान साहब ने नयी-नयी सीखी हुई लखनवी उर्दू और कानपुरी लहजे के शिकंजे से खुद को एक ही झटके में आजाद कर लिया। वाक-चातुर्य में निपुण शत्रु पर विजय पाने के बाद कैमोफ्लाज की आवश्यकता न रही।

कहने का उद्देश्य सिर्फ यह है कि खान साहब के नजदीक मुश्की से बेहतर दुनिया में कोई सवारी हो ही नहीं सकती थी। वो उस कार को, जो अब इनकी हो चुकी थी, मुश्की कहने लगे।

बालू - शाही का इतिहास

बिशारत ने चोरी-छुपे शुक्राने की नमाज अदा की मगर खान साहब से अपनी खुशी छुपाये नहीं छुप रही थी। वो हरचंद राय रोड पर से गुजरते हुए तांगों के घोड़ों को ललचायी हुई नजरों से देख रहे थे कि यह पल विजय-प्राप्ति का था। दुश्मन के घर के चारों ओर शाही अंदाज में निकलने की घड़ी थी। बर्दाश्त न हो सका तो फिलहाल मुश्की की रान यानी कार के मडगार्ड को थपथपा कर दिल के हौसले निकाले, इंजन की थूथनी पर हाथ रख कर शाबाशी दी। उनका बस चलता तो उसे घास-दाना खिला कर अपने हाथ से खरेरा करते। कुछ देर बाद जैसे ही एक तांगे वाले ने स्पेंसर आई हास्पिटल के सामने पेड़ की छांव में घोड़ा खोला, वो लपक कर उस पर जा चढ़े और बिशारत की दुकान के दो चक्कर लगाये। फिर बिशारत ही से जग में ठंडा पानी मंगवाया और सर पर उसके तरेड़ों के बाद सात सेर बालूशाही मंगवा कर बांटी। बिशारत के तीन रिश्तेदारों के हिस्से लगा कर खुद पहुंचाये। बिशारत दंग रह गये। हद हो गयी। सख्त नाराजगी के आलम में भी उन्हें कभी इन तीनों पर शक नहीं हुआ था कि यह ऐसे फसादी और दोगले निकलेंगे। भीतर-ही-भीतर खान साहब से मिल जायेंगे। बहरहाल, बालूशाही द्वारा दोगलेपन का भांडा फूटने का इतिहास में यह पहला उदाहरण था। हमारा मतलब है बालूशाहियों के इतिहास में।

बन्नूं के भक्तों ने रायफलों चला-चला कर सुल्ह का ऐलान किया। एक पड़ोसी दुकानदार दौड़ा-दौड़ा बिशारत को मुबारकबाद देने आया। वो यह समझा कि उनके यहां बेटा पैदा हुआ है।

एक ट्रक ड्राइवर से, जो दुकान पर पड़तल लकड़ी की डिलीवरी देने आया था, खान साहब ने इच्छा व्यक्त की कि जरा हमें हमारी कार में गोवर्धन दास मार्किट तक सैर तो करा दो, तुम्हारे चाय-पानी का बंदोबस्त हो जायेगा। कुछ देर बाद लौटे तो कार की परफार्मेंस से बेहद खुश थे। कहने लगे, खुदा की कसम! बिल्कुल अब्बा जान की मुश्की की तरह है।

एक पेंटर को बुला कर रातों-रात कार पर काला स्प्रे पेंट करवाया ताकि आदतों के अलावा रूप-रंग में मुश्की जैसी लगे।

'Et, tu, Brute!'

दूसरे दिन बिशारत दुकान के शटर बंद करवा रहे थे कि सामने एक ट्रक आकर रुका जिसमें ड्राइवर के पहलू में थाने के मुंशी जी बैठे थे और पीछे उनकी चोरी हो गयी लकड़ी भी थी। तख्तों पर राइफल उठाये वही कांस्टेबल टंगा था। खान साहब ने एक डी.एस.पी. के माध्यम से, जो बन्नूं का रहने वाला उनका गिराईं था, न सिर्फ सारा माल शेर के मुंह से निकलवा लिया था, बल्कि उसके दांत भी प्रसाद के तौर पर निकाल लाये थे। ट्रक के पीछे-पीछे एक टैक्सी में (जो आम रास्ते पर अपने पीछे से निश्चित मात्रा से अधिक धुआं निकालने के कारण अभी-अभी पकड़ी गयी थी) वकील साहब पहुंचे, ताकि आपस में सुल्ह-सफाई हो जाये और मामला रफा-दफा हो। उनसे कुछ कदम के फासले पर वही मुल्जिम-नुमा मुवक्किल एक हाथ में उनका ब्रीफकेस थामे और दूसरे में कानून की किताबें उठाये पीछे चल रहा था। वकील साहब के हाथ में मिठाई के दो डिब्बे थे। एक खान साहब को पेश किया और दूसरे के बारे में बिशारत से कहा, कि हमारी ओर से भाभी साहिबा और बच्चों को दे दीजियेगा।

थाने के मुंशी जी ने पूछा, 'हमारा खलीफा कहां है?' बिशारत को यह जानकार बड़ा शॉक लगा कि पुलिस लॉक-आप में रात गुजारने के बाद से खलीफा महीने में दो बार थाने जाता रहा है और एस.एच.ओ. से लेकर हिरासती मुल्जिमों तक की हजामत बनाता रहा है! थाने के स्टाफ में या किसी हवालाती मुल्जिम के यहां निकट या दूर भविष्य में बच्चा पैदा होने वाला हो या थाने के आस-पास के इलाके की झुग्गियों में कोई स्त्री भारी कदमों से चलती नजर आ जाये तो उससे पक्का वादा लेता कि अगर लड़का हुआ तो खत्ने मैं करूंगा। उसके स्वर्गवासी पिता की वसीयत थी कि बेटा! अगर तुम बादशाह भी बन जाओ तो अपने पुरखों के पेशे को न छोड़ना। दूसरे, जिस किसी से मिलो उसको हमेशा के लिए अपना कर रखो या उसके हो रहो। सो वो गरीब सबका हो रहा।

खान साहब रात दो बजे तक कर्जों और 'पूला' तोड़ कर खेतों को पानी देने के सरसरी मुकद्दमों को, जिनमें गाली गलौज के समावेश से पेचीदगियां पैदा हो गयीं थीं, निपटाते रहे। मुकद्दमों की सुनवायी और फैसले के दौरान, लोगों के झुंड उनको खुदा हाफिज कहने आते रहे। अदालत हरेक की चाय, चिलम, चिल्गोजे और बालूशाही से खातिर करती रही। सुब्ह चार बजे से खान साहब ने अपना सामान बांधना शुरू कर दिया। सुब्ह की अजान के बाद एक असील मुर्ग की कुर्बानी की। उसका सर बिल्ली को और शेष घर वालों को नाश्ते पर खिलाया। दिल खुद चबाया। नाश्ते पर ही ऐलान किया कि मुश्की मालगाड़ी से नहीं जायेगी। बल्कि मैं इसे पंजाब की सैर कराता, दरियाओं का पानी पिलाता 'बाई रोड' ले जाऊंगा। बच्चे उनके जाने से बहुत उदास थे। उन्होंने खुद भी इकरार किया कि मेरा भी जाने को जी नहीं चाहता, मगर क्या करूँ लकड़ी का कारोबार वहीं है। अगर यहां जंगल होते तो खुदा की कसम तुम लोगों को छोड़ कर हरगिज न जाता। फिर उन्होंने तसल्ली दी कि इंशाल्लाह दो महीने बाद फिर आऊंगा। एक बोहरी सेठ से वसूली करनी है। अकेला आदमी हूं, बूढ़ा हो गया हूं, एक समय एक ही बेईमान से निपट सकता हूं।

बिशारत को मुस्कुराता देख कर खुद भी मुस्कुरा दिये। कहने लगे, यहां उधार पर बिजनेस करना ऐसा ही है जैसे गन्ने के खेत में कबड्डी खेलना! जितना बड़ा शहर होगा, उतना ही बड़ा घपला और फड्डा होगा, जिसकी छत जियादा बड़ी है, उस पर बर्फ भी जियादा गिरेगी।

फिर सबसे छोटे बच्चे को बहलाने के लिए चारपायी पर लेट गये।

चलते समय उन्होंने बिशारत की बेटी मुनीजा को, जो उनकी चहेती हो गयी थी, पांच सौ रुपये दिये। यह उसकी पांचवीं सालगिरह का तोहफा था, जो आठ दिन बाद मनायी जाने वाली थी।

73.6.3 रुपये नौकरों को बांटे। इससे पहले पिछली रात वो एक पठान नौजवान गुल दाऊद खान को दो हजार रुपये दे चुके थे, ताकि वो अपने चचा पर, जिसने उसकी जमीनों पर जबर्दस्ती कब्जा कर रखा है, फौजदारी मुकद्दमा दायर करे और उस दल्ले को यतीमों की जायदाद पर कब्जा करने की ऐसी सजा दिलवाये कि सब चचाओं को सीख मिले। इन तीनों रकमों को कुल जोड़ 2573.6.3 रुपये बनता है और यही वो रकम थी जिसका सारा झगड़ा था और जिसकी वसूली के लिए उन्होंने अपने कमांडोज के साथ धावा बोला था। बल्कि मिर्जा के अनुसार, प्रतिद्वंद्वी के किले के बीच में तंबू तान कर भंगड़ा डाल रखा था।

इस किस्से को तीस साल होने के आये। हमारी सारी उम्र हिसाब-किताब ही में बीती है, मगर हम आज भी यह नहीं बता सकते कि वास्तव में किसकी किस पर कितनी रकम निकलती थी और आखिर में जीत किस की रही। हमारी ही समझ का कुसूर था, जिन्हें हम दुश्मन समझे, वो दोस्त निकले और...।

खान साहब नौकरों को दे दिला कर बिशारत के वालिद को खुदा हाफिज कह रहे थे कि बिशारत क्या देखते हैं कि ठीक नौ बजे एक व्यक्ति चला आ रहा है, जिसकी सिर्फ शक्ल खलीफा से मिलती है। तंग मोहरी के पाजामे, मलमल के कुर्ते और मखमल की टोपी के बजाय मलेशिया की शलवार और कुर्ता, सर पर जरी की कुलाह पर मशहदी पगड़ी, कामदार वास्कट, पैर में टायर के तले वाली पेशावरी चप्पल। वास्कट और कुलाह क्रमानुसार तीन साइज बड़ी और छोटी थी। कोट की आस्तीन पर इमाम जामिन (सुरक्षा के लिए तावीज) हाथ में बलबन (घोड़ा) की लगाम। खान साहब ने सूचित किया कि बलबन भी एक ट्रक में बन्नूं जा रहा है। उनके अस्तबल में जहां पांच घोड़े, बेकार खड़े हिनहिना रहे हैं, वहां एक और सही। प्रत्येक प्राणी अपने भाग्य का अन्न साथ लाता है।

खान साहब ने घोषणा की कि मुश्की को खलीफा ड्राइव करके पेशावर ले जायेगा और कयामत तक वापस नहीं आयेगा। इसके दो कारण हैं, पहला तो यह कि उसके पुरखे कंधार से पेशावर के रास्ते से हिंदुस्तान आये थे। यात्रा के सामान में नंगी तलवार के अतिरिक्त कुछ न था। यह भी अधिकाधिक उपयोग से घिस-घिसा कर उस्तरा बन गयी। दूसरा यह कि उन्होंने इस नमक-हलाल को मुलाजिम रख लिया।

बिशारत का मुंह फटा-का-फटा रह गया।

'खलीफा! तुम...!'

'सरकार! - ' उसने इस अंदाज से हाथ जोड़ कर घिघियाते हुए कहा कि किसी स्पष्टीकरण की आवश्यकता न रही। इसमें लज्जा भी थी, विनती भी और हर हाल में रोटी कमाने-खाने का हौसला भी।

जब उम्र की नकदी खत्म हुई

खान साहब के जाने के कोई छः-सात सप्ताह बाद उनका लिखवाया हुआ एक खत मिला। लिखा था 'खुदा का शुक्र है, यहां हर तरह से खैरियत है, बाकी यह कि मैंने अपने वहां रहने के दौरान आपको बताना ठीक न समझा, क्योंकि आप ख्वामख्वाह चिंता करते और सोहबत का सारा मजा किरकिरा हो जाता। पेशावर से चलने के तीन सप्ताह पूर्व डॉक्टरों ने मुझे जिगर का सिरोसिस बताया था, दूसरी स्टेज में, जिसका कोई इलाज नहीं। जिनाह अस्पताल वालों ने भी यही बताया। डॉक्टरों ने सलाह दी कि हर समय अपना दिल खुश रखो। खुद को खुश रखो,

और ऐसे खुशबाश लोगों के साथ अधिक-से-अधिक समय बिताओ जिनकी संगत तुम्हें खुश रखे। बस यह तुम्हारा इलाज और अच्छी जिंदगी का नुस्खा है। यारा जी! मैं बच्चा नहीं हूं। जो उन्होंने कहा वो मैं समझ गया और जो नहीं कहा वो भी अच्छी तरह समझ गया। यह सलाह तो मुझे कोई तबला बजाने वाला भी मुफ्त दे सकता था। इसके लिए एफ.ओ.सी.जी. और एफ.आर.सी.एस. होने और जगह-बेजगह टोंटी लगा कर देखने की जुरूरत नहीं।

मैंने लंडी कोतल से लांडी तक निगाह डाली। आपसे जियादा मुहब्बत करने वाला, खुद खुश रहने और दूसरों का मन प्रसन्न करने वाला कोई बंदा नजर नहीं आया सो मैं टिकट लेकर आपके पास आ गया। बाकी जो कुछ हुआ वो तबीयत का जंग उतारने का बहाना था। जितने दिन आपके साथ गुजरे, उतने दिनों मेरी जिंदगी बढ़ गयी। खुदा आपको इसी तरह खुश और मुझ पर मेहरबान रखे। आपको मेरी वज्ह से तकलीफ हुई उसकी माफी मांगना लखनवी तकल्लुफ में गिना जायेगा जो मुझ जैसे जाहिल के बस का काम नहीं। मगर दोस्ती में तो यही कुछ होता है - मेरा दादा कहता कि फारसी में एक कहावत है - या तो हाथी-बानों से दोस्ती मत करो और अगर कर ली है तो फिर अपना मकान ऐसा बनाओ जो हाथियों की टक्कर सह सके।

एक ट्रक वाले के हाथ मरदान का दस सेर ताजा गुड़ जिसमें नयी फस्ल के अखरोट डले हुए हैं, सोवात के शहद के तीन छत्ते कुदरती हालत में, अस्ली मोम और मुर्दा मक्खियों समेत और एक सुराहीदार गर्दन वाली टोकरी में बीस फस्ली बटेरें भेज रहा हूं। युसूफी साहब के लिए उनका पसंदीदा पेशावर कैंट वाली दुकान का सेर भर ताजा पनीर और पिंडी का हलवा एक नाजुक-सी हवादार टोकरी में है। चलते समय उन्होंने गंधार आर्ट के दो-तीन नमूनों की फरमाइश की थी। कुछ तो रवानगी की अफरा-तफरी, फिर मैं जाहिल आदमी। यहां अपने ही जैसे दो-तीन दोस्तों से पूछा। उन्होंने मुझे गंधार मोटरपार्ट के दफ्तर भेज दिया। वो बोले हम तो ट्रक और उसके पार्ट्स बेचते हैं। तुम्हें किसका नमूना चाहिये। सोमवार को एक ठेकेदार का मुंशी चार काले पत्थर की मूर्तियां खुदाई से चादर में छुपा कर लाया था मगर एक जानने वाले ने जो आदमकद से भी बड़ी मूर्तियां स्मग्ल करके अमेरिका भेजता रहता है, मुझे बताया कि यह बुद्ध की नहीं है बल्कि उसके चपड़कनात चेले-चांटों की हैं। पश्तों में उसके चेलों के लिए बहुत बुरा लफ्ज है। बुद्ध इतना तगड़ा कभी था ही नहीं। सुना है, निर्वाण के बाद बुद्ध की सेहत और पसलियां युसूफी साहब जैसी हो गयी थीं। बहरहाल, तलाश जारी है। बाद सलाम उनसे अर्ज कीजिये कि इससे तो बेहतर होगा कि दीवार पर काबुली वाला का फोटो टांग लें।

'इस बीमारी का खाना खराब हो। उम्र का पैमाना पूरा होने से पहले ही छलका जा रहा है। खत लिखवाने में भी सांस उखड़ जाती है। डर के मारे ठीक से खांस भी नहीं सकता। आपकी भाभी रोने लगती हैं, मुझसे छुप कर थोड़ी-थोड़ी देर के बाद गरज-चमक के साथ रोती हैं। बहुत समझाता हूं कि बख्तावर! जब तक बिल्कुल बेहोश न हो जाऊं, मैं बीमारी से हार मानने वाला आदमी नहीं। बिशारत भाई! ऐसे आदमी के लिए पश्तो में बहुत बुरा शब्द है। पिछले हफ्ते से यूनिवर्सिटी रोड पर एक नया मकान बनवाना शुरू कर दिया है। दालान में पेशावर के पचास या कराची के सौ शायरों के पाल्थी मार कर बैठने की गुंजाइश होगी।

बाकी सब खैरियत है। खलीफा सलाम अर्ज करता है। मैंने उसे बैंक में चपरासी लगवा दिया है। रोज शाम को और छुट्टी के दिन मुश्की वही चलाता है। बहुत चंगा है, मुश्की को पश्तो में रवानी से गाली देने लगा है, मगर अभी पश्तो की तमीज पैदा नहीं हुई। सुनने वाले ठट्ठे लगाते हैं। कल ही मैंने उसे गुर बताया है कि जिसे तू हमेशा पुल्लिंग समझता आया, अब उसे स्त्रीलिंग कर दे, फिर तुझे पश्तो आ जायेगी। सबको सलाम, दुआ, प्यार और डांट-डपट।

आपका चाहने वाला काबुली वाला।

एक बात और यहां आ कर पुराना हिसाब देखा तो पता चला कि अभी कुछ लेना-देना बाकी है। मुझे सफर मना है। आप किसी तरह फुर्सत निकाल कर यहां जल्दी आ जायें तो हिसाब पूरा हो जाये और आपके काबुली वाला को थोड़ी-सी जिंदगी और उधार मिल जाये।

दूसरे, अब नये मकान और दालान का इंतजार कौन करे। मैंने आपके लिए फिलहाल एक बेछेद चांदनी और पांच शायरों का इंतजाम कर लिया है। वस्सलाम।

बिशारत पहली ट्रेन से पेशावर रवाना हो गये।

>>पीछे>>

शीर्ष पर जाएँ